ओ३म्

मानस-पीयूष

(संक्षिप्त एवं संशुद्ध रामचरित मानस)

★ अपूर्व हृदयग्राही व्याख्या, वेदवाद का जयघोष

★ महामानव राम का शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त

★ वैदिक संस्कृति की सचित्र झाँकियां
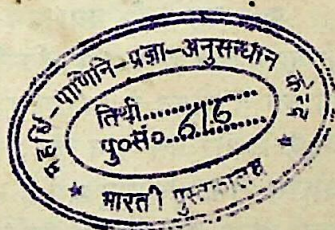
व्याख्याकार :

ईश्वरीप्रसाद 'प्रेम'

एम० ए० साहित्य रत्न,

सिद्धान्त शास्त्री

[सम्पादक 'तपोभूमि' मथुरा]

प्रकाशक :

प्रथमबार ★

मूल्य ४.०० ★

सत्य प्रकाशन

वृन्दावन मार्ग, मथुरा।

ओ३म्

दो शब्द !

'रामायण' मुझे बहुत अधिक प्रिय है। क्यों, किसलिये ? इसका उत्तर भी मेरे पास है। रामायण मेरे महान् पूर्वजों की गौरव गाथा है। रामायण वैदिक धर्म की क्रियात्मक व्याख्या है। श्री राम का पवित्र चरित्र वैदिकधर्म की मुंह बोलती तस्वीर है। वैदिक धर्म के सिद्धान्त अकाट्य और अतर्क्य हैं, वैदिक मान्यतायें सार्वकालिक और सार्वभौमिक हैं, वैदिक आदर्शों की ऊंचाई अतुलनीय है। फिर वैदिक धर्म ही मानव धर्म है, विश्वधर्म है या एकमेव धर्म है।

प्रश्न यह है कि क्या धर्म या वैदिक धर्म की शाश्वत सचाइयां सिर्फ आकाशीय वस्तु हैं या किसी मानव-रत्न ने इन सत्यों को अपने समग्र रूप में जीवन में धारण कर धर्म की महत्ता को चरितार्थ भी किया है ? और इस प्रश्न का उत्तर है— भगवान् राम ने। मर्यादा पुरुषोत्तम राम मूर्तिमान् धर्म हैं। श्री राम के पावन चरित्र का अनुशीलन, वैदिक धर्म का अनुवर्त्तन है। महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में 'रामो विग्रहवान धर्मः' और इसीलिये मुझे राम और रामायण इतने अधिक प्रिय हैं।

राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त ने ठीक ही लिखा है—

"राम ! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।"

और सत्य ही आदि कवि महर्षि वाल्मीकि से लेकर अन.. २ कवियों ने भगवान् राम का कीर्तिगान कर अपनी लेखनी को धन्य किया है। पर परवर्ती युग में (संस्कृत साहित्य से सम्बन्ध न रहने के कारण) सर्व साधारण जनता में जितना समादर गोस्वामी तुलसी दास के 'रामचरित मानस' को मिला, उतना अन्य किसी को नहीं।

'रामचरित मानस' काव्य की दृष्टि से अनूठा ग्रन्थ है। किन्तु महामानव राम के, आर्य जाति के राष्ट्र पुरुष श्री राम के शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त को 'अवतारवाद' की छाया में गोस्वामीजी ने इतने विकृत

रूप में उपस्थित किया है, जिससे भारतीय प्रजा की अकल्पनीय हानि हुई है। तब क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे 'मानस' के काव्य रस से वञ्चित भी न रहना पड़े और सैद्धान्तिक विकृतियों से राष्ट्र की रक्षा हो सके, अनेक वर्षों से यह ऊहापोह मेरे मन में चलता था।

एक बार विचार हुआ कि स्वयं ही चौपाई, दोहों के क्रम में एक नवीन काव्य की रचना की जाय। पर हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य तुलसी के समक्ष मेरा यह प्रयास तो नक्षत्रवत् भी नहीं होगा, यह भाव जी में आते ही वह विचार सर्वथा ही त्याग दिया। पर राम का शुद्धचरित्र तो जनता के समक्ष आना ही चाहिये इस विषयक् निरन्तर चिन्तन का परिणाम था वाल्मीकि रामायण पर आधारित हमारा 'शुद्ध रामायण' विशेषाङ्क।

जनता ने इसे आशा से अधिक पसन्द किया, अपनाया और सराहा। इससे प्रोत्साहित हो, तुलसी रामायण के ही संक्षिप्त और सशुद्ध संस्करण प्रकाशित करने की चाह पुनः पैदा हुई। पर क्या किसी कवि के ग्रन्थ में से कुछ भाग छोड़कर कुछ अंश को देना उपयुक्त रहेगा? यह प्रश्न उपस्थित हुआ। मैं इस विचार में ही था कि गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'मानस की प्रति देखने को मिली। वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई तथा अन्य कई स्थानों से प्रकाशित [illegible] चरित मानस' के संस्करणों से इसमें पर्याप्त अन्तर पाया। 'लव [illegible] काण्ड' तो इसमें है ही नहीं। अन्य कई प्रसङ्ग भी नहीं हैं। लगभग २०००चौपाइयाँ इसमें कम हैं चौपाइयों आदि में भी तुलना करने से कई स्थलों पर पाठ-भेद मिला। इससे मेरे सकल्प को बड़ा बल मिला। उसीका परिणाम यह 'राम चरित मानस' का सक्षिप्त संस्करण है। इस सस्करण की अपनी विशेषतायें इस प्रकार हैं:—

(१) इस संक्षिप्त संस्करण में कई अनैतिहासिक और कल्पित वृत्तों को छोड़ दिया गया है किन्तु विशेषता यह है कि कथा क्रम कहीं भङ्ग नहीं होने पाया है। जितनी चौपाइयां हमने दी हैं, उनमें रामकथा पूर्ण हो जाती है (२)तुलसी रामायण के प्रायः सभी सरस, शिक्षा-

प्रद और काव्यात्मक प्रसङ्ग इसमें आ गये हैं। (३) अनैतिहासिकता के दोष की कसौटी के लिये हमने मुख्य रूप से प्रक्षिप्तांश रहित वाल्मीकि रामायण का आधार लिया है (चूँकि वर्त्तमान में उपलब्ध वाल्मीकि रामायण में भी बहुत बड़ी मात्रा में प्रक्षेप किया जा चुका है।) (४) इस संस्करण में सङ्कलित चौपाई-दोहों आदि की व्याख्या में आपको अपूर्वता मिलेगी, जिसका आधार हैं— श्रीराम हमारे महान् पूर्वज हैं, ईश्वरावतार नहीं। रामायण महान् ऐतिहासिक(राष्ट्रिय)ग्रन्थ है जिसमें चमत्कारवाद और बुद्धि एवं सृष्टिक्रम विरुद्ध घटनाओं के लिये कोई स्थान नहीं है। इसीसे हमने अनेक शब्दों का 'सत्यार्थ' प्रस्तुत किया है। पाद टिप्पणियों तथा 'विशेष' टिप्पणियों द्वारा उसे सुस्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस प्रकार प्राय: समस्त वैदिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने का अवसर हमें मिल सका है। यों ईश-कृपा से वैदिक सत्य सिद्धान्तों को श्रीराम के पवित्र चरित्र के प्रकाश में समझने-समझाने का अच्छा सुयोगहमें मिल गयाहै। (५) हम जानते हैं कि 'राम चरित मानस' के रचयिता गोस्वामी जी को पौराणिक संस्कार वशात् उनके रूढ़ार्थ ही अभिप्रेत रहे होंगे, हमारा 'सत्यार्थ' नहीं। पर यह पुण्य प्रयास हमने इसीलिये किया है कि श्रीराम का सत्य और शुद्ध इतिहास प्रकाश में आ सके। ऐसा करते हुए हमारे निकट "कृषी निरावहिं चतुर किसाना" गोस्वामी का यह वचन ही आदर्श रहा है। हमारे विचार में हमने एक भी उपयोगी पौधे को नष्ट नहीं होने दिया और समस्त अनुपयोगी झाड़ झङ्खाड़ को हटाने का उपक्रम किया है। विश्वास है हमारे इस विनम्र प्रयास से भारतीय प्रजा और विश्व मानवता का निश्चय ही अपरिमित उपकार होगा।

विष के लहराते सागर में से इस अमृत घट 'मानस-पीयूष' या राष्ट्रियरामायण को निकाल पानेमें हमें जो श्रम करना पड़ा है, उसका एक मात्र आधार परमेश प्रभु की असीम अनुकम्पा रही है। इसीलिये कवि के शब्दों में—"तेरी वस्तु तुझी को अपण" इन शब्दों के साथ इस पूर्व निवेदन को हम विराम देते हैं। विनयावनत— 'प्रेम'
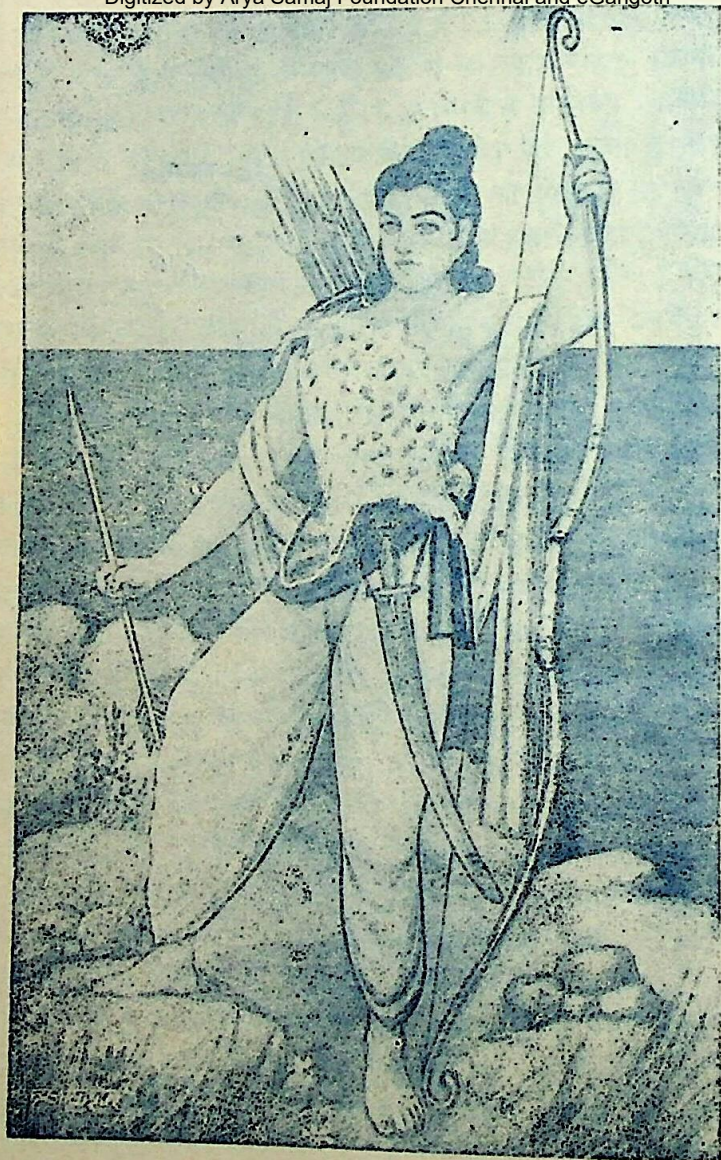
क्षात्र धर्म के पुण्य प्रतीक—

राष्ट्र पुरुष श्रीराम

।।ओ३म्।।

बाल काण्ड

सो० मूक होइ वाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलि*मल दहन।।

जिस ईश्वर की कृपा और करुणा से (उसकी न्याय पूर्ण व्यवस्था के ीन) मूक भी वाचाल (वाणीयुक्त) हो जाते हैं अर्थात् अशिक्षित भी ज्ञान विमल धारायें बहाने में समर्थ देखे जाते हैं; जिसकी अमित कृपा से पंगु— मर्थ, साधन-हीन भी पर्वत जैसे बड़े से बड़े कार्यों को सिद्ध कर लेते हैं, और । महेश्वर की दया से मानव मन का सम्पूर्ण कालुष्य—कालिमा या कुटिलता मल जल जाता है, वह ईश्वर मुझ पर द्रवित हों, मुझ पर कृपा करें। (मैं वत् हूं, वह प्रभु मुझे वाणी प्रदान करे, मैं पंगुवत् हूँ, वह महान् प्रभु मुझे न दे, वह करुणा-वरुणालय दिव्य देव मेरे मन की कालिमा को जला देवे, स्य रूपी मल को दूर कर पुरुषार्थ वृत्ति को जगावे, जिससे मैं इस पावन -प्रणयन के सदुद्देश्य में कृतकार्य हो सकूँ।)

*कलि शब्द का अर्थ प्रायः कलियुग किया जाता रहा है (सम्भव है ामी जी को वही अर्थ मान्य हो) पर हमें स्मरण रहे कि युग तो काल— ग का नाम है और काल जड़ है। कोई युग स्वयं में न अच्छा है, न बुरा। ुग में अच्छे से अच्छे और बुरे से बुरे मनुष्य होते रहे हैं। अपने दुर्गुण, दोष पापों को युग के मत्थे डाल कर सन्तोष की साँस लेने और इस प्रकार पापों ोत्साहन देने की अनोखी कला जिस समाज ने अपना ली हो, उसका क्यों कल्याण होगा ? ईश्वर हमारे समाज को सुबुद्धि दे, यही कामना है। भ्रम रण के लिये यहाँ पाठान्तर—"द्रवउ सकल हिय मल दहन" हो सकता है।

वन्दो प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।
सुजन समाज सकल गुणखानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥

(ईश्वर से कृपा-याचना के पश्चात्) मैं सर्वप्रथम (विद्या या ज्ञान के भण्डार) ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करता हूँ, जोकि अज्ञान से उत्पन्न सब सन्देहों को दूर करने वाले हैं। * साथ ही सम्पूर्ण उत्तम गुणों की राशि सज्जन पुरुषों—श्रेष्ठ पुरुषों की समाज (आर्य-समाज) का सुन्दर (मधुर) शब्दों में हार्दिक प्रेम सहित अभिवादन करता हूँ। क्योंकि—

मुद मङ्गलमय सन्त समाजू। ज्यों जग जङ्गम तीरथ राजू।
ईस भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा॥

प्रसन्नता और सर्व विधि कल्याण के देने वाला सन्तों या सत्पुरुषों का

---

*किसी भी राष्ट्र के तीन महा शत्रुओं—(१) अज्ञान (२ अन्याय और (३) अभाव—में से सबसे प्रबल शत्रु है-अज्ञान। अन्याय और अभाव तो अज्ञान के ही चेरे हैं। ब्राह्मण वह है जो राष्ट्रवेदी पर स्वयं को तिल-तिल होम कर भी अज्ञान के इस महाशत्रु का नाश करता है। अज्ञान-नाश ब्राह्मण का जीवन-व्रत है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक, कलाकार, चित्रकार, संगीतज्ञ, आचार्य, अध्यापक यदि वे 'पुरोहित' हैं–पुर या राष्ट्र के हित को आगे रखते हैं– तो निस्सन्देह वे सभी ब्राह्मण हैं। यहाँ जन्म या वंश का आधार नहीं– गुण कर्म और स्वभाव ही निर्णायक तत्व हैं। "जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।'

जब तक ऐसे गुणी (वेदज्ञ) कर्त्तव्य परायण और स्वभावसिद्ध ब्राह्मण हमारे राष्ट्र में थे। यह आर्यावर्त्त (भारत देश) चक्रवर्ती सम्राट् ही नहीं जगद्-गुरु भी था। महर्षि मनु की यह उक्ति उसी काल के लिये थी—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः॥(मनु० २।२०)

तब इस देश में उत्पन्न—यहाँ के अग्रजन्मा (ब्राह्मणों) के चरणों में बैठकर सम्पूर्ण विश्व के मानव अपने-अपने चरित्र का शिक्षण प्राप्त करते थे। अहा! कैसा स्वर्णिम, कैसा कमनीय रहा होगा वह युग! ऐसे युग का नायक, ऐसे युग का निर्माता ब्राह्मण सच में ईश्वर के पश्चात् इस पृथ्वी पर वन्दनीय है

यह समाज ही संसार में चैतन्य तोर्थराज है। (जिस प्रयाग को तीर्थराज कहा जाता है, वह तो जड़ है।) प्रयाग में गङ्गा-यमुना और सरस्वती (एक छिपी धारा) का सङ्गम है। इस समाज में ईश्वर भक्ति रूप गङ्गा की धारा, ब्रह्म विचार (वेद ज्ञान) रूप सरस्वती की धारा, और—

विधि निषेधमय कलिमल हरणी। कर्म कथा रविनन्दनि वरणी।
बट विश्वास अचल निज धर्मा। तीरथराज समाज सुकर्मा॥

मन की कालिमा तथा मैल को दूर करने के लिये कर्त्तव्य (विधि) और अकर्त्तव्य (निषेध) को बताने वाली सत्कर्म कथा (यज्ञादि सत्कर्मों का अनुष्ठान) रूप यमुना की धाराओं का सुखद संगम है। अर्थात् ज्ञान+कर्म+उपासना (भक्ति) का सङ्गम हो इस तोर्थराज रूप साधु समाज में त्रिवेणी-संगम है। अपने धर्म(वैदिक सद्धर्म)पर अटल विश्वास ही इस प्रयाग का अक्षय वट और बड़ी मात्रा में सत्कर्मों का अनुष्ठान ही यात्रियों की भीड़ है।

सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा।
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ॥

यह जड़ तीर्थराज—प्रयाग तो केवल भारतवर्ष में ही है,किन्तु यह प्रयाग रूप पवित्र समाज सभी देशों में, सब कालों में सबको सुलभ है [सन्तों या श्रेष्ठ पुरुषों के इस समाज में सभी को समान रूप से प्रवेशाधिकार है किसी को रोक-टोक नहीं)—केवल शर्त है सदाचरण की। यह समाज नया नहीं है। सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। सन्तों को—आर्यजनों की मान्यतायें—वैदिक सिद्धान्त सार्वकालिक और सार्वदेशिक या सार्व भौमिक हैं इस तीर्थराज का प्रभाव अद्भुत और अकथनीय है। इस तीर्थराज के सेवन से (जीवन में पवित्रता सञ्चार रूपी) फल शीघ्र ही मिलता है।

दोहा—सुनि समझैं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहैं चारिफल अछत तन साधु समाज प्रयाग॥

साधु (श्रेष्ठ) समाज रूपी प्रयाग में जाकर जो लोग उपदेशों को सुनें और विचार करें फिर प्रसन्न मन से प्रेम सहित उसी में स्नान करें अर्थात् उसी

शिक्षा (वैदिक शिक्षा) पर चलें तो इसी जीवन में—धर्म, अर्थ काम, मोक्ष ये चारों फल पा सकते हैं।

मज्जन फल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकहु मराला।
सुनि आश्चर्य करै जनि कोई। सत्सङ्गति महिमा नहिं गोई।।

साधु (आर्य) समाज रूपी प्रयाग में मज्जन करने (इसकी सद्‌शिक्षाओं और सार्वभौम शाश्वत सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों पर चलने) का फल उसी समय दिखलाई पड़ता है—कौवे के समान कठोर बोलने वाले कोकिला के समान मीठे बोलने वाले हो जाते हैं, और बगुला के समान मांस-भक्षी मोती चुगने वाले हंस के समान हो जाते हैं (शाकाहारी हो जाते हैं।) परन्तु यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्सङ्गति की महिमा छिपी नहीं है।*

---

*(१) आर्य का अर्थ है "श्रेष्ठ सज्जन साधवः" इसीलिये हमने यहाँ साधु के पर्याय के रूप में आर्य शब्द का प्रयोग किया है। संसार के सभी देशों के, सब कालों के जो भी श्रेष्ठ और सदाचारी व्यक्ति हैं, वे सभी आर्य हैं। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों (सन्तों) के समाज का नाम ही आर्यसमाज है। जिनके आचरण श्रेष्ठ नहीं है, जिनकी कथनी और करनी में भेद है, जिनकी वाणी कठोर है, जो मांस-भक्षी हैं भले ही उनका नाम 'आर्यसमाज' के रजिस्टर में लिखा हो, वे आर्य नहीं हैं। वे साधु नहीं हैं। और न ऐसे आचरणहीन लोगों का समाज "आर्य समाज" है। आर्यसमाज कोई मत-पन्थ नहीं है। धरती का पहिला मनुष्य आर्य था। हम सब आर्यों की सन्तान हैं। हम अपने स्वरूप और गौरव को भूल गये थे। स्वामी दयानन्द ने तो सिर्फ हमारे भूले हए स्वरूप को याद कराया—बताया हम आर्य हैं। संसार का हर श्रेष्ठाचारी मनुष्य आर्य है व अश्रेष्ठ आचरण वाला दस्यु, मानव जाति के सिर्फ ये दो ही विभाग हो सकते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, कबीरपन्थी, दादू पन्थी, नानकपन्थी—यह सब विभाजन दुखद हैं, अवैदिक हैं, त्याज्य हैं।

(२) तीर्थ का अर्थ है तारने वाला 'जनः येन तरति तत् तीर्थं' मनुष्य जिससे दुःखों से तर जावे, वह तीर्थ है। इस विचार से माता, पिता, अतिथि, आचार्य, विद्वान्, सत्कर्म, सद्गुण आदि तीर्थ हैं जिनके सेवन से मनुष्य तरता हैं,

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानब सतसङ्ग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ॥

जब कभी किसी उपाय से, जहाँ कहीं पर किसी ने बुद्धि, यश, उत्तम गति, ऐश्वर्य और परोपकार—इन पाँचों में से एक, दो या सबको पाया है, वह सब श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यजनों) के सत्संग का ही शुभ प्रभाव जानो। इनकी प्राप्ति का न वेद की शिक्षानुसार और न लोक-व्यवहार की दृष्टि से अन्य कोई उपाय है।

बिनु सतसङ्ग विवेक न होई। ईश कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥

बिना सत्संग (सत्पुरुषों की सत्संगति) के विवेक—सद्ज्ञान प्राप्त नहीं होता। (जो व्यष्टि रूप में मनुष्य के चरित्र निर्माण के लिये और समष्टि रूप में राष्ट्रजीवन के लिये सबसे अधिक महत्व की वस्तु है) और ऐसा महिमामय सत्सग ईश्वर कृपा से ही मिलता है। (ईश्वर कृपा विना पुरुषार्थ के नहीं मिलती—'इन्द्रः इच्चरतः सखा' इस प्रकार उत्तम पुरुषों की संगति के लिये भी पुरुषार्थ अपेक्षित है। आलसी और काहिल वैदिक सत्संग का लाभ या आनन्द नहीं ले सकते।) सत्संगति की ऐसी महिमा है कि इससे शठ भी सुधर जाते हैं। जैसे

उसका कल्याण होता है। सत्सङ्गति सबसे बड़ा तीर्थ है, तीर्थराज है। साधु, सन्त और विद्वान् जिन सुरम्य स्थानों (नदी तट या पर्वतीय प्राकृतिक प्रदेशों) में रहते थे वहाँ उनकी सेवा में पहुँच कर सत्संग लाभ कर पाप प्रवृत्ति को रोक, सदाचरण व्रत करने के आयोजन को 'तीर्थयात्रा' कहा जा सकता है। पर कालान्तर में सिर्फ वह स्थान विशेष, नदी विशेष, नदी का जल विशेष, किसी पर्वत की यात्रा मात्र ही 'तीर्थ' नाम से पुकारा जाने लगा। सत्सङ्गति रूप तीर्थ-राज का स्नान हमारे हाथ से निकल गया—गङ्गा, यमुना का सङ्गम (जड़) तीर्थराज बन गया। ऐसे प्राकृतिक दृश्यों और सुरम्य स्थानों की यात्रा बुरी वस्तु नहीं है, वरन् अत्युत्तम है—कई दृष्टियों से। आवश्यकता यही है कि हम वहाँ पहुँच कर सच्चे तीर्थराज में नहायें अर्थात् वैदिक विद्वानों के सत्सङ्ग से लाभ उठायें, सदाचरण का व्रत लें, तभी सच्ची तीर्थ यात्रा होगी।

पारस को छूजाने से लोहा सोना हो जाता है।*

सो० वन्दौं चारिहुँ वेद, भव वारिधि बोहित सरिस।
जिनहिं न सपनेहु खेद, बरनत रघुवर विशद यश॥

[सत्संगति का मूल है स्वाध्याय और स्वाध्याय का आधार हैं चारों वेद अतः—] संसार रूपी समुद्र से पार उतरने के लिये जहाज के समान ऋग्, यजुः साम और अथर्व|इन चारां वेदों की वन्दना—कीर्तिगान करता हूँ, श्री राम जैसे महा पुरुषों के निर्मल यश का गान करने में स्वप्न में भी जिनका विरोध नहीं है। अर्थात् महा पुरुषों का यशोगान वेद विहित है, वेद निषिद्ध नहीं।*

विशेष—यहाँ गोस्वामीजी ने मुक्त कण्ठ से वेदों की महिमा स्वीकार की है। पर आज कितने रामायण भक्त हैं जो वेदों का पठन-पाठन करते हैं। अधिकांश तो चारों वेदों के नाम तक भी नहीं जानते। प्रत्येक राम-प्रेमी को चारों वेद अपने परिवारों में रखने चाहिये। उनका स्वाध्याय करना चाहिये। वेद कथायें करानी चाहिये। वेदों के विद्वानों और वेद प्रचारक संस्थाओं का समादर करना चाहिये। हम भूलें नहीं हम सबका एक ही धर्म है—वैदिक धर्म और एक ही धर्मग्रन्थ है—वेद। (रामायण, महाभारत हमारे पूर्वजों की कीर्ति गाथायें हैं, ये हमारे मान्य इतिहास ग्रन्थ हैं।) श्रीराम ने वेद, वैदिकधर्म

---

*यह किंवदन्ती चली आती है। पर ऋषि दयानन्द आदि विद्वानों के अनुसार यह पारस बटिया भारत देश ही है, विदेशी रूप लोहा जिससे छूकर सोना बनता रहा। विदेशी यहाँ से हजारों मन सोना ऊँटों पर लाद-लाद कर ले गये। ब्रिटेन यहाँ के व्यापार से मालामाल हो गया।

*"यथेमां वाचं कल्याणी०" वेद प्रभु की कल्याणी वाणी है। 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।' अतः वेद का समर्थन प्राप्त करने की गोस्वामीजी की भावना बड़ी ही पुनीत है। आगे भी हम देखेंगे कि पदे-पदे गोस्वामी जी ने वेदों की साक्षी दी है। पर खेद यही है कि वेदों का नाम लेकर भी गोस्वामीजी ने कई स्थलों पर पर्याप्त मनमानी की है और अनेक वेद-विरुद्ध मान्यताओं का समर्थन जाने-अनजाने उनके द्वारा हुआ है।

(ऐसी स्थिति में मुझे तो एक ही बात का बल है कि जैसे-) श्यामा गौ काली होने पर उसका दूध उज्ज्वल और बहुत गुणकारी होता है, यही समझ कर ही सब लोग उसे पीते हैं। इसी तरह गँवारू भाषा में होने पर भी श्रीराम और सीता जी के यश को बुद्धिमान् लोग बड़े चाव से गायेंगे और सुनेंगे।

दोहा—कवि कोविद रघुवर चरित मानस मंजु मराल।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर सेहु कृपाल॥

अतः हे कवि और विद्वत्वृन्द! आप जो राम चरित्र रूपी मानसरोवर के हंस हैं, मुझ बालक (अज्ञ) की विनय सुनकर और रुचि को उत्तमता देखकर मुझ पर कृपा करें।

एहि विधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुरु पद पंकज धूरी।
पुनि सबहीं बिनवउँ कर जोरी। करत कथा जेहि लाग न खोरी॥

इस प्रकार (अपनी दुर्बलताओं और अज्ञता के विषय में) सब सन्देहों को दूर करके और मान्य गुरुदेव के चरण कमलों की धूलि शिर पर धारण करके मैं पुनः हाथ जोड़कर सबको विनती करता हूँ, जिससे (आप सबकी कृपा से) कथा की रचना में कोई दोष स्पर्श न करने पावे।

संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

परम पिता परमात्मा के चरणों में नतमस्तक हो, अर्थात् ईश्वर के स्मरण पूर्वक संवत् १६३१ में इस कथा का आरम्भ करता हूँ। चैत्र मास की नवमी तिथि मंगलवार को अयोध्यापुरी में यह (पावन) चरित्र प्रकाशित किया जाता है।

रामचरित मानस एहि नामा। सुनत वचन पाइअ विश्रामा।
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन चितलाई॥

इसका नाम 'रामचरित मानस' है। जिसके कानों से सुनते ही शान्ति मिलती है, मैं उसी सुख देने वाली सुहावनी रामकथा को कहता हूं। हे सज्जनो! श्रद्धा पूर्वक मन लगाकर सुनिये:—

ग्रौर वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये ही रावण से युद्ध किया था। एक समय था जब सारे संसार में वेदों का डंका बजता था। तब—

रूये जमी से आती एक वेद की सदा थी।
हर शर अदब से वेदों के रोबरू झुका था।

प्रभो! वह समय फिर ग्रावे जब सारा संसार वेद माता के चरणों में झुके। वैदिक संस्कृति के ज्योति स्तम्भ श्रीराम के पवित्र चरित्र का अनुशीलन इस दिशा में निश्चय ही सहायक होगा। इसलिये—

सो० बन्दउँ मुनि पद कंजु; रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मञ्जु दोष रहित दूषन सहित॥

मैं उन (आदि कवि वाल्मीकि) ऋषि के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने सर्व प्रथम रामायण (रामचरित) की पुण्यकारी रचना की है। जो सखर (खर सहित=राक्षसों के कठोर वर्णन सहित) होने पर भी सुकोमल (श्रीराम के पावन ग्रौर सरस प्रसङ्गों से युक्त) ग्रौर सुन्दर है तथा जो दूषण (राक्षसों के वर्णन) सहित होने पर भी सब प्रकार के दोषों से मुक्त है।

करन चहउँ रघुपति गुनगाहा। लघु मति मोर चरित अवगाहा।
निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥

(उसी क्रम में) मैं भी श्रीराम के गुणों का वर्णन करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और श्रीराम का चरित्र ग्रथाह है। यों तो रसीली हो या अत्यन्त फीकी, ग्रपनी कविता (रचना) किसे ग्रच्छी नहीं लगती?

कवि न होउँ नहिं वचन प्रबीनू। सकल कला विद्या सब हीनू।
कबित बिवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥

(पर मैं भली भाँति जानता हूँ कि) मैं न तो कवि हूँ ग्रौर न वाक्य रचना में ही कुशल हूँ, मैं तो सब कलाग्रों तथा सब विद्याग्रों से रहित हूँ। काव्य सम्बन्धी किसी भी विशेषता का ज्ञान मुझे नहीं, यह मैं कोरे कागज पर लिखकर (शपथ पूर्वक) सत्य-सत्य कहता हूँ।

दोहा—स्याम सुरभि पय विसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥

*अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ। विश्व विदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम धुरन्धर गुननिधि ग्यानी। हृदयँ भगति मति सुचिता खानी॥

(समय हुआ जब त्रेता युग में आर्यावर्त्त के अन्तर्गत) अयोध्यापुरी में रघुवंश-भूषण राजा दशरथ राज्य करते थे। (उनका यश वैभव और प्रताप) सारे विश्व (संसार) में विख्यात था। वे धर्म धुरन्धर, गुण निधान और ज्ञानवान् थे। उनका हृदय ईश्वर भक्ति से पूर्ण और बुद्धि पवित्रता से ओत-प्रोत थी।

दोहा—कौसल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरि पद कमल विनीत॥

(महाराज दशरथ के) कौशल्यादि (कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी ये तीन) प्रिय रानियाँ थीं, जो पवित्र आचरण वाली, पति की आज्ञा में तत्पर और प्रभु भक्ति परायणा थीं।

(यों महाराज दशरथ सर्व सुख सम्पन्न थे। उन्हें कष्ट था तो केवल एक—तीनों रानियों में से किसी से भी उन्हें कोई सन्तान नहीं थी)।

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं।
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि विनय विसाला॥

एक बार राजा दशरथ के मन में यह ग्लानि हुई कि मेरे सन्तान नहीं है। वह उसी समय गुरुदेव (वशिष्ठ) के आश्रम पर गये और चरणों में विनीत भाव से सादर अभिवादन किया।

निज दुख सुख सब गुरुहि सुनायउ। कहि वसिष्ठ बहु विधि समुझायउ।
शृंगी रिषिहि वसिष्ठ बोलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा॥

(तत्पश्चात् राजा ने) अपना सब दुख-सुख (अपना मनोभाव) गुरु चरणों में निवेदित किया, जिसे सुनकर महर्षि वसिष्ठ ने राजा को अनेक प्रकार से समझाया अर्थात् महाराज की मनोकामना पूर्ति का आश्वासन दिया। तदर्थ मुनिवर वशिष्ठ ने (यज्ञ-विज्ञान के तत्कालीन प्रसिद्ध आचार्य) शृङ्गी ऋषि को

---

*महर्षि वाल्मीकि ने अवधपुरी का वर्णन बड़ी विशदता से किया है और बड़ी ही मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है।

आमन्त्रित किया और उनके आचार्यत्व में "पुत्र काम" (पुत्रेष्टि) यज्ञ का सफल आयोजन कराया (इस वैदिक यज्ञ में तीनों रानियों ने भाग लिया और यज्ञशेष जो एक प्रकार की महौषधि बन जाती है उसका सेवन किया।) विशेष—पुत्र प्राप्ति के लिये पशु बलि, नर बलि जैसे घोर नीच कर्म या किसी देवी-देवता, सय्यद पीर आदि की पूजा का संकेत भी यहाँ नहीं है। वैदिक पुत्रेष्टि यज्ञ का विधान ही मिलता है।

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदयँ हरषित सुख भारी।
जा दिन ते हरि[१] गर्भहिं आए। सकल लोक सुख-सम्पति छाए।।

इस प्रकार अर्थात् 'यज्ञ शेष' सेवन कर सब रानियाँ गर्भवती हुईं जिससे उनके हृदय में स्वभावतः बड़ी प्रसन्नता और सुख की अनुभूति हुई। श्रीराम जब से गर्भ में आये, सम्पूर्ण वातावरण में सुख-सम्पत्ति अर्थात् आनन्दोल्लास छा गया।

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। शुक्ल पच्छ अभिजित हरि प्रीता[२]।
मध्य दिवस अति सीत न घामा पावन काल लोकविश्रामा।।

(श्रीराम का जन्म) चैत्र मास की नवमी तिथि, शुक्ल पक्ष एवं भगवान् को प्रिय अभिजित मुहूर्त में हुआ। उस समय मध्याह्न काल था, न बहुत शीत न धूप थी, समय बड़ा मनोरम तथा सभी को शान्तिदायक था।

सीतल मन्द सुरभि बह बाऊ। हर्षित सुर सन्तन मन चाऊ।।
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृत धारा।।

उस काल शीतल मन्द सुगन्धित वायु बह रही थी। देवता (परोपकारी विद्वान् और साधुजन प्रसन्न चित्त और उत्साह युक्त थे। वन फूल रहे थे, पर्वत

---

१ पाठान्तर—"जब ते राम गर्भमहि आये' उचित होगा। स्मरण रहे विश्व ब्रह्माण्ड-पति परमात्मा कभी गर्भ में नहीं आता। 'सपर्यगाच्छुक्र मकायं॰ यहाँ कल्याणी वेदमाता ने सुस्पष्ट ही ईश्वर को "अकाय" कहा है। विशेष विचार समीक्षा खण्ड में पढ़ें।

२ स्मरण रहे भगवान् तो कालातीत एवं काल-निरपेक्ष हैं। उनके निकट किसी काल विशेष के प्रिय अप्रिय होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

मणियों से युक्त थे और नदियों में मानो अमृत धारा बह रही थी। विशेष—यहाँ कवि ने प्रकृति के साथ अपनी भावनाओं का तादात्म्य कर काव्यात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है, जो बड़ा मनोरम बन पड़ा है।

दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहु ब्रह्मानन्द समाना।
परम प्रेम मन पुलकि सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥

महाराज-दशरथ ने जब पुत्र-जन्म का समाचार सुना तो उन्हें ब्रह्मानन्द के समान हर्ष का अनुभव हुआ। अधिक प्रेम (हर्ष) के कारण उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठा। धीर-बुद्धि राजा ने तत्काल उठने का प्रयास किया।

गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृप द्वारा॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई॥

शीघ्र ही मुनिवर वशिष्ठ को बुलाया गया। वे विद्वान् ब्राह्मणों सहित राजगृह में उपस्थित हुए। सभी ने उस रूप-राशि अनुपम बालक को देखा, जिसके गुण कहने में नहीं आते।

दोहा— तब नन्दी मुख श्राद्ध*करि, जात करम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह॥

तब नान्दी मुख श्राद्ध करके नव जात बालक का "जात कर्म संस्कार" विधिवत् किया गया। राजा ने उस पुनीत अवसर पर सोना, गाय, वस्त्र एवं मणि आदि वस्तुयें ब्राह्मणों (विद्वानों) का दान में दीं।

कैकेय सुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जनमत भईं सोऊ।
भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समयँ जनुसानी॥

अन्य दोनों रानियों (कैकेय-पुत्री) कैकयी और सुमित्रा ने भी सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। उस समय राज भवन में स्वर वेद-ध्वनि हो रही थी,

---

* नान्दी मुख श्राद्ध यह वैदिक विधि के अन्तर्गत नहीं है। कई पौराणिक विद्वानों से हमने नान्दी मुख श्राद्ध का अभिप्राय जानना चाहा। वे कुछ स्पष्ट नहीं बता सके। स्वयं ही विचारा तो लगा कि नान्दी का अर्थ गाय लिया जाता है। नान्दी-मुख अर्थात् गोमुख में श्रद्धा पूर्वक ग्रास देना "नान्दी मुख श्राद्ध" हो सकता है। यदि ऐसा है तो अत्युत्तम है और सभी के लिये करणीय है।

वही मधुर वेद-गान सन्ध्याकाल में पक्षियों के कलरव जैसा प्रतीत होरहा था। विशेष—स्पष्ट है कि प्रसन्नता के ऐसे सभी अवसरों पर प्राचीन वैदिक युग में विद्वानों द्वारा वेदध्वनि (सस्वर वेदपाठ) का आयोजन होता था।

कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिअ दिन अरु राती।
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी।।

इसी प्रकार हर्षोल्लास में कुछ दिन इस प्रकार बीत गये कि दिन और रात जाते हुए ही नहीं जान पड़े। इधर "नामकरण संस्कार" का अवसर आ पहुंचा। राजा ने तब ज्ञानी मुनि वसिष्ठ को बुलावा भेजा।

करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा।
इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा।।

राजा ने महर्षि का विधिवत् सत्कार कर निवेदन किया—हे मुनि! आप अपने विचारानुसार बालकों का 'नामकरण' कीजिये। मुनि बोले—हे राजन्! यों तो इन बालकों के अनेक सुन्दर २ नाम हो सकते हैं, पर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूंगा।

जो आनन्द सिन्धु सुख रासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा।

हे राजन्! आपका जो बालक, आनन्द के सागर और सुख की राशि के तुल्य है, जिसके बिन्दु समान (थोड़े से) ही पुरुषार्थ से त्रिलोक सुखी हो सकते हैं, वह सुखधाम, सम्पूर्ण जनों के लिये विश्राम दायक 'राम' इस सुन्दर नाम वाला हो।

विश्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।
जाकें सुमिरन तें रिपु नासा। नाम शत्रुहन वेद प्रकासा।।

जो बालक विश्व अर्थात् राज्य का भरण-पोषण करेगा उस (कैकेयी-पुत्र) का नाम "भरत" है और जिसकी वीरता का स्मरण करके ही शत्रु विनाश को प्राप्त हो सकेगा उसका वेदानुकूल नाम "शत्रुघ्न" उचित है।

विशेष—पवित्र वेदों में वीरों की संज्ञा "शत्रु हना" आती है। एक वीर माता घोषित करती है—"मम पुत्रा शत्रुहना:०" किन्तु ध्यान रहे कि सुमित्रा

के पुत्र "शत्रुघ्न" का इतिहास वेद में नहीं है। वेद तो प्रभु की शाश्वत वाणी है—सार्वभौम और सार्वकालिक सचाइयाँ ही वेद में हैं। किसी व्यक्ति विशेष या काल विशेष का इतिहास वेद में नहीं है।

दोहा—लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखेउ, लछिमन नाम उदार॥

शुभ लक्षणों से युक्त, श्री राम के प्रिय, संसार (राज्य) के आधार स्वरूप बालक (सुमित्रा के द्वितीय पुत्र) का श्रेष्ठ नाम गुरु वशिष्ठ ने "लक्ष्मण" निश्चित किया।

विशेष—हमने देखा कि गुरु वसिष्ठ ने चारों ही राजकुमारों के 'नामकरण संस्कार' में यह ध्यान रखा है कि नाम सार्थक, सरल, संक्षिप्त और कर्त्तव्य भावना के प्रेरक हों। यही वैदिक संस्कारों की गरिमा है। मध्य काल में हम अपने संस्कारों को भूल गये। पुत्र पुत्रियों के नाम भी बड़े-बड़े विचित्र रखने लग पड़े। अब इसमें सुधार हुआ है।

कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भये परिजन सुखदाई।
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन्ह पुनि दच्छिना बहु पाई॥

कुछ समय बीतने पर परिवारी जनों को अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं से सुख पहुँचाने वाले चारों भाई बड़े हुए। "चूड़ाकर्म" संस्कार का उपयुक्त अवसर आने पर मुनिवर वशिष्ठ ने उसे सविधि सम्पन्न कराया। ब्राह्मणों (विद्वानों) को पुनः पुष्कल दक्षिणा प्राप्त हुई।

विशेष—विद्वानों को अधिक से अधिक दक्षिणा देनी चाहिए। 'दक्षिणा' यज्ञ की पत्नी है।

परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा।
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

चारों ही सुन्दर राजकुमार अनेक प्रकार की मन को हरने वाली बाल-लीलायें करते फिरते हैं। भोजन करते समय राजा उन्हें बुलाते हैं, पर अपनी बाल-मण्डली छोड़कर वे नहीं आते।

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि-ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई।
धूसरि धूरि भरें तनु आए। भूपति विहँसि गोद बैठाए॥

जब कौशल्या माता बुलाने जाती हैं तो श्रीराम (आदि चारों भाई) ठुमुक-ठुमुक कर भाग जाते हैं। कभी वे देह में धूलि लपेटे हुए आते हैं और राजा (इसी अवस्था में) उन्हें हँसकर गोद में बैठा लेते हैं।

भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।
गुरु गृह पढ़न गये रघुराई। अलप काल विद्या सब पाई॥

ज्यों ही सब भाई कुमार अवस्था को प्राप्त हुए, त्यों ही गुरु, पिता और माता ने उनका "यज्ञोपवीत संस्कार" कर दिया। (वेदारम्भ संस्कार के सम्पन्न होने पर) गुरुकुल में विद्या पढने गये। वहाँ थोड़े समय में ही उन्होंने सब विद्यायें प्राप्त करलीं।

विशेष—गर्भाधान (पुत्रेष्टियज्ञ) से लेकर क्रमशः सभी वैदिक संस्कार श्रीराम के हुए थे। आदर्श सन्तान की प्राप्ति के लिए गृहस्थ जनों के निकट यह अनुकरणीय है। *

विद्या विनय निपुन गुन शीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला।
करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥

चारों भाई विद्या, विनय, गुण और शील में (बड़े ही) निपुण हैं, वे जो खेल खेलते हैं वे भी राज-धर्म के अनुसरण में होते हैं। वे जब अपने हाथों में धनुष-बाण धारण करते हैं तो बड़े ही शोभायुत प्रतीत होते हैं। उनका यह रूप चराचर (जड़-चेतन) सभी को मोहित कर लेता है।

जिन्ह बीथन्हि विचरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई।
बन्धु सखा संग लेहिं बोलाई। वन मृगया नित खेलहिं जाई॥

---

* ये सभी संस्कार राजभवन में ही हुए हैं। गाय के खूंटे पर या किसी नदी किनारे बाल कटाने या अन्य किसी प्रकार की रूढ़ियों का उल्लेख यहाँ नहीं है। किसी प्रकार के स्याने-दिवाने, सैयद-पीर की पूजा, बच्चों के गण्डे तावीज बाँधने आदि की भी चर्चा नहीं है। श्री राम के सभी संस्कार वैदिक पद्धति से हुए थे। उस समय इन किसी प्रकार के पाखण्डों का नामोनिशान भी नहीं था।

वे चारों भाई जिन गलियों में खेलते (हुए निकलते) हैं, उन गलियों के सभी स्त्री-पुरुष उनको देखकर ठिठककर रह जाते हैं। श्रीराम अपने इष्ट मित्र और छोटे भाइयों को बुलाकर साथ ले जाते हैं और नित्य वन में जाकर (प्रजा पीड़क हिंसक जन्तुओं का) शिकार करते हैं।

अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं।
जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥

श्री राम अपने छोटे भाइयों और मित्रों के साथ भोजन करते हैं तथा माता-पिता की आज्ञा का (विनीत होकर) पालन करते हैं। जिस प्रकार भी नगर निवासी सुखी हों कृपानिधान श्रीराम वैसा ही संयोग (आचरण) करते हैं।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।
आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

श्रीराम प्रातःकाल (ब्राह्ममुहूर्त में) उठते हैं। उठकर माता-पिता और गुरु को मस्तक नवाते (अभिवादन=चरण स्पर्श पूर्वक नमस्ते निवेदन करते) हैं। पश्चात् आज्ञानुसार नगर की सेवा का कार्य करते हैं। उनके सदाचरण को देख-देखकर राजा मन में अत्यधिक हर्षित होते हैं।

विशेष—श्रीराम की यह दिनचर्या कितनी आदर्श, कितनी मनोरम और अनुकरणीय है!

दोहा— कोसलपुर वासी नर, नारि वृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागहीं सब कहुँ राम कृपाल॥

अयोध्या निवासी सभी स्त्री-पुरुष, बूढ़े और बालक सभी को दयालु हृदय श्रीराम प्राणों से भी बढ़कर प्रिय लगते हैं।

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई।
बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी॥

यह सब चरित्र मैंने गाकर (बखानकर) कहा है। अब आगे की कथा मन लगाकर सुनो। (इसी काल में) ज्ञानी महामुनि विश्वामित्र जी तपोवन में शुभ आश्रम जानकर बसते थे।

जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं।
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ।।

वे मुनि जप, यज्ञ, और योग का अनुष्ठान करते थे, परन्तु मारीच और सुबाहु से बहुत डरते थे। यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचाते थे, जिससे मुनि (बहुत) दुःख पाते थे।

विशेष—ऋषि मुनियों द्वारा यह जप, यज्ञ एवं योगानुष्ठान का ही वर्णन मिलता है, किसी प्रकार की मूर्तिपूजा आदि का उल्लेख नहीं है।

गाधि तनय मन चिन्ता व्यापी। मरहिं कवन विधि निसिचर पापी।
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। दसरथसुत हरिहहिं महि भारा ।।

गाधि के पुत्र विश्वामित्र प्रायः मन में चिन्तित रहते थे कि पापी राक्षसों का वध किस प्रकार हो। (इसी बीच श्रीरामादि का यश सुनकर) मुनिवर विश्वामित्र ने विचार किया कि दशरथ पुत्र श्रीराम इन राक्षसों को मारकर भू-भार हरने में समर्थ हो सकेंगे। * बस फिर क्या था—

दोहा— बहु विधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार ।।

ऋषि विश्वामित्र बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए शीघ्र ही [अयोध्या] पहुँच गये और सरयू नदी में स्नान कर राज द्वार पर पहुंचे।

मुनि आगमन सुना जब काना। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा ।।
करि दण्डवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी ।।

राजा ने जब मुनि विश्वामित्र का आना सुना तब वे ब्राह्मणों

---

*सच तो यह है कि ऋषियों द्वारा निर्मित एक निश्चित योजना के आधार पर ही शृङ्गी ऋषि-द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ हुआ था। उसी योजना के अन्तर्गत शस्त्रास्त्रों के विशेष शिक्षण के लिए विश्वामित्र राम को ले गये। उसी योजना के आधीन धनुष यज्ञ, राम-सीता विवाह, राम वनवास, अगस्त्य ऋषि द्वारा राम को वैज्ञानिक उपकरणों एवं शस्त्रास्त्रों का दान तथा राक्षस वध था। रावण के अत्याचारों से दुखी हो ऋषियों ने यह योजना निर्मित की थी।

(विद्वानों) के समाज सहित उनसे मिलने गये और सादर अभिवादन करके मुनि का सम्मान करते हुए उन्हें साथ लाकर उनके अपने (उचित) आसन पर बैठाया।

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा ※ मो सम आजु धन्य नहिं दूजा।
बिबिध भाँति भोजन करवावा ※ मुनिवर हृदयँ हरष अति पावा॥

पुनः चरण धोकर अत्यधिक पूजा (सत्कार) करके कहा—प्रभो! मेरे समान धन्य आज कोई नहीं है। फिर अनेक प्रकार के सुन्दर भोजन करवाये, जिससे मुनिश्रेष्ठ ने अपने हृदय में बहुत ही हर्ष प्राप्त किया।

विशेष—यहाँ वैदिक शिष्टाचार एवं आतिथ्य-क्रम का बड़ा ही सुखद चित्रण है।

पुनि चरनन मेले सुत चारी ※ राम देखि मुनि देह बिसारी।
भए मगन देखत मुख सोभा ※ जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥

पश्चात् चारों पुत्रों द्वारा मुनि विश्वामित्र के चरण स्पर्श कराके अभिवादन कराया। श्री राम को देखकर मुनि को अपने देह का भान नहीं रहा अर्थात् वे श्रीराम को देखते ही रह गये। मुनि विश्वामित्र श्रीराम-मुख की शोभा को देखकर ऐसे मग्न हुए मानो चकोर पूर्ण चन्द्रमा को देखकर लुभा गया हो।

तब मन हरषि बचन कह राऊ ※ मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ।
केहि कारन आगमन तुम्हारा ※ कहहु सो करत न लावहुं बारा॥

तब राजा ने मन में हर्षित होकर ये वचन कहे—हे मुनि! इस प्रकार कृपा आपने पहले कभी नहीं की। आज किस कारण से आपका शुभागमन हुआ है? आप आदेश कीजिये, उसे पूरा करने में विलम्ब नहीं होगा।

विशेष—विद्वान् ब्राह्मणों और त्यागी सन्त महात्माओं का सम्राट् भी वैदिक युग में कैसा सम्मान करते थे, यह दर्शनीय है।

असुर समूह सतावहिं मोही ※ मैं जाचन आयउँ नृप तोही।
अनुज समेत देहु रघुनाथा ※ निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

(मुनिवर विश्वामित्र ने कहा—) हे राजन! राक्षसगण मुझे सताते हैं।

इसीसे मैं तुमसे कुछ याचना करने (मांगने) आया हूँ। छोटे भाई (लक्ष्मण) सहित श्रीराम को मुझे देदो (इनके द्वारा) राक्षसों के मारे जाने पर मैं सनाथ (सुरक्षित) हो जाऊँगा।

दोहा—देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान॥

हे राजन! मोह और अज्ञान को छोड़कर प्रसन्न मन से आप इन्हें दें। हे स्वामिन् (राजन्) इससे तुम्हें तो धर्म और सुयश की प्राप्ति होगी और (हमारी शिक्षा-दीक्षा से) इनका अत्यधिक कल्याण होगा।

सुनि राजा अति अप्रिय बानी ❋ हृदय कंप मुख दुति कुम्हलानी।
चौथेपन पायउँ सुत चारी ❋ बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥

इस अत्यन्त अप्रिय वाणी को सुनकर महाराज दशरथ का हृदय काँप उठा और उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गई। (उन्होंने कहा—) हे ब्राह्मणदेव! * मैंने चौथेपन (वृद्धावस्था) में चार पुत्र पाये हैं, आपने इसका विचार करके बात नहीं कही।

मागहु भूमि धेनु धन कोसा ❋ सर्बस देउँ आज सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं ❋सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥

हे मुनिश्रेष्ठ! आप पृथ्वी, गो, धन और कोष (खजाना) कुछ भी माँग लीजिए मैं आज बड़े हर्ष के साथ अपना सर्वस्व दे दूँगा। आप तो जानते हैं कि अपने शरीर और प्राण से अधिक प्रिय और कुछ भी नहीं होता, (आपकी आज्ञा मिलते ही) मैं उसे भी एक पल में दे दूँगा।

सब सुत प्रिय मोहि प्रान किनाईं ❋ राम देत नहिं बनइ गोसाईं।
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा ❋ कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा॥

---

*मुनिवर विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे किन्तु अपनी तपस्या, साधना से गुण कर्म स्वभावानुसार ब्राह्मण बन गये अन्य भी ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, स्पष्ट है कि वर्ण व्यवस्था जन्म से न थी वरन् गुण कर्म स्वभाव पर आधारित थी। गुणी (सदाचारी) एवं वेदज्ञ शूद्र कुलोत्पन्न भी ब्राह्मण बन सकता था तथा ब्राह्मण कुलोत्पन्न भी नीच आचरण से शूद्र बन जाता था।

भगवन् ! यों तो मुझे सभी पुत्र प्राणों के समान प्रिय हैं, उनमें भी हे प्रभो ! राम को तो [किसी प्रकार भी] देते नहीं बनता ! मुनिराज ! विचारिये तो कि कहाँ अत्यन्त डरावने और क्रूर राक्षस और कहाँ परम किशोर अवस्था के (बिलकुल सुकुमार) मेरे सुन्दर पुत्र ! ॥३॥

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी ❋ हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी।
तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा ❋ नृप सन्देह नास कहँ पावा॥

प्रेम रस में डूबी हुई राजा की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी ने हृदय में अतीव हर्ष का अनुभव किया (तभी महर्षि वसिष्ठ वहां आ पहुँचे) तब वशिष्ठजी ने राजा को अनेक प्रकार से समझाया, जिसस राजा का सन्देह नष्ट हो गया।*

अति आदर दोउ तनय बुलाये ❋ हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए।
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ ❋ तुम बिन पिता आन नहिं कोऊ॥

राजा ने दोनों पुत्रों को बड़े आदर के साथ बुलाया और हृदय से लगाकर उन्हें अनेक प्रकार से शिक्षा दी। (फिर मुनि विश्वामित्र से कहा—) हे नाथ ! ये दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं। हे मुनि ! अब आप ही इनके पिता हैं, अन्य कोई नहीं।

दोहा– सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहुविधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥

राजा ने पुत्रों को अनेक प्रकार से शुभाशीर्वाद दिया और उन्हें ऋषि (विश्वामित्र) को सौंप दिया। पश्चात् श्रीराम-लक्ष्मण माताओं के महलों में गये

---

*मुनि वशिष्ठ और मुनि विश्वामित्र के बीच कभी बड़ा विरोध रह चुका था, फिर भी इस अवसर पर मुनि वशिष्ठ किस प्रकार ऋषि विश्वामित्र का समर्थन करते हैं—ब्राह्मणत्व का यह आदर्श यहाँ दर्शनीय है। दूसरे इससे इस तथ्य पर भी प्रकाश पड़ता है कि पुत्रेष्टि यज्ञ से ही सभी ऋषियों की एक निश्चित योजना थी कि एक आदर्श क्षत्रिय को रावण-नाश के लिए तैयार किया जाय। श्रीराम का विश्वामित्र के साथ जाना उसी योजना का अङ्ग था।

और चरणों में सिर नवाकर (एवं आज्ञा लेकर विश्वामित्र के साथ) चल दिये।

चले जात मग दीन्हि देखाई ॥ सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा ॥ दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥

मार्ग में चले जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखलाया। शब्द सुनते ही वह क्रोध करके दौड़ी। श्रीराम ने एक बाण में ही उसके प्राण हर लिए और उस राक्षसी को दीन जानकर निज पद (मोक्ष धाम) दिया। (यह सर्वथा अवैदिक भावना है।) १

तब रिषि राम सुजस जियँ चीन्हीं॥विद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्हीं ॥
जाते लाग न छुधा पिपासा ॥ अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ॥

तब ऋषि विश्वामित्र ने श्री राम की पात्रता को पहचानकर और उन्हें विद्या-भण्डार समझते हुए अनेक और विद्याओं का शिक्षण दिया जिससे भूख और प्यास न लगे तथा शरीर में अतीव बल और तेज का प्रकाश हो सके। २

प्रात कहा मुनि सन रघुराई ॥ निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई ॥
होम करन लागे मुनि झारी ॥ आपु रहे मख की रखवारी ॥

सवेरे श्रीराम ने मुनि से कहा—आप भय छोड़कर (निश्चिन्त भाव से) यज्ञ (नित्यकर्म) कीजिये। यह सुनकर सब मुनिगण हवन करने लगे और श्रीराम लक्ष्मण यज्ञ-रक्षा के लिये सन्नद्ध हो गये।

(यहाँ प्रातः कालीन ईश्वरोपासना के रूप में किसी भी प्रकार की मूर्ति की पूजा का उल्लेख नहीं है। ब्रह्म यज्ञ, देवयज्ञ आदि पञ्चयज्ञों के अनुष्ठान के रूप में ही नित्य कर्म का विधान है)

---

१ राक्षसी को मोक्ष पद देना विचित्र पौराणिक कल्पना है ! यह कष्ट व कल्पना चरित्र हीनता तथा पाप वृद्धि का मूल है। यहाँ यह पाठान्तर हो सकता है—"हरषि मुनीवर आसिस दीन्हा।"

२ महर्षि विश्वामित्र ने उसी पूर्व निश्चित योजना के अनुसार श्रीराम को अनेक शस्त्र-अस्त्रों का शिक्षण दिया, जिसको केवल वही जानते थे। महर्षि वशिष्ठ की गुरुकुल में इनकी शिक्षा उन्हें सुलभ न थी।

विश्वामित्र के गुरुकुल में शिक्षण
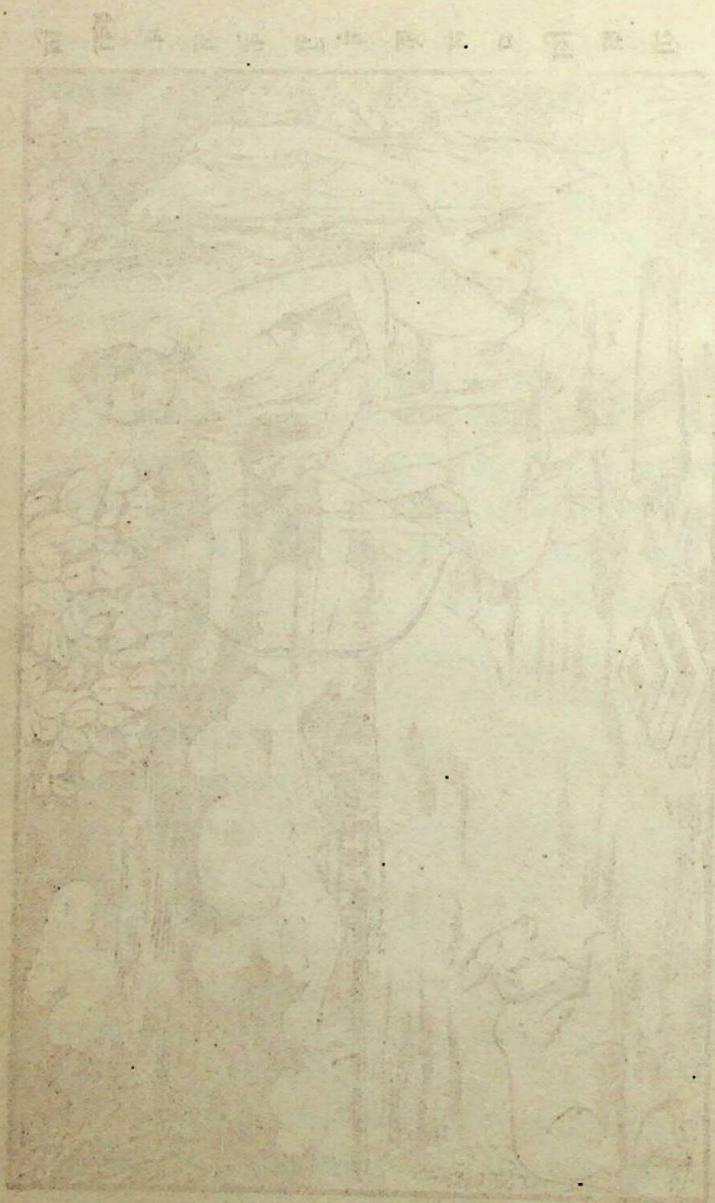
सुनि मारीच निसाचर कोही ※ लै सहाय धावा मुनि द्रोही।
बिनु फर बान राम तेहि मारा ※ सत जोजन गा सागर पारा॥

यह समाचार सुनकर मुनियों का शत्रु क्रोधी राक्षस मारीच अपने सहायकों को लेकर दौड़ा। श्रीराम ने बिना फल वाला बाण उसको मारा जिससे वह सौ योजन (चार सौ कोस) दूर समुद्र पार जा गिरा।

विशेष—यहाँ रामायण कालीन वैज्ञानिक प्रगति का संकेत मिलता है।

पावक सर सुबाहु तेहि मारा ※ अनुज निसाचर कटकु संहारा।
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया ※ रहे कीन्ह विप्रन्ह पर दाया*॥

फिर सुबाहु को अग्निबाण मारा। इधर छोटे भाई लक्ष्मण ने (राक्षसी) सेना का संहार कर डाला। पश्चात् श्रीराम वहाँ कुछ दिन और रहे तथा (यज्ञ रक्षा के रूप में) विद्वानों (ऋषि-मुनियों) के प्रति दया प्रदर्शित करते रहे।

तब मुनि सादर कहा बुझाई ※ चरित एक तुम्ह देखिअ जाई।
धनुष जज्ञ सुनि रघुकुल नाथा ※ हरषि चले मुनिवर के साथा॥

तब मुनिराज ने आदर सहित श्रीराम-लक्ष्मण को बुलाकर कहा कि तुम एक सुन्दर दृश्य देखने हमारे साथ चलो। (जनकपुर में) धनुष यज्ञ हो रहा है, यह समाचार सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र के साथ सहर्ष चल दिये।

विशेष—मिथिला जाते हुए मार्ग में उन्हें महामुनि गौतम की पत्नी अहल्या का आश्रम मिला जो देवराज इन्द्र द्वारा सतीत्वभङ्ग के द्रष्ट और निष्फल प्रयास से उत्पन्न ग्लानि के प्रायश्चित्त स्वरूप तपस्या और आत्मसाधना में ऐसी निष्ठा और एकाग्रता से लीन थी, मानो वह शिलावत् होगई हो। ऋषि-पत्नी की साधना चरम उत्कर्ष तक पहुँच चुकी थी। आत्मशुद्धि का लक्ष्य

---

* सच में तो विद्वानों की ही कृपा उल्लेख होना चाहिए। श्रीराम की ब्राह्मणों पर दया तुलसी के 'अवतारवाद' की भ्रान्त धारणा का ही परिणाम है।

पूर्ण हो चुका था, आवश्यकता थी कोई प्रतापी राजा उसे "शाप या प्रायश्चित्त मुक्ति" का निर्देशन करे। वह सौभाग्य ऋषि विश्वामित्र की कृपा से श्रीराम को मिल सका। मुनि विश्वामित्र के आदेश से श्रीराम-लक्ष्मण अहल्या के आश्रम पर पधारे। श्रीराम-लक्ष्मण ने देवी अहल्या के चरणों का स्पर्श किया और उसकी आत्म-शुद्धि की व्यवस्था की। इसी समय मुनिवर गौतम भी आ पहुँचे। उन्होंने साधना से संशुद्ध हुई देवी अहल्या को सहर्ष स्वीकार किया।

इस सुन्दर आख्यान को तुलसी रामायण में बड़े ही विकृत रूप में उपस्थित किया गया है जो सर्वथा अवैज्ञानिक, सृष्टि क्रम विरुद्ध नारी गौरव के प्रतिकूल और आर्ष मर्यादा एवं वैदिक शिष्टाचार के विरुद्ध है। हमने इस 'शुद्ध रामचरित मानस' में उस विकृत अंश को छोड़ दिया है।

हरषि चले मुनि वृन्द सहाया ※ बेगि विदेह नगर नियराया ॥

श्रीराम मुनि-मण्डल के साथ प्रसन्न मन बढ़े चले जारहे थे। शीघ्र ही महाराज जनक की नगरी—मिथिलापुरी—निकट आगई।

पुर रम्यता राम जब देखी ※ हर्षे अनुज समेत विशेखी।
वापी कूप सरित सर नाना ※ सलिल सुधा सम मणि सोपाना ॥

श्रीराम जनकपुर की शोभा देखकर लक्ष्मण सहित बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ बावली, कुआँ, नदी और तालाब बहुत संख्या में थे, जिनमें अमृत के समान जल और मणियों से बनी सीढियाँ थीं।

गुञ्जत मञ्जु मत्त रस भृङ्गा ※ कूजत कल बहु वरण विहङ्गा।
वरण-वरण विकसे जलजाता ※ त्रिविध समीर सदा सुखदाता ॥

फूलों का रस-पान किये मतवाले भौंरे सुन्दर गूँज कर रहे थे तथा अनेक तरह के पक्षी मनोहर शब्द कर रहे थे। रङ्ग-विरंगे कमल के फूल खिल रहे थे और शीतल-मन्द-सुगन्ध—तीनों प्रकार की वायु सुख प्रदान कर रही थी।

दोहा— सुमन वाटिका बाग वन, विपुल बिहङ्ग निवास।
फूलत-फलत सुपल्लवित, सोहत पुर चहुँ पास ॥

फूलवाड़ी, बाग और वन में बहुत सी चिड़ियों ने रहने के घोंसले बनाये

हुए हैं तथा नगर के चारों ओर फूल-फल और सुन्दर पत्तों वाले वृक्ष सुशोभित हैं।

देखि अनूप एक अँबराई ※ सब सुपास सब भाँति सुहाई।
कौशिक कहेउ मोर मन माना ※ यहाँ रहिय रघुवीर सुजाना॥

एक उत्तम ग्राम का बाग देखकर जहाँ सब प्रकार की सुविधा और शोभनीयता थी, मुनि विश्वामित्र ने कहा—हे रघुवीर! यहाँ रहिये, यह स्थान मेरे मन को बहुत प्रिय लगा है।

भलेहि नाथ कह कृपा निकेता ※ उतरे तहँ मुनिवृन्द समेता।
विश्वामित्र महामुनि आये ※ समाचार मिथिलापति पाये॥

"अच्छा स्वामिन्!" ऐसा कह कृपालु श्री राम अन्य मुनियों के साथ वहाँ उतर गये। [शीघ्र ही] महाराज जनक को भी यह समाचार मिल गया कि महामुनि विश्वामित्र पधारे हैं।

दोहा— सङ्ग सचिव शुचि भूरि भट, भूसुरवर गुरु ज्ञाति।
चले मिलन मुनिनायकहिं मुदित राउ यहि भाँति॥

तब वे पवित्र बुद्धि वाले मन्त्रियों, योद्धाओं, उत्तम ब्राह्मणों और श्रेष्ठ जनों को साथ लेकर, प्रसन्न हो मुनिराज विश्वामित्र से मिलने चले।

कीन्ह प्रणाम धरणि धर माथा ※ दीन्ह अशीश मुदित मुनिनाथा।
विप्र वृन्द सब सादर वन्दे ※ जानि भाग्य बड़ राउ अनन्दे॥

सबों ने पृथ्वी पर माथा टेक ऋषि विश्वामित्र का अभिवादन किया और मुनिराज ने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया। पश्चात् सभी ने ब्राह्मणों (अन्य विद्वानों एवं मुनियों) की वन्दना की। राजा जनक अपना अहोभाग्य समझ बड़े आनन्दित हो रहे थे।

कुशल प्रश्न कहि बारहिंबारा ※ विश्वामित्र नृपहिं बैठारा।
तेहि अवसर आये दोउ भाई ※ गये रहे देखन फुलबाई॥

बारम्बार कुशल-मङ्गल पूछकर ऋषि विश्वामित्र ने राजा को पास बैठाया। उसी समय दोनों भाई—राम-लक्ष्मण—भी आ गये जो फुलवाड़ी

देखने गये थे ।१

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक ※ मुनिकुल तिलक कि नृपकुलपालक ।
रघुकुल मणि दशरथ के जाये ※ मम हित लागि नरेश पठाये ।।

महाराज जनक ने पूछा—हे नाथ ! कहिये ये दोनों सुन्दर बालक (मुनि वंश की शोभा) मुनि कुमार हैं या राजकुल के रक्षक अर्थात् राजकुमार हैं । ऋषि विश्वामित्र ने उत्तर दिया कि ये दोनों भाई रघुवंश मणि महाराज दशरथ के पुत्र हैं । मेरे हित के लिये राजा ने इन्हें मेरे साथ भेजा है ।

दोहा—राम लखन दोउ बन्धुवर, रूप शील बलधाम ।
मख राखेउ सब साखि जग, जीति असुर संग्राम ।।

ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण रूप, शील और बल के भण्डार हैं । सब जानते हैं कि इन्होंने युद्ध में राक्षसों को जीत कर मेरे यज्ञ की रक्षा की है ।

दोहा— ऋषिन संग रघुवंश मणि करि भोजन विश्राम ।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि याम ।।

[राजा जनक के चले जाने पर] श्रीराम ऋषियों के साथ भोजन-विश्राम कर भाई सहित बैठे, उस समय एक पहर दिन रह गया था ।

निशि प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा ※ सबहीं सन्ध्या वन्दन कीन्हा ।
कहत कथा इतिहास पुरानी ※ रुचिर रजनि युग याम सिरानी ।।

(श्री राम, लक्ष्मण सहित नगर से जब लौटे तब तक रात्रि का समय होने लगा था) रात्रि आते ही मुनि-आज्ञा पाकर सबने सन्ध्या वन्दन किया ।२ फिर पुराने चरित्रों की कथा कहते आधी रात्रि बीत गई ।

---

१ यहाँ गोस्वामीजी ने 'पुष्पवाटिका' में श्री राम और सीता के प्रथम मिलन और परस्पर आकर्षित होने का आयोजन किया है । सीता द्वारा भवानी पूजन की योजना भी की गई है । यह सम्पूर्ण प्रसंग कवि की सर्वथा नवीन कल्पना है । वाल्मीकि रामायण में इसका कोई संकेत भी नहीं है ।

२ यहाँ भी किसी प्रकार की मूर्तिपूजा का उल्लेख नहीं है । सायङ्कालीन वैदिक सन्ध्या का विधान ही किया गया है ।

मुनिवर शयन कीन्ह तब जाई ※ लगे चरण चापन दोउ भाई।
बार-बार मुनि आज्ञा दीन्हा ※ रघुवर जाइ शयन तब कीन्हा ॥

तब मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने जाकर शयन किया और दोनों भाई पैर दबाने लगे। मुनि ने बारम्बार आज्ञा दी तब श्रीराम ने जाकर शयन किया।

चापत चरण लषण उर लाये ※ समय सप्रेम परम सुख पाये ॥
पुनि-पुनि प्रभु कह सोवहु ताता ※ पौढ़े धरि उर पद जल जाता ॥

अब लक्ष्मण अपने हृदय से श्री राम के चरणों को लगाकर बड़े प्रेम सहित सुख मानते हुए दबाने लगे। श्रीराम ने बार-बार कहा कि हे भाई तुम सोओ। तब श्री लक्ष्मण हृदय में श्री राम के चरण कमल रखकर लेट गये।

दोहा—उठे लषण निशि विगत सुनि,अरुण शिखा धुनि कान।
गुरु ते पहले जगतपति[1] जागे राम सुजान ॥

रात्रि बीतने पर कानों में कुक्कुट (मुर्गे) का शब्द सुन (सबसे पहले) लक्ष्मण फिर गुरुजी से पहले सुविज्ञवर श्री रामजी उठे।

विशेष—वैदिक शिष्टाचार की कैसी मनोरम झाँकी यहाँ प्रस्तुत की गई है, यह सभी के लिये आचरणीय है।

करि भोजन मुनिवर विज्ञानी ※ लगे कहन कछु कथा पुरानी।
विगत दिवस मुनि आयसु पाई ※ सन्ध्या[2] करन चले दोऊ भाई ॥

मुनियों में श्रेष्ठ आत्म ज्ञानी ऋषि विश्वामित्र भोजन कर कुछ पुरानी कथा (स्वदेश का प्राचीन गौरव पूर्ण इतिहास) कहने लगे। पुनः दिन के बीत जाने पर मुनि की आज्ञा पा दोनों भाई सन्ध्या करने चले।

करि मुनि चरण सरोज प्रणामा ※ आयसु पाइ कीन्ह विश्रामा।
विगत निशा रघुनायक जागें ※ बन्धु विलोकि कहन अस लागें ॥

(अधिक रात्रि होने पर) विश्वामित्र के चरण कमल में अभिवादन

१यहाँ भी श्रीराम को "जगतपति" कहना अवतारवाद की भ्रान्त एवं राष्ट्रघाती धारणा का ही परिणाम है।

२यहाँ फिर सन्ध्योपासन का ही विधान है, मूर्ति पूजा का नहीं।

करके; उनकी आज्ञा पाकर श्री राम-लक्ष्मण ने विश्राम किया। रात्रि बीतने पर श्री राम जागे। और (पहले ही उठे हुए) भाई को देखकर कहने लगे:—

उगेउ अरुण अवलोकहु ताता ※ पङ्कज कोक लोक सुखदाता।
बोले लषण जोरि युग पाणी ※ प्रभु प्रभाव सूचक मृदु वाणी॥

हे तात! देखो कमल, चकवा-चकई और संसार को सुख देने वाला अरुणोदय (प्रात:काल) होगया है। तब लक्ष्मण दोनों हाथ जोड़ श्री राम के प्रभाव को प्रकाशित करने वाली मीठी वाणी बोले:—

दोहा— अरुणोदय सकुचे कुमुद, उड़ुगण जोत मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि भये नृपति बलहीन॥

हे भाई; जैसे प्रातः होते ही कुमुद सकुचा गये हैं और तारागण का तेज फीका पड़ गया है, वैसे ही तुम्हारा आना सुनकर राजा लोग निर्बल (तेज रहित) होगये हैं।

सतानन्द तब जनक बुलाये ※ कौशिक मुनि पहँ तुरत पठाये।
जनक विनय तिन आय सुनाई ※ हरषे बोलि लिये दोउ भाई॥

इधर राजा जनक ने शतानन्द को बुलाकर शीघ्र विश्वामित्र मुनि के पास भेजा। उन्होंने आकर जनक की प्रार्थना कह सुनाई, तब प्रसन्न हो मुनि ने दोनों भाइयों को बुला कर कहा—

सीय स्वयम्बर देखिय जाई ※ ईश* काहि धौं देहि बड़ाई।
लषण कहा यश-भाजन सोई ※ नाथ कृपा तव जापर होई॥

चलें अब सीता के स्वयम्बर में चलकर देखें परमेश्वर किसे बड़ाई देता है। लक्ष्मण ने कहा— हे नाथ! जिस पर आपकी कृपा होगी वही इस यश का पात्र होगा।

हरषे मुनि सब सुनि वर बानी ※ दीन्ह अशीश सबहिं सुख मानी।
पुनि मुनिवृन्द समेत कृपाला ※ देखन चले धनुष मखशाला॥

---

*महामुनि विश्वामित्र द्वारा यहाँ ईश्वर की महान् सत्ता को श्रीराम के व्यक्तित्व से अलग माना गया है।

लक्ष्मण की उत्तम वाणी सुने सब मुनि लोग प्रसन्न हुए तथा सभी ने हर्ष अनुभव करते हुए आशीर्वाद दिया। फिर कृपालु श्री राम सहित सब मुनि-गण-धनुष यज्ञशाला देखने गये।

रंगभूमि आये दोउ भाई ॐ अस सुधि सब पुरवासिन पाई।
चले सकल गृहकाज बिसारी ॐ बालक युवा जरठ नर नारी॥

पुरवासियों ने यह समाचार पाया कि रङ्गभूमि में दोनों भाई आये हैं तो बालक, युवा और बूढ़े स्त्री-पुरुष सब लोग घर का काम छोड़कर चल दिये।

देखी जनक भीर भइ भारी ॐ शुचि सेवक सब लिये हँकारी।
तुरत सकल लोगन पहँ जाहू ॐ आसन उचित देहु सब काहू॥

महाराज जनक ने जब देखा कि बड़ी भीड़ हुई है तब पवित्र (यज्ञ में जाने योग्य) सेवकों को बुलाकर आदेश दिया कि शीघ्र सब लोगों के पास जाकर सबको उचित आसन दो।

दोहा– सब मञ्चन ते मञ्च यक, सुन्दर विशद विशाल।
मुनि समेत दोउ बन्धु तहँ, बैठारे महिपाल॥

सब मचानों से एक मञ्च सुन्दर और बड़ा था उसी पर मुनि सहित दोनों भाइयों को राजा ने बैठाया।

दोहा– जानि सुअवसर सोय तब, पठवा जनक बुलाइ।
चतुर सखी सुन्दरि सकल, सादर चलीं लिवाइ॥

जनक ने सुसमय जान सीता को बुला भेजा, जिसे सब सुन्दरी चतुर सखियाँ लिवा कर चलीं।

चलीं संग लै सखी सयानी ॐ गावत गीत मनोहर बानी।
भूषण सकल सुदेश सुहाये ॐ अंग-अंग रचि सखिन बनाये॥

चतुर सखियाँ साथ लेकर मनोहर वाणी से गीत गाती हुई चलीं। समस्त आभूषण अपने २ स्थान पर शोभा देरहे हैं, उन्हें अङ्ग प्रत्यङ्ग में सखियों ने बनाकर सजाया है।

रंगभूमि जब सिय पगुधारी ✻ देखि रूप मोहे नरनारी।
पाणि सरोज सोह जयमाला ✻ औचक चितै सकल महिपाला॥

सीताजी ने जब रङ्गभूमि (स्वयम्वर स्थली) में पैर रखा तो उनका रूप देखकर स्त्री-पुरुष सभी मोहित होगये। सीताजी के कमल समान हाथ में जयमाल शोभित है, उन सीता को एकाएकी सभी राजाओं ने देखा।

तब बन्दीजन जनक बुलाये ✻ विरदावली कहत चलि आये।
कह नृप जाइ कहहु प्रण मोरा ✻ चले भाट हिय हर्ष न थोरा॥

तब जनक ने बन्दीजनों को बुलाया और वे यश वर्णन करते हुए चले आये। राजा ने कहा कि मेरा प्रण जाकर कहदो, तब वे भाट मन में बहुत प्रसन्न हो चले।

दोहा– बोले बन्दी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
प्रण विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाय विशाल॥

भाट लोग बोले—हे राजाओ ! सुनो, हम लम्बी भुजा उठा कर राजा जनक का प्रण कहते हैं।

सोह पुरारि कोदण्ड कठोरा ✻ राज समाज आजु जोइ तोरा।
त्रिभुवन जय समेत वैदेही ✻ बिनहि विचार बरै हठि तेही॥

सुशोभित शिवजी के कठोर धनुष को जो आज राज सभा में तोड़ेगा, उसे त्रिलोक विजयी के रूप में सीता बिना कुछ विचार किये निश्चित ही (हठ पूर्वक) वरण करेगी।

श्री हत भये हारि सब राजा ✻ बैठे निज निज जाइ समाजा।
नृपन बिलोकि जनक अकुलाने ✻ बोले वचन रोषु जनु साने॥

[अनेक राजाओं ने धनुष को उठाने का प्रयत्न किया किन्तु वे हिलाने तक में समर्थ नहीं हुए, अन्ततः सब] राजा लोग मन में हार, तेज से हीन हो अपने २ समाज में जा बैठे। राजाओं की यह दशा देख जनक व्याकुल हो उठे और मानो क्रोध में भरकर कहने लगे:—

अब जनि कोउ भाखैं भटमानी ✻ वीर विहीन मही मैं जानी।
तजहु आश निज निज गृह जाहू ✻ लिखा न विधि वैदेहि विवाहू॥

अब कोई अपनी वीरता का गान न करे, मैंने भली-भाँति देख लिया है कि यह पृथ्वी वीरों से रहित हो गई है। आप लोग अब आशा छोड़कर अपने-अपने घर पधारिये। लगता है विधाता को सीता का विवाह स्वीकार नहीं है।

जनक वचन सुनि सब नरनारी ※ देखि जानकी भये दुखारी।
माखे लषण कुटिल भइँ भौंहैं ※ रदपुट फरकत नैन रिसौहैं।।

राजा जनक के यह वचन सुनकर सभी स्त्री-पुरुष सीता को देखकर (सीता के दुर्भाग्य का विचार कर) दुःखी हुए। इधर लक्ष्मण को रोष हो आया, भौंहें तिरछीं हो गईं, होठ फड़कने लगे। तथा नेत्र क्रोधपूर्ण होगये।

दोहा— कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बाण।
नाइ राम पद कमल शिर, बोले गिरा प्रमाण।।

श्रीराम के डर से कुछ कह नहीं पाते, परन्तु राजा जनक के वचन उन्हें बाण के समान लगे। अन्त में जब उनसे न रहा गया तो श्री राम के चरण कमल में शिर नवा बड़े ही प्रामाणिक रूप से बोले:—

विशेष—यहाँ लक्ष्मण की वीरता और शालीनता (शिष्टाचार) दोनों सद्गुणों के एकसाथ दर्शन होते हैं।

रघुबंशिन महँ जहँ कोउ होई ※ तेहि समाज अस कहै न कोई।
कही जनक अस अनुचित बानी ※ विद्यमान रघुकुल मणि जानी।।

(ध्यान रहे कि) जहाँ रघुवंशियों में से कोई भी हो वहाँ (उस समाज में) कोई ऐसी बात न कहे, जैसी रघुवंश मणि श्रीराम की उपस्थिति में महाराज जनक ने अनुचित बात कही है।)

लषण सकोप वचन जब बोले ※ डगमगानि महि दिग्गज डोले।
सकल लोक सब भूप डराने ※ सिय हिय हर्ष जनक सकुचाने।।

जब लक्ष्मणजी ने क्रोध सहित ये वचन कहे तो मानो पृथ्वी डगमगाने लगी और दिशाओं के हाथी हिलने लगे (यह अलङ्कारिक वर्णन है) सब उपस्थित लोग तथा राजागण डर गये, सीताजी हृदय में हर्षित हुईं और जनक सकुचा गये।

गुरु रघुपति सब मुनि मन माँहीं ❋ मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं ।
सैनहिं रघुपति लषण निवारे ❋ प्रेम समेत निकट बैठारे ।।

गुरु, श्रीरामजी और सब मुनिलोग मन में प्रसन्न हुए और बारम्बार देह पुलकित होने लगी । श्रीराम ने संकेत से लक्ष्मण को रोककर प्रेम सहित अपने पास बिठा लिया ।

विश्वामित्र समय शुभ जानी ❋ बोले अति सनेह मृदु बानी
उठहु राम भञ्जहु भव चापू ❋ मेटहु तात जनक परितापू ।।

ऋषि विश्वामित्र ने अनुकूल अवसर देख बड़े स्नेह के साथ कोमल वाणी से कहा—हे राम ! हे तात ! उठो, शिव का धनुष तोड़ो और जनकजी का दुःख दूर करो ।

सुनि गुरु वचन चरण शिर नावा ❋ हर्ष विषाद न कछु उर आवा ।
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये ❋ ठवनि युवा मृगराज लजाये ।।

श्रीराम ने गुरुजी के वचन सुन कर चरणों में शिर नवाया । मन में सुख-दुःख कुछ न हुआ । वे सहज स्वभाव से उठ खड़े हुए । उनकी चाल देख मानो युवा सिंह भी लज्जित होता था ।

दोहा— उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग ।
विकसे सन्त सरोज वन, हरषे लोचन भृंग ।

उदयाचल पर प्रातःकाल के सूर्य के उदय के समान ही श्रीराम के मञ्च पर उदय को देख कमल रूपी सब साधुजन आनन्द से फूल उठे और भौरों के समान उनकी आँखें प्रसन्नता से भर गईं ।

नृपन केरि आशा निशि नाशी ❋ वचन नखत अवलीन प्रकाशी ।
मानी महिप कुमुद सकुचाने ❋ कपटी भूप उलूक लुकाने ।।

(सूर्योदय पर) रात्रि के समान राजाओं की आशा नाश होगई और तारागण के समान अनेक प्रकार के वचन फिर न प्रकट हुए । कुमुद से अभिमानी राजा सकुच गये और उल्लू पक्षी के समान छली राजा छिप गये ।

भये विसोक कोक मुनि देवा ❋ वर्षहिं सुमन जनावहिं सेवा ।
गुरुपद बन्दि सहित अनुरागा ❋ राम मुनिन सन आयसु माँगा ।।

चकई-चकवा के समान मुनि और देवता प्रसन्न हुए तथा फूलों की वर्षा कर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करने लगे। श्रीराम ने प्रीति सहित गुरुजी के चरणों की (पुनः) वन्दना की तथा मुनियों से आज्ञा माँगी।

देखी विपुल विकल वैदेही ※ निमिष विहात कल्प सम तेही।
तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा ※ मुये करै का साधु तड़ागा॥

श्रीराम ने जब सीता जी को अधिक व्याकुल देखा, मानो उनको एक पल कल्प के समान बीत रहा हो, तब विचार किया कि यदि प्यासा बिना जल के देह छोड़ दे तो मरने पर उसे मीठे जल का तालाब भी क्या लाभ दे सकता है?

का वर्षा जब कृषी सुखाने ※ समय चूकि पुनि का पछिताने।
अस जिय जानि जानकी देखी ※ प्रभु पुलके लखि प्रीति विशेखी॥

खेती सूखने पर व्यर्थ होने का क्या लाभ? इसी प्रकार अवसर हुए जाने पर पश्चात्ताप व्यर्थ है। इस प्रकार सीता की दशा पर विचार करते हुए श्रीराम का शरीर प्रेम से पुलकित हो उठा। और उन्होंने इसे धनुष तोड़ने का ठीक अवसर समझा।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े ※ काहु न लखा देख सब ठाढ़े।
तेहि क्षण मध्य राम धनु तोरा ※ भरेउ भुवन ध्वनि घोर कठोरा॥

लोग खड़े देखते रहे पर किसी ने श्री राम को धनुष उठाते, चढ़ाते और खींचते नहीं जाना। उसी क्षण श्रीराम ने धनुष तोड़ डाला। तब उसका कठोर घोर शब्द सब लोकों में भर गया।

दोहा—बन्दी मागध सूत गण विरद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावर लोग सब, हय गज धन मणि चीर॥

(धनुष के टूटते ही) धीर बुद्धि वाले बन्दी, मागध, सूत—इनके समूह श्रीराम की वंशावली कहने लगे और सब लोग घोड़े, हाथी, धन, रत्न और वस्त्र श्रीराम पर न्योछावर करने लगे।

सखिन सहित हर्षित अति रानी ※ सूखत धान परा जनु पानी।
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई ※ पैरत थके थाह जनु पाई॥

रानी सुनैना धरणि१—सीताजी की माता) सखियों सहित बहुत प्रसन्न हुई, मानो सूखते हुए धानों में पानी पड़ा हो और राजा जनक ने शोच छोड़ ऐसा सुख पाया जैसा कोई तैरते २ थक गया हो और थाह पा जाय।

रामहिं लषण विलोकत कैसे ※ शशिहि चकोर किशोरक जैसे।
शतानन्द तब आयसु दीन्हा ※ सीता गमन राम पहँ कीन्हा॥

लक्ष्मण जी श्रीराम को कैसे देखते हैं, जैसे चकोर का बच्चा चन्द्रमा को, तब शतानन्द ने आज्ञा दी जिससे सीताजी श्रीराम के पास चलीं।

चतुर सखी पुनि कहा बुझाई ※ पहिरावहु जयमाल सुहाई।
सुनत युगल कर माल उठाई ※ प्रेम विवश पहिराइ न जाई॥

(श्रीराम के पास पहुंचने पर) चतुर सखियों ने समझाकर कहा कि सुन्दर जय माल पहिना दीजिये। यह सुन सीता ने दोनों हाथों से माला को उठाया, परन्तु प्रेम-विह्वल होने से ठीक से पहिनाई नहीं जाती।

सो० रघुवर उर जय माल, देखि देव वरषहिं सुमन।
सकुचे सकल भुवाल जनु विलोकि रवि कुमुदगण॥

श्रीराम के गले में जयमाल देख देवता (परोपकारी विद्वज्जन) फूल बरसाने लगे और दूसरे सब राजा सूर्य को देख कुमुद (कोकाबेली) के समान सकुच गये। २

तेहि अवसर सुनि शिव धनुभङ्गा ※ आये भृगुकुल कमल पतङ्गा।
देखि महीप सकल सकुचाने ※ बाज झपट जनु लवा लुकाने॥

१ सीताजी की माताजी का नाम धरणि था। धरणि पृथ्वी को भी कहते हैं। बस मित्र लोगों ने भूमि (पृथ्वी) से ही सीता का जन्म करा दिया और मृत्यु काल का भी ऐसा ही कथानक घड़ लिया कि वे पृथ्वी के पेट में ही समा गईं। बुद्धि की बलिहारी!

२ धनुष भङ्ग के इस प्रसङ्ग में प्रायः एक प्रश्न किया जाता है कि उस धनुष में ऐसी क्या विशेषता थी जिसे अन्य कोई राजा नहीं चढ़ा सका, इतना ही नहीं हिला भी नहीं सका। उत्तर समीक्षा खण्ड में पढ़ें।

उसी समय शिव-धनुष के टूटने का शब्द सुनकर भृगुवंश रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य सदृश परशुराम जी आ पहुँचे। उनको देख सब राजा (जो शोर कर रहे थे) ऐसे सिटपिटा गये, जैसे बाज पक्षी के झपेट से से बटेर छिप जाते हैं।

देखत भृगुपति वेष कराला ॐ उठे सकल भय विकल भुवाला।
जनक बहोरि आय शिर नावा ॐ सीय बुलाय प्रणाम करावा॥

परशुराम का भयानक वेश देखते ही सब राजा लोग डर से व्याकुल हो उठ खड़े हुए। फिर राजा जनक ने आकर शिर नवाया और सीता को बुलाकर अभिवादन कराया।

आशिष दीन्ह सखी हरषानी ॐ निज समाज लै गईं सयानी।
विश्वामित्र मिले पुनि आई ॐ पद सरोज मेले दोउ भाई॥

परशुराम ने आशीर्वाद दिया तब चतुर सखियाँ प्रसन्न हो सीता को अपने समाज (स्त्री-समूह) में लिवाकर ले गईं। फिर विश्वामित्र ऋषि परशुराम जी से मिले और दोनों भाइयों से उनका चरण स्पर्श कराया।

दोहा— बहुरि बिलोकि विदेह सन, कलेहु कहा अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप शरीर॥

फिर इधर-उधर देख जनक से कहा कि कहिये यह भारी भीड़ क्यों है? उनके शरीर में क्रोध व्याप्त था और जानकर भी ऐसा पूछते थे, जैसे कोई न जानता हो।

समाचार कहि जनक सुनाये ॐ जेहि कारण महीप सब आये।
सुनत वचन फिरि अनत निहारे ॐ देखे चाप खण्ड महि डारे॥

राजा जनक ने जिस कारण से सब राजा लोग आये थे, वह समाचार कह सुनाया। सुनते ही फिर दूसरी ओर देखा तो पृथ्वी में धनुष के खण्ड पड़े देखे।

अति रिस बोले बचन कठोरा ॐ कहु जड़ जनक धनुष केइँ तोरा।
बेगि दिखाउ मूढ़ न तु आजू ॐ उलटौं महि जहँ लगि तव राजू॥

तब बड़े क्रोध से कठोर वचन बोले—हे मूर्ख जनक! कह, किसने धनुष तोड़ा है? उसे शीघ्र दिखला, नहीं तो रे मूर्ख! जहाँ तक पृथ्वी में तेरा राज्य है, उस सबको उलट दूँगा।

दोहा-- सभय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हर्ष विषाद कछु बोले श्री रघुवीर॥

तब सब लोगों को भयभीत देख और सीता के चित्त को बोझिल जान कर श्री राम मन की सम-अवस्था (दुःख-सुख से रहित) में बोले—

नाथ सम्भु धनु भंजनहारा ※ होइहि कोउ इक दास तुम्हारा।
आयसु कहा कहिय किन मोही ※ सुनि रिसाय बोले मुनि कोही॥

हे नाथ! शिवजी के धनुष को तोड़ने वाला तो कोई आपका सेवक ही हो सकता है। कृपा कर आप मुझे कहिये कि क्या आज्ञा है? यह सुन क्रोधी मुनि क्रोधित होकर बोले—

सेवक सो जो करै सेवकाई ※ अरि करणी करि करिय लराई।
सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा ※ सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥

दास वह है जो सेवा करे—शत्रु का काम करके लड़ाई करे वह दास नहीं है। हे राम! सुनो, जिसने शिव-धनुष तोड़ा है वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।

सो विलगाय विहाय समाजा ※ न तु मारे जैहैं सब राजा।
सुनि मुनि वचन लषण मुसकाने ※ बोले परशु धरहि अपमाने॥

वह समाज छोड़कर अलग हो जावे, नहीं तो सब राजा मारे जायेंगे। तब परशुरामजी के वचन सुन लक्ष्मण मुस्कराये और उनको परशा धारण लिये देख मानो अपमानित करते हुए बोले—

छुवत टूट रघुपतिहिं न दोषू ※ मुनि बिन काज करिय कत रोषू।
बोले चितै परशु की ओरा ※ रे शठ सुनेसि प्रभाउ न मोरा॥

(भगवन्!) यह तो छूते ही टूट गया, इसमें श्री राम जी का क्या दोष है? हे मुने! बिना प्रयोजन क्यों क्रोध करते हो? तब परशु की ओर देख परशुराम जी बोले—हे दुष्ट! क्या तूने मेरा प्रभाव नहीं सुना है?

दोहा--मातु पितुहि जनि सोचवश, करसि महीप किशोर।
गर्भन के अर्भक दलन, परशु मोर अति घोर॥

हे राजकिशोर ! अपने माता-पिता को शोकग्रस्त मत कर गर्भ के बच्चों का नाशकारी मेरा परशु बड़ा ही कठोर है।

बिहँसि लषन बोले मृदु बानी ॐ अहा मुनीश महा भटमानी।
पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारा ॐ चहत उड़ावन फूँकि पहारा ॥

लक्ष्मण जी हँस कर मीठे वचन बोले कि हे मुनीश ! आप अपने को बड़ा वीर मानते हैं। बारम्बार मुझे परशु दिखाते हैं, लगता है कि आप मुँह की फूँक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं।

इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं ॐ जो तर्जनि देखत मरिझाहीं।
देखि कुठार शरासन बाना ॐ मैं कछु कहा सहित अभिमाना ॥

तो (याद रखिये कि) यहाँ भी कोई कुम्हड़े की बतिया नहीं है जो उँगली देखते ही मुरझा जाय। मैंने जो कुछ अभिमान सहित (समयोचित) वचन कहे हैं, परशु, धनुष, और बाण देखकर ही कहा है।

दोहा—शूर समर करणी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रण पाइ रिपु, कायर करहिं प्रलाप ॥

शूरवीर अपने को कह कर नहीं जनाते, किन्तु युद्ध में करनी करके दिखलाते है। ऐसा तो कायर लोग करते हैं कि युद्ध में शत्रु को पाकर प्रलाप करें।

दोहा—लषन उतर आहुति सरिस, भृगुपति कोप कृशानु।
बढ़त देखि जल सम वचन, बोले रघुकुल भानु ॥

परशुरामजी के क्रोधरूपी अग्नि को आहुतियों के समान लक्ष्मण के उत्तरों से बढ़ते हुए देखकर रघुकुल में सूर्य के समान श्रीराम जल के समान शीतल वाणी बोले—

नाथ करहु बालक पर छोहू ॐ शुद्ध दूध मुख करिय न कोहू।
जो पै प्रभु प्रभाव कछु जाना ॐ तौ कि बराबरि करत अयाना ॥

हे नाथ ! बालक पर दया कीजिये, अभी दूध का मुख है, इससे शुद्ध मन का है, क्रोध न कीजिये। यदि यह स्वामी के प्रभाव को कुछ भी जानता तो क्योंकर बराबरी करता ? यह अभी इस विषय में वे समझ हैं।

जो लरिका कछु अनुचित करहीं ※ गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।
करिय कृपा शिशु सेवक जानी※तुम सम शील धीर मुनि ज्ञानी ॥

यदि बालक कुछ अनुचित भी कर देते हैं तब भी गुरु, माता और पिता प्रसन्न ही होते हैं। इसे बालक व सेवक जान कृपा कीजिये, आप तो स्वयं समदृष्टि, सहनशील, धैर्यवान, मुनि और आत्मज्ञानी हैं।

राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने ※ कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने।
हँसत देखि नख शिख रिस व्यापी※ राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥

श्री राम के वचन सुन कुछ ठण्डे पड़े ही थे कि तब तक लक्ष्मण फिर कुछ कहकर मुस्करा दिये। लक्ष्मण का हँसना था कि परशुराम के नाखून से चोटी तक क्रोध व्याप्त होगया और बोले—राम तुम्हारा भाई बड़ा पापी है।

बोले रामहिं देइ निहोरा ※ बचै विचारि बन्धु लघु तोरा।
मन मलीन सुन्दर तनु कैसे ※ विष रस भरा कनक घट जैसे ॥

फिर श्रीराम को उलहना देकर बोले—तुम्हारा छोटा भाई होने से यह अभी तक बचा है। यह वैसे ही मन का मलीन और देह का सुन्दर है, जैसे सोने के घड़े में विष का रस भरा हो।

अति बिनीत मृदु शीतल वानी ※ बोले राम जोरि युग पानी।
बरैं बालक एक स्वभाऊ ※ इनहिं न सन्त विदूषहिं काऊ ॥

श्री राम फिर दोनों हाथ जोड़ बहुत नम्र तथा नीति से भरी हुई शान्त वाणी बोले—हे नाथ! बरं और बालक एक ही स्वभाव के होते हैं। साधु पुरुष इन्हें कोई दोष नहीं देते।

दोहा—परशुराम तब राम प्रति बोले वचन सक्रोध।
शम्भु सरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध ॥

तब परशुराम ने श्रीराम को क्रोध में कहा—हे शठ! शिव का धनुष तोड़ मुझे उपदेश करता है।

बन्धु कहै कटु सम्मत तोरे ※ तू छल विनय करसि कर जोरे।
भृगुपति तमकि कुठार उठाये ※ मन मुसुकाहिं राम शिर नाये ॥

तेरा भाई तेरी सम्मत्ति से कड़े वचन कहता है और तू हाथ जोड़ छल

से विनय करता है। तब परशुराम ने क्रोध करके परशु उठा लिया, पर श्रीराम मन में मुस्कराते हुए कहने लगे—

गुणहु लषण कर हम पर रोषू * कतहु सिधाइहुँ ते बड़ दोषू।
टेढ़ जानि शङ्का सब काहू * वक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू ॥

(भगवन् !) लक्ष्मण के क्रोध को हमारे ऊपर गिनते हो—कभी-कभी सीधेपन से भी बड़ा दोष होता है। टेढ़ा समझकर सबको शंका रहती है—टेढ़े चन्द्रमा को (द्वितीया से चतुर्दशी तक) राहु नहीं ग्रसता है।*

देव दनुज भूपति भट नाना * सम बल होउ अधिक बलवाना।
जो रण हमहिं प्रचारै कोऊ * लरहिं सुखेन काल किमि होऊ॥

(हे भगवन् !) देव हो या राक्षस, राजा हो या कोई शूरवीर, समान बल वाला हो या अधिक बलवान—कोई भी हो यदि कोई युद्ध के लिये मुझे बुलावे तो वह काल ही क्यों न हो उसके साथ मैं सुख से लड़ूँगा।

क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना * कुल कलङ्क तेहि पामर जाना।
कहहुं स्वभाव न कुलहिं प्रशंसी * कालहु डरहिं न रण रघुवंशी॥

जिसने क्षत्रिय का शरीर पाकर युद्ध से भय किया वह तो कुल का कलंक है, उसे बड़ा नीच समझना चाहिये। मैं अपने कुल की प्रशंसा नहीं करता, किन्तु सत्य ही कहता हूँ कि रघुवंशी युद्ध में काल से भी नहीं डरते।

विप्र वंश की अस प्रभुताई * अभय होइ जो तुमहिं डराई।
सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुपति के * उघरे पटल परशुधर मति के॥

(यह हमारी विनय शीलता तो) आपके ब्राह्मणत्व का ही प्रभाव है। (क्योंकि हम जानते हैं कि) जो आपसे डरता है, वह निर्भय हो जाता है। श्रीराम के इन (वीरता और शीलता से युक्त) गूढ़ वचनों को सुनकर परशुराम की बुद्धि के पटल खुल गये।

कहि जय जय जय रघुकुल केतु * भृगुपति गये वनहिं तप हेतू।
अपभय कुटिल महीप डराने * जहँ तहँ कायर गवहिं पराने॥

*(वस्तुतः ग्रहण आदि सूर्य-चन्द्रमा के गति का ही द्योतक हैं। यह मान्यता पौराणिक विचित्र कल्पना की ही देन है।)

(इस प्रकार श्री राम का गौरव पूर्णतया अनुभव होने पर) परशुराम कहने लगे—हे रघुकुल में पताका तुल्य राम आपकी जय हो, जय हो, जय हो। ऐसा कह परशुराम तपस्या के लिये वन में चले गये। फिर तो खोटे राजा लोग अपने ही भय से डर गये और कायर जहाँ-तहाँ भाग गये।*

दोहा—देवन दीन्ही दुन्दुभी, प्रभु पर वरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब, मिटा मोह भय शूल॥

देवताओं—सज्जन पुरुषों ने हर्ष ध्वनि की और श्रीराम पर पुष्प वर्षा की। नगर के सब स्त्री-पुरुष हर्षित होने लगे तथा मोह और डर का काँटा दूर होगया।*

पश्चात् ऋषि विश्वामित्र महाराज जनक से बोले—

दूत अवधपुर पठवहु जाई ॐ आनैं नृप दशरथहिं बुलाई।
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला ॐ पठये दूत अवध तेहि काला॥

हे राजन्! अयोध्या के लिये दूत भेजकर महाराज दशरथ को

---

*वाल्मीकि रामायण तथा अन्य अनेक रामायणों में भी परशुराम आगमन का प्रसंग सर्वथा भिन्न रूप में है। महाराज दशरथ पुत्र और पुत्र-वधुओं सहित अयोध्या को लौट रहे हैं। उस समय मार्ग में परशुराम मिलते हैं। परशुराम उस समय के एक अद्वितीय महावीर थे। ब्राह्मण-कुलोत्पन्न होकर भी वे क्षत्रिय-शिरोमणि थे। सभी उनके परशु और पौरुष का लोहा मानते थे। अनायास उनके मार्ग में मिल जाने और उनके द्वारा प्रश्नोत्तर किये जाने पर राजा दशरथ आदि सभी भयभीत हो उठे, किन्तु अन्ततः वे भी श्रीराम की शीलता और वीरता आदि धीरोदात्त गुणों से प्रभावित होकर उन्हें आशीर्वाद देकर चले गये।

इस सहज वृत्त को गोस्वामी जी ने अपनी विशिष्ट कल्पना से सर्वथा नया रंग रूप दिया है तथा बड़े ही भयाक्रान्त वातावरण की सृष्टि कर दी है। काव्य की दृष्टि से कवि की यह योजना अनूठी मानी जा सकती है, पर इससे ऐतिहासिक सचाई पर पर्दा पड़ता है। जो अपने आप में किसी भी प्रकार उचित नहीं है।

बुलवाइये। प्रसन्न हो राजा ने कहा—हे कृपालो! बहुत अच्छा। ऐसा कह राजा ने तभी अयोध्या के लिये दूत भेज दिये।

पहुँचे दूत रामपुर पावन ※ हरषे नगर विलोकि सुहावन।
भूप द्वार तिन खबरि जनाई ※ दशरथ नृप सुनि लिये बुलाई॥

दूत पवित्र रामपुर—अयोध्या में पहुँचे। वे नगर की शोभा और सुन्दरता देख कर अति प्रसन्न हुए। राज-द्वार में उन्होंने समाचार भेज दिया। राजा दशरथ ने उन्हें सादर बुलवा लिया।

करि प्रणाम तिन पाती दीन्ही ※ मुदित महीप आपु उठि लीन्ही।
वारि विलोचन बाँचत पाती ※ पुलक गात आई भरि छाती॥

सादर अभिवादन कर उन्होंने पत्र दिया। राजा ने प्रसन्न हो स्वयं उटकर लिया, पत्र पढ़ते ही राजा के नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक आये और शरीर पुलकित होकर हृदय भर आया।

राम लषण उर कर वर चीठी ※ रहि गये कहत न खाटी मीठी।
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची ※ हरषी सभा बात सुनि साँची॥

राम और लक्ष्मण हृदय में तथा उत्तम पत्र हाथ में था, इससे यों ही रह गये —खट्टी-मीठी कुछ कहते नहीं बना। फिर धीरज धर के (भावावेश को रोक कर) पत्र पढ़ा तो सच्चे और सुखद समाचार सुनकर सारी सभा प्रसन्न हुई।

दोहा— तब उठि भूप वसिष्ठ कहँ, दीन्ह पत्रिका जाय।
कथा सुनाई गुरुहिं सब, सादर दूत बुलाय॥

तब राजा ने जाकर वशिष्ठ मुनि को पत्र दिया और आदर से दूतों को बुलाकर गुरुजी को सब कथा सुनाई।

सुनि बोले मुनि अति सुख पाई ※ पुण्य पुरुष कहँ महि सुख छाई।
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं ※ यद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

उसे सुन सुख पाकर वशिष्ठ मुनि बोले—पुण्यात्मा पुरुष के लिये यह पृथ्वी सदा सुख से भरी है। जैसे, यद्यपि समुद्र की इच्छा नहीं है तो भी नदियाँ उसमें जाती ही हैं।—

तिमि सुख सम्पति बिनहिं बुलाये * धर्मशील पहँ जाहिं सुभाये।
तुम गुरु विप्र धेनु सुर सेवी * तस पुनीत कौसल्या देवी ।।

ऐसे ही धर्मशील पुरुषों के पास विना बुलाये ही सुख-सम्पदा आदि आ जाते हैं। आप गुरु, ब्राह्मण, गाय और देवताओं की सेवा करने वाले हैं और वैसे ही पवित्र (आचरण वाली) कौशल्यादेवी हैं।

वीर विनीत धर्म व्रत धारी * गुण सागर बालक वर चारी।
तुम कहँ सर्व काल कल्याना * सजहु बरात बजाय निशाना ।।

तुम्हारे चारों कुमार (सुपुत्र) शूरवीर, विनम्र, धर्मपरायण सत्य व्रत धारण करने वाले तथा अन्य सद्गुणों के समुद्र हैं। तुमको सब समय में कल्याण है, अब बाजे बजवाकर बरात सजाइये।

दोहा– आवत जानि बरात वर, सुनि गह गहे निशान।
सजि गज रथ पदचर तुरँग, लेन चले अगवान ।।

(गुरु वशिष्ठ की आज्ञानुसार दशरथ बारात सजाकर जनकपुर पहुँचते हैं) बाजों का गहगाहना सुन जनकपुर के लोग उत्तम बरात आती जान घोड़े, हाथी, रथ और पैदलों को सजा अगवानी लेने (स्वागत के लिये) चले।

निज निज वास विलोकि बराती * सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती।
पितु आगमन सुनत दोउ भाई * हृदय न अति आनन्द समाई ।।

बरातियों ने अपना २ स्थान देखा तो लगा कि उन्हें देवताओं का सब सुख सब प्रकार सुलभ था। इधर दोनों भाइयों को पिता का आना सुन बड़ा आनन्द हुआ जो मानो हृदय में नहीं समाता।

दोहा—भूप विलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन समेत।
उठे हरषि सुख सिन्धु महं, चले थाह सो लेत ।।

राजा दशरथ ने जब देखा कि पुत्रों (राम-लक्ष्मण) सहित मुनि विश्वामित्र आये हैं तो प्रसन्नता से उठ खड़े हुए और सुख रूपी समुद्र में थाह सी लेने लेने लगे।

दोहा– पुरजन परिजन जातिजन, याचक मन्त्री मीत ।
मिले यथाविधि सबहिं प्रभु, परम कृपालु विनीत ।।

(भाई सहित गुरु वशिष्ठ एवं पिताजी का चरण स्पर्श करने के पश्चात्) नगरवासी, प्रजाजन, मन्त्रिगण, मित्र-मण्डली, अन्य सभी नगर निवासी तथा भिखारियों तक से श्रीराम जैसा चाहिए उस प्रकार मिल रहे हैं, क्योंकि वे बड़े कृपालु और विनम्र स्वभावी हैं ।

समय विलोकि वशिष्ठ बुलाये ※ सादर शतानन्द चलि आये ।
वेगि कुँवरि अब आनहु जाई ※ चले मुदित मन आयसु पाई ।।

इधर विवाह संस्कार का समय देख वशिठ जी के बुलाने पर जनक के पुरोहित शतानन्द जी सादर उपस्थित होगये । तब वशिष्ठ मुनि ने कहा—अब जाकर राजकुमारी को शीघ्र ले आयें । शतानन्द जी आज्ञा पा मन में प्रसन्न हो कर चले ।

आवत देखि बरातिन सीता ※ रूप राशि सब भाँति पुनीता ।
हरषे दशरथ सुतन समेता ※ कहि न जाइ उर आनन्द जेता ।।

सब प्रकार से पवित्र, सुन्दरता और तेज की राशि सीता को बरातियों ने आते हुए देखा । पुत्रों सहित राजा दशरथ सीता को देख बड़े प्रसन्न हुए । इतना आनन्द हृदय में हुआ जो कहा नहीं जाता । (यहाँ पर्दा-निषेध स्पष्ट है)

यहि विधि सीय मण्डपहि आई ※ प्रमुदित शान्ति पढ़हिं मुनिराई ।
तेहि अवसर करि विधि व्यवहारू ※ दुहुँ कुल गुरु सब कीन्ह अचारू ।।

इस प्रकार सीताजी मण्डप में आई तब मुनिराज प्रसन्न हो स्वातिवाचत्र एवं शान्तिकरण का पाठ करने लगे । दोनों कुलों के गुरुजनों ने वेदविधि से सम्पूर्ण संस्कार सम्पन्न कराया ।

पढ़हिं वेद मुनि मङ्गल बानी ※ गगन सुमन झरि अवसर जानी ।
वर विलोकि दम्पति अनुरागे ※ पाँय पुनीत पखारन लागे ।।

मुनि लोग मङ्गल वाणी से स्वर सहित वेद पढ़ते हैं और समय जान आकाश से (ऊपर से) फूलों की वर्षा होती है । राजा और रानी (जनक और

सीता-जननी धरणि) वर को देख बहुत प्रेम से पवित्र चरणों को पखारते हैं।

कुँवरि कुँवर कल भांवर देहीं ❋ नयन लाभ सब सादर लेहीं।
राम सीय सिर सिन्दुर देहीं ❋ शोभा कहि न जात विधि केही ॥

कन्या और वर मनोहर भाँवरें (लाजा होम विधि के अन्तर्गत) देते हैं जिसे देख मानो सब लोग नेत्रों का लाभ ले रहे हैं। श्रीराम जब सीता के शिर सिंन्दूर देते हैं (सुमङ्गली करण विधि के अन्तर्गत) तो वह शोभा किसी प्रकार कही नहीं जाती। (यों श्रीराम सीता का विवाह पूर्ण युवावस्था में स्वयंवर प्रथा से पूर्ण वैदिक रीत्यनुसार सानन्द सम्पन्न हुआ)

छन्द—बैठे वरासन राम जानकि मुदित मन दशरथ भये।
तनु पुलकि पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नये ॥
भरि भुवन रहा उछाह राम विवाह भा सबही कहा।
केहि भाँति वरणि सिरात रसना एक मुख मङ्गल महा ॥

(विवाहोपरान्त) श्रीराम और सीता को श्रेष्ठ आसनों पर बैठे देख महाराज दशरथ प्रसन्न हुए और अपने सत्कर्म रूपी कल्प वृक्ष में नये फल देखकर पुलकित हो उठे। सभी ओर उत्साह भर गया, सबने कहा कि श्रीराम का विवाह हुआ। जीभ इसे कैसे बखान करती जब कि मुख एक था और मङ्गल-प्रसङ्ग इतना बड़ा था।

तब जनक पाइ वशिष्ठ आयसु ब्याह काज सँवारि कै।
माण्डवी श्रुतिकीरति उरमिला कुँवरि लईं हँकारि कै ॥
कुशकेतु कन्या प्रथम जो गुण शील सुख शोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याह नृप भरतहि दई ॥

फिर वशिष्ठ की आज्ञा पा राजा जनक ने विवाह की सज्जा बनाकर माण्डवी, श्रुतिकीर्ति एवं उर्मिला इन कुमारियों को बुला लिया और अपने भाई कुशकेतु की पहली कन्या (माण्डवी) जो कि गुण, शील, सुख और शोभा से युक्त थी, स्नेह पूर्ण रीति से भरत से ब्याह दी।

जानकी लघु भगिनी सकल सुन्दर शिरोमणि जानि कै।
सो जनक दीन्ही ब्याहि लषनहि सकल विधि सनमानि कै ॥

जेहि नाम श्रुति कीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुण आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूपशील उजागरी॥

सीताजी की छोटी बहिन (उर्मिला) को सब सुन्दरियों में शिरोमणि जान उसे जनक ने सब प्रकार से आदर करके लक्ष्मण से ब्याह दिया तथा सुन्दर नेत्रों और मुख वाली, सब गुणों में श्रेष्ठ, रूप और शील में पवित्र जिसका श्रुतिकीर्ति नाम है, उसे राजा ने शत्रुघ्न से ब्याह दिया। *

दोहा– मुदित अवधपति सकल सुत बधुन समेत निहारि।
जनु पाये महिपाल मणि, क्रियन सहित फलचारि॥

महाराज दशरथ सब पुत्रों को वधुओं सहित देख अति प्रसन्न हुए मानों क्रियाओं (श्रद्धा, तपस्या, सेवा और साधना) सहित चारों फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) पा गये हों।

---

* प्रति वर्ष 'रामलीला' के नाम से श्रीराम चरित का नाटक भारत के प्रायः सभी बड़े नगरों में किया जाता है। इस पर हम अपने विचार समीक्षा खण्ड में देंगे। यहां सिर्फ इतना कहना है कि श्रीराम विवाह के इस पवित्र वेदोक्त संस्कार के स्थान पर उसे जिस रूप में प्रस्तुत किया जाता है, विशेषतः 'राम बरात' में स्वाँग आदि निकालकर उसे जो घिनौना रूप दिया जाता है, वह तो बिलकुल ही निन्दनीय और त्याज्य है।

॥ओ३म्॥

अयोध्या काण्ड

जबते राम ब्याहि घर आये * नित नव मङ्गल मोद बधाये।
भुवन चारिदश भूधर भारी * सुकृत मेघ वर्षहिं सुख वारी॥

जब से श्री रामचन्द्र बिवाह करके घर आये तब से अयोध्या में नित्य नये मङ्गल, आनन्द और बधाये होते हैं। चौदहों लोक रूपी पर्वतों में पुण्य (सत्कर्म) रूपी बादल सुख रूपी जल वर्षाते हैं।

मुदित मातु सब सखी सहेली * फलित बिलोकि मनोरथ बेली।
राम रूप गुण सील सुभाऊ * प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ॥

सखी सहेलियों सहित सब मातायें अपने मनोरथों की बेलों को फलित हुई देख प्रसन्न रहती हैं। श्री राम के रूप, शील और स्वभाव के विषय में सुन और देखकर राजा भी बहुत प्रसन्न रहते हैं।

एक समय सब सहित समाजा * राज सभा रघुराज विराजा।
राउ सुभाउ मुकर कर लीन्हा * वदन विलोकि मुकुट सम कीन्हा॥

एक समय जब मन्त्रीगण और सेनापतियों सहित राज सभा में महाराज दशरथ विराजमान थे, राजा ने सहज स्वभाव दर्पण हाथ में ले लिया और मुख देखकर मुकुट बराबर किया।

श्रवण समीप भये सित केशा * मनहुं जरठपन अस उपदेशा।
नृप युवराज राम कहुं देहू * जीवन जन्म लाहु जग लेहू॥

फिर कानों के पास श्वेत बाल देखे मानो बुढ़ापा राजा के कानों में उपदेश करता है कि हे राजन्! अब युवराज पद राम को दीजिये और संसार में जीने और जन्म लेने का फल लीजिये।

दोहा—यह विचार उर आनि नृप सुदिन सुअवसर पाइ।
प्रेम पुलकि तनु मुदित मन गुरुहिं सुनायो जाइ॥

यह विचार हृदय में आने के पश्चात् एक दिन सुअवसर देखकर प्रसन्न और प्रेम पुलकित शरीर से राजा ने गुरु वशिष्ठ के पास जाकर निवेदन किया।

सब विधि गुरु प्रसन्न मन जानी * बोले राउ बिहँसि मृदु बानी।
नाथ राम करिये युवराजू * कहिय कृपा करि करिय समाजू॥

सब प्रकार गुरु को प्रसन्न मन जानकर राजा ने हँसकर कोमल वाणी में कहा—हे नाथ ! अब रामचन्द्र को युवराज कीजिये। कृपा कर आज्ञा दें तो इसकी अनुमति के लिये समाज (सभा) को भी बुला लिया जाय।

मोहिं अछत यह होइ उछाहू * लहहिं लोग सब लोचन लाहू।
सुनि मुनि दशरथ वचन सुहाये * मङ्गल मोद मूल मन भाये॥

मेरे जीते यह उत्सव भी हो जाय और सब लोग नेत्रों का लाभ उठालें। राजा के ऐसे सुन्दर बचन कल्याण और आनन्द के मूल होने से वशिष्ठजी को बहुत अच्छे लगे। फिर वे बोले:—

दोहा— वेगि विलम्ब न करिय नृप, साजिय सकल समाज।
सुदिन सुमङ्गल तबहिं जब, राम होहिं जुवराज॥

हे राजन् ! यह कार्य शीघ्र कीजिये, बिलम्ब न हो, जाकर सभा का आयोजन कीजिये। शुभदिन और मङ्गल तो तभी है जब राम युवराज हों। (शुभ कार्य के लिये किसी विशेष मुहूर्त की प्रतीक्षा अपेक्षित नहीं है। "शुभ कार्य जितना शीघ्र हो है नित्य उतना ही भला।"

मुदित महीपति मन्दिर आये * सेवक सचिव सुमन्त बुलाये।
प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू * रामहिं राज देहु युवराजू॥

राजा प्रसन्न हो राजभवन में आये और अपने सेवकों तथा मन्त्रिवर सुमन्त आदि मन्त्रियों को बुलाया और कहने लगे—आज मुझे प्रसन्न होकर गुरुजी ने कहा है कि हे राजन् ! अब राम को युवराज पद दीजिये।

जो पाँचहिं मत लागहिं नीका * करहु हरषि हिय रामहिं टीका।
मन्त्री मुदित सुनत नृप बानी * अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥

यदि यह मत आप सब पञ्चों (मन्त्रि मण्डल) को अच्छा लगे तो आप लोग प्रसन्न होकर रामचन्द्र का तिलक कीजिये। राजा की वाणी सुनकर सब मन्त्रीगण ऐसे प्रसन्न हुए मानो उनके मनोरथ रूपी वृक्ष में जल सींच दिया गया हो।

जग मङ्गल भल काज विचारा ※ वेगिहिं नाथ न लाइय वारा।
नृपहिं मोद सुनि सचिव सुभाखा ※ बढ़त विटप जनु लही सुशाखा॥

हे राजन्! आपका यह उत्तम विचार संसार का कल्याण करने वाला है, आप इसे शीघ्र कीजिये, इसमें देर नहीं कीजिये। राजा मन्त्रिमण्डल की सुन्दर वाणी (पूर्ण सहमति) सुनकर ऐसे प्रसन्न हुए मानो बढ़ते हुए वृक्ष ने शाखा पाई हों।

दोहा— राम राज अभिषेक सुनि हिय हरषे नरनारि।
लगे सुमङ्गल सजन सब विधि अनुकूल विचारि॥

राम का राजतिलक सुन सब स्त्री-पुरुष प्रसन्न हुए और विधाता को अनुकूल जान मंगल मनाने लगे।

तब नरनाह वशिष्ठ पठाये ※ राम धाम सिख देन पठाये।
गुरु आगमन सुनत रघुनाथा ※ द्वार आय पद नायउ माथा॥

तब राजा नें वशिष्ठ मुनि को बुलाया और राम के भवन में शिक्षा करने को भेजा। रामचन्द्र गुरु का आना सुनते ही द्वार पर आये और उनके चरणों में शिर नवाया।*

[श्रीराम को राजा और प्रजा का विचार बताकर वे बोले—]

राम करहु सब संयम आजू ※ जेहि विधि कुशल निबाहै काजू।
गुरु सिख देइ राउ पहँ गयऊ ※ राम हृदय अति विसमय भयऊ॥

*वैदिक युग में कुल-गुरु पारिवारिक कल्याण योजना के केन्द्र विन्दु होते थे। गुरु देव के चरणों में शिक्षा पाने एवं मार्ग दर्शन प्राप्ति के लिये परिवारी जन तो जाते ही थे। पर आवश्यकतानुसार सर्वथा निरभिमान भाव से गुरुदेव भी किसी शुभ विचार को सुझाने के लिये स्वयं पहुंच जाते थे।

हे राम ! इसलिये तुम आत्म-संयम करो जिससे विधाता इस कार्य को कुशलता से निभादे । यह कहकर वशिष्ठ तो राजा के पास चले गये और राम के हृदय में यह आश्चर्य उत्पन्न हुआ—

जनमे एक संग सब भाई ❋ भोजन शयन केलि लरिकाई ।
कर्णवेध उपवीत विवाहा ❋ संग संग सब भये उछाहा ।।

—कि हम चारों भाई एक ही साथ जन्मे और बचपन में साथ ही भोजन किया और साथ ही खेले । हमारे कर्णवेध, यज्ञोपवीत और विवाह आदि संस्कार भी साथ ही हुए ।

विमल वंश यह अनुचित एका ❋ अनुज विहाय बड़ेहिं अभिषेका ।

इस प्रकार इस निर्मल वंश में यह एक अनुचित बात हो रही है कि छोटे भाइयों को छोड़कर बड़े को ही अभिषेक होता है ।

दोहा— तेहि अवसर आये लषण, मगन प्रेम आनंद ।
सनमाने प्रिय वचन कहि, रविकुल कैरव चंद ।।

उसी समय लक्ष्मण यह मङ्गल सुन कर प्रेम और आनन्द में मग्न हो, राम के पास आये । राम ने प्रिय वचनों से उनका सम्मान किया ।

वाजहिं बाजन विविध विधाना ❋ पुर प्रमोद नहिं जाइ बखाना ।
भरत आगमन सकल मनावहिं ❋ आवहिं वेगि नयन फल पावहिं ।।

अनेक प्रकार के बाजे बजते हैं । नगर वासियों का आनन्द कुछ कहा नहीं जाता । भरत शीघ्र आजावें और इस महोत्सव को देखकर नेत्रों को सफल करें, ऐसा सभी (राजा दशरथ, गुरु वशिष्ठ, श्रीराम और प्रजाजन) हृदय से चाह रहे हैं और ईश्वर से विनय कर रहे हैं ।*

देखि मन्थरा नगर बनावा ❋ मङ्गल मंजुल बाज बधावा ।
पूछसि लोगन्ह काह उछाहू ❋ राम तिलक सुनि भा उर दाहू ।।

---

*'भरत आगमन सकल मनावहिं' इन शब्दों से स्पष्ट है कि भरत इस समय तक लौटने ही वाले थे, किन्तु किसी कारण विशेष से वे आ नहीं सके । विशेष विचार समीक्षाखण्ड में पढ़ें ।

[इसी समय कैकेयी की दासी मन्थरा वहाँ आ पहुँची।] मन्थरा ने नगर में सुन्दर मङ्गल और बधावा आदि बनाव (सजावट) देखकर लोगों से पूछा कि क्या उत्सव है? उत्तर में यह सुनकर के राम का राजतिलक होने वाला है उसके हृदय में बड़ा ही दाह (जलन) हुआ।

करै विचार कुबुद्धि कुजाती ※ होइ अकाज कौन विधि राती।
देखि लाग मधु कुटिल किराती ※ जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती॥

वह बड़ी ही दुर्बुद्धि वाली और कुजातिन थी (अच्छे वंश की नहीं थी) सोचने लगी कि आज को रात्रि में ही कैसे अकाज हो (काम बिगड़े) जैसे कोई भिल्लिनी वृक्ष पर शहद लगा देखकर दाँव तके कि इसको कैसे लूँ ?

विशेष—मनुष्य का ईर्ष्यालु स्वभाव कितना अनर्थ कर सकता है, यह मन्थरा के उदाहरण से देखें।

भरत मातु पहँ गइ बिलखानी ※ का अनमनि हँसि हँसि कह रानी।
उतर न देइ सो लेइ उसासू ※ नारि चरित करि ढारति आँसू॥

फिर भरत माता (कैकेयी) के पास रोती हुई पहुंची। रानी ने हँस-हँस कर पूछा कि अनमनी क्यों है? उत्तर न देकर वह लम्बी उसासें लेने और 'स्त्री चरित्र' कर आँसू बहाने लगी।

दोहा— सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल।
भरत लषन रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उर साल॥

इस पर रानी डर गई और बोली कि तू कहती क्यों नहीं है? राम राजा, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुशल से तो हैं? रानी के ऐसे बचन सुनकर कुबरी मन्थरा के हृदय में (और भी) दुःख हुआ।

रामहिं छाँड़ि कुशल केहि आजू ※ जाहि नरेश देत युवराजू।
भा कौशल्यहि विधि अति दाहिन※देखत गर्व रहत उर नाहिन॥

(हे रानी!) राम को छोड़ आज किसकी कुशल है, जिन्हें राजा युवराज पद देरहे हैं। आज कौशल्या के विधाता सब भाँति अनुकूल है, जिसे देख मेरा स्वाभिमान जाता रहा है।

पूत विदेश न शोच तुम्हारे ※ जानति हौ वश नाह हमारे।
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई ※ लखहु न भूप कपट चतुराई ॥

पुत्र विदेश में पड़ा है, पर तुम्हें कोई शोच नहीं। समझती हो कि राजा हमारे वश में है। तुम्हें नींद भली है या सेज तभी तो राजा की कपट पूर्ण चतुराई नहीं दीख रहो।

सुनि प्रिय वचन मलिन मनजानी ※ झखी रानि अरहू अरगानी।
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी ※ तौ धरि जीह कढ़ावहुँ तोरी ॥

'राम का राज्याभिषेक' इन प्रिय शब्दों को सुनकर और दासी को मलिन मन जान रानी क्रुद्ध हो कहने लगी—हे घरफोरी ! फिर कभी ऐसा कहने का दुस्साहस किया तो तेरी जीभ खिंचवा लूँगी। (कुबड़ी शान्त रही।)

दोहा— कानी खोरी कूबड़ी कुटिल कुचाली जानि।
तेहि विशेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥

कैकेयी ने क्रोध में एक बार तो उसे कानी, लंगड़ी, कुबड़ी, दुष्ट हृदया, तथा दुष्ट आचरणवाली कहा, फिर शीघ्र ही 'दासी' कहकर मुस्करा दी। और कहा—

विशेष—कैकेयी के स्वभाव में गम्भीरता नहीं थी। वह 'क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा' की वृत्ति वाली थी। यहाँ यह स्पष्ट है।

प्रियवादिनि सिख दीन्हेउ तोहीं ※ सपनेहुं तो पर कोह न मोहीं।
सुदिन सुमङ्गलदायक सोई ※ तोर कहा फुर जादिन होई ॥

मैंने तुझे शिक्षा दी है कि ऐसा न कहना चाहिये। इसे क्रोध न समझ। मुझे क्रोध तो तेरे पर स्वप्न में भी नहीं है। हे प्रियवादिनि ! वह मङ्गल-दायक शुभ दिन होगा, जब तेरा कहना सच होगा।

जेंठ स्वामि सेवक लघु भाई ※ यह दिनकर कुल रीति सुहाई।
रामतिलक जो साँचेहु काली ※ माँगु देहुँ मनभावत आली ॥

बड़ा भाई, स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है ऐसी सूर्यवंश* की सुन्दर रीति चली आती है। प्रिय सखी! यदि सच ही कल राम को राज्य-तिलक हो तो तू अपना इच्छित पुरस्कार (इनाम) माँग।

कौशल्या सम सब महतारी ❀ रामहिं सहज स्वभाव पियारी।
मोपर करहिं सनेह विशेखी ❀ मैं करि प्रीति परीक्षा देखी ॥

[और जहाँ तक राम का सम्बन्ध है] राम को सब मातायें सहज स्वभाव समान रूप से प्रिय हैं। हाँ, मेरे प्रति राम की विशेष भक्ति है। मैंने परीक्षा करके देख लिया है। (अहा ! राम के पवित्र चरित्र की यह कैसी अनूठी, कैसी मनोरम झाँकी है ! ! और भी देखिये—)

दोहा—भरत शपथ तोहिं सत्य कहु, परिहरि कपट दुराव।
हर्ष समय विस्मय करसि, कारण मोहि सुनाव ॥

प्रिय मन्थरा ! तुझे भरत की सौगन्द है। कपट छोड़कर सच-सच बता कि हर्ष के समय में तेरे इस शोच का क्या कारण है ?

एकहि बार आश सब पूजी ❀ अब कछु कहब जीह करि दूजी।
फोरे योग कपार हमारा ❀ भलेउ कहत दुख रौरेउ लागा ॥

[कुटिल मन्थरा ने बात बनती देख बड़ी चतुराई से कहा— । महारानी ! क्षमा करें, मेरी तो आशायें एक बार में ही पूर्ण होग, अब तो

---

*सूर्यवंश ही नहीं यह वैदिक (भारतीय) सस्कृति एवं धर्म की सनातन परम्परा है। वैदिक संस्कृति में बड़े भाई को पिता तुल्य कहा गया है :—

"पिताहि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यता जानतः" अर्थात् धर्म को जानने वाले आर्य के निकट बड़ा भाई पिता के समान होता है। वैदिक धर्म एवं संस्कृति की यही विशेषता है जिसमें कविवर इकबाल के इस प्रश्न का उत्तर निहित है—

क्या बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारा ॥

यही वह बात है, वह विशेषता है। खेद है कि इस तथाकथित स्वतन्त्रता के इस खण्डकाल में हमारी यह विशेषता मिट रही है। रामभक्त ध्यान दें।

दूसरी जीभ की व्यवस्था करके ही कुछ कह सकूँगी। मेरा तो यह अभागा कपार फोड़ने ही योग्य है क्योंकि भलाई करते भी आपको असह्य दुःख लगा।

हमहुं कहब अब ठकुर सुहाती ॐ नाहिन मौन रहब दिन राती।
कोउ नृप होउ हमैं का हानी ॐ चेरी छांड़ि होव नहिं रानी॥

(आपको हित की बात प्रिय नहीं लगती। अतः—) मैं भी अब या तो ठकुर सुहाती ही कहूँगी या हर समय चुप रहूँगी। फिर कोई भी राजा क्यों न हो, हमें क्या हानि? हमें तो दासी की दासी ही रहना है, कोई रानी तो बना नहीं देगा?

जारै योग स्वभाव हमारा ॐ अनभल देखि न जाय तुम्हारा।
ताते कछुक बात अनुसारी ॐ क्षमव देवि बड़ि चूक हमारी॥

हमारा स्वभाव तो जलाने योग्य ही है। क्या करें हमसे तुम्हारा अनहित नहीं देखा जाता। इसीसे कुछ बात निकल गई। सच में अपराध तो बड़ा है, परन्तु हे देवि! कृपा करके क्षमा कीजिये।

सादर पुनि पुनि पूछत ओही ॐ शबरी गान मृगी जनु मोही।
तस मति फिरी अहै जसि भावी ॐ रहसी चेरि घात भलि फावी।

[मन्थरा की यह व्यङ्गोक्ति काम कर गई] रानी उसके छल से ऐसे मोही जैसे भीलनी के गान से हरिणी। ठीक है, जैसी होनी थी कैकेयी की बुद्धि वैसी ही फिर गई। मन्थरा का छिपा दाँव खूब फबा (अच्छी प्रकार लग गया) कैकेयी अब बार-बार आदर सहित पूछने लगी। (कुसङ्गति का अन्ततः यही दुष्परिणाम होता है।)

दोहा—तुमहिं न शोच सुहाग बल, निजवश जानहु राउ।
मन मलीन मुख मोठ नृप, राउर सरल सुभाउ॥

मन्थरा बड़ी चतुराई से कहती है—तुमको अपने सुहाग के बल से कुछ भी आगे पीछे का विचार नहीं है, राजा का तुम अपने वश में समझती हो। पर तुम नहीं जानतीं तुम्हारा स्वभाव भोला है। (ध्यान रखो) राजा मुख से जितने मीठे हैं, मन से उतने ही मलिन हैं।

राजहिं तुम पर प्रीति विशेखी ❀ सवति स्वभाव सकै नहिं देखी।
रचि प्रपञ्च भूपहिं अपनाई ❀ राम तिलक हित लगन धराई ॥

राजा की तुम पर जो विशेष प्रीति है उसे सौति स्वभाववश नहीं देख सकी। इसलिये यह प्रपंच रचकर राजा को अनुकूल कर के राम के तिलक का आयोजन किया है।

भावी वश प्रतीति उर आई ❀ पूंछि रानि निज शपथ दिवाई।
का पूंछहु तुम अजहुँ न जाना ❀ निज हित अनहित पशु पहिचाना ॥

होनहार के वश रानी को विश्वास आगया, अपनी सौगन्द दिलाकर वह पूछने लगी कि तुमने कैसे जाना। मन्थरा ने कहा—पूछती क्या हो, क्या तुमने अब भी नहीं जाना ? अपना शत्रु-मित्र तो पशु भी पहिचान लेते हैं।

रेखा खैंचि कहौं बल भाखी ❀ भामिनि भयउ दूध की माखी।
जो सुत सहित करहु सेवकाई ❀ तौ घर रहहु न आन उपाई ॥

मैं तुमसे रेखा खींचकर बल से कहती हूँ कि हे रानी ! तुम दूध की मक्खी की तरह निकाल दी जाओगी। यदि भरत सहित उनकी सेवा करोगी तो ही घर में रह सकोगी, तब कोई और चारा न चलेगा।

नैहर जन्म भरब बरु जाई ❀ जियत न करब सविति सेवकाई।
अरिवश दैव जियावत जाही ❀ मरणनीक तेहि जीवन चाही ॥

(यह सुनते ही कैकेयी का अहं फुंकार उठा। वह बोली—) मुझे अपना शेष जीवन मायके में भले ही बिताना पड़े पर जीतेजी सौति की गुलामी नहीं करूँगी। शत्रु के अधीन ईश्वर जिसे जिलाता है, उस जीने से तो मरना भला है।

दीन वचन कह बहुविधि रानी ❀ सुनि कुबरा तिय माया ठानी।
अस कस कहहु मानि मन ऊना ❀ सुख सुहाग तुम कहँ दिन दूना ॥

जब रानी ने ऐसे दीनता के वचन कहे तो मन्थरा ने स्त्री-सुलभ कुटिलता का जाल रचा और कहा—हे रानी ! आप मन को छोटा करके ऐसा क्यों कहती हैं। तुमको तो सुख सौभाग्य दिन-दिन दूना ही होगा। (यह दुर्भाग्य

तो तुम्हारे साथ कुचाल चलने वाले राजा और कौशल्या का भाग है। आवश्यकता सिर्फ इतनी है कि तुम अपने स्वरूप को समझो और दृढ़ता से काम लो । यों कैकेयी को सब प्रकार तैयार करके मन्थरा कहने लगी—]

दुइ वरदान भूप सन थाती ❀ माँगहु आज जुड़ावहु छाती।
सुतहिं राज रामहिं वनवासू ❀ देहु लेहु सब सहित हुलासी ॥

जो दो वरदान तुम्हारे राजा के पास धरोहर रूप में हैं, उन्हें आज माँग कर छाती ठण्ठी करो। एक वर से भरत को राज और दूसरे से राम को वनवास देकर सौति की सब प्रसन्नता ले लो।

दोहा— बड़ कुघात करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काज सँवारेहु सजग ह्वै, सहसा जनि पतियाहु।

महापापिनी मन्थरा ऐसी बड़ी कुघात करके बोली—अभी कोपभवन में चली जाओ। देखो, कार्य को बड़ी सावधानी से सँभालना, एकाएक, विश्वास न कर लेना। (तदनुसार कैकेयी कोपभवन में जाकर सो रही)

दोहा— साँझ समय सानन्द नृप, गयउ केकयी गेह।
गमन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥

उधर सन्ध्या समय राजा कैकेयी के भवन में पहुँचे, मानो निठुरता के पास स्नेह देह धार कर आया हो।

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ ❀ भयवश आगे पैर न पाऊ।
सुरपति बसै बाहुबल जाके ❀ नरपति रहहिं सकल रुख ताके ॥

'रानी कोपभवन में है' ऐसा सुनते ही राजा सकुच गये। डर के मारे आगे पैर नहीं पड़ता। इन्द्र जिसकी भुजाओं के बल से राज्य करता है तथा समस्त राजा जिसका रुख (Mood) देखा करते हैं,

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई ❀ देखउ काम प्रताप बड़ाई।
शूल कुलिश असि अँगवनहारे ❀ ते रतिनाथ सुमन शर मारे ॥

—वही राजा दशरथ स्त्री का रिसाना सुनते ही सूख गये। काम के प्रताप की विशेषता देखो ! (सत्य है) जो नरवीर त्रिशूल, वज्र और खड्ग का घाव सहने वाले हैं उन्हें भी कामदेव ने फूलों ही के बाण से मार लिया है।

सभय नरेश प्रिया पहँ गयऊ ※ देखि दशा दुःख दारुण भयऊ।
जाइ निकट नृप कह मृदु बानी ※ प्राण प्रिया केहि हेतु रिसानी ॥

डरते-डरते राजा रानी के पास गया और उसकी दशा देखकर अत्यन्त दुखी हुआ। समीप जाकर राजा ने कोमल स्वर में पूछा—'प्राण प्रिये ! तू क्यों क्रोधित है ?'

अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा ※ केहि द्वय शिर केहि यम चह लीन्हा।
कहु केहि रङ्कहि करौं नरेशू ※ कहु केहि नपहिं निकारौं देशू ॥

हे प्यारी ! तेरा अनहित किसने किया है, किसके दो शिर किये जायें, किसको यम (काल) से प्यार है ? बता, किस भिखारी को राजा करदूँ और किस राजा को देश से निकाल दूं ?

बिहँसि मांगु मनभावति बाता ※ भूषण सजहु मनोहर गाता।
कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी ※ बोली बिहँसि नयन मुख मोरी ॥

अतः उठो, हंसकर मनोहर अंगों में आभूषण पहिनो और मनभावती वस्तु माँगो। इस पर कैकेयी (नारि चरित्र करती हुई) कपट पूर्ण स्नेह बढ़ाकर नेत्र और मुख द्वारा हाव-भाव दिखाती हुई हंसकर बोली—

दो०— माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहूं देहु न लेहु।
देन कहेउ बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु ॥

प्रियतम ! 'माँगो, माँगो' तो तुम सदा कहा करते हो परन्तु देते लेते कुछ नहीं, मुझे दो वरदान देने कहे थे, उनके पाने में भी सन्देह है।

जानेउँ मर्म राउ हँसि कहई ※ तुमहिं कोहाव परम प्रिय अहई।
थाती राखि न माँगेउ काऊ ※ बिसरि गयौ मोहिं भोर सुभाऊ ।

राजा ने हँसकर कहा—मैंने रहस्य जान लिया, तुम्हें मनावन अधिक प्रिय है। धरोहर रखकर कभी माँगी नहीं, भोरे स्वभाव से मैं भी भूल गया।

(कैकेयी की युद्ध में सहायता, जिससे जिससे उसे दो वर मिले थे)

झूठहि हमहि दोष जनि देहू ※ दुइ के चारि मांगि किन लेहू।
रघुकुल रीति सदा चलि आई ※ प्राण जाइ बरु वचन न जाई॥

प्रिये! झूठ हो हमें दोष न दो, दो के बदले अब चार माँगलो। रघुवंश की यह सनातन रीति है—प्राण भले ही चले जावें, पर वचन पूरा हो।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा ※ गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाई ※ वेद पुराण विदित मुनि गाई॥

अनेक पापों का समूह भी एक असत्य से कम है, जैसे करोड़ों घुँघचिले पहाड़ के बराबर नहीं होतीं। सत्य ही सब (पुण्यों सत्कर्मों) की सुहावनी जड़ है। यह वेदादि सत्शास्त्र, पुराण (इतिहास) से प्रकट है मुनियों ने भी कहा है।

तेहि पर राम शपथ करि आई ※ सुकृत सनेह अवधि रघुराई।
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली ※ कुमत विहंग कुलह जनु खोली॥

इस पर भी राम की शपथ है, जो मेरे सब पुण्य और स्नेह की अवधि हैं। बात को यों इतना दृढ़ करके दुर्बुद्धि कैकेयी ऐसे हँसकर बोली मानो दुष्ट पक्षी के पर खोल दिये गये हों।

सुनहु प्राणपति भावत जी का * देहु एक वर भरतहिं टीका।
माँगहु दूसर वर कर जोरे * पुरवहु नाथ मनोरथ मेरे ।।

हे प्राण पति ! मेरे मन को रुचने वाला सुनिये ! एक वर से तो भरत को राजतिलक दीजिये और दूसरा वर जिसे मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ उसे देकर हे नाथ ! मेरा मनोरथ पूरा कीजिये।

तापस वेष विशेष उदासी * चौदह वर्ष राम वनवासी।
सुनि सो वचन भूप उर शोकू * शशि कर छुवत विकल जिमि कोकू ।।

(वह यह है कि--)तपस्वी के वेश में उदासी भाव से चौदह वर्ष तक राम वन में रहें। यह बात सुनते ही राजा के मन में ऐसा दुःख हुआ जैसे चन्द्रमा की किरणों के छूते ही चकवी चकवा व्याकुल हो जाते हैं।

माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन * तनु धरि शोच लागु जनु शोचन।
मोर मनोरथ सुरतरु फूला * फरत हरिणि जनु हतेउ समूला ।।

वे माथे पर हाथ धर आँखें मूँद शोचने लगे। मानो शोच ही शरीर धारकर शोचता है—'कल्पवृक्ष सा मेरा मनोरथ कैसा सुन्दर फूला था परन्तु फलते समय मानो हथिनी ने उसे मूल से उखाड़ दिया।

दोहा– धर्म धुरन्धर धीर धरि, नयन उघारे राउ।
शिर धुनि लीन्ह उसास अति, मारेसि मोहिं कुठाउ ।।

धर्म प्रवीण राजा ने धीरज रख नेत्र खोले। शिर पीटकर लम्बी उसासें लेने लगे कि हाय मुझे इस पापिनी ने कुठौर में मारा।

लखी महीप कराल कठोरा * सत्य कि जीवन लेइहि मोरा।
बोले राउ कठिन करि छाती * बाणी विनय न ताहि सुहाती ।।

राजा ने उसे महा कठोर देखकर समझलिया कि यह या तो मेरा सत्य या

जीवन लेकर रहेगी, फिर भी राजा ने हृदय को कड़ा करके विनय भरे स्वर में कहा—पर उसे कुछ अच्छा नहीं लगा ।

प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती॥प्रीति प्रतीति रीति करि हाँती ।
मोरे भरत राम दुइ आंखी ❋ सत्य कहौं करि शंकर साखी ॥

हे प्रिये ! तू यह कैसे बुरे वचन कहती है ? मेरी प्रीति और विश्वास की रीति भी क्या तूने भुलादी ? मैं शंकर (ईश्वर) को साक्षी करके कहता हूँ कि मुझे भरत और राम अपनी दोनों आँखों की तरह एक जैसे प्रिय हैं ।

अवसि दूत मैं पठउब प्राता ❋ अइहहिं वेगि सुनत दोउ भ्राता ।
सुदिन साधि सब साज सजाई ❋ देहौं भरतहिं राज बड़ाई ॥

प्रातः ही मैं दूतों को भरत के पास अवश्य भेज दूँगा, सुनते ही दोनों भाई शीघ्र आजावेंगे । तब किसी शुभदिन सब समाज साजकर राजपदवी भरत ही को दूँगा ।

दोहा— लोभ न रामहिं राजकर, बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं बड़ छोट विचार करि, करत रहेउँ नृपनीति ॥

राम को राज्य का लोभ नहीं है साथ ही भरत से बहुत ही प्रेम है । मैं ही बड़े-छोटे का विचार कर राजनीति के अनुसार राम को तिलक करता था ।

राम शपथ शत कहौं स्वभाऊ ❋ राम मातु मोहिं कहा न काऊ ।
मैं सब कीन्ह तोहिं बिनु पूछे ❋ ताते परेउ मनोरथ छूँछे ।

मैं राम की सौ सौगन्दें देकर सच्चे स्वभाव से कहता हूँ कि राम की माता ने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा । मैंने यह सब तेरे बिना पूछे किया, इसीसे यह मेरा मनोरथ छूछा (असफल) हुआ ।

रिस परिहरि अब मङ्गल साजू ❋ कछु दिन गये भरत युवराजू ।
एकहि बात मोहिं दुख लागा ❋ वर दूसर असमंजस माँगा ॥

इससे क्रोध छोड़कर अब मंगल साज सजाओ, कुछ दिनों में भरत ही युवराज होंगे, मुझे दुःख तो एक ही बात का है कि दूसरा वर तुमने अनुचित माँगा है ।

समुझि देखु चित प्रिया प्रवीना ※ जीवन राम दरश आधीना।
सुनि मृदु वचन कुमति अति जरई ※ मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥

हे चतुर प्रिये ! अपने चित्त ही में समझ कि मेरा जीवन तो राम के दर्शन ही के अधीन है। राजा के ऐसे कोमल वचन सुनकर वह कुबुद्धिनी और भी जल उठी मानो अग्नि में घी की आहुति पड़ी, वह बोली—

राम साधु तुम साधु सयाने ※ राम मातु हम भल पहिचाने।
जस कौशल्या मोर भल ताका ※ तस फल देहुं उनहिं करि शाका॥

राम साधु हैं, तुम साधु हो और राम की माता साधु हैं—मैंने तीनों साधुओं को अच्छी तरह पहिचाना है। कौशल्या ने जैसा मेरा भला ताका है, वैसा ही फल उनको दूँगी।

दोहा— होत प्रात मुनिवेष धरि, जो न राम वन जाहिं।
मोर मरण राउर अयश, नृप समुझेउ मन माहिं॥

हे राजन् ! यह समझ रखना कि प्रभात होते ही मुनि का वेष धरके यदि राम वन को न जायेंगे तो मेरी मृत्यु और आपका अपयश निश्चित है।

व्याकुल राउ शिथिल सब गाता ※ करिणि कल्पतरु मनहु निपाता।
कण्ठ सूख मुख आव न बानी ※ जिमि पाठीन दीन बिन पानी॥

(यह सुनकर) राजा व्याकुल हो उठे, उनके सब अङ्ग शिथिल होगये मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़ गिराया हो। कण्ठ सूख गया, मुख से बोला नहीं जाता जैसे पाठीन मछली जल बिना दुखी होती है।

तोर कलङ्क मोर पछिताऊ ※ मुयहु न मिटहि न जाइहि काऊ।
अब तोहिं नीक लाग करु सोई ※ लोचन ओट बैठु मुख गोई॥

(अन्त में राजा बोले हे दुष्टा !) तेरा कलंक और मेरा पछितावा मरने पर भी न मिटेगा। अब तुझे जो रुचे वही कर, परन्तु (दयाकर) मुँह छिपाकर मेरी आँखों की ओट जा बैठ।

राम राम रटि विकल भुआला ※ जनु बिनु पङ्ख विहंग विहाला।
हृदय मनाव भोर जनि होई ※ रामहिं जाइ कहै जनि कोई॥

बिना पर के अच्छे पखेरू की भाँति व्याकुल हो राजा राम-राम रटते हैं और हृदय में यह मनाते हैं कि सवेरा न हो ताकि कोई राम को जाकर सब यह न कह सके।

दोहा— द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदय रवि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारण कवन विशेखि॥

(प्रभात तो होना था, हुआ।) राज-भवन पर राजा के सेवकों और मन्त्रियों की भीड़ हो गई। सूर्योदय को देख सभी कहते हैं कि आज किस विशेष कारण से राजा अभी तक नहीं जागे हैं।

गे सुमन्त नृप मन्दिर माहीं * देखि भयानक जात डराहीं।
पूंछत कोउ न उत्तर देई * गे जेहि भवन भूप कँकेई॥

(प्रतीक्षा के पश्चात्) मन्त्रिवर सुमन्त राज भवन में गये। वहाँ का भयावह वातावरण देखकर डर गये। पूछने पर कोई कुछ बताता नहीं। अन्त में वे वहाँ गये जहाँ राजा और कँकेयी थे।

शोक विकल विवरन महि परेऊ * मानहुं कमल मूल परिहरेऊ।
सचिव सभीत सकै नहिं पूछी * बोली अशुभ भरी शुभ छूछी॥

(सुमन्त ने देखा कि) दुःख से व्याकुल एवं तेजहीन हो राजा पृथ्वी पर पड़े हैं, मानो कमल ने अपनी जड़ छोड़ दी हो। मन्त्री डर से कुछ पूछ भी नहीं पा रहा। तब अमंगल से भरी और मंगल से शून्य कँकेयी बोली—

दोहा— परी न राजहिं नींद निशि, हेतु जान जगदीश।
राम राम रटि भोर किय, कहेउ न मर्म महीश॥

रात भर राज को नींद नहीं आई, कारण ईश्वर ही जानता है। राम-राम रटते प्रभात किया है, कुछ रहस्य नहीं बताया।

आनहुँ रामहिं वेगि बुलाई * समाचार तब पूंछेहु आई।
चले सुमन्त राउ रुख जानी * लखी कुचाल कीन्ह कछु रानी॥

अतः राम को शीघ्र बुला लाइये, तब आकर समाचार पूछना। सुमन्त राजा की भी यही इच्छा समझ चल दिये, उन्होंने इतना समझ लिया कि अवश्य रानी की ही कुछ कुचाल है।

समाधान मन करि सबही का * गये जहाँ दिनकर कुल टीका।
राम सुमन्तहिं आवत देखा * आदर कीन्ह पिता सम लेखा॥

द्वार पर खड़ी भीड़ का समाधान करते हुए वे श्रीराम के पास गये। श्री राम ने सुमन्त को आते देखा तो पिता के समान समझ उनका आदर किया।

निरखि वदन कहि भूप रजाई * रघुकुल दीपहिं चलेउ लिवाई।
राम कुभाँति सचिव संग जाहीं * देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

सुमन्त ने राम का मुख देख राजा की आज्ञा कही और राम को साथ लिवा ले चले। राम को मन्त्री के साथ (राजा के कारण) उदास जाते देख लोग जहां-तहाँ सन्तप्त हो रहे हैं।

दोहा— जाइ दीख रघुवंश मणि, नृपतिहिं निपट कुसाज।
सहमि परेउ लखि सिंहनिहिं, मनहुँ वृद्ध गजराज॥

श्रीराम ने राजा को बड़ी ही दुरवस्था में पाया, मानो सिंहनी को देखकर हाथियों का बूढ़ा राजा (वेहाल) पड़ा है।

करुणामय रघुनाथ सुभाऊ * प्रथम दीख दुख सुना न काऊ।
तदपि धीर धरि समय विचारी * पूछा मधुर वचन महतारी॥

राम का स्वभाव ही दयावान् है, फिर उन्होंने पहिला दुःख यही देखा है, कभी सुना भी न था। तो भी समय को देखकर धीरज धर मीठे वचनों से माता से पूछा—

मोहि कहु मातु तात दुख कारण * करिय यतन जेहि होइ निवारण।
सुनहु राम सब कारण येहू * राजहिं तुम पर बहुत सनेहू॥

हे मातः! पिता के दुःख का कारण मुझे बताइये जिस उपाय से वह दूर हो

सो किया जावे । तब कैकेयी बोली—राम ! मुख्य कारण यह है कि राजा का तुम पर विशेष स्नेह है ।

देन कहे मोहिं दुइ वरदाना ❋ माँगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना ।
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू ❋ छाँड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू ॥

मुझे राजा ने दो वरदान देने कहे थे, जो मुझे अच्छे लगे मैंने माँग लिये । (प्रथम से भरत को राज्य और दूसरे से तुम्हारे लिये १४ वर्ष का वनवास) इन्हें सुनकर राजा को बड़ा शोच हो गया है, वे तुम्हारे संकोच को छोड़ नहीं सकते ।

दोहा— सुत सनेह इत वचन उत, सङ्कट परेउ नरेश ।
सकहु तो आयसु धरहु शिर, मेटहु कठिन कलेश ॥

एक ओर पुत्र-प्रेम और दूसरी ओर सत्य वचन का निर्वाह—इस संकट में राजा पड़े हैं, जो तुमसे हो सके तो उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनका असह्य कष्ट दूर करो ।

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी ❋ जो पितु मातु चरण अनुरागी ।
तनय मातु पितु सेवन हारा ❋ दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

(तब बड़े विनीत स्वर में राम बोले—) मातः सुनिये ! वही पुत्र बड़ा भाग्य शाली है जो माता-पिता के चरणों में प्रीति करता है । माता-पिता की सेवा करने वाला पुत्र तो सब संसार में भी दुर्लभ है ।

यहाँ महर्षि वाल्मीकि शब्दों में राम कहते हैं—

अहोधिङ् नार्हसे देवि वक्तु मा कीदृश वचः,अहंहि वचनाद्राज्ञा पतेयमपि पावके ।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण चहितेन च ॥
(अ० का० सर्ग १८। श्लो० २८-२९)

"हे मातः ! मुझे धिक्कार है, जो आप ऐसे संकोच और सन्देह युक्त वचन कहती हैं । मैं राजा (पिता) की आज्ञा से आग में भी कूदने को तैयार हूँ । मैं हलाहल विष पीने और जीवन समाप्त कर देने वाले समुन्द्र में डूबने को तैयार हूँ । चाहे जो हो पिताजी मुझे जो आज्ञा करेंगे,उसे मैं जरूर करूँगा । (राज्य त्याग और वन गमन की तो बात ही क्या है ? राम तुम सचमुच धन्य हो ।

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू ※ सबहिं भाँति विधि सम्मुख आजू ।
जो न जाहुँ वन ऐसेहु काजा ※ प्रथम गणिय मोहिं मूढ़ समाजा ।।

मेरे प्राण प्यारे भाई भरत राज्य पावेंगे—सत्य ही ईश्वर आज मेरे सब प्रकार से अनुकूल है । ऐसे मंगल कार्य के लिये भी यदि मैं वन न जाऊँ तो मुझे मूर्ख समाज में प्रथम गिनना चाहिए ।

दोहा— गइ मूर्छा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह ।
सचिव राम आगमन कहि, विनय समय सम कीन्ह ।।

इतने में राजा मूर्च्छा से जागे तो फिर राम-राम कहते हुए करवट ली । सुमन्त ने तब राम का आना कहकर समयानुसार विनती की ।

जब नृप अकनि राम पग धारे ※ धरि धीरज तब नयन उघारे ।
सचिब सँभारि राउ बैठारे ※ चरण परत नृप राम निहारे ।।

राजा ने राम का आना सुना तो धीरज धर नेत्र खोले । सुमन्त ने सँभालकर राजा को बैठाया, तभी राजा ने राम को चरण स्पर्श करते देखा ।

लिये सनेह विकल उर लाई ※ गइ मणि फणिक बहुरि जनु पाई ।
रामहिं चितै रहे नरनाहू ※ चला विलोचन वारि प्रवाहू ।।

प्रेम-विह्वल राजा ने राम को हृदय से लगा लिया, मानो सर्प ने खोई मणि फिर से पाली हो । राजा एकटक राम को देखते ही रहे, उनके नेत्रों से जल की धारा बह चली ।

रघुपति पितहिं प्रेमवश जाना ※ पुनि कछु कहेउ मातु अनुमाना ।
अति लघु बात लागि दुख पावा※काहे न कहि मोहिं प्रथम जनावा ।।

श्रीराम पिता को प्रेम के वश समझ और फिर माता के कथन का अनुमान करते हुए सविनय बोले—हे पितः ! आपने मुझे पहले ही क्यों नहीं बता दिया, इतनी छोटी सी बात के लिये आपने इतना दुःख क्यों पाया ?

दोहा— मंगल समय सनेह वश, शोच परिहरिय तात ।
आयसु देइय हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु गात ।।

हे तात ! मंगल के समय स्नेह से उत्पन्न शोच को छोड़िये, प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दीजिये । यह कहकर राम पुलंकित हो उठे ।

धन्य जन्म जगती तल तासू ※ पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू ।
चारि पदारथ करतल ताके ※ प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके ॥

हे पितः ! पृथ्वी-तल में उसी पुत्र का जन्म सफल है जिसके चारु चरित सुन पिता को आनन्द हो । चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ काम, मोक्ष) मानो उसके हाथ में है जिसे माता-पिता प्राण समान प्रिय हैं ।

विशेष—मानव जीवन की सफलता का कैसा सुन्दर वेदोक्त दिव्य सूत्र यहाँ दिया है ।

आयसु पालि जन्म फल पाई ※ ऐहौं वेगहि होइ रजाई ।
विदा मातु सन आवहु माँगी ※ चलिहौं वनहिं बहुरि पग लागी ॥

आपकी आज्ञा को पूर्णकर तथा इस प्रकार जीवन का फल पाकर मैं शीघ्र ही वन से आऊंगा । अब मैं माता से विदा हो आऊं तो पुनः आपके चरण छूकर वन को जाऊंगा ।

अस कहि राम गमन तब कीन्हा ※ भूप शोक वश उतर न दीन्हा ।
नगर व्यापि गई बात सुतीछी ※ छुवत चढ़ै जिमि सब तन बीछी ॥

यह कहकर राम माता के पास गये, राजा ने दुख से कुछ उत्तर नहीं दिया । सारे नगर में यह महा तीक्ष्ण बात ऐसे फैल गई जैसे बीछी छूते ही सब अंग में चढ़ जाती है ।

दोहा—मुख सुखाइ लोचन स्रवहिं, शोक न हृदय समाइ ।
मानहु करुणारस कटक, उतरेउ अवध बजाइ ॥

सबका मुख सूख रहा है, आँखों से जल बहता है—दुःख हृदय में नहीं समाता है मानो करुणा रस की सेना अयोध्या में डंका बजाकर उतरी है ।

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा ※ मुदित मातु पद नायउ माथा ।
दीन्ह अशीश लाइ उर लीन्हे ※ भूषण वसन निछावरि कीन्हे ॥
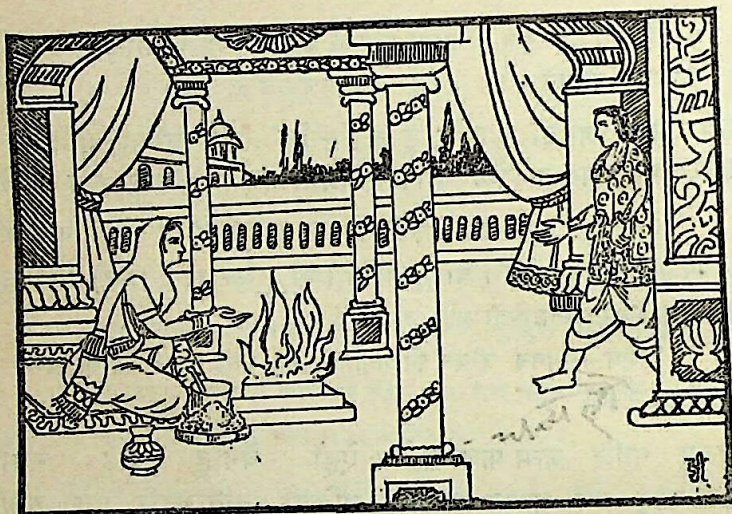
(माता कौशल्या की सेवा में पहुँचकर) श्री राम ने दोनों हाथ जोड़े, प्रसन्न हो माता के चरणों में प्रणाम किया। माता ने आशीश दे हृदय से लगा लिया तथा गहने और कपड़े न्यौछावर किये।

प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई ॐ रङ्क धनद पदवी जनु पाई।
सादर सुन्दर वदन निहारी ॐ बोली मधुर वचन महतारी।

कौशल्या का प्रेम और आनन्द कुछ कहा नहीं जाता, मानो दरिद्री ने कुवेर पद पा लिया हो। श्रीराम का सुन्दर मुख देख माता सादर मीठे वचन बोली—

कहहु तात जननी बलिहारी ॐ कबहिं लगन मुद मंगलकारी।
सुकृत शील सुख सींव सुहाई ॐ जन्म लाभ की अवधि अघाई।।

---

१ महर्षि वाल्मीकि के अनुसार जब राम माता कौशल्या से आज्ञा लेने पहुँचे, उस समय ये रेशमी वस्त्र पहने थीं तथा सन्ध्या या परमात्मा का ध्यान करके यज्ञ (अग्निहोत्र) कर रही थीं।

"सा क्षौम वसना हृष्टा नित्यं व्रत परायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृत मङ्गला" (अ० कां० स० २०।१५) चित्र देखें।

हे तात ! बलि जाऊँ यह तो कहो कि आनन्द और मङ्गल करने वाली (राजतिलक की) लग्न किस समय है, जो कि पुण्य और सुख की सुन्दर सीमा है तथा जन्म लेने क लाभ होने की अवधि है।

धर्म धुरीण धर्म गति जानी ※ कहेउ मातु सन अति मृदु बानी।
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू ※ जहँ सब भाँती मोर बड़ काजू॥

धर्म धुरन्धर राम धर्म की गति जानकर माता से बड़ी कोमल वाणी बोले—हे मातः ! पिताजी ने तो मुझे वन का राज्य दिया है, जहाँ मेरा कार्य सब प्रकार से सिद्ध हो सकेगा।

दोहा—वर्ष चारि दश विपिन बसि, करि पितु वचन प्रमान।
आइ पाँय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान॥

माँ, मैं चौदह वर्ष वन में रह, पिता के वचन पूरे कर फिर तुम्हारे चरण आकर देखूँगा। तुम अपने मन को उदास मत करो।

वचन विनीत मधुर रघुवर के ※ शर सम लगे मातु उर करके।
सहमि सूखि सुनि शीतल बानी※जिमि जवास पर पावस पानी॥

श्रीराम के मीठे व नम्र वचन माता के हृदय में बाण के समान लगे। श्रीराम की शीतल वाणी सुनते ही कौशल्या सहम कर सूख गईं जैसे जवासा वर्षा जल से सूख जाता है।

धर धीरज सुत वदन निहारी ※ गद्‌गद् वचन कहत महतारी।
तात पितहि तुम प्राण पियारे ※ देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥

माँ कौशल्या धैर्य धरके पुत्र के मुख को देखकर गद्‌गद् वाणी बोली—हे तात ! तुम पिता को प्राणों के समान प्रिय हो, वे तुम्हारे चरित्र देखकर नित्य ही प्रसन्न होते हैं।

राज देन कह शुभ दिन साधा ※ कहेउ जान वन केहि अपराधा।
तात सुनावहु मोहि निदानू ※ को दिनकर कुल भयउ कृशानू॥

तुम्हें राज्य दिन के लिये (आज का) शुभ दिन निश्चय किया था, फिर किस अपराध में तुम्हें वन जाने के लिये कहा है। हे पुत्र ! मुझे इसका कारण बताओ कि सूर्य वंश रूपी वन को कौन अग्नि तुल्य हुआ है।

दोहा—निरखि राम रुख सचिव सुत कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा वरनि नहिं जाइ॥

तब श्रीराम का रुख देखकर मन्त्री के पुत्र ने सब कारण समझाकर बताया जिसे सुन कर वह गूंगी जैसी होगई, उनकी दशा वर्णन नहीं की जा सकती।

धरम सनेह उभय मति घेरी ❋ भय गति साँप छछूंदरि केरी।
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू ❋ धर्म जाइ और बन्धु बिरोधू॥

धर्म और स्नेह दोनों ने कौशल्या की बुद्धि को घेर लिया। उनकी दशा साँप-छछूँदर की सी होगई। वे सोचने लगीं कि यदि मैं हठ करके पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म भी जाता है और भाइयों में विरोध होता है।

सरल सुभाउ राम महतारी ❋ बोली वचन धीर धरि भारी।
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका❋पितु आयसु सब धरमक टीका॥

अन्त में बड़ा धीरज धर कर राम माता सरल स्वभाव से बोलीं—हे तात: मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा का पालन यह सर्व शिरोमणि धर्म है।

जो केवल पितु आयसु ताता ❋ तौ जनि जाहु जानि बड़ माता।
जो पितु मातु कहेहिं बन जाना ❋ तौ कानन सत अवध समाना॥

(फिर भी) हे तात ! यदि केवल पिताजी की ही आज्ञा हो तो माता को (पिता से) बड़ा मानकर वन को मत जाओ। हाँ, यदि माता-पिता दोनों ने वन जाने को कहा हो तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है। (धन्य, धन्य ! मोह पर कर्त्तव्य की ऐसी अनूठी विजय एक आर्य महिला का ही भाग है)

बड़भागी बनु अवध अभागी ❋ जो रघुवंश तिलक तुम्ह त्यागी।
पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के ❋ प्रान प्रान के जीवन जी के॥

हे रघुवंश के तिलक ! वन बड़ा भाग्यवान् है और अयोध्या अभागी है जिसे तुमने त्याग दिया ! हे पुत्र ! तुम सभी के परम प्रिय हो, प्राणों के प्राण और जीवन के जीवन अर्थात् प्राणाधार हो।

अस विचारि सोइ करहु उपाई ❋ सबहिं जियत जेहि भेंटहु आई।
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ ❋ करि अनाथ जन परिहरि गाऊँ ॥

ऐसा विचार कर वही उपाय करना जिससे सबके जीते जी तुम आ मिलो। पुत्र ! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिवार वालों और नगर भर को अनाथ करके सुख-पूर्वक वन को जाओ। (यह कहते-कहते कौशल्या शोक मग्न हो गईं)*

दोहा— समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाय।
जाइ सास पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ ॥

उसी समय यह समाचार (संवाद) सुनकर सीताजी अकुला उठीं और सास के पास आकर उनके दोनों चरण कमल में वन्दना करके सिर नीचा करके बैठ गईं।

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी ❋ अति सुकुमारि देखि अकुलानी।
बैठि नमित मुख सोचति सीता ❋ रूप रासि पति प्रेम पुनीता ॥

सास ने कोमल स्वर से आशीर्वाद दिया। वे सीता को अत्यन्त सुकुमार देखकर व्याकुल हो उठीं। रूप की राशि और पति प्रेम में पुनीत सीता नीचा मुख किये सोच रही हैं। (कि प्राणनाथ किस प्रकार मुझे साथ ले चलें)

मजु विलोचनि मोचति वारी ❋ बोली देखि राम महतारी।
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी ❋ सास ससुर परिजनहिं पियारी ॥

सीता सुन्दर नेत्रों से जल बहा रही हैं, उनकी यह दशा देखकर राम माता कौशल्या बोलीं—हे तात ! सुनो सीता अत्यधिक सुकुमारी है तथा सास, ससुर और कुटुम्बी सभी को प्यारी है।

महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में कौशल्या कहती हैं—

कथं धेनुः स्वकं वत्सं गच्छतं नानुगच्छति।
अहं त्वानु गमिष्यामि पुत्र यत्र गमिष्यसि ॥

अर्थात्—'हे बेटा जहाँ तू जायगा, मैं भी तेरे पीछे पीछे जाऊँगी। किसी गाय का बछड़ा यदि कहीं जाता है तो वह गाय भी उसके पीछे-पीछे जाती है।" कितने मर्म-स्पर्शी हैं माँ कौशल्या के ये शब्द !

दोहा– पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु ।
पति रविकुल कैरव विपिन, बिधु गुन रूप निधानु ।।

इसके पिता जनकजी राजाओं में शिरोमणि हैं, श्वसुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्यकुल रूपी कुमुदवन को खिलाने वाले चन्द्रमा तथा गुण और रूप के भण्डार हैं।

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई ❋ रूप रासि गुन सील सुहाई ।
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई ❋ राखेउँ प्रान जानकिहि लाई ।।

फिर मैंने रूप की राशि सुन्दर गुण और शील वाली प्यारी पुत्रवधू पायी है। मैंने सीता को आँखों की पुतली बनाकर इससे प्रेम बढ़ाया है और अपने प्राण इसमें लगा रक्खे हैं।

पलंग पीठ तजि गोद हिण्डोरा ❋ सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ।
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ ❋ दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ।।

सीता ने पर्यङ्क पृष्ठ (पलंग), गोद और हिण्डोले को छोड़कर कठोर भूमि पर कभी पैर नहीं रक्खा। मैं सदा संजीवनी जड़ी के समान (बड़े ध्यान से) इसकी रखवाली करती रही हूं। कभी दीपक की बत्ती को हटाने को भी नहीं कहा।

सोइ सिय चलन चहति वन साथा ❋ आयसु काह होइ रघुनाथा ।
चन्द किरन रस रसिक चकोरी❋रवि रुख नयन सकइ किमि जोरी ।।

वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है। हे राम ! उसके लिये क्या आज्ञा है ? चन्द्रमा की किरणों का रस (अमृत) चाहने वाली सूर्य की ओर आँख कैसे मिला सकती है ?

दोहा– करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जन्तु वन भूरि ।
विष वाटिका कि सोह सुत सुभग संजीवन मूरि ।।

हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव-जन्तु वन में विचरते फिरते हैं। पुत्र ! क्या विष की वाटिका में सुन्दर संजीवनी बूटी शोभा पा सकती है ?

सुरसर सुभग वनज वनचारी * डाबर योग कि हंस कुमारी।
अस विचारि जस आयसु होई * मैं सिख देउँ जानकिहिं सोई।।

देवताओं के सरोवर में कमलों के वनों की रहने वाली हंसकुमारी पोखरी के योग्य कैसे हो सकती है। ऐसा विचार कर जैसी आज्ञा हो वैसी शिक्षा मैं सीता को दूँ।

जो सिय भवन रहै कह अम्बा * मो कहँ होइ प्राण अवलम्बा।
सुनि रघुवीर मातु प्रिय वानी * शील सनेह सुधा जनु सानी।।

माता कहती है कि यदि सीता घर पर रहे तो मेरे प्राणों को बड़ा सहारा मिले। श्री राम ने शील और स्नेह से भरी माता की अमृत सी कोमल वाणी सुनकर—

दोहा— कहि प्रिय वचन विवेकमय, दीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहिं, प्रकटि विपिन गुण दोष।।

—माता को ज्ञान संयुत प्रिय वचन कहकर सन्तोष दिया तथा सीता को वन के गुण दोष समझा कर कहने लगे—

आपन मोर नीक जो चहहू * वचन हमार मानि घर रहहू।
आयसु मोर सासु सेवकाई * सब विधि भामिनि भवन भलाई।।

हे सीते ! जो तुम अपना और मेरा कल्याण चाहती हो तो हमारा कहना मानकर घर ही रहो। हे देवि ! इसमें मेरी आज्ञा का पालन हो सकेगा और सास की सेवा का अपूर्व सुयोग मिलेगा। यों सब भाँति घर हो रहने में भलाई है।

यहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा * सादर सासु ससुर पद पूजा।
कहौं स्वभाव शपथ शत मोहीं * सुमुखि मातु हित राखहुँ तोहीं।।

हे देवि ! आदर सहित सास एवं श्वसुर की सेवा से बड़ा धर्म (नारी के लिये) दूसरा नहीं है। मैं सौ सौगन्दें करके तुमसे सत्य कहता हूँ कि तुम्हें केवल माता ही के लिये घर रखता हूँ।

विशेष—पारिवारिक जीवन को 'स्वर्ग' बनाने के लिये यह सन्देश अमोघ साधन है।

मैं पुनि करि प्रमाण पितु बानी ※ बेगि फिरब सुनि सुमुखि सयानी।
दिवस जात नहिं लागहिं बारा ※ सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा।।

हे सुन्दर मुख वाली सुविज्ञ सीते ! मैं फिर पिताजी की आज्ञा का पालन कर शीघ्र ही लौटूँगा। हे देवी ! दिन जाते देर नहीं लगती। अतः तुम हमारी शिक्षा (बात) मानो।

जो हठ करहु प्रेमवश वामा ※ तौ तुम दुख पावहु परिणामा।
कानन कठिन भयङ्कर भारी ※ घोर घाम हिम वारि बयारी।।

हे देवी ! यदि तुम प्रेम के वश हठ करोगी तो इसका फल दुःख ही होगा क्योंकि वन तो महा भयानक हैं। वहाँ कभी कड़ी धूप तो कभी कठिन सर्दी, कभी घनघोर वर्षा तो कभी तेज हवा चलती है।

कुश कंटक मग काँकर नाना ※ चलब पयादे बिनु पद त्राना।
चरण कमल मृदु मञ्जु तुम्हारे ※ मारग अगम भूमिधर भारे।।

राह में कुश, कांटे और अनेक प्रकार के कंकड़ हैं, इन पर बिना जूतों के पैदल ही चलना होगा। देवि ! तुम्हारे सुन्दर चरण कमल तो कोमल हैं उधर बड़े २ पर्वतों में कठिन मार्ग हैं।

कन्दर खोह नदी नद नारे ※ अगम अगाध न जाइँ निहारे।
भालु बाघ केहरि वृक नागा ※ करहिं नाद सुनि धीरज भागा।।

क्या कन्दरायें—पहाड़ों की गुफायें और क्या नदियाँ तथा नाले सभी अगम्य और इतने गहरे हैं कि देखे नहीं जाते। रीछ बाघ, सिंह, भेड़िया और हाथी ऐसा नाद करते हैं जिसे सुन धीरज भागता है।

दोहा— भूमि शयन बलकल वसन, असन कन्द फल मूल।
तेकि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल।।

धरती पर सोना, छालों के वस्त्र, खाने के लिये कन्द, फल और जड़ें मिलेंगी और वे भी कौन सदा और समय पर मिलेंगी? अर्थात् जब तब मिलेंगी।

नर अहार रजनीचर करहीं ❋ कपट वेष विधि कोटिक धरहीं।
लागे अति पहार कर पानी ❋ विपिन विपति नहिं जाइ बखानी ॥

राक्षस भोजन में मनुष्यों को खातें हैं और करोड़ों प्रकार से कपट एवं वेश बनाने में कुशल हैं। पहाड़ों का पानी बहुत लगता है। यों वन के कष्ट कहे नहीं जा सकते।

हँसगमनि तुम नहिं वन जोगू ❋ सुनि अपयश मोहिं देहहिं लागू।
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली ❋ जियँ कि लवण पयोधि मराली ॥

हे हंस की चाल वाली सीते ! तुम वन जाने योग्य नहीं हो। सुनकर लोग मुझे ही दोष देंगे। आखिर मान सरोवर के अमृतमय जल में पली हुई हंसिनी क्या खारी समुद्र में जी सकती है ? नहीं।

नव रसाल वन विहरन शीला ❋ सोह कि कोकिल विपिन करीला।
रहहु भवन अस हृदय विचारी ❋ चन्द्र वदनि कानन दुख भारी ॥

नये आमों के वन में विहार करने वाली कोयल क्या करील के वन में सोहेगी ? हे चन्द्रमुखि ! ऐसा विचार कर घर में ही रहो, वन में तो अनेकों दुःख हैं।

सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के ❋ लोचन नयन भरे जल सिय के।
उतर न आव विकल वैदेही ❋ तजन चहत शुचि स्वामि सनेही ॥

पति के सुन्दर और कोमल वचन सुनकर सीता के कमल के समान नेत्रों में जल भर आया। परम स्नेही स्वामी उसे छोड़ना चाहते हैं, इससे सीता जी को व्याकुलता वश कुछ कहने में नहीं आरहा है।

दोहा— प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिन रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान ॥

(फिर धीरजधर विनय पूर्वक कहने लगीं) हे प्राण नाथ ! आप दया के भण्डार, सुन्दर, सुखदाता और सुविज्ञ हैं। हे रघुवंश रूपी कोकावेली को चन्द्रमा के समान प्रभो ! आपके बिना तो स्वर्ग भी नरक के समान है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई ※ प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ।
सासु ससुर गुरु सुजन सुहाई ※ सुत सुन्दर सुशील सुखदाई ।।

माता-पिता, बहिन, स्नेही भाई, प्यारा कुटुम्ब, मित्रगण, सासु, श्वसुर गुरु, सत्पुरुष तथा सुन्दर एवं सुशील पुत्र—ये सभी निश्चय ही सुखदायक हैं सही—

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते ※ पिय बिन तियहिं तरणि ते ताते ।
तन धन धाम धरणि पुर राजू ※ पति विहीन सब शोक समाजू ।

पर हे नाथ ! ये सभी स्नेही और सम्बन्धी पति के बिना स्त्री के लिए सूर्य से भी अधिक तपाने वाले हैं । शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य तक भी पति के बिना सभी शोक की सामग्री है ।*

भोग रोग सम भूषण भारू ※ जम जातना सरिस संसारू ।
जिय बिन देहु नदी बिन वारी ※ तैसेहि नाथ पुरुष बिन नारी ।।

हे नाथ ! (बिना पति के स्त्री के लिये) अनेक प्रकार के भोग, रोग के समान गहने बोझ जैसे तथा संसार काल की तरह (कष्टदायक) लगते हैं । हे प्रभो ! जैसे बिना जीव (प्राण) के शरीर और पानी के बिना नदी होती है, वैसे ही पति के बिना स्त्री है ।

प्राणनाथ तुम बिन जगमाहीं ※ मोकहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं ।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे ※ शरद विमल विधु वदन निहारे ।।

---

*महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रसंग का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है । केवल दो श्लोक देखें—

आर्यपुत्र ! पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा ।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जाना: स्वं स्वं भाग्यमुपासते ।।
भर्तुर्भाग्यं तु भार्यैका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि सर्ग २६ ३-४

अर्थात्—"हे आर्यपुत्र ! पिता, माता, भ्राता, पुत्र तथा पुत्रवधू ये सब अपने-अपने पुण्यों को भोगते हैं, किन्तु केवल नारी ही अपने पति के भाग्य को भोगती है । इसलिये मुझे भी वन में चलने की आज्ञा दीजिये ।

हे प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना संसार में मेरे लिये कहीं कोई सुखदायक नहीं है, हे नाथ ! शरद ऋतु के चन्द्र तुल्य आपका उज्ज्वल मुख देखने से मेरे लिये सब सुख आपके साथ ही हैं।

दोहा— राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, शील सनेह निधान ॥

हे सुन्दर, सुखदायक, शील और स्नेह के भण्डार दीनबन्धु प्रभो ! जो आपको यह विश्वास हो कि अवधि (चौदह वर्ष) पर्यन्त (आपके बिना) मेरे प्राण रह सकेंगे तो मुझे अयोध्या में रखिये।

मोहि मग चलत न होइहि हारी ※ क्षण क्षण चरण सरोज निहारी।
सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं ※ मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ॥

हे नाथ ! क्षण २ में आपके चरण कमल देखने से मुझे मार्ग चलने की थकावट नहीं होगी। हे प्रियतम ! मैं सब प्रकार से सेवा करूंगी और मार्ग चलने से हुई थकावट को दूर करूंगी।

पाँय पखारि बैठि तरु छाहीं ※ करिहौं वायु मुदित मन माहीं।
श्रम कन सहित श्याम तनु देखे ※ कहँ दुख समय प्राणपति पेखे ॥

हे प्राणपति ! आपके पैर धोकर, वृक्ष की छाँह में बैठे मन में प्रसन्न हो वायु करूंगी। श्रम-कण (पसीने की बूंद) सहित स्वामी के श्याम शरीर को देख कर दुःख का अवसर ही कहाँ रहेगा ?

को प्रभु संग मोहि चितवनहारा ※ सिंह बधुहिं जिमि शशक सियारा।
मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू ※ तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥

जैसे खरगोश और सियार सिंहनी को देखने का साहस नहीं कर सकते, वैसे आपके साथ मुझे देखने वाला कौन होगा ? हे नाथ ! मैं तो सुकुमारी हूं और आप वन के योग्य हैं ? आपको तपस्या और मुझे भोग उचित है ?

दोहा— ऐसे वचन कठोर सुनि, जो न हृदय विलगान।
तौ प्रभु विषम वियोग दुख, सहि हैं पामर प्रान ॥

इस प्रकार के कठोर वचन सुनकर भी जो मेरा हृदय नहीं फटा तो हे प्रभो ! ये पापी प्राण आपके वियोग का कठिन दुःख भी सहेंगे ही ।

अस कहि सीय विकल भइ भारी ❋ वचन वियोग न सकी सँभारी ।
देखि दशा रघुपति जिय जाना ❋ हठ राखे राखिहिं नहिं प्राना ॥

ऐसा कह सीता बहुत व्याकुल हो गईं । वे वियोग-भय के कारण अपने वचन भी नहीं सँभाल पारही थीं (अर्थात् अब वे रोने लगीं, उनके स्पष्ट शब्द नहीं निकल रहे थे) यह दशा देख श्री राम ने मन में समझ लिया कि यदि इसे हठ करके अयोध्या में रखा जावेगा तो इसके प्राण नहीं रहेंगे ।

कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा ❋ परिहरु सोच चलहु वन साथा ।
नहिं विषाद कर अवसर आजू ❋ बेगि करहु आगमन समाजू ॥

दयालु श्री राम ने तब कहा—सीते ! तुम शोक को छोड़ मेरे साथ वन चलो, आज दुःखी होने का अवसर नहीं है, शीघ्र वन- गमन की तैयारी करो ।

कहि प्रिय वचन प्रिया समुझाई ❋ लगे मातु पद आशिष पाई ।
वेगि प्रजा दुख मेटहु आई ❋ जननी निठुर विसरि जनि जाई ॥

श्री राम ने मधुर वचनों से सीता को समझाकर माता के चरणों को छू आशीर्वाद प्राप्त किया । माँ कौशल्या कहने लगीं—पुत्र ! शीघ्र आकर प्रजा का दुःख दूर करना, कहीं निष्ठुर माता को भूल नहीं जाना, ।

दोहा— बहुरि वच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुवर तात ।
कबहिं बुलाय लगाय उर, हरषि निरखिहौं गात ॥

फिर कब वत्स, लाल, रघुपति, रघुवर, पुत्र आदि कह कर बुलाऊँगी और हृदय से लगाकर प्रसन्न हो तुम्हारा शरीर देखूँगी ?

लखि सनेह कातर महतारी ❋ वचन न आव विकल भइ भारी ।
राम प्रबोध कीन्ह विधि नाना ❋ समय सनेह न जाइ बखाना ॥

ऐसा कह कौशल्या माता अत्यन्त स्नेह-कातर होगईं । व्याकुलता के कारण उनके मुख से वचन नहीं निकलते थे । माता की यह दशा देख श्री

राम ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया—उस समय का प्रेम कहा नहीं जा सकता ।

तब जानकी सासु पग लागी ॐ सुनिय मातु मैं परम अभागी ।
सेवा समय दैव वन दीन्हा ॐ मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥

तब सीता जी ने सास के चरणों में अभिवादन कर कहा—हे मातः ! मैं बड़ी अभागिनी हूँ । आपकी सेवा के समय विधाता ने यह दुःख दिया, मेरा मनोरथ (अभीष्ट) पूरा नहीं किया ।

तजब छोभ जनि छाँड़िय छोहू ॐ कर्म कठिन कछु दोष न मोहू ।
सुनि सिय वचन सासु अकुलानी ॐ दशा कवन विधि कहौं बखानी ॥

हे माता ! अब आप मोह छोड़िये । हाँ, अपनी कृपा न छोड़ें । कर्म (होनहार) कठिन (अटल) है ! मेरा भी कुछ दोष नहीं है । सीताजी के वचन सुन सास बड़ी व्याकुल हो गई—उस दशा को किस प्रकार कहा जावे ?

बारहिं बार लाय उर लीन्हीं ॐ धरि धीरज सिख आशिष दीन्हीं ।
अचल होइ अहिवात तुम्हारा ॐ जब लगि गङ्ग जमुन जल धारा ॥

माता कौशल्या ने बार-बार सीताजी को हृदय से लगा, धीरज धरकर शिक्षा पूर्ण वचन कहे और आशीर्वाद दिया कि जब तक गंगा-यमुना की जल-धारा हैं, तुम्हारा सुहाग अचल रहे ।

दोहा— सीतहिं सासु अशीष सिख, दीन्ह अनेक प्रकार ।
चली नाइ पद पदम शिर, अति हित बारहिं बार ॥

सास ने सीता जी को अनेक रीति से शिक्षा की और आशीर्वाद दिया । सीता जी बड़ी श्रद्धा से उनके चरणों में बार-बार शिर झुकाकर चलीं ।

समाचार जब लक्ष्मण पाये ॐ व्याकुल विलखि बदन उठि धाये ।
कम्प पुलक तनु नयन सनीरा ॐ गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥

जब यह सब समाचार लक्ष्मण को मिले तो वे व्याकुल हो दुखी चेहरे से उठ दौड़े । देह काँपने लगी, रोएं खड़े हो गये, और आँखों में जल भर आया ।
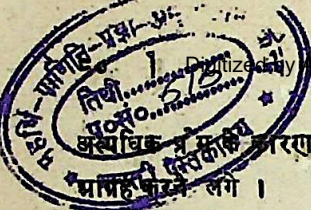
अत्यधिक प्रेम के कारण अधीर हो पैर पकड़ लिये। (और साथ चलने का आग्रह करने लगे।

बोले वचन राम नय नागर ※ शील सनेह सरल सुख सागर।
तात प्रेमवश जनि कदराहू ※ समुझि हृदय परिणाम उछाहू॥

तब शीलता, प्रेम, सरलता और सुख के समुद्र तथा नीति-निपुण श्री राम बोले—हे भाई! प्रेम के वश में कर्त्तव्य से मत डरो किन्तु हृदय में समस्त स्थिति के परिणाम को समझ कर कर्त्तव्य-पालन का उत्साह पैदा करो)

दोहा—मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धरि करिय सुभाय।
लह्यो लाभ तिन जन्म कर, न तरु जन्म जग जाय॥

प्रिय भाई! जिन्होंने माता-पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को सहज ही शिरोधार्य किया है, उन्होने ही जन्म लेने का लाभ पाया है बिना इसके तो संसार में जीवन व्यर्थ है।

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई※करहु मातु पितु पद सेवकाई।
भवन भरत रिपु सूदन नाहीं ※ राउ वृद्ध मम दुख मनमाहीं॥

हे भाई! हृदय में ऐसा विचार कर मेरी सिखावन सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। घर में भरत और शत्रुघ्न नहीं हैं फिर राजा (पिताजी) भी एक तो वृद्ध हैं दूसरे मेरे वियोग का दुःख उनके मन में है।

मैं वन जाउँ तुमहि ले साथा ※ होइ सबै विधि अवध अनाथा।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ※ सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

यदि मैं तुमको साथ लेकर वन में जाऊँ तो अयोध्या सब प्रकार से अनाथ हो जायगी। और हे भाई! जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःखी रहती है, वह राजा नरक अनेक प्रकार के दुःखों को प्राप्त होता है।

रहहु तात अस नीति विचारी ※ सुनत लषण भें व्याकुल भारी।
सियरे वदन सूखि गये कैसे ※ परसत तुहिन तामरस जैसे॥

हे भाई! इस नीति (वचन) को ध्यान में रख कर तुम यहीं रहो। यह

सुनते ही लक्ष्मण अत्यधिक व्याकुल हो गये। उनका शरीर ऐसा ठण्डा (निश्चेष्टसा) हो गया और वे ऐसे सूख गये जैसे पाला पड़ने से कमल सूख जाता है।

दोहा— उतर न आवत प्रेमवश, गहे चरण अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तौ कहा बसाइ॥

प्रेम की अधिकता से श्री लक्ष्मण को कुछ कहते नहीं बनता, उन्होंने विकल होकर श्रीराम के चरण पकड़ लिये और बोले—हे नाथ! आप स्वामी और मैं सेवक हूं। यदि आप मुझे त्याग ही दोगे तो मेरा वश क्या है?

दोहा— करुणासिन्धु सुबंधु के, सुनि मृदु वचन विनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत॥

दया के समुद्र श्रीराम ने प्रिय भाई लक्ष्मण के मधुर और नम्रता युक्त वचन सुनकर और उनके आन्तरिक स्नेह को जानकर उन्हें हृदय से लगाकर समझाया। और कहा—

माँगहु विदा मातु सन जाई ❋ आवहु बेगि चलहु वन भाई।
हर्षित हृदय मातु पहँ आये ❋ मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाये॥

हे भाई! माता से आज्ञा लेकर वन चलने के लिये शीघ्र ही आओ। श्री लक्ष्मण तब इस प्रकार प्रसन्न हृदय से माता के पास आये, मानो अन्धे को फिर आँखें मिल गई हों।

पूँछेहु मातु मलिन मन देखी ❋ लषण कही सब कथा विशेषी।
गई सहमि सुनि वचन कठोरा ❋ मृगी देखि जिमि दव चहुँ ओरा॥

माता ने (लक्ष्मण को) उदास देख कारण पूछा! तब लक्ष्मण ने समस्त वृत्त विस्तार से सुना दिया। इस दुखद वृत्त को सुनते ही माता सुमित्रा ऐसे सहम गईं जैसे वन में चारों ओर आग लग जाने पर हरिणी डर जाती है।

धीरज धरेउ कुअवसर जानी ❋ सहज सुहृद बोलीं मृदु बानी।
तात तुम्हारि मातु वैदेही ❋ पिता राम सब भाँति सनेही॥

माता सुमित्रा ने इसे कुअवसर (दुर्भाग्य) जानकर धैर्य धारण किया और वे अच्छे चित्तवाली माता सहज और मधुर वचन बोलीं—हे पुत्र! सब

प्रकार से स्नेह करने वाले श्री राम तुम्हारे पिता एवं जानकी ही माता हैं । *

अवध तहाँ जहँ राम निवासू ❀ तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू ।
जो पै राम सीय वन जाहीं ❀ अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥

* महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में:—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यां अटवीं विद्धि गच्छतात यथा सुखम् ॥

हे पुत्र ! तुम राम को ही महाराज दशरथ (पिता) समझो, जनक-पुत्री सीता को मुझे (माता) समझ, जङ्गल को अयोध्या मान इस प्रकार सुख-पूर्वक वन के लिये प्रस्थान करो । (माता सुमित्रा)] के विशाल हृदय और अनुपम उदारता का कैसा मनोरम चित्र है यह ! गोस्वामी जी ने इसी का सरस अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

प्रिय पुत्र! जहाँ राम निवास करेंगे वहीं (वह जगंल ही) अयोध्या है क्योंकि जहाँ सूर्य का प्रकाश है, वहीं दिन है। अतः यदि राम और सीता वन जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ काम नहीं। *

गये लषण जहँ जानकि नाथा ❀ भे मन मुदित पाय प्रिय साथा।
बन्दि राम सिय चरण सुहाये ❀ चले संग नृप मन्दिर आये।।

तब लक्ष्मण (माता के चरणों में शिर झुका, आशीर्वाद लेकर) श्रीराम के समीप गये और मन चाहा साथ पाकर मन में बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने श्रीराम एवं सीता के चरणों में अभिवादन किया और उनके साथ राज-भवन में आये।

सचिव उठाइ राउ बैठारे ❀ चरण परत नृप राम निहारे।
सिय समेत दोउ तनय निहारी ❀ व्याकुल भये भूमिपति भारी।।

मन्त्री (सुमन्त) ने उठाकर राजा को बिठाया तब राजा ने श्रीराम को पैरों में पड़ते हुए देखा। जानकी सहित दोनों पुत्रों को (वन जाने के लिये तैयार) देखकर राजा बहुत दुःखी हुए।

राउ राम राखन हित लागी ❀ बहुत उपाय किये छल त्यागी।
लखा राम रुख रहत न जाने ❀ धर्म धुरन्धर धीर सयाने।।

राजा ने राम को रखने के लिये निश्छल भाव से अनेक उपाय किये परन्तु धर्मचक्र की धुरी को धारण करने वाले धीर और नीतिज्ञ राम का मन रहने को नहीं जाना।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्हीं ❀ अति हित बहुत भांति सिख दीन्हीं।
कहि बन के दुख दुसह सुनाये ❀ सासु ससुर पितु सुख समुझाये।।

तब राजा ने जानकी जी को हृदय से लगा लिया और बड़े प्रेम से बहुत प्रकार से समझाया। फिर वन के असह्य दुःख और सास-ससुर एवं पिता के यहाँ के सुख समझाये।

---

* लक्ष्मण जी के श्री राम के साथ वन गमन के प्रकरण में कवि ने माता सुमित्रा से आज्ञा लेने की बात तो लिखी है, किन्तु आदि कवि महर्षि बाल्मीकि भी और गोस्वामी जी भी सती शिरोमणी, त्यागमूर्ति लक्ष्मण पत्नी उर्मिला को सर्वथा भूल ही गये हैं। सच में यह एक बड़ी त्रुटि रह गई है। उर्मिला का त्याग सर्वोपरि है।

दो०— सिख शीतल हित मधुर मृदु, सुनि सीतहिं न सुहानि।
शरद चंद चाँदनि लगत, जनु चकई अकुलानि॥

शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल यह सीख भी सुनने में सीता जी को प्रिय नहीं लगी जैसे शरद ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी चकई को व्याकुल कर देती है, वही दशा सीता की हुई।

सीय सकुच वश उतर न देयी ❋ सो सुनि तमकि उठी कैकेयी।
मुनि पट भूषण भाजन आनी ❋ आगे धरि बोली मृदु बानी॥

सीता संकोचवश कोई उत्तर नहीं दे पाती, यह देख-सुन कैकेयी क्रोधित हो उठी। मुनियों के वस्त्र, गहने, बर्त्तन आदि लाकर उन (तीनों) के आगे रख वह (छलपूर्ण) मीठे स्वर में बोली—

नृपहिं प्राणप्रिय तुम रघुवीरा ❋ शील सनेह न छाँड़िहिं भीरा।
सुकृत सुयश परलोक नसाऊ ❋ तुमहिं जान वन कहहिं न राऊ॥

हे रघुवीर! तुम राजा को प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। तुम्हारे प्रति शील और स्नेह की भीर (अधिकता) को वे छोड़ नहीं सकते। भले ही महाराज का पुण्य, कीर्ति और परलोक नष्ट हो जाये पर राजा तुम्हें वन जाने को नहीं कहेंगे।

अस विचारि सोइ करहु जो भावा❋राम जननि सिख सुनि सुख पावा।
राम तुरत मुनि वेश बनाई ❋ चले जनक जननी शिर नाई॥

हे राम! ऐसा विचार कर जो उचित लगे वह करो। श्रीराम को कैकेयी की यह सिखावन सुन बड़ा सुख मिला। श्रीराम ने तब तुरन्त ही मुनियों जैसा वेश बनाकर माता-पिता को शिर झुकाया और चल दिये।

निकसि वसिष्ठ द्वार भे ठाढ़े ❋ देखे लोग विरह दव ठाढ़े।
कहि प्रिय वचन सकल समुझाये❋विप्र वृन्द रघुवीर बुलाये॥

(राज-भवन से) निकल कर श्रीराम गुरु वसिष्ठ की कुटी के द्वार पर पहुंचे। वहाँ देखते क्या हैं कि सब लोग वियोग की दावाग्नि से जल रहे हैं। तब श्रीराम ने मधुर शब्दों द्वारा सबको समझाया और ब्राह्मणों को बुलाया।

बारहिं बार जोरि जुग पानी ❋ कहत राम सब सन मृदु बानी।
सोइ सब भाँती मोर हितकारी ❋ जेहि ते रह नरनाह सुखारी ॥

फिर श्रीराम दोनों हाथ जोड़ सबसे कोमल वचन कहते हैं कि वही सब प्रकार से मेरा हितकारी है जिससे महाराज (पिताजी) सुखी रहें।

दोहा—मातु सकल मोरे विरह, जेहिं न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाय तुम करब सब, पुरजन परम प्रवीन ॥

हे प्रवुद्ध (चतुर) नागरिको ! आप सभी को वही यत्न करना है जिससे मेरे वियोग से मातायें दुःखी एवं विकल न हों।

गई मूर्छा तब भूपति जागे ❋ बोलि सुमन्त कहन अस लागे।
राम चले वन प्राण न जाहीं ❋ केहि सुख लागि रहे तन माहीं ॥

इधर राजा दशरथ जब कुछ सचेत हुए तो सुमन्त को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे—राम तो वन को गये परन्तु प्राण नहीं जाते, न जाने किस सुख के लिये वे शरीर में स्थित हैं ?

यहि ते कवनि व्यथा बलवाना ❋ जो दुख पाइ तजहिं तनु प्राना।
पुनि धरि धीर कहहिं नरनाहू ❋ लै रथ संग सखा तुम जाहू ॥

इससे बढ़कर और कौन दुःख होगा कि जिसे पाकर प्राण शरीर को छोड़ेंगे, फिर धैर्य धारण कर राजा बोले—हे मित्र ! तुम रथ लेकर साथ जाओ। (और इन्हें कुछ दिन वन दिखलाकर लेते आना)

तब सुमन्त नृप वचन सुनाये ❋ करि विनती रथ राम चढ़ाये।
चलत राम लखि अवध अनाथा ❋ विकल लोग सब लागे साथा ॥

तब सुमन्त ने (बाहर आकर) राजा के वचन सुनाये और विनय करके श्री रामादि को रथ पर चढ़ाया। राम को चलते देख अयोध्या को अनाथ हुआ समझ सब लोग विकल होकर श्रीराम के साथ लग दिये।

दोहा—बालक वृद्ध विहाय गृह, चले लोग सब साथ।
तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ॥

(श्रीराम के बहुत समझाने पर भी वे नहीं माने तथा) बालक और बूढ़ों को घर में छोड़कर सब नगर निवासी साथ चल दिये। पहले दिन श्रीराम ने (समीप ही) तमसा नदी के किनारे निवास किया।

रघुपति प्रजा प्रेमवश देखी * सदय हृदय दुख भयउ विशेखी।
किये धर्म उपदेश घनेरे * लोग प्रेम वश फिरहिं न फेरे।।

प्रजा को यों प्रेमवश देखकर दयालु हृदय श्रीराम बड़े दुखी हुए। उन्होंने अनेक भाँति धर्मोपदेश किये किन्तु प्रजाजन प्रेम के वश लौटाये नहीं लौटते।

जबहिं याम युग यामिनि बीती * राम सचिव सन कहेउ सप्रीती।
खोज मारि रथ हाँकेउ ताता * आन उपाय बनहिं नहिं बाता।

जब दोपहर रात्रि (अर्ध रात्रि) व्यतीत होगई तब श्रीराम ने मन्त्री (सुमन्त) से सप्रेम कहा—हे तात! चिन्ह मेट कर रथ हाँक कर आगे बढ़िये क्योंकि दूसरे उपाय से बात नहीं बनेगी।

जागे सकल लोग भा भोरू * गे रघुबीर भयउ अति शोरू।
रथकर खोज कतहुँ नहिं पावहिं * राम राम कहि चहुँदिशि धावहिं।।

सबेरा होने पर जब सब लोग जागे तो (राम को न पाकर) 'राम चले गये' ऐसा शोर मच गया। किसी को कहीं रथ का कोई चिन्ह नहीं मिल रहा। सभी राम! राम!! कह चारों दिशाओं में दौड़ते हैं।

यहि विधि करत प्रलाप कलापा * आये अवध भरे परितापा।
विषम वियोग न जाइ बखाना * अवधि आश सब राखहिं प्राना।।

इस प्रकार बहुत प्रलाप करते हुए सब दुख से भरे हुए अयोध्या में आये। श्रीराम-वियोग का कठिन दुःख अकथनीय है। अन्त में सभी ने अवधि की (चौदह वर्ष बाद फिर राम आयेंगे इस) आशा में प्राणों को रखा।

सीता सचिव सहित दोउ भाई * शृङ्गवेरपुर पहुँचे जाई।
मंजन कीन्ह पन्थ श्रम गयऊ * शुचि जल पियत मुदित मन भयऊ।।

इधर सीता और मन्त्री सुमन्त्र सहित दोनों भाई शृङ्गवेरपुर जा पहुंचे। वहाँ गङ्गा-स्नान किया जिससे राह की थकान जाती रही, और निर्मल जल पीने से मन प्रसन्न हो गया। *

यह सुधि गुह निषाद जब पाई ❀ मुदित लिये प्रिय बन्धु बुलाई।
लै फल मूल भेट भरि भारा ❀ मिलन चलेउ हिय हर्ष अपारा॥

जब यह समाचार गुह नामक निषाद राज (भीलों के राजा—अयोध्या के विशाल राज्य के एक माण्डलिक राजा) ने पाया तो प्रसन्न हो अपने बन्धु बान्धवों को बुला लिया। फल-मूल आदि उपहार बहंगियों में भरकर मिलने चला। उसके हृदय में हर्ष की कोई सीमा न थी।

राम लषण सिय रूप निहारी ❀ कहहिं सप्रेम नगर नरनारी।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे ❀ जिन पठये वन बालक ऐसे॥

राम, लक्ष्मण और सीता के रूप को देख कर नगर के सभी स्त्री-पुरुष प्रेम में भरकर कहते हैं—हे सखि! (या सखा) वे माता-पिता कैसे (कठोर हृदय) हैं जिन्होंने ऐसे बालकों (पुत्रों और पुत्रवधू) को वन में भेज दिया।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा ❀ लोचन लाहु हमहिं जिन दीन्हा।
पुरजन करि जुहार+गृह आये ❀ रघुपति सन्ध्या करन पठाये॥

---

*गङ्गा नदी ऐसे स्थानों से बहकर आती है, जहाँ की अनेक प्रकार की जड़ी बूटियां की रोग निवारक शक्ति इसके जल में आ जाने से यह जल औषधिवत् हो जाता है। शीतलता, निर्मलता एवं रोग शामकता गङ्गाजल की अपनी विशेषतायें हैं। कवियों ने इसी का बड़ा अलङ्कारिक वर्णन किया है।

+यहाँ 'करि प्रणाम' यह पाठान्तर उपयुक्त होगा। 'जुहार' शब्द मध्यकालीन सामाजिक विषमता का परिचायक है। वस्तुतः प्राचीन आर्ष काल में अभिवादन के लिये एकमेव "नमस्ते" का ही प्रचलन था। वाल्मीकि रामायण में इसी का प्रयोग मिलता है। प्रसन्नता का विषय है कि सारे देश ने पुनः 'नमस्ते' के सनातन अभिवादन को अपनाया है।

कुछ कहते हैं कि राजा ने अच्छा ही किया जिससे हम लोगों को नेत्रों का लाभ मिल गया। पश्चात् नगरवासी श्री राम आदि को अभिवादन करके घर चले गये और श्रीराम (लक्ष्मण एवं सीता सहित) सन्ध्या=ब्रह्म यज्ञ (ईश्वर चिन्तन) करने के लिये चल दिये।*

गुह सँवारि साथरी बनाई ❀ कुश किसलय मृदु परम सुहाई।
शुचि फलमूल मधुर मृदु जानी ❀ दोना भरि भरि राखे आनी॥

निषाद ने कुशों और कोमल पत्तों से सँवार कर सुन्दर शैया तैयार कर दी तथा खाने के लिये सुन्दर फल और कोमल एवं मीठी जड़ें दोनों में भर-भर कर उनके सामने रखीं।

दोहा— सिय सुमन्त भ्राता सहित, कंद मूल फल खाइ।
शयन कीन्ह रघुवंशमणि, पाँय पलोटत भाइ॥

सीता, सुमन्त और लक्ष्मण सहित श्रीराम ने कन्द-मूल (मीठी जड़ें) और फल खाकर शयन किया। भाई लक्ष्मण पैर दाबने लगे। (कैसा स्वर्गीय दृश्य है यह !)

उठे लषण प्रभु सोवत जानी ❀ कह सचिवहिं सोवन मृदु बानी।
कछुक दूरि सजि बाण शरासन ❀ जागन लगे बैठि वीरासन॥

श्रीराम को सोते जानकर श्री लक्ष्मण उठे और मीठी वाणी से मन्त्री को भी सोने के लिये कहा। वे स्वयं धनुष बाण सन्धान कर वीरासन लगा, कुछ दूर पर बैठकर जागने लगे। (श्री लक्ष्मणजी की यह भ्रातृ भक्ति और सेवा-साधना दर्शनीय और अनुकरणीय है।)

सोवत प्रभुहिं निहारि निषादा ❀ भयेउ प्रेमवश विकल विषादा।
तनु पुलकित लोचन जल बहई ❀ वचन सप्रेम लषण सन कहई॥

---

* श्री राम कैसे निष्ठावान् ईश्वर भक्त थे तथा सन्ध्योपासना के नित्य कर्म में कितने नियमित थे, इस प्रसंग से यह स्पष्ट है।

श्री राम को यों सोते देख निषादराज प्रेमवश शोक से विकल हो उठे। उनके शरीर में रोमांच हो आया, आँखों से जल बहने लगा तथा प्रेम-पूरित हो लक्ष्मण को कहने लगे—

मातु पिता परिजन पुरवासी ※ सखा सुशील दास अरु दासी।
पिता जनक जग विदित प्रभाऊ ※ ससुर सुरेश सखा रघुराऊ ॥

माता-पिता, परिवारी, नगरवासी, मित्रगण तथा आज्ञाकारी (सुशील) दास और दासी जिन राम को प्राप्त हैं। तथा जिन सीताजी के पिता विश्व-विख्यात महाराज जनक तथा श्वसुर इन्द्र के मित्र महाराज दशरथ ऐसे हैं।

रामचन्द्र पति सो वैदेही ※ सोवत महि विधि वाम न केही।
सिय रघुवीर कि कानन जोगू ※ कर्म प्रधान *सत्य कह लोगू ॥

फिर जिन सीताजी को श्रीराम ऐसे पति हैं, वही सीता पृथ्वी में सोती है, विधाता (कर्मानुसार) किसे दण्डित नहीं करता! अन्यथा सीता और राम क्या वन के योग्य हैं? लोग सच ही कहते हैं कि कर्म ही मुख्य है। कर्मफल सभी को भोगना पड़ता है।)

दोहा— केकयनंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहिं, सुख अवसर दुख दीन्ह ॥

मन्द बुद्धि कैकेयी ने घोर कुटिलता की कि सुख के समय राम-जानकी को दुःख दिया।

बोले लषण मधुर मृदु बानी ※ ज्ञान विराग भक्ति रस सानी।
कोउ न काउ सुख दुख कर दाता ※ निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता ॥

श्री लक्ष्मण तब ज्ञान, वैराग्य और भक्ति युक्त मीठे बचन बोले—हे

---

* यहाँ "अवश्यमेव भोक्तव्य कृतं कर्म शुभाऽशुभं" इस वैदिक सिद्धान्त की बड़ी सुन्दरता से पुष्टि की गई है। कोई कितना ही बड़ा सदाचारी, धर्मात्मा क्यों न हो, ईश्वर की व्यवस्था के आगे सभी को शिर झुकाकर, कर्मफल भोगना पड़ता है। यह कर्म सिद्धान्त अटल है।

भाई ! कोई भी दूसरा किसी के सुख या दुख का देने वाला नहीं है। सभी अपने किये कर्म (सत्कर्म और दुष्कर्म) का ही फल भोगते हैं।*

अस विचारि नहिं कीजिय रोषू ※ बादि न काहुहिं दीजिय दोषू।
कहत रामगुण भा भिनसारा ※ जागे जग मंगल दातारा॥

ऐसा विचार कर आप क्रोध न करें और व्यर्थ ही किसी को दोष नहीं दें। इस प्रकार श्रीराम का यश गान करते-करते सवेरा हो गया और संसार को कल्याण पथ बताने वाले श्री राम जाग गये।

सकल शौच करि राम नहावा ※ शुचि सुजान वट क्षीर मँगावा।
अनुज सहित शिर जटा बनाये ※ देखि सुमन्त नयन जल छाये॥

फिर शौचादि से निवृत्त हो सुजान श्री राम ने स्नान किया तथा बरगद का पवित्र दूध मँगा कर भाई सहित शिर की जटायें बनाईं। यह देखकर सुमन्त की आँखों में जल भर आया।

हृदय दाह अति बदन मलीना ※ कह कर जोरि वचन अति दीना।
नाथ कहेउ अस कोशलनाथा ※ वन दिखाइ लै आवहु साथा॥

सुमन्त के हृदय में बड़ी जलन है और चेहरा उदास है। वह बड़े ही दीनता के स्वर में हाथ जोड़ कर बोले—हे नाथ ! राजा ने ऐसा कहा था कि इन्हें वन दिखाकर साथ ले आना।

तात कृपा करि कीजिय सोई ※ जाते अवध अनाथ न होई।
मन्त्रिहिं राम उठाइ प्रबोधा ※ तात धरम मारग तुम सोधा॥

अतः हे तात ! आप कृपा कर वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। श्री राम ने मन्त्री को उठाकर समझाया कि हे तात ! आप तो धर्म का मार्ग भली भाँति जानते हैं।

शिव दधीचि हरिचन्द नरेशा ※ सहे धर्म हित कोटि कलेशा।
रन्तिदेव बलि भूप सुजाना ※ धर्म धरेउ सहिं संकट नाना॥

---

* श्रीलक्ष्मण के इस वचन में उक्त सिद्धान्त की ओर भी दृढ़ता से सम्पुष्टि की गई है। स्पष्ट है श्रीराम का यह पुनर्जन्म था। वे ईश्वर नहीं थे।

(आप जानते हैं कि) राजा शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए (करोड़ों) दुःख सहे थे। इसी प्रकार रन्तिदेव और सुविज्ञ राजा बलि ने अनेक संकट सहकर भी धर्म को धारण किया (धर्म रक्षा की)

धर्म न दूसर सत्य समाना ※ आगम निगम पुराण बखाना।
मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा ※ तजे तिहूँ पुर अपयश छावा॥

वेद, सत्शास्त्र और पुराण १ (प्राचीन सत्य इतिहास) सभी में बताया है कि सत्य के बराबर दूसरा धर्म नहीं है। २ हे मन्त्रिवर! उसी धर्म को मैंने सहज हो पा लिया है। उसके छोड़ने से तीनों लोकों में (सर्वत्र) अपयश छा जायगा।

दो०—पितु पद गहि कर कोटि विधि, विनय करब कर जोरि।
चिन्ता कवनिहु बात की, तात करिय जन मोरि॥

इसलिये आप मेरी ओर से पिताजी के चरण छूकर, हाथ जोड़कर अनेक प्रकार से प्रार्थना करना कि मेरी ओर से (हम लोगों की ओर से) पिता जी किसी बात की चिन्ता न करें।

तुम पुनि पितु सम अतिहित मोरे ※ बिनती करौं तात कर जोरे।
सब विधि सोइ कर्त्तव्य तुम्हारे ※ दुख न लहैं पितु शोच हमारे॥

फिर हे तात! आप भी पिता के समान ही मेरे हितैषी हो। अतः मैं हाथ जोड़कर आपसे विनय करता हूँ कि आप सब प्रकार से वही करना जिससे पिताजी को हमारे शोच में दुःख न हो। (यहाँ श्रीराम की पितृभक्ति एवं विनयशीलता द्रष्टव्य है।)

१—पुराण—का सही अभिप्राय प्राचीन सत्य ऐतिहासिक वृत्तों और गाथाओं से है, वेद विरुद्ध, मन घड़न्त गपोड़ों से भरे हुए वर्त्तमान १८ पुराणों से श्रीराम का कोई प्रयोजन नहीं था। इनका रचना काल भी बहुत पीछे का है।

२—"नहि सत्यात्परो धर्मः" इस आर्ष (आप्त) वाक्य का कैसा सरस अनुवाद गोस्वामी तुलसीदास ने यहाँ किया है, यह दर्शनीय है।

सुनि रघुनाथ सचिव संवादू ❋ भयउ सपरिजन बिकल निषादू।
कह सुमन्त पुनि भूप सन्देशू ❋ सहि न सकिहिं सिय विपिन कलेशू॥

श्रीराम और सुमन्त का संवाद सुनकर परिवारी जनों सहित निषाद बड़े दुखी हुए। फिर सुमन्त ने राजा का यह सन्देश कहा कि सीता वन के दुःख को न सह सकेंगी—

जेहि विधि अवध आव फिरि सीया❋सोइ रघुनाथ तुमहिं करनीया।
नतरु निपट अवलम्ब विहीना ❋ मैं न जियब जिमि जल बिन मीना॥

इसलिए हे राम! जिस प्रकार भी सीता लौट चलें, आपको वही करना उचित है। नहीं तो नितान्त निराश्रय (बे सहारा) हो जाने से जल विहीन मछली की तरह मैं (राजा दशरथ) नहीं जी सकूँगा।

विनती भूप कीन्ह जेहि भाँती ❋ आरति प्रीति न सो कहि जाती।
पितु सन्देश सुनि कृपानिधाना ❋ सियहिं दीन्ह सिख कोटि विधाना॥

हे राम! महाराज ने जिन करुणा और प्रेम भरे शब्दों में यह विनय की है, उसे कहा नहीं जा सकता। पिता का सन्देशा सुन दयानिधान श्री राम सीताजी को अनेक प्रकार से समझाने लगे कि—

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू ❋ फिरहु तौ सब कर मिटहि खभारू।
सुनि पति वचन कहत वैदेही ❋ सुनहु प्राणपति परम सनेही॥

हे सीते! यदि तुम लौट जाओ तो सासु, श्वसुर, गुरु और प्यारे परिवार का सब क्षोभ (दुःख) मिट जाये। पति के वचन सुन सीता बोलीं—हे परम स्नेही प्राणपति सुनिये—

प्रभु करुणामय परम विवेकी ❋ तन तजि रहत छाँह किमि छेंकी।
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई ❋ कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई॥

हे प्रभो! हे दयालो! आप तो बड़े ज्ञानी हैं—भला शरीर को छोड़ कर उसकी छाया का अलग से कोई अस्तित्व रह सकता है? क्या सूर्य को छोड़कर प्रकाश तथा चन्द्रमा को छोड़कर चांदनी कहीं जा सकती है?

पतिहिं प्रेममय विनय सुनाई ※ कहति सचिव सन गिरा सुहाई।
तुम पितु ससुर सरिस हितकारी ※ उतर देउँ फिरि अनुचित भारी।।

पति को ऐसी प्रेमपूर्ण विनय सुनाकर सीताजी मन्त्री से सुहावनी वाणी बोलीं—आप पिता और श्वसुर के समान हितैषी हैं, आपको प्रत्युत्तर देना भी अत्यधिक अनुचित है।

दोहा— आरतिवश सम्मुख भयउँ विलग न मानहु तात।
आरज सुत*पद कमल बिन, बादि जहाँ लगि नात।।

हे तात ! आपत्ति की दशा में मुझे सम्मुख होकर उत्तर देने के लिये बाध्य होना पड़ा, आप बुरा न मानें। (निवेदन यह है कि) बिना आर्य पुत्र के चरण कमल देखे जितने भी नाते हैं, वे व्यर्थ है।

दोहा— सासु ससुर सन मोर हित, विनय करब परि पाँय।
मोर शोच जनि करिय कछु, मैं वन सुखी सुभाय।।

हे पूज्यप्रवर ! मेरी ओर से सासु एवं श्वसुरजी के चरणों को छूकर प्रार्थना करना कि वे मेरी ओर से कुछ भी चिन्ता न करें, मैं वन में सब प्रकार से सहज ही सुखी हूँ।

सुनि सुमन्त सिय शीतल बानी ※ भयो विकल जिमि फणि मणि हानी।
सूझ न नयन सुनै नहिं काना ※ कहि न सकै कछु अति अकुलाना।।

सीता के शीतल वचन सुमकर सुमन्त ऐसे दुःखी हुए जैसे मणि की हानि से सर्प। वे ऐसे व्याकुल हो गये कि न तो उन्हें आँखों से कुछ देख पड़ता है, न कानों से सुन पड़ता और न कुछ कहने में आता है।

राम प्रबोध कीन्ह बहु भाँती ※ तदपि होय नहि शीतल छाती।
राम लषण सिय पद शिर नाई ※ फिरेउ वणिक जिमि मूल गँवाई।।

---

* आरजसुत=आर्य पुत्र—इस शब्द का प्रयोग बताता है कि गोस्वामी तुलसीदास के समय तक भी काव्य एवं साहित्य में सर्वत्र 'आर्य' शब्द का ही

श्रीराम ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया तो भी सुमन्त के हृदय को शान्ति नहीं मिलती। अन्त में सुमन्त (मन्त्री) श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के चरणों में शिर झुकाकर यों लौटे जैसे कोई व्यापारी पूँजी खोकर घर को चले।

दीन वचन गुह कह कर जोरी ※ विनय सुनिय रघुकुलमणि मोरी।
नाथ साथ रह पन्थ दिखाई ※ करि दिन चारि चरण सेवकाई॥

(सुमन्त के चले जाने पर) निषाद ने बड़े विनम्र शब्दों में हाथ जोड़ कर कहा—हे रघुकुल-मणि राम! मेरी विनय सुनिये। हे नाथ! मैं आपके साथ रह कर मार्ग बताऊँगा और चारदिन (कुछ समय) आपके चरणों की सेवा कर सकूँगा—

सहज सनेह राम लखि तासू ※ सङ्ग लीन्ह गुह हृदय हुलासू।
तब प्रभु भरद्वाज पहँ आये ※ करत दण्डवत मुनि उर लाये॥

श्रीराम ने निषाद का स्वाभाविकप्रेम देखकर उन्हें साथ ले लिया जिससे निषाद का हृदय उत्साह से भर गया। (वहां से चलकर) श्रीराम ने महर्षि भारद्वाज के आश्रम पर पहुँच मुनि के चरणों में अभिवादन किया। मुनि ने उन्हें हृदय से लगा लिया।

कुशल प्रश्न करि आसन दीन्हे※पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे।
कन्द मूल फल अंकुर नीके ※ दिये आनि मुनि मनहुं अमीके॥

मुनि ने कुशल पूछ आसन दे पूजा (सत्कार) करके अपने पूर्ण प्रेम का परिचय दिया। फिर मानो अमृत के समान कन्द, मूल, फल और सुन्दर अँखुए मुनि ने उन्हें दिये। विशेष—पूजा का अर्थ है यथा योग्य सत्कार।

शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। स्पष्ट है कि हमारा प्राचीन जातीय नाम 'आर्य' है, हिन्दू नहीं।

२ सुमन्त एवं सीता के संवाद से रामायण काल में पर्दा प्रथा का निषेध भी स्पष्ट हैं। हाँ, सीताजी की विनय शीलता और लज्जालुता वह तो नारी का भूषण है।

दोहा— राम कीन्ह विश्राम निशि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लषण जन, मुदित मुनिहि शिर नाइ ॥

श्री राम ने वहाँ रात्रि को विश्राम किया और प्रातः प्रयाग में स्नान करके सीता, लक्ष्मण और निषाद सहित मुनि को शिर झुकाकर अभिवादन करके प्रसन्न मन आगे प्रस्थान किया।

दोहा— छाँह करहिं घन विबुधगण, वर्षहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि वन विहँग मृग, राम चले मग जाहिं ॥

(सम्पूर्ण वन प्रदेश और प्रकृति देवी मानो राम का स्वागत करने को प्रस्तुत हैं।) बादल छाया करते, विद्वत्गण अपने आशीर्वाद रूप पुष्पों से प्रसन्न हो-हो वर्षा करते हैं और श्रीराम पर्वत, वन, पक्षीगण और हरिणों को देखते हुए मार्ग में बढ़े चले जाते हैं।

जानी श्रमित सीय मनमाहीं ❋ घरिक विलम्ब कीन्ह वटछाहीं।
मुदित नारि नर देखहिं शोभा❋ रूप अनूप देखि मन लोभा ॥

(मार्ग चलते) मन में में यह जानकर कि सीताजी थक गई हैं, घड़ी भर बरगद की छाया में विश्राम करने लगते हैं। स्त्री-पुरुष मन को लुभाने वाली अनुपम सुन्दरता और शोभा को देखकर प्रसन्न होते हैं।

सीय समीप ग्राम तिय जाहीं ❋ पूंछत अति सनेह सकुचाहीं।
राजकुँवर दोउ सहज सलोने❋इनते लहि द्युति मरकत सोने ॥

गाँव की स्त्रियां सीता जी के समीप जाकर बड़े स्नेह और संकोच से पूछती हैं, (हे देवि !) ये दोनों राजकुमार स्वभाव से ही सुन्दर हैं मानों नीलम और सोने ने इन्हीं से शोभायें पाई हैं।

कोटि मनोज लजावन हारे ❋ सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी ❋ सकुचि सीय मन महँ मुसकानी ॥

हे सुमुखि ! करोड़ों कामदेवों को लजाने वाले ये तुम्हारे कौन हैं, कहो तो ? यह स्नेहमयी कोमल वाणी सुनकर सीताजी सकुचीं और मन में हंसीं। (यहाँ अतिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है।)

सहज सुभाव सुभग तनु गोरे * नाम लषण लघु देवर मोरे।

बहुरि वदन विधु अञ्चल ढाँकी * पिय तन चितै भौंह कर बाँकी।।

सीता बोलीं—गोरे शरीर और सुन्दर स्वभाव वाले लक्ष्मण मेरे छोटे देवर हैं। फिर चन्द्र रूपी मुख पर अञ्चल ढँक कर बांकी भौंह करके प्रियतम को ओर देखा—

खंजन मंजु तिरीछे नयनन * निज पति कहेउ तिन्हिं सिय सयनन।
भईं मुदित सब ग्राम वधूटी * रंकन रतन राशि जनु लूटी।।

और खञ्जन (पक्षी) की सी तिरछी आंखों से सीताजी ने संकेत से अपने पति (श्रीराम) को बताया। गांव की सब स्त्रियां (सीता के इस सरल-सौम्य व्यवहार से) ऐसी प्रसन्न हुईं मानो दरिद्रियों को रत्नों का ढेर मिल गया हो।

दोहा-- यहि विधि रघुकुल कमल रवि मग लोगन सुख देत।
जाहिं चले देखत विपिन, सिय सौमित्र समेत।।

इसी प्रकार से रघुवंश रूपी कमल के लिये सूर्य के समान श्री राम लक्ष्मण और सीताजी सहित मार्ग के लोगों को सुख देते और वनों को देखते हुए (आगे बढ़े हुए) चले जाते हैं।

देखत वन सर शैल सुहाये * वाल्मीकि आश्रम प्रभु आये।
राम दीख मुनिवास सुहावन * सुन्दर गिरि कानन जल पावन।।

वन, तालाब और सुन्दर पर्वतों को देखते हुए श्री राम मुनिवर वाल्मीकि के आश्रम पर आये। सुन्दर पहाड़, वन ओर पवित्र जल से युक्त मुनि का आश्रम श्रीराम को बड़ा सुहावना प्रतीत हुआ।

मुनि कहँ राम दण्डवत कीन्हा * आशीर्वाद विप्रवर दीन्हा।
कन्द मूल फल मधुर मँगाये * सिय सौमित्र राम फल खाये।।

श्रीराम ने मुनिवर का अभिवादन किया, द्विजोत्तम वाल्मीकि ने उन्हें आशीर्वाद दिया। पश्चात् अतिथि सत्कार में कन्द, मूल, और मधुर फल प्रस्तुत किये। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी ने सानन्द उन्हें खाया।

तब कर कमल जोरि रघुराई ॐ बोले वचन श्रवण सुखदाई।
अब जहँ राउर आयसु होई ॐ मुनि उद्वेग न पावहिं कोई ॥

तत्पश्चात् कमल समान हाथों को जोड़कर श्रीराम ने कानों को सुख देने वाले वचन कहे—हे मुनिराज ! अब जहाँ आपकी आज्ञा हो, और कोई कष्ट न पावे वहाँ जाकर रहूँ।

कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक ॐ आश्रम कहौं समय सुखदायक।
चित्रकूट गिरि करहु निवासू ॐ तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ॥

तब मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि बोले—हे सूर्यवंश के स्वामी ! समय (ऋतु) के अनुसार सुख देने वाला आश्रम कहता हूँ। आप चित्रकूट पर्वत पर वास कीजिये, वहाँ आपको सब सुविधा रहेगी।

अत्रि आदि मुनिवर तहँ वसहीं ॐ करहिं जोग जप तप तन कसहीं।
चलहु सफल श्रम सब कर करहू ॐ राम देहु गौरव गिरिवरहू ॥

वहां अत्रि आदिक श्रेष्ठ मुनि रहते हैं जो कि शरीर संयम रूप तप के साथ योग साधना एवं जप आदि अनुष्ठान करते हैं। हे राम ! वहाँ चलिये, (उनके सत्सग से लाभ उठाकर) सबका श्रम सार्थक कीजिये और अपने निवास से इस श्रेष्ठ पर्वत को भी गौरव प्रदान कीजिये।

चित्रकूट रघुनन्दन छाये ॐ समाचार सुनि सुनि मुनि आये।
आवत देखि मुदित मुनिवृन्दा ॐ कीन्ह दण्डवत रघुकुल चन्दा ॥

श्रीराम के चित्रकूट निवास का समाचार सुन-सुनकर मुनिलोग वहां आये। मुनियों को आते देख रघुवंश में चन्द्रमा के समान श्रीराम ने प्रसन्न मन उन सबका अभिवादन किया। (श्री राम का यह सौजन्य आचरणीय है)

---

* तन कसहीं" का अर्थ शरीर को आग से तपाना या इन्द्रियों को सुखाना एवं नष्ट करना आदि समझना भूल की बात होगी। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रयों का संयम ही यहां उपयुक्त अर्थ है। यही तप है। तपस्या का अर्थ भगवान् की दिव्य देन इन्द्रियों को नष्ट करना नहीं है। "तपो द्वन्द्व सहनम्" धर्म मार्ग में आने वाले कष्टों को हँसते-हँसते सहना पर धर्म से विचलित न होना ही सच्चा 'तप' है।

जब ते आइ रहे रघुनायक * तब ते भो वन मङ्गलदायक।
फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना*मंजु ललित वर बेलि विताना॥

जब से श्री राम ने आकर निवास किया, तब से वह वन बड़ा आनन्द-दायक लगने लगा। अनेक प्रकार के वृक्ष फूल और फल रहे हैं तथा अति सुन्दर और श्रेष्ठ वेलों के वितान तने हैं।

दोहा—नीलकण्ठ कलकण्ठ शुक, चातक चक्र चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं विहँग, श्रवण सुखद चितचोर॥

नील कण्ठ (मोर, आदि) कोकिला, तोता, पपीहा, चकवा चकोर आदि पक्षी भांति-भाँति की बोलियां बोलते हैं जो कानों को सुखदायक और चित्त को आकर्षित करने वाली हैं।

यहि विधि प्रभु वन वसहिं सुखारी * खग मृग सुर तापस हितकारी।
कहेउँ राम वन गमन सुहावा * सुनहु सुमन्त अवध जिमि आवा।

इस प्रकार मृग (पशु) पक्षी, विद्वानों और तपस्वी साधकों के हितकारक श्री राम वन में सुख पूर्वक निवास करते हैं। श्रीराम के वन गमन का सुन्दर वृत्तान्त कहा अब जिस प्रकार सुमन्त अयोध्या में पहुंचे सो सुनिये।

वचनन आव हृदय पछिताई * अवध काह मैं देखव जाई॥
पुँछिहहिं जबहिं लषण महतारी * कहिहौं कवन सन्देश सुखारी॥

(अयोध्या लौटते हुए) सुमन्त को कोई वचन नहीं आता अर्थात् कोई विचार नहीं सूझता, (रह-रह कर) यह पछितावा (पश्चात्ताप) मन में आता है कि अब अयोध्या में जाकर क्या देखना होगा? हा! जब लक्ष्मण-माता पूछेंगी तब उन्हें कौनसा सुखद सन्देशा दूँगा ?

राम जननि जब आइहि धाई * सुमिरि वच्छ जिमि धेनु लवाई।
सुनत लषण सिय राम सन्देशू * तृण सम तन परिहरिहिं नरेशू॥

और जब श्रीराम माता कौशल्या जी दौड़कर आवेंगी जैसे बछड़े को देखकर गाय दौड़ती है (हे विधाता! तब मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा?) और

राजा तो राम-लक्ष्मण और सीता के वन में ही रह जाने के सन्देश को सुनकर निश्चय ही शरीर को छोड़ देंगे !

यहि विधि करत पन्थ पछितावा ॐ तमसा तीर तुरत रथ आवा।
पैठत नगर सचिव सकुचाई ॐ जनु मारेसि गुरु ब्राह्मण गाई ॥

इसी प्रकार से सम्पूर्ण रास्ते में पश्चात्ताप करते सुमन्त का रथ तमसा नदी के किनारे आ पहुँचा। सुमन्त नगर में प्रवेश करते हुए ऐसे सकुचते हैं मानों उन्होंने गुरु या विद्वान् ब्राह्मण अथवा गाय की हत्या की हो।

अवध प्रवेश कीन्ह अँधियारे ॐ पैठ भवन रथ राखि दुवारे।
नगर नारि नर व्याकुल कैसे ॐ निघटत नीर मीन गण जसे ॥

अन्ततः सुमन्त ने अँधेरा हो जाने पर नगर में प्रवेश किया तथा रथ को द्वार पर रखकर स्वयं भवन में गये। नगर के स्त्री पुरुष (राम रहित रथ को देखकर) कैसे व्याकुल हो रहे हैं, जैसे पानी घट जाने से मछलियाँ।

भूप सुमन्त लीन्ह उर लाई ॐ बूड़त कछु अधार जनु पाई।
सहित सनेह निकट बैठारी ॐ पूंछत राउ नयन भरि वारी।

राजा ने सुमन्त को हृदय से लगा लिया, मानो डूबते को कुछ सहारा मिला। प्रेम सहित पास में बिठलाकर राजा नेत्रों में जल भर कर पूछने लगे।

राम कुशल कहु सखा सनेही ॐ कहँ रघुनाथ लषण बैदेही।
आनेहु फेरि कि वनहि सिधाये ॐ सुनत सचिव लोचन जल छाये ॥

हे मित्र ! हे प्यारे ! राम (आदि) की कुशलता कहो और बताओ कि राम, लक्ष्मण और सीता कहाँ हैं ? उन्हें लौटा लाये या वे वन को चले गये ? यह सुनते ही सुमन्त की आँखों में जल छा गया।

दोहा— सखा राम सिय लषण जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब, प्राण कहौं सति भाउ ॥

हे मित्र ! जहाँ राम, लक्ष्मण और जानकी हैं वहां मुझे पहुँचाओ, नहीं तो मैं सत्य कहता हूँ कि प्राण अब चला चाहते हैं।

सचिव धीर धरि कह मृदु बानी ※ महाराज तुम पण्डित ज्ञानी ।
जन्म मरण जग दुख सुख भोगा ※ हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा ।।

सुमन्त तब धैर्य धरकर कोमल वचन कहते हैं—महाराज ! आप तो पण्डित और ज्ञानी हैं । हे देव ! संसार में जन्म-मरण, सुख-दुःख का भोग, हानि-लाभ तथा प्रिय का मिलन और वियोग जो भी होता है—

काल कर्म वश होहिं गुसाईं ※ बरबस रैन-दिवस की नाईं ।
सुख हर्षहिं जड़ दुख बिलखाहीं ※ दोउ सम धीर धरहिं मनमाहीं ।।

हे स्वामिन् ! यह सब (ईश्वर की व्यवस्था के आधीन) स्वकर्मानुसार कर्म के परिपाक काल में अवश्य ही होता है जैसे कि रात-दिन बरबस होते हैं । मूर्ख सुख में प्रसन्न और दुःख में विकल होते हैं पर धैर्यवान् मन में दोनों को समान मानते हैं ।

विकल विलोकि मोहिं रघुवीरा ※ बोले मधुर वचन धरि धीरा ।
तात प्रणाम तात सन कहेऊ ※ बार बार पद पंकज गहेऊ ।।

हे राजन् ! चलते समय श्रीराम ने मुझे बहुत व्याकुल देखकर, धैर्य धारण कर यह मधुर शब्द कहे थे—हे तात ! पिताजी के चरण कमल बार-बार छूकर उन्हें मेरा नमस्ते निवेदन करना । (और कहना—)

छन्द—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं ।
प्रतिपालि आयसु कुशल देखन पांय फिरि पुनि आइहौं ।।
जननी सकल परितोष करि परि पांय करि बिनती घनी ।
'तुलसी' करेहु सोइ यतन जेहि विधि कुशल रह कोशल धनी ।।

हे पिता ! आपकी कृपा से मैं वन में सब सुख पाऊँगा और आज्ञा पालन कर सकुशल पुनः आकर चरण दर्शन करूँगा । सब माताओं को भी पाँव पकड़ कर समझाते हुए विनती करना कि वे सब वही उपाय करें जिससे राजा सानन्द रहें ।

सो०—गुरु सन कहब सन्देश, बार बार पद पद्म गहि ।
करब सोइ उपदेश, जेहि न शोच मोहिं [illegible]

और बार-बार गुरुदेव के चरण कमल पकड़ कर निवेदन करना कि वे वही उपदेश करें जिससे महाराज मेरा सोच न करें।

सुनत सुमन्त वचन नर नाहू ❋ परेउ धरणि उर दारुण दाहू।
तलफत विषम मोह मन मापा ❋ मांजा मनहुं मीन कहं व्यापा ।।

सुमन्त के वचन सुनते ही राजा हृदय में अत्यंत दुःख लिए पृथ्वी पर गिर पड़े। मन में अमित मोह व्यापने से वे ऐसे तलफते हैं मानो मछली को प्रथम वर्षा के जल का फेना सताता हो।

कौशल्या नृप दीख मलाना ❋ रवि कुल रवि अथवत जिय जाना
उर धरि धीर राम महतारी ❋ बोली वचन समय अनुहारी ।।

कौशल्या ने राजा को म्लान (कान्ति-हीन) देखा तो मन में समझ लिया कि सूर्य वंश का सूर्य अब अस्त हुआ चाहता है। राम-माता तब धैर्य धारण कर समयानुसार वचन बोलीं—

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू ❋ राम वियोग पयोधि अपारू।
कर्णधार तुम अवधि समाजू ❋ चढेउ सकल प्रिय वणिक समाजू

हे नाथ ! यह समझकर मन में विचार कीजिये कि राम का विरह अथाह समुद्र है। आप खेने वाले हैं, चौदह वर्ष की अवधि जहाज है जिस पर सब प्रिय जन एवं व्यापारी आदि (नागरिक) चढ़े हैं।

धीरज धरिय तो पाइय पारू ❋ नाहिं त बूढ़त सब परिवारू।
जो जिय धरिय विनय यह मोरी ❋ राम लषण सिय मिलहिं बहोरी।

इस स्थिति में आप धैर्य धारण करे तो पार पाइयेगा नहीं तो पूरा परिवार डूब जायिगा। यदि आप मेरी इस विनय को हृदय में धारण करेंगे तो फिर राम, लक्ष्मण और जानकी आकर मिलेंगे।

दो०—प्रिया वचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचेउ शीतल वारि ।।

प्रिय रानी (पत्नी) के कोमल वचन सुनकर राजा ने आंखें खोलकर ऐसे भाव से देखा मानो तड़फती हुई व्याकुल मछली को शीतल जल के छींटे लगे हों।

तापस अंध शाप सुधि आई ※ कौशल्यहि सब कथा सुनाई।
भयउ विकल बरणत इतिहासा ※ राम रहित धिक जीवन आसा ।।

तभी राजा को अन्धे तपस्वी (श्रवणकुमार के पिता) का शाप स्मरण हो आया। वह सम्पूर्ण कथा कौशल्या को सुनाई कि किस प्रकार शेर के धोके में पितृभक्त श्रवणकुमार का वध उनके हाथों हुआ और तब उसके अन्धे माता-पिता ने पुत्र शोक में प्राण त्यागने का शाप दिया। यह इतिहास कहते-कहते राजा विकल हो उठे और बोले कि अब राम के वियोग में जीवन की आशा को धिक्कार है।

हा रघुनन्दन प्राण पिरीते ※ तुम बिन जियत बहुत दिन बीते
हा जानकी लषण हा रघुवर ※ हा पितु हित चित चातक जलधर

हा प्राण प्यारे राम ! तुम्हारे बिना जीते बहुत दिन हो गये। हा जानकी ! हा लक्ष्मण !! हा पिता के हितकारी, पिता के चित्त रूपी पपीहा के लिये बादल रूप प्यारे राम !!

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुपति विरह राउ गये सुरधाम ।।

श्री राम के वियोग में हा राम ! हा राम !! हा राम !!! कहते-कहते राजा परलोक वासी हो गये।

शोच विकल सब रोवहिं रानी ※ रूप शील बल तेज बखानी।
विलपहिं विकल दास अरु दासी ※ घर घर रुदन करहिं पुरवासी ।।

महाराज के रूप, शील, बल और तेज का वर्णन करके रानियाँ दुखी हो-होकर रोती हैं। दास और दासियाँ विलाप करते हैं तथा नगरवासी घर-घर में रो रहे हैं।

तेल नाव भरि नृप तनु राखा ※ दूत बुलाइ बहुरि मुनि भाखा।
धावहु वेगि भरत पहं जाहू ※ नृप सुधि कतहुँ कहेउ जनि काहू

(सभी को शान्त करते हुए) मुनिवर वशिष्ट ने नाव में तेल भरवा कर राजा के शरीर को रखवा दिया। फिर दूत को बुलाकर कहा कि भरत के पास शीघ्र दौड़कर पहुँचो परन्तु राजा का मृत्यु-समाचार कहीं किसी से न कहना।

दो०—एहि विधि सोचहिं भरत मन धावन पहुँचे जाय ।
गुरु अनुशासन श्रवण सुनि चले महेश+ मनाय ॥

इसी प्रकार (अयोध्या की भाँति ही) उधर (मनोविज्ञान के अनुसार) भरत भी मन में शोक मग्न से रहते हैं । इसी बीच दूत जा पहुँचे । गुरु आज्ञा सुनकर सबके महान् स्वामी परमात्मा का स्मरण करके (अयोध्या को) चल दिये ।

चले समीर बेगि रथ हाँके ॥ लांघत शैल सरित बन बांके ।
एक निमेष वर्ष सम जाई ॥ यहि विधि भरत अवध नियराई

भरत वायु के समान वेग से रथ को हांक कर पर्वत, नदी और दुर्गम वनों को लाँघते हुए चले । उनको एक क्षण भी वर्ष के समान लगता है । इस प्रकार भरत (बड़ी शीघ्रता से) अयोध्या के निकट पहुँचे ।

श्री हत सर सरिता वन बागा ॥ नगर विशेष भयानक लागा ।
हाट बाट नहिं जाइं निहारा ॥ जनु पुर दश दिशि लागि दवारी

श्री भरत को सभी तालाब, नदी, वन और बगीचे शोभाहीन प्रतीत हुए और सारा नगर बड़ा ही भयानक अनुभव हुआ । बाजार और मार्ग देखे नहीं जाते । मानो नगर की दसों दिशाओं में दावाग्नि लग गई हो ।

नगर नारि नर निपट दुखारी ॥ मनहु सबहि सब सम्पति हारी ।
आवत सुत सुनि केकय नन्दनि ॥ हरषी रवि कुल जलरुह चन्दनि ॥

भरत ने देखा कि अयोध्या के स्त्री और पुरुष अत्यधिक दुखी हैं, मानो सबकी सम्पूर्ण सम्पदा नष्ट हो गई हो । पुत्र का आगमन सुन सूर्यवंश रूपी कमल के लिए चाँदनी रूप कैकेई प्रसन्न हुई ।

सजि आरती मुदित उठि धाई ॥ द्वारहिं भेटि भवन लै आई
सुतहिं सशोच देखि मन मारे ॥ पूंछत नैहर कुशल हमारे ॥

+ महेश कोई अलग देवता नहीं है । पौराणिक बहुदेवता-वाद आर्य जाति के सर्वनाश का एक प्रमुख कारण है । महेश (महा+ईश) अर्थात् बड़ा स्वामी य सबका स्वामी परम पिता परमात्मा । ईश्वर के असंख्य नामों में से महेश भी एक नाम है ।

वह आरती सजाकर प्रसन्न हो उठ दौड़ी और द्वार पर ही मिलकर घर ले आई। पुत्र को शोक मग्न देखकर बे-मन से पूछती है कि मेरे नैहर में तो सब कुशल है ?

सकल कुशल कहि भरत सुनाई ※ पूंछी निज कुल कुशल भलाई।
कहु कहं तात कहां सब माता ※ कहं सिय राम लषन प्रिय भ्राता

भरत ने सब कुशल कह सुनाई और अपने वंश की कुशलता पूछी कि कहो पिता और सब मातायें कहां हैं तथा जानकी और प्रिय भाई राम और लक्ष्मण कहां हैं ?

दो०—सुनि सुत वचन सनेह मय कपट नीर भरि नैन।
भरत हृदय जनु शूल सम पापिन बोली बैन॥

पुत्र के हार्दिक प्रेम भरे वाक्य सुनकर, आंखों में कपट सहित जल भरकर भरत के हृदय के लिए काँटे के समान वचन वह पापिनी बोली—

तात बात मैं सकल संवारी ※ भइ मन्थरा सहाइ विचारी।
कछुक काज विधि बीच बिगारा ※ भूपति सुरपति पुर पग धारा॥

हे पुत्र ! (पीछे से) मैंने सब बात संभाल ली है, बेचारी मन्थरा ने बड़ी सहायता की। बस, ईश्वर ने बीच में एक काम ही बिगाड़ दिया, वह यह कि राजा मृत्यु को प्राप्त हो गये।

सुनत भरत भे विकल विषादा ※ जनु सहमेउ करि केहरि नादा।
तात तात हा तात पुकारी ※ परेउ भूमि तल व्याकुल भारी॥

यह सुनते ही भरत शोक में ऐसे दुखी हुए जैसे सिंह के भयङ्कर नाद से हाथी डर जाये। हा पिता, हा पिता ! कहते हुये वे व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

चलत न देखन पायउं तोहीं ※ तात न रामहिं सौंपहि मोही।
बहुरि धीर धरि उठेउ संभारी ※ कहु पितु मरण हेतु महतारी॥

हे पिता ! संसार से जाते हुए मैंने आपके दर्शन नहीं किये और आपने मुझे श्री राम को नहीं सौंपा। फिर धीरज धर संभल कर उठे और बोले कि हे मातः ! पिताजी के मरने का कारण तो बताइये।

सुनि सुत वचन कहत कैकेई ✽ मर्म पौंछि जनु माहुर देई ।
आदिहिं ते सब आपनि करणी ✽ कुटिल कठोर मुदित मन वरणी ।

पुत्र के वचन सुन कैकेई कहती हैं मानो घाव पौंछ कर उसमें जहर भरती हैं । आरंभ से लेकर कुटिल और कठोर कैकेई ने प्रसन्न मन से अपनी सब करतूत सुना डाली ।

दो०—भरतहिं बिसरेउ पितु मरण सुनत राम वन गौन ।
हेतु आपनो जानि जिय थकित रहे गहि मौन ।।

श्री राम के वन गमन का महा दुःखद समाचार सुनते ही भरत पिता के मृत्यु समाचार के दुःख को भूल गये और इस सब अनर्थ का कारण हृदयमें अपने को ही समझ थकित से चुप रह गये ।

धीरज धरि भरि लीन्ह उसासा ✽ पापिन सबहिं भांति कुल नासा ।

फिर धीरज धर कहा—हे पापिन ! तूने सब प्रकार से वंश का नाश किया है ।

जो पै कुरुचि रही असि तोही ✽ जनमत कस नहिं मारेसि मोही ।
पेड़ काटि तैं पल्लव सींचा ✽ मीन जियन हित वारि उलीचा ।

यदि तेरी ऐसी ही दुष्ट इच्छा थी तो जन्म लेते ही मुझे मार क्यों नहीं दिया ? यह तो तूने वृक्ष काट कर पत्तों को सींचने अथवा मछली के जीने के लिए पानी को उलीचने (निकाल देने) जैसा काम किया है ।

दो०—हंस वंश दशरथ जनक राम लषण से भाइ ।
जननी तू जननी भई बिधि सों कहा बसाइ ।।

कहां तो हमारा वंश— सूर्य वंश, दशरथ जैसे पिता और राम-लक्ष्मण जैसे भाई हैं और कहां तेरे समान माता ? सच है ईश्वर की व्यवस्था में किसी का कुछ चारा नहीं है ।

जबते कुमति कुमति जिय ठयऊ ✽ खण्ड खण्ड होइ दय न गयऊ ।
वर मांगत मन भई न पीरा ✽ जरि न जीह मुंह परेउ न कीरा ।।

हे दुर्बुद्धे ! जब से तेरे जी में ऐसी कुमति आकर बसी, तभी तेरा हृदय खण्ड खण्ड क्यों न हो गया ? (आश्चर्य है कि) वर मांगते समय तेरे

मन में पीड़ा भी नहीं हुई। जीभ न जली और मुंह में कीड़ा भी नहीं पड़े !

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्हीं ※मरण काल विधि+मति हर लीन्हीं
विधिहु न नारि हृदय गति जानी ※ सकल कपट अघ अवगुण खानी ×

लगता है मृत्यु समय में ईश्वर ने राजा की बुद्धि को हर लिया था, अन्यथा आश्चर्य है कि राजा ने तेरा विश्वास कैसे कर लिया ? (वस्तुतः) ईश्वर भी स्त्री के हृदय की गति को नहीं जान सकता। स्त्री का हृदय सभी प्रकार से छल, पाप और अवगुणों की खान है।

विशेष—यहां नारी जाति मात्र के प्रति गो० तुलसीदास की यह उक्ति उचित नहीं है।

दो०—राम विरोधी हृदय ते प्रकट कीन्ह विधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहौं कछु तोहि ॥

मुझे ईश्वर ने श्रीराम के विरोधी हृदय से पैदा किया है। भला, मेरे बराबर पापी और कौन हैं ? ऐसी दशा में तुझे दोष देना तो व्यर्थ है।

सुनि शत्रुहन मातु कुटिलाई ※ जरे गात रिस कछु न बसाई।
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई ※ वसन विभूषन विविध बनाई ॥

माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्न के अङ्ग क्रोध से जलते हैं, परन्तु कुछ बस नहीं चलता। उसी समय कुबड़ी (मंथरा) अनेक प्रकार के कपड़े और गहनों से सजकर वहाँ आई।

+ विधि = ब्रह्मा। संसार का रचयिता होने से ईश्वर का एक नाम ब्रह्मा है। ब्रह्मा— कोई अलग देवता है, पौराणिकों की यह बड़ी विचित्र और भयङ्कर कल्पना है।

× नारी को सब प्रकार से पाप और अवगुण की खान बताना—गोस्वामी जी को शायद बहुत प्रिय है। इसे तो उनका अन्याय ही कहा जा सकता है। पर शायद इसमें तुलसीदास जी का उतना दोष नहीं। मध्ययुग में नारी के प्रति जनसामान्य की व्यापक धारणा का प्रतिविम्ब ही यह, तथा इसी प्रकार की अन्य चौपाइयाँ हैं।

पुनि रिपुहन लखि नख शिख खोंटी॥ लगे घसीटनि धरि धरि झोंटी ।
भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई ॥ कौशल्या पहं गे दोउ भाई ॥

शत्रुघ्न उसे नख से चोटी तक दुष्टा जानकर अर्थात् उसे समस्त अनर्थ का मूल जानकर चोटी पकड़ कर घसीटने लगे। तब दयालु भरत ने उसको छुड़ा दिया। तदुपरान्त दोनों भाई कौशल्या के पास गये।

दो०—मलिन वसन विवरण विकल कृश शरीर दुख भार ।
कनक वरण वर बेलि वन मानहु हनी तुषार ॥

माता कौशल्या मैले वस्त्र पहने तेजहीन, व्याकुल और दुःख भार से अत्यन्त ही दुर्बल हो रही हैं, मानो सोने के समान रङ्ग वाली श्रेष्ठ बेल पर वन में पाला पड़ गया हो।

भरतहिं देखि मातु उठि धाई ॥ मूर्छित अवनि परी गहराई।
देखत भरत विकल भये भारी ॥ परे चरन तन दशा विसारी ॥

भरत को देखते ही कौशल्या उठ दौड़ी और मूर्छित होकर बड़े जोर से पृथ्वी पर गिर पड़ी। यह देखकर भरत बहुत ही दुःखी हुये और देह की दशा भुलाकर चरणों में गिर पड़े।

मातु तात कहं देहु दिखाई ॥ कहं सिय राम लषण दोउ भाई।
केकइ कत जनमी जग मांझा ॥ जो जनमी भइ कहे न बांझा ॥

और बोले—हे माता! पिताजी कहाँ हैं, मुझे दिखा दीजिये और सीता एवं दोनों भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं? री कैकेई! तूने संसार में क्यों जन्म लिया और यदि जन्मी थी तो बाँझ क्यों न हुई?

को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी ॥ गति असि तोरि मातु जेहि लागी
पितु सुरपुर वन रघुकुल केतू ॥ मैं केवल अनरथ कर हेतू ॥

हे माता! तीनों लोकों में मेरे समान कौन सा अभागा है कि जिसके कारण से आपकी ऐसी दशा हुई। पिता का स्वर्गवास और श्री राम का वन-गमन— इस सब अनर्थ का कारण मैं ही हूँ।

सरल सुभाय मातु उर लाये ॥ अति हित मनहुँ राम फिरि आये
माता भरत गोद बैठारे ॥ आंसू पोंछि मृदु वचन उचारे ।

माता ने भरत को सहज ही बड़े प्यार से हृदय से लगा लिया मानो राम ही लौट आये। कौशल्या ने भरत को गोदी में बिठलाया और आंसू पोंछ कर कोमल वचन कहे—

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू ※ कुसमय समुझि शोक परिहरहू।
काहुहि दोष देहु जनि ताता ※ भा मोहि सब विधि वाम विधाता

हे वत्स ! अब धीरज धरो और कुसमय समझ शोक को छोड़ो। हे वत्स ! किसी को भी दोष मत दो, ईश्वर सब प्रकार से मेरे प्रतिकूल हुआ हैं— अर्थात यह सब मेरे दुष्कर्मों का फल है।

भांति अनेक भरत समुझाये ※ कहि विवेकमय वचन सुनाये।
छल विहीन सुचि सबल सुबानी ※ बोले भरत ; जोरि जुग पानी।।

माता कौशल्या ने भरत को अनेक प्रकार से समझाया और ज्ञानयुक्त वचन कहे। (तदुपरान्त) भरत दोनों हाथ जोड़कर छल से रहित पवित्र और सरल उत्तम वाणी बोले—

जो अघ मात पिता गुरु मारे ※ गाइ गोठ महि गुरु पुर जारे।
जो अघ तिय बालक वध कीन्हे ※ मोत महीपहिं माहुर दान्हें।।

हे माता ! जो पाप माता, पिता और गुरु के मारने से तथा गोंशाला पृथ्वी और गुरुकुल (विद्यालय आदि) जलाने से होता है। स्त्री और बालक के वध से तथा मित्र और राजा को जहर देने से जो पाप होता है।

जे पातक उप पातक अहहीं ※ कर्म वचन मन भव कवि कहहीं
ते पातक मोहि होहिं बिधाता ※ जो यह होय मोर मत माता।।

ससार में कवियों (विद्वानों) ने मन, वचन और कर्म से जितते भी छोटे बड़े पाप कहें हैं, हे माता ! उन सबके दुष्फल को मैं पाऊं यदि इसमें मेरा कुछ भी मत हो।

दो०-जे परिहरि हरि हर चरण भजहिं भूतगण घोर।+
तिनकी गति मोहि देहु विधि जो जननी मत मोर।।

+ पौराणिक त्रिदेव कल्पना के अनुसार हरि का अर्थ है— विष्णु हर = महादेव। किन्तु सर्वत्र व्यापक होने और सबका पालन कर्ता होने से

हे माता ! एक ईश्वर की भक्ति छोड़कर भूत प्रेतादि का पाप पूर्ण भयङ्कर अनुष्ठान करने वाले जिस दुर्गति को प्राप्त होते हैं, वह मुझे प्रभु दें, यदि मेरा ऐसा मत हो ।*

बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं * पिशुन पराय पाप कहि देहीं ।
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी * वेद विदूषक विश्व विरोधी ।।

जो वेद (वेदोपदेश या विद्या) को बेचते और धर्म के नाम पर व्यापार करते हैं [यहाँ धर्म के नाम पर जनता को दुहने या शोषण करने वाली अनेक-अनेक दुकानों का स्पष्ट खण्डन किया गया है ।] जो चुगलखोर और दूसरों के पाप कहते फिरते हैं, जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय, क्रोधी, वेद-निन्दक और संसार के बैरी हैं—

लोभी लम्पट लोलुप चारा * जे ताकहिं परधन परदारा ।
जे नहिं साधुसंग अनुरागे * परमारथ पद विमुख अभागे ।।

और जो लोभी, कामी या ठग और अजितेन्द्रिय हैं, जो पराये धन और पराई स्त्री पर आँख लगाते हैं, जो सज्जन पुरुषों (आर्यजनों) के सत्संग के

ईश्वर को ही 'विष्णु' कहते हैं । इसी प्रकार माता, पिता, अतिथि आचार्य और विद्वान्— इन चैतन्य पंच देवों तथा सूर्य, चन्द्र वायु, अग्नि, जल आदि इन जड़ देवों—सभी का स्वामी या देवाधिदेव होने से ईश्वर का नाम महादेव है ।

+ २— एक बड़ी ही महत्वपूर्ण बात इस दोहे में है । पौराणिक बहुदेववाद को मानते हुए भी तुलसीदास जी ने यहाँ भूत-प्रेत पूजा—अर्थात् तान्त्रिक पूजा, स्याने-दिवाने, गण्डा-तावीज, किसी के सिर आना, सैयद, पीर मसानी, ताजिया, ऊत-भूत, आले-दिवाले आदि सभी वाम मार्ग कालीन और मुस्लिम प्रभाव की द्योतक पूजा पद्धतियों का प्रकारान्तर से तीव्रतम खण्डन करते हुए इन्हे 'घोर'—महा अनर्थकारीं और घोर दुर्गति का कारण बताया है । क्या अपने को राम भक्त कहने वाले भक्ति के नाम पर प्रचलित इन दुराचारों से बचेंगे ?

प्रेमी नहीं है और जिस अभागे को (मनुष्य शरीर पाकर भी) मोक्ष कामना नहीं है—

तजि श्रुति पन्थ वाम पथ चलहीं ॐ वंचक विरचि वेष जग छलहीं।
पावहुँ मैं तिनकी गति घोरा ॐ जो जननी यह सम्मत मोरा ॥

जो (परम पवित्र) वैदिक सद्धर्म के सन्मार्ग को छोड़कर (मनघड़न्त) वाम मार्ग (देवी पर भैंसे बकरे काटना आदि पशु बलि, नर बलि, शराब चढ़ाना आदि) या उलटे [वेद विरुद्ध] अवैदिक मत पन्थों पर चलते हैं और जो ठग का वेश बनाकर (धर्म के नाम पर) संसार को [धर्म भीरु भोली जनता को] छलते हैं। हे माता ! इन दुष्कर्मियों की जो घोर दुर्गति होती है वह मुझे प्राप्त हो, यदि इस [दुःखद काण्ड] में मेरा मत हो।+

दो०—मातु भरत के वचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम, सदा वचन मन काय ॥

माता सत्यवादी और सरल स्वभाव वाले भरत जी के वचन सुनकर कहती है—हे पुत्र ! तुम तो सदा मन, वचन और कर्म से रामजी के प्रिय हो

+ (१) यहाँ वेद विरोधी मत पन्थों के अनुयायियों और इन मत पन्थों के नाम पर जनता का रक्त चूसने वाले धर्मध्वजी पोपों और वाममार्गियों की घोर दुर्गति की ओर स्पष्ट सङ्केत है।

(२) वाम का अर्थ है उलटा—पवित्र वेदों के सत्यार्थ की ऋषि प्रणीत आर्ष शैली को छोड़कर मिथ्यार्थ करना। उसके आधार पर गोमेध [इन्द्रजित होना] अश्वमेध [राष्ट्रजित होना या राष्ट्र सेवा का व्रत लेना] नरमेध [मनुष्य मात्र की सेवा का व्रत] आदि के सत्यार्थ को छोड़कर कल्पित देवी देवताओं पर पशुओं और मनुष्यों को काटना, सोमपान [प्रभु भक्ति रसपान] का सत्यार्थ भुला शराब पीना, पिलाना—और यह सब काम वेद और धर्म का नाम लेकर करना— वाम मार्ग है। या फिर ईश्वर, पुनर्जन्म और वेदों का विरोध करना वाम मार्ग है। वाम का अर्थ नारी (स्त्री) भी है। स्त्री को केन्द्र बनाकर दुराचार और व्यभिचार को ही 'धर्म' की संज्ञा देना, वाममार्ग है।

विधु विष चुवै स्रवै हिम आगी * होइ वारिचर वारि विरागी ।
भये ज्ञान वरु मिटे न मोहू * तुन रामहिं प्रतिकूल न होहू ॥

हे पुत्र ! भले ही चन्द्रमा से जहर चूने लगे, वर्फ आग उगलने लगे, जल-जन्तु जल से प्रेम छोड़ दें और वेद ज्ञान होने पर भी मोह न मिटे पर तुम राम के विरोधी नहीं हो सकते ।

मत तुम्हार यह जे जड़ कहहीं * ते सपनेहु सुख सुयश न लहहीं ।
अस कहि मातु भरत समुझाये * थन पय स्रवहिं नयन जल छाये ॥

प्रिय पुत्र ! जो मूर्ख इसे तुम्हारा मत बताता हैं, वह स्वप्न में भी सुख और सुकीर्ति नहीं पा सकता । ऐसा कह माता ने भरत को समझाया । प्रेम की अधिकता के कारण कौशल्या माँ के स्तनों से दूध बहने लगा और उनके नेत्र अश्रु पूरित हो गये । ×

वामदेव वशिष्ठ मुनि आये * सचिव महाजन सकल बुलाये ।
मुनि बहुभाँति भरत उपदेशे * कहि परमारथ वचन सँदेशे ॥

[इसी बीच] मुनिवर वशिष्ठ और वामदेव आ गये । उन्होंने मन्त्री और सब महाजनों (प्रमुख नागरिकों) को भी बुला लिया । मुनि ने अध्यात्म विषयक् उपदेश करके भरत को अनेक प्रकार से सान्त्वना दी (और सामयिक कर्तव्य की प्रेरणा की) ।

नृप तन वेदविहित अन्हवावा * परम विचित्र विमान बनावा ।
चन्दन अगर भार बहु आये * अमित अनेक सुगन्ध सुहाये ॥

[मुनि आज्ञा से] वैदिक विधि से राजा के अन्त्येष्टि संस्कार क्रम में प्रथम राजा के शव को स्नान कराया गया और उसके लिए बहुत सुंदर शव-

---

× भरत-शपथ के इस प्रसङ्ग को महर्षि वाल्मीकि ने और भी विशदता से प्रस्तुत किया है । वहां भरत यह शपथ भी लेते हैं कि दैनिक अग्निहोत्र न करने वाले, यज्ञ कराके दक्षिणा न देने वाले गृहस्थी को, कुपात्र को दान देने वाले को, प्रातः और सायं की वेला में सोने वाले को और भृत्यों से काम कराके वेतन न देने वाले को जो पाप लगता है, वह मुझे लगे यदि आर्य राम के वन जाने में मेरी सम्मति हो ।

शैया (विमान) को तैयार किया गया। बड़ी मात्रा में चन्दन, अगर और अनेक प्रकार की सुगंधित सामग्री को जुटाया गया, [यहाँ गोस्वामी जी ने घी का उल्लेख नहीं किया पर वहुत मात्रा में घी भी लिया गया]

यहि विधि दाह क्रिया सब कीन्ही ※ विधिवत न्हाइ तिलाञ्जलि दीन्ही।
भये विशुद्ध देइ सब दाना ※ धेनु वाजि गज वाहन नाना ।।

इस प्रकार सबने विधिवत् [वेद मन्त्रों द्वारा] दाह क्रिया [अंत्येष्टि संस्कार] को सम्पन्न किया। तदुपरांत स्नान करके शोक को तिलांजलि दी अथवा राजा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए परमेश ओ३म् के चरणों में राजा के लिए शाँति कामना की। और तव अग्निहोत्र द्वारा गृह शुद्धि कराके गाय, घोड़े, हाथी और अनेक प्रकार की सवारियाँ दान में दीं। ×

सुदिन शोधि मुनिवर तहँ आये ※ सचिव महाजन सकल वुलाये।
बैठे राज सभा सब जाई ※ पठये बोलि भरत दोउ भाई ।।

मुनिवर वशिष्ठ तब एक सुंदर सुहावना दिन देखकर वहाँ आये। उन्होंने समस्त मंत्रि-परिषद और प्रमुख नागरिकों को बुलाया। वे सभी राज सभा में जाकर बैठे और वहीं भरत शत्रुघ्न को बुला लिया।

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ ।।

× अंत्येष्टि सस्कार की इस पद्धति में गोस्वामी जी ने न तो गङ्गा-यमुना आदि नदियों में अस्थि प्रवाह द्वारा पाप-मोचन [घोर से घोर पापों से छुट्टी पाने के सस्ते से सस्ते नुस्खे] की चर्चा की है और न गरुड़ पुराण के पाठ श्रवण अथवा चारपाई एवं शैया दान और बारह ब्राह्मण, तेरहवीं (मृतक भोज के घोर सामाजिक पाप) आदि का कोई विवेचन ही किया है। प्रतीत होता है कि यह सव पाप—पाखण्ड तुलसीदास जी के भी बाद का है। स्पष्ट है कि अन्त्येष्टि संस्कार १६ संस्कारों में अन्तिम संस्कार होने से बाद में मृतक के लिए कोई कर्त्तव्य कर्म शेष नहीं रह जाता। हां, श्रद्धानुसार विद्वानों को दान-पुण्य और लोकोपकार का कोई कार्य किया जावे तो वह अत्युत्तम और करणीय है। यथा शक्ति करना ही चाहिये।

तब मुनिराज ने विकल होकर (भरत को सम्बोधित करते हुए) कहा-हें भरत ! सुनिये, भाग्य बड़ा प्रबल है। (कर्म करने में तो मानव स्वतन्त्र है परन्तु कर्मानुसार) हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश (के रूप में कर्मफल की व्यवस्था) ईश्वर के आधीन है [इसमें मानव परतंत्र हैं]+

अस विचारि केहि दीजिय दोषू ※ वृथा काहि पर कीजिय रोषू।
तात विचार करहु मन माहीं ※ शोच योग्य दशरथ नृप नाहीं॥

ऐसा विचार कर किसे दोष दिया जाय और फिर किस पर व्यर्थ ही क्रोध किया जाय ? हे तात ! अपने मन में विचार करो कि राजा दशरथ शोच करने योग्य नहीं।

शोचिय विप्र जो वेद विहीना× ※ तजि निज धर्म विषय लव लीना।
शोचिय नृपति जो नीति न जाना ※ जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना॥

शोक करने योग्य वह ब्राह्मण है जो ज्ञान से शून्य है तथा वेद प्रचार

+ स्वकर्मानुसार हर एक को कर्म फल भोगना ही पड़ता है। इसी का नाम भाग्य है। हां, इस भाग्य का निर्माता मानव स्वयं है। स्मरण रहे—भाग्यवाद पुरुषार्थ की महिमा का पोषक है, विनाशक नहीं। ईश्वर ने पुरुषार्थ द्वारा हमें अपनी 'भावी' (भावी जीवन) या भाग्य का निर्माण स्वयं करने का अवसर दिया है। हां, पूर्वकृत कर्मों का फल अवश्यमेव प्रत्येक को भोगना ही पड़ता है। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्' फल भोगने में भी ईश्वर भक्त या धर्मात्मा होने का लाभ इतना अवश्य है कि सच्चा ईश्वर भक्त दुःखों को ईश्वर की स्वाभाविक न्याय व्यवस्था का परिणाम समझ कर ईश्वर और भाग्य अथवा अन्य किसी को दोष न देकर प्रसन्नता पूर्वक सहन करता है और ईश्वर भक्ति अथवा प्रभु निष्ठा से सहन शक्ति बढ़ जाने से कठिन से कठिन दुःख की अनुभूति नहीं होती। जैसा कि श्री राम, लक्ष्मण और सीता आदि को वन में घोर से घोर कष्टों का अनुभव उतना नहीं हुआ अथवा कम हुआ।

× स्पष्ट है वेद ज्ञान से रहित ब्राह्मण पतित है। दूसरे शब्दों में वह 'ब्राह्मण' कहलाने का अधिकारी नहीं है। महर्षि मनु के शब्दों में 'स शूद्रवत् वहिष्कार्यः' उसे द्विजत्व से च्युत करके शूद्र संज्ञा दे देनी चाहिए।

रूप अपना धर्म छोड़कर विषय वासना में लिप्त है। वह राजा (क्षत्रिय) शोचनीय है जो नीति-शून्य है तथा जिसे अपनी प्रजा (देश-वासी) प्राणों के समान प्रिय नहीं है।

शोचिय वैश्य कृपण धनवानू ॐ जो न अतिथि शिव भक्त सुजानू।
शोचिय शूद्र विप्र अपमानी ॐमुखर मान प्रिय ज्ञान गुमानी + ॥

वह वैश्य जो धनवान होकर भी कंजूस तथा जो अतिथि और कल्याण करने वाले भगवान (शिव) का भक्त नहीं, शोक करने योग्य है। इसी तरह वह शूद्र (श्रमिक) शोक करने योग्य है जो विद्वान् ब्राह्मणों का निरादर करता है, वाचाल है (श्रम से जी चुराता है), अभिमानी और अपनी ही समझ का घमण्ड करता है।

शोचिय पुनि पतिवञ्चक नारी ॐ कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी।
शोचिय वटु निज व्रत परिहरई ॐ जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई ॥

हे भरत ! वह स्त्री शोच्य है जो पति के साथ छल करती है तथा कुटिल, कर्कशा और मर्यादा रहित या स्वेच्छाचारिणी है। इसी प्रकार वह ब्रह्मचारी शोचनीय है जो अपने व्रत को छोड़ देता है तथा गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता।

दो०—शोचिय गृही जो मोहवश करै धर्म पथ त्याग।
शोचिय यती प्रपञ्चरत, विगत विवेक बिराग॥

वह गृहस्थी शोच्य है जो अज्ञान वश अपने धर्म (कर्तव्य-पथ) का त्याग कर देता है। [गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन श्रेष्ठतम धर्म है] तथा वह सन्यासी जो सद्ज्ञान को छोड़कर मिथ्या जालों में रत है (स्वयं फंसता तथा अन्यों को फंसाता है) वह शोक करने योग्य है।

वैखानस सोई शोचन योगू ॐ तप विहाय जेहि भावहिं भोगू।
सब विधि शोचिय पर अपकारी ॐ निज तन पोषक निर्दय भारी॥

+ इन चौपाइयों में चारों वर्णों के कर्तव्य पर सुंदर प्रकाश पड़ता है। यह स्मरणीय है कि वर्ण व्यवस्था का आधार गुण, कर्म और स्वभाव है, जन्म नहीं।

वह वैखानस (वानप्रस्थी) निश्चय ही शोच्य है जो तपस्या (साधना-पथ) को छोड़कर भोगों से प्रेम करता है।* दूसरों का अपकार करने वाला तथा अपनी ही शरीर पालना में लीन अन्यों के प्रति घोर निर्दयी बना (नर-राक्षस) तो सब प्रकार से शोचनीय है।

शोचनीय नहिं कोशलराऊ * भुवन चारि दश प्रकट प्रभाऊ।
अस सुनि समझि शोच परिहरहू * शिर धरि राउ रजायसु करहू॥

हे भरत ! कोशलराज दशरथ शोच करने योग्य नहीं हैं (क्योंकि जीवन भर उन्होंने 'स्वधर्म' पालन किया) उनका प्रभाव चौदह भुवनों में अर्थात् सर्वत्र विख्यात है। ऐसा सुन और समझ कर तुम शोक त्यागो और राजा की आज्ञा शिरोधार्य करो।

राउ राजपद तुम कहँ दीन्हा * पिता वचन फुर चाहिय कीन्हा।
नृपहिं वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा* करहु तात पितु बचन प्रमाणा॥

राजा ने तुमको राज कार्य सौंपा है, तुमको तुरन्त पिता के वचनों को सत्य सिद्ध करना चाहिये। राजा को वचन प्यारे थे, प्राण नहीं। अतः हे तात ! पिता के वचनों को प्रामाणिक कीजिये।

कौशल्या धरि धीरज कहहीं * पूत पथ्य गुरु आयसु अहहीं।
वन रघुपति सुरपुर नर नाहू * तुम यहि भाँति तात कदराहू॥

कौशल्या धैर्य धारण कर कहती हैं— हे पुत्र ! गुरुजनों की आज्ञा पथ्य के समान सेवनीय (आचरणीय) होती है। प्रिय पुत्र ! राम वन में हैं

---

* यहाँ ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और सन्यासी— चारों आश्रमियों के कर्तव्यों की ओर सङ्केत किया गया है। स्पष्ट है कि वर्णाश्रम धर्म का पालन ही धर्म का सच्चा स्वरूप है। गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण और आयु तथा अन्य अपेक्षित योग्यताओं के अनुसार आश्रम का निश्चय होता है। प्रत्येक मानव का कोई एक वर्ण और एक आश्रम होता है। उसी वर्ण और आश्रम के अनुसार हर व्यक्ति का अपना 'स्वधर्म' होता है। इस स्वधर्म का जो पालन नहीं करता वह शोच करने योग्य है। उसका मानव जीवन धारण करना व्यर्थ है।

और राजा दशरथ परलोक सिधार गये, फिर तुम भी कर्तव्य से इस प्रकार भागते हो ?

परिजन प्रजा सचिव सब अम्बा ※ तुमहीं सुत सब कहँ अबलम्बा।
शिरधर गुरु आयसु अनुसरहू ※ प्रजा पालि परिजन दुख हरहू।।

हे पुत्र ! कुटुम्बी, प्रजा, मन्त्रिगण और सब मातायें— इन सबके एक मात्र तुम्हीं अवलम्ब (सहारे) हो। अतः गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करो और प्रजा को पालकर कुटुम्बियों का दुःख हरो।

छं०–सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भये।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत विरह उर अंकुर नये।।
सो दशा देखत समय तेहि बिसरी सबहिं सुधि देह की।
'तुलसी' सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की।।

माता की सरल और सरस वाणी सुनकर भरत व्याकुल हो उठे। उनके कमल रूपी नेत्रों से जल गिरता हैं, उसी से वे हृदय प्रदेश में वियोग के नये अंकुरों को सींचते हैं। उस समय सभी इस दशा को देखकर बेसुध से हो गये। 'तुलसीदास' कहते हैं कि सहज प्रेम की इस सीमा [पराकाष्ठा] को सभी सराहने लगे।

सो०—भरत कमल कर जोरि, धर्म धुरन्धर धीर धरि।
वचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं।।

धर्म धुरीण श्री भरत कमल समान हाथों को जोड़कर धीरज धरकर अमृत में डुबाये गये जैसे शीतल वचनों द्वारा सभी को उचित उत्तर देते हैं—

मोहिं उपदेश दीन्ह गुरु नीका ※ प्रजा सचिव सम्पत सबही का।
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा ※ अवसि शीश धरि चाहिय कीन्हा

मुझे गुरुजी ने बहुत उत्तम उपदेश दिया है, जोकि सम्पूर्ण प्रजा और मन्त्रि परिषद द्वारा भी समर्थित है। फिर माता ने उचित आज्ञा दी है, जिसे अवश्य ही शिर पर धारण करना चाहिये।

कहहुँ सत्य सुनि सब पतियाहू ※ चाहिय धर्मशील नर नाहू ।
मोहिं राज हठ देइहहु जबहीं ※ रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥

[परन्तु] सच कहता हूँ, सुनकर सब विश्वास कीजिये कि राजा धर्मशील होना चाहिए। आप सब जिस क्षण मुझे हठ से राज्य देंगे, उसी समय पृथ्वी पाताल में चली जायेगी ।

परिहरि राम सीय जग माहीं ※ कोउ न कहहिं मोर मत नाहीं ।
सो मैं सुनब सहब सुखमानी ※ अन्तहु कीच जहाँ जहँ पानी ॥

संसार में राम और जानकी को छोड़कर कोई न कहेगा कि राम के वन गमन में मेरी सम्मति नहीं है। सो मैं सुख मानकर सब सुनूंगा और सहूँगा, क्योंकि जहाँ-जहाँ पानी होता हैं, अन्त में कीचड़ भी वहीं होती है।

विशेष—यहां श्रीराम के प्रति भरत की अपूर्व निष्ठा देखने को मिलती है !

डर न मोर जग कहहि कि पोचू ※ परलोकहु कर नाहिन सोचू ।
एकहि बड़ि उर दुसह दवारी ※ मोहि लगि भे सिय राम दुखारी

मुझे यह डर नहीं हैं कि संसार मुझे बुरा कहेगा और न मुझे परलोक की चिंता है। हृदय में एक ही असह्य दावाग्नि लगी है कि मेरे कारण से ही श्री राम-सीता को दुःखी होना पड़ा ।

आन उपाय मोहिं नहिं सूझा ※ को जियकी रघुवर बिनु बूझा ।
एकहिं आँक यहै मनमाहीं ※ प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं ॥

मुझे अब कोई उपाय नहीं सूझता। मेरे चित्त की दशा श्री राम के बिना कौन जान सकता हैं ? [यहाँ भ्रातृप्रेम की पराकाष्ठा दर्शनीय है, राम के प्रति भरत की कैसी सहज, अविचल और निष्कपट आस्था है] भरत कहते हैं— मेरे मन में अब यही एक बात आती है कि प्रातःकाल श्री रामजी के समीप जाऊंगा ।

तुम पै पाँच मोर भलमानी ※ आयसु आशिष देहु सुबानी ।
जेहि सुनि विनय मोहिं जन जानी ※ आवहिं वहुरि राम रजधानी ॥

और आप सब पंच भी मेरा भला इसी में मानकर सुन्दर शब्दों में

मुझे आज्ञा और ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि जिससे श्री राम मुझे अपना सेवक मानकर मेरी प्रार्थना स्वीकार कर फिर राजधानी में लौट आवें।

दो०—जद्यपि जन्म कुमातु ते, मैं शठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागि हैं, मोहि रघुवीर भरोस॥

यद्यपि मैं कुमाता से उत्पन्न हुआ हूँ तथा शठ और सदैव ही दोष युक्त हूँ तो भी मुझे पूरा भरोसा है कि अपना ही जानकर श्री राम मुझे त्यागेंगे नहीं।

भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे ※ राम सनेह सुधा जनु पागे।
भरतहि कहहि सराहि सराही ※ राम प्रेम मूरति जनु आही॥

मानो राम प्रेम के अमृत से सने हुए भरत के वचन सभी को प्रिय लगे। सभी भरत की बार-बार सराहना करने लगे और कहते हैं कि भरत तो मानो राम प्रेम की प्रतिमूर्ति ही हैं।

चलब प्रात लखि निर्णय नीके ※ भरत प्राण प्रिय भे सबही के।
कहहि परस्पर भा बड़ काजू ※ सकल चलन कर साजहि साजू॥

प्रातः चलने के निश्चय को पक्का समझ, भरत सभी को प्राणों के समान प्रिय लगे। सब कहते हैं कि यह बड़ा उत्तम कार्य हुआ और सभी साथ चलने की तैयारी करते हैं।

कहेउ लेहु सब तिलक समाजू ※ वनहिं देव मुनि रामहिं राजू।
अरुन्धती अरु अग्नि समाजू ※ रथ चढ़ि चले प्रथम मुनि राजू॥

(भरत ने) राजतिलक का सब सामान साथ ले चलने के लिए कहा ताकि मुनि वशिष्ठ वन में ही श्री राम को राज दे देवें। मुनिवर वशिष्ठ अरुन्धती (मुनि वशिष्ठ की पत्नी) तथा अग्निहोत्र × का सब सामान लेकर प्रथम रथ पर चढ़े।

× स्पष्ट है कि रामायण काल में सभी दैनिक संध्योपासना तथा अग्निहोत्र करते थे। मुनिवर वशिष्ठ किसी शालग्राम की बटिया, किसी देवी-देवता का चित्र या गोपाल जी और बाँके बिहारीजी की मूर्ति साथ में नहीं ले गये। नित्य कर्म के सम्पादन के लिये उन्होंने एकमेव अग्निहोत्र का सामान ही साथ में लिया।

नगर लोग सब सजि-साजि जाना * चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना।
शिबिका सुभग न जाइँ बखानी * चढ़ि चढ़ि चलत भई सब रानी॥

समस्त अयोध्यापुरी के निवासियों ने सवारियाँ सजा-सजाकर चित्रकूट को प्रस्थान किया। अकथनीय सुन्दर पालकियों में चढ़-चढ़कर रानियां भी चल दीं।

दो०—सौंपि नगर शुचि सेवकन्ह, सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि राम सिय प्रेमु तब, चले भरत दोउ भाइ॥

ईमानदार सेवकों को अयोध्या सौंप और आदर सहित सबको आगे चलाकर राम और सीता के प्रेम का स्मरण कर दोनों भाई भी चल दिये।

तमसा प्रथम दिवस करि बासू * दूसर गोमति तीर निवासू।
सई तीर बसि चले बिहाने * शृङ्गवेरपुर सब नियराने॥

(सबने) पहले दिन तमसा नदी के किनारे वास किया और दूसरे दिन गोमती के तट पर रहे। फिर सई नदी के किनारे वास कर प्रातः ही चलकर सब लोग शृङ्गवेरपुर के समीप जा पहुँचे।

समाचार सब सुना निषादा * हृदय विचार करै सविषादा।
कारण कवन भरत वन जाहीं * है कछु कपट भाव मन माहीं॥

यह सब समाचार निषाद ने सुना तो दुखी होकर मन में विचारने लगा कि भरत के वन में जाने का क्या कारण हो सकता है? लगता है उसके मन में कुछ कपट है।

जो पै जिय न होति कुटिलाई * तौ कत लीन्ह संग कटकाई।
जानहिं सानुज रामहिं मारी * करहुँ अकण्टक राज सुखारी॥

यदि भरत के मन में कुटिलता नहीं होती तो वह साथ में इतनी बड़ी सेना क्यों ले जाते? भरत ने मन में सोचा होगा कि वन में राम और लक्ष्मण को मारकर निष्कंटक राज्य करूंगा।

भरत न राजनीति उर आनी * तब कलङ्क अब जीवन हानी॥
का आचरज भरत अस करहीं * नहिं विष बेलि अमिय फल फरहीं

भरत ने हृदय में राजनीति के तत्व को नही विचारा। पहले कलङ्क को लिया और अब उनके जीवन की हानि होगी [राम के साथ युद्ध में मारे जायेंगे] पर भरत यदि ऐसा करते हैं तो इसमें आश्चर्य भी क्या है [हैं तो कैकेई के पुत्र ही] ? जहर की बेल पर अमृत फल नहीं लग सकते।

दो०—अस विचारि गुह ज्ञाति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवां सह बोरहु तरणि, कीजै घाटा रोहु॥

ऐसा विचार कर निषाद ने कुटुम्बियों से कहा— सब लोग सचेत हो जाओ। हथवाँ अर्थात् डाँड सहित नावें डुबादो और घाट-घाट रोक दो।

वेगिहि भाइ सजउ संजोऊ ※ सुनि रजाइ कदराहु न कोऊ।
बूड़ एक कह शकुन+ बिचारी ※ भरतहिं मिलिय न होइहि रारी॥

हे भाइया ! शीघ्र ही युद्ध की तैयारी करो। इस आज्ञा को सुन कोई डरो नहीं। तब एक वृद्ध [अनुभवी] पुरुष ने शकुन पूर्वक (अर्थात् गहराई से विचार कर) बताया [मेरा विश्वास है] कि युद्ध नहीं होगा, अतः आप भरत जी से मिलिये।

सुनि गुह कहा नीक कह बूढ़ा ※ सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा॥
लखब स्वभाव सनेह सुभाये ※ वैर प्रीति नहिं दुरै दुराये॥

यह सुन निषाद ने कहा कि वृद्ध महोदय ने बहुत अच्छा सुझाव दिया है। सहसा कोई कार्य करके मूर्ख पीछे पछताते हैं। (मैं भरत के) स्वभाव और स्नेह को ध्यान से देखूंगा। बैर और प्रेम छिपाये छिपते नहीं हैं।

+ शकुन का अभिप्राय अनुभव-जन्य गहन चिन्तन से है। प्रायः वृद्ध और अनुभवी जनों के इस प्रकार के निश्चय खरे [सही] उतरते हैं। इस प्रकार के अनुभव से कहे गये अथवा पूर्वापर का विचार कर गहन चिन्तन के उपरान्त बताये गये निर्णयों का फलित ज्योतिष के मायाजाल अथवा जन्म-पत्रक आदि से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

देखि दूर ते कहि निज नामू ※ कीन्ह मुनीसहिं दण्ड प्रनामू ।
राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा ※ चले उतार उमगत अनुरागा ।।

निषादराज ने मुनिवर वशिष्ठ को देखकर, अपना नाम बतलाया और दूर से ही अभिवादन किया । यह श्री राम के मित्र हैं, यह सुनते ही भरतजी ने रथ त्याग दिया और वे रथ से उतर कर प्रेम में उमगते हुए चले ।

दो०---करत दण्डवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेम न हृदय समाइ ।।

भरत ने निषाद को अभिवादन करते देख हृदय से लगा लिया । हृदय में प्रेम समाता नहीं है, मानो स्वयं लक्ष्मण जी से भेंट हो गई हो ।×

×लोक वेद सब भाँतिहि नीचा ※ जासु छांह छुइ लेइय सींचा ।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता ※ मिलत पुलक परिपूरित गाता ।।

यहां गोस्वामी जी ने गुह निषाद को लोक व्यवहार और वेदाज्ञा दोनों दृष्टियों से इतना नीच बताया है कि जिसकी छाया छू जाने से भी स्नान करना होता है, फिर निषाद को भरत अङ्क (गोद या भुजाओं) में भरकर प्रेम से पुलकित होकर जो मिल रहे हैं, इसका समाधान उन्होंने निम्न दोहे में प्रस्तुत किया है :—

स्वपच सबर खस जमन जड़ पांवर कोल किरात ।
रामु कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ।।

अर्थात् मूर्ख और पामर चाण्डाल, शबर, खस, यवन, कोल और किरात भी 'राम' नाम के कहते ही परम पवित्र और त्रिभुवन में विख्यात हो जाते हैं ।

(१) गोस्वामी जी द्वारा ऊंच-नीच और छूत-छात की विनाशकारी मान्यता को वेद समर्थित बताना सरासर गलत है । वेद माता का निर्देश है—'अज्येष्ठा सो अकनिष्टा सो सं भ्रातरो वावृधुः' 'समानी व आकूति०' 'समानी प्रपा सहवोन्नभागः०' आदि अनेक २ मंत्रों में मानव मात्र की समानता का सन्देश है । छूत छात का पाप तो कुछ सौ वर्ष पूर्व ही इस आर्य जाति को

दो० —प्रात क्रिया करि मातु पद बन्दि गुरुहि सिरु नाय।
आगे किये निषाद गन दीन्हेउ कटक चलाय॥

प्रातःकालीन नित्यकर्म (शौच, स्नान, व्यायाम, सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि) करके माताओं के चरणों में अभिवादन करके तथा गुरु वशिष्ठजी को शिर नवा भरत जी ने निषाद गणों को (मार्ग दिखाने के लिए) आगे कर लिया और सेना साथी-समूह) को चला दिया।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा ※ होइअ नाथ अस्व असवारा।
रामु पयादेहि पायं सिधाये ※ हम कहं रथ गज बाजि बनाए॥

उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं— हे नाथ ! आप घोड़े पर सवार हो लीजिये। (भरत उत्तर देते हैं —) श्रीराम तो पैदल गये हैं, फिर हमारे लिये रथ, घोड़े और हाथी बनाये हैं ? (यह कैसे संभव है ?)

सिर भर जाउं उचित अस मोरा ※ सब तें सेवक धर्म कठोरा।
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी ※ सब सेवक गन गरहिं गलानी।

लगा है, जिसने इसे सर्वनाश के निकट पहुँचा दिया है। एक भी वेद मंत्र इसका समर्थन नहीं करता।

(२) राम नाम की महिमा में इसी सन्दर्भ में कहा है— 'उलटा नामु जपत जग जाना। बालमीकि भये ब्रह्म समाना।' यह तो सब मनघढ़न्त कहानियाँ हैं। राम नाम की महिमा इस रूप में बताना तो पाप को प्रोत्साहन देना है और श्री राम के गौरव को घटाना है। राम नाम लेते-लेते भी हम महा पतन को प्राप्त क्यों हुए ? वास्तव में तो राम के पवित्र चरित्र का अनुशीलन अवश्य ही कल्याणकारी है। वह हमने इस बहक में छोड़ दिया है।

(३) बुराई से भी कभी २ अच्छाई निकल आती है। सो एक बात यहाँ भी बड़ी उत्तम मिल सकती है, वह हैं— शुद्धि विधान। रांम नाम लिवाकर यवनों तक को शुद्ध करने तक की बात यहां कही गई है। क्या हम शुद्धि और सङ्गठन को अपनाकर आर्य जाति को दृढ़ करेंगे ? यहाँ शुद्धि और सङ्गठन का समर्थन गोस्वामी जी द्वारा बड़े स्पष्ट शब्दों में किया गया है।

मुझे उचित तो यह है कि मैं सिर के बल चलकर जाऊं । सेवक का धर्म (सेवा धर्म) सबसे कठिन होता है । भरत जी की दशा देखकर और उनकी कोमल वाणी सुन कर सब सेवक गण ग्लानि के मारे गले जा रहे हैं ।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाये ※ भरद्वाज मुनिवर पहं आए ।
दण्ड प्रनामु करत मुनि देखे ※ मूरत मन्त भाग्य निज लेखे ।।

श्री राम के दिव्य गुणों को कहते-सुनते वे (प्रयाग स्थित) भारद्वाज मुनि के आश्रम पहुँचे । मुनिश्रेष्ठ ने उनको अभिवादन करते देखा और इसे अपना मूर्तिमान सौभाग्य समझा ।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे ※ दीन्ह असीस कृतारथ कीन्हे ।
सनहु भरत हम सब सुधि पाई ※ विधि करतब पर कछु न बसाई ।।

उन्होंने दौड़कर भरत को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया । (भरत के शील, संकोच को देखकर मुनि बोले—) प्रिय भरत ! सुनो, हमें स। खबर मिल चुकी हैं । प्रियवर ! ईश्वर की व्यवस्था में किसी का कुछ चारा नहीं है ।

दो०——करि प्रबोधु मुनिवर कहेंउ अतिथि प्रेम प्रिय होहु ।
कन्द मूल फल फूल हम देंहि लेहु करि छोहु ।।

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ ने भरत जी का समाधान करके कहा— अब आप लोग हमारे प्रिय अतिथि बनिये और कृपा करके कन्द-मूल, फल-फूल जो हमसे बन सके, स्वीकार कीजिये ।

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे ※ चले चित्रकूटहिं चित दीन्हे ।
राम सखा कर दीन्हे लागू ※ चलत देह धरि जनु अनुरागू ।।

[महर्षि भारद्वाज का आतिथ्य स्वीकार कर रात्रि निवास के उपराँत प्रातःकाल] मार्ग की पहचान रखने वाले— कुशल पथ-प्रदर्शकों को लेकर श्री भरतादि चित्रकूट को लक्ष्य बनाकर चल पड़े । भरतजी राम सखा गुह+

+ निषाद जन्म का दस्यु था किंतु आचरण की पवित्रता और विचारों की उच्चता से 'राम सखा' कहलाने का अधिकारी बन सका । वह

के हाथ में हाथ दिये ऐसे जा रहे हैं, मानो साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किये हो ।

नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया ※ प्रेम नेम ब्रतु धरमु अमाया ।
लखन राम सिय पंथ कहानी ※ पूंछत सखहिं कहत मृदु बानी ।।

न तो उनके पैर में जूते हैं और न सिर पर छाया है । उनका प्रेम नियम, व्रत और धर्म निष्कपट (सच्चा) है । वे निषाद से राम, लक्ष्मण और सीता जी के रास्ते की बातें पूछते हैं और वह कोमल वाणी से कहता हैं ।

दो०—किएं जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात ।
तस मगु भयउ न राम कहं जस भा भरतहि जात ।।

बादल छाया किये जा रहे हैं, सुख देने वाली सुंदर हवा बह रही हैं । भरत के जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा श्री राम को भी न हुआ था ।

दो०—चलत पयादे खात फल पिता दीन्ह तजि राज ।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आज ।।

श्री भरत पैदल चलकर, फलों को खाते हुए पिता के दिए राज्य को छोड़कर श्री राम को मनाने (वापिस लेने) के लिये जा रहे हैं । अतएव आज भरत के समान (आर्यवीर—श्रेष्ठ मानव) कौन है ?

वहां राम रजनी अवशेखा ※ जागीं सीय स्वप्न अस देखा ।
सहित समाज भरत जनु आये ※ नाथ वियोग ताप तनु ताये ।।

श्री राम और भरत सभी का समान रूप से प्रेम पात्र और घनिष्ठ आत्मीय हो सका । श्रीराम, भरत और मुनि वशिष्ठ आदि सभी ने उसे हृदय से लगाया । इसी प्रकार जन्म से क्षत्रिय विश्वामित्र ने 'ब्रह्मर्षि' की पदवी प्राप्त की । स्पष्ट है कि वर्ण व्यवस्था का आधार गुण, कर्म और स्वभाव है । छूत-छात, ऊंच नीच और मानव-मानव के बीच भेद की दीवाल खड़ी करने वाला जन्म-मूलक वर्ण व्यवस्था का सिद्धांत वेद विरुद्ध और महा विनाशकारी हैं ।

उधर रात्रि बीतने पर राम उठे, सीता भी जागीं तो उन्होंने ऐसा स्वप्न देखा कि मानो समाज सहित भरत जी आये हैं। श्री राम के वियोग में उनका शरीर सन्तप्त है।

सकल मलिन मन दीख दुखारी ॐ देखीं सासु आन अनुहारी।
सुनि सिय स्वप्न भरे जल लोचन ॐ भये शोच वश शोच विमोचन

सब सासों को मलिन मन,दीन-दुखी तथा और ही प्रकार का (विधवा) देखा। सबके शोक को दूर करने वाले श्रीराम सीता के स्वप्न को सुनकर शोक-मग्न हो गये तथा उनकी आँखों में जल भर आया।

छं०-सनमानि सुरमुनि बन्दि बैठे उत्तर दिशि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे विकल प्रभु आश्रम गये॥
तुलसी उठे अवलोकि कारण काह चित चक्रित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्ह आय तेहि अवसर कहे॥

श्रीराम, कुटी पर आये हुए विद्वानों और मुनियों की ससम्मान वंदना करके बैठे ही थे कि उत्तर दिशा की ओर आकाश में धूल दीख पड़ी। इसी बीच पक्षी और हिरण आदि व्याकुल हो बड़ी तेजी से भागकर आश्रम में आये। तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर श्री राम चकित होकर कारण पर विचार कर ही रहे थे कि कोल भीलों ने आकर उनको (भरत-आगमन) के सभी समाचार दिये।

दो०--सुनत सुमङ्गल बैन, मन प्रमोद तनु पुलक भर।
शरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल॥

इस मङ्गलमय समाचार को सुनकर श्रीं राम का मन प्रसन्नता से भर गया, शरीर पुलकित हो उठा तथा शरद ऋतु के कमल-समान नेत्रों में प्रेम के आँसू छलक आये।

बहुरि शोक वश भे सिय रमनू ॐ कारण कवन भरत आगमनू।
एक आइ अस कहा बहोरी ॐ सेन संग चतुरंग न थोरी॥

फिर श्री राम सोच में पड़ गए कि भरत के आने का क्या कारण हो

सकता हैं ? तभी एक ने आकर यह सूचना दी कि साथ में बहुत सी चतु-रङ्गिणी सेना भी है।

भरत सुभाउ समुझि मन माहीं ※ प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं
लषण लखेउ प्रभु हृदय खंभारी ※ कहत समय सम नीति विचारी ॥

[यह सुन श्री राम और भी शङ्कित हुए] पर भरत के स्वभाव को मन में समझ कर श्री राम का चित्त किसी स्थिति का निर्णय नहीं कर पा रहा। × लक्ष्मण जी ने जब श्री राम के हृदय को व्यथित अनुभव किया तो समयानुसार नीति पूर्ण वचन बोले—

विषयी जीव पाइ प्रभुताई ※ मूढ़ मोह वश होहिं जनाई ।
भरत नीतिरत साधु सुजाना ※ प्रभुपद प्रेम सकल जग जाना ॥

हे भ्रातः ! विषयी जीव ऐश्वर्य को पाकर अज्ञानवश अभिमानी होजाते हैं, यह सभी जानते हैं। भरत यद्यपि नीतिमान, सज्जन और सुजान हैं, आपके चरणों में भी उनका अत्यधिक प्रेम है, यह संसार जानता है।

तेऊ आजु राज पद पाई ※ चले धर्म मर्याद मिटाई ।
जो जिय होत न कपट कुचाली ※ केहि सुहात रथ वाजि गजाली ॥

[परन्तु] वे भी आज राज्य-पद पाकर धर्म की मर्यादा मिटाकर चले हैं। जो भरत के मन में कपट और कुचाल न होती तो रथ, घोड़े और हाथियों की पंक्ति (ऐसे समय में) किसे सुहाती ?

इतना कहत नीति रत भूला ※ रण रस विटप पुलक मिस फूला ।
उठि कर जोरि रजायसु माँगा ※ मनहु वीर रस सोवत जागा ॥

इतना कहते ही लक्ष्मण नीति का रहस्य भूल गये और वीर रस का वृक्ष रोमांच के बहाने फूल उठा (रोएं खड़े हो गये) । उठकर हाथ जोड़कर लक्ष्मण ने आज्ञा मांगी मानो सोता हुआ वीर रस जाग पड़ा हो।

आजु राम सेवक यश लेऊँ ※ भरतहिं समर सिखावन देऊँ ।
राम निरादर कर फल पाई ※ सोवहिं समर सेज दोउ भाई ॥

× यहां श्री राम के चित्त की यह स्थिति बताती है कि वे अल्पज्ञ जीवात्मा थे, सर्वज्ञ परमात्मा नहीं।

भरत को युद्ध में अच्छा पाठ सिखाकर आज मैं राम का सेवक होने का यश पाऊंगा और दोनों भाई— भरत, शत्रुघ्न— मृत्यु-शैया पर सोकर राम के निरादर का फल पायेंगे।

कही तात तुम नीति सुहाई ※ सबते कठिन राजमद भाई।
सुनहु लखण भल भरत सरीखा ※ बिधि प्रपंच महँ सुनान दीखा॥

तब श्री राम बोले— हे तात ! तुमने बड़ी सुंदर नीति की बात कही है। हें भाई ! राज का मद (सच में) सबसे कठिन है। पर हे भाई लक्ष्मण ! सुनो, ईश्वर की सम्पूर्ण सृष्टि में भरत के बराबर सज्जन मनुष्य न तो देखा है और न सुना है।

दो०--भरतहिं होइ न राजमद, विधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँक काँजी सीकरन्हि, क्षीर सिन्धु बिलगाइ॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव (इन त्रिदेव के) पद+ को पाकर भी भरत को राज्य का अभिमान नहीं हो सकता। क्या कभी खटाई की बूँदों से क्षीर सागर फट सकता है?

सुगुण क्षीर अवगुण जल ताता ※ मिलें रचे परपंच बिधाता।
भरत हंस रवि वंश तड़ागा ※ जनमि कीन्ह गुण दोस विभागा

हे भाई ! परमपिता परमात्मा ने सद्-गुण रूप दूध और अवगुण रूप जल को मिलाकर (गुण—दोषमय) इस विश्व प्रपंच को रचा है। हंस के समान भरत ने सूर्य वंश रूप तालाब में जन्म लेकर मानो गुण-दोष को अलग २ कर दिया है।

गहि गुण पय तजि अवगुण वारी ※ निज यश भरत कीन्ह उजियारी
जो न होत जग जन्म भरत को ※ सकल धर्मधुर धरणि धरत को

हे भाई ! भरत ने गुण रूपी दूध को लेकर और अवगुण रूपी पानी को छोड़कर (सर्वत्र) अपने यश का प्रकाश कर दिया है। प्रिय भाई ! इस

+ वस्तुतः यह तीन अलग २ देवता नहीं, एकही ईश्वर के गुण-कर्मानुसार अलग २ नाम हैं।

संसार में जो भरत का जन्म न हुआ होता तो पृथ्वी में सब धर्मों (सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों) का भार कौन बहन करता ?

विशेष—श्री राम की भरत के प्रति ऐसी सजीव आत्म-निष्ठा दर्शनीय एवं अनुकरणीय है ।

इहां भरत सब सहित सुहाये ※ मन्दाकिनी पुनीत अन्हाये ।
चले भरत जहँ सिय रघुराई ※ साथ निषादनाथ लघु भाई ॥

इधर सभी के सहित श्री भरत ने सुन्दर और पवित्र मंदाकिनी में स्नान किया । पश्चात वे निषादराज और शत्रुघ्न को साथ ले वहां को चले, जहां श्री राम सीता थे ।

राम वास वन सम्पति भ्राजा ※ सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ।
सचिव विराग विवेक नरेशू ※ विपिन सुहावन पावन देशू ॥

(भरत को प्रतीत हुआ कि) राम के रहने से वन में वैसे ही सम्पति शोभित है जैसे कि अच्छा राजा पाने पर प्रजा सुखी हो जाती है । (राम के आश्रित) इस वन का विवेक राजा और वैराग्य मन्त्री है तथा सुन्दर और पवित्र वन ही देश है ।

भट यम नियम शैल रजधानी ※ शान्ति सुमति शुचि सुन्दर रानी ।
सकल अङ्ग सम्पन्न सुराऊ ※ रामचरन आश्रित चित चाऊ ॥

यम-नियम योद्धा, चित्रकूट पर्वत राजधानी तथा शाँति उत्तम बुद्धि और पवित्रता ये रानियाँ है । सब अङ्गों से पूर्ण विवेक राजा राम के चरणों में आश्रित होने से प्रसन्न चित्त है ।

विशेष—यहां विवेक और श्रद्धा का समन्वय मननीय है ।

दो०—जीति मोह महिपाल दल, संहत विवेक भुवाल ।
करत अकण्टक राज पुर, सुख सम्पदा सुकाल ॥

विवेक राजा ने सेना सहित अज्ञान रूपी राजा को जीत लिया है जिस से उस प्रदेश में सुख, सम्पदा और सुकाल निष्कण्टक राज्य करते हैं ।

विशेष—यहां सद्-ज्ञान या सद्-विवेक की महिमा पर गंभीर चिन्तन अपेक्षित है । अज्ञान ही राष्ट्र का सबसे बड़ा शत्रु है । राष्ट्र में सुख, सम्पदा और

यतिवर लक्ष्मण
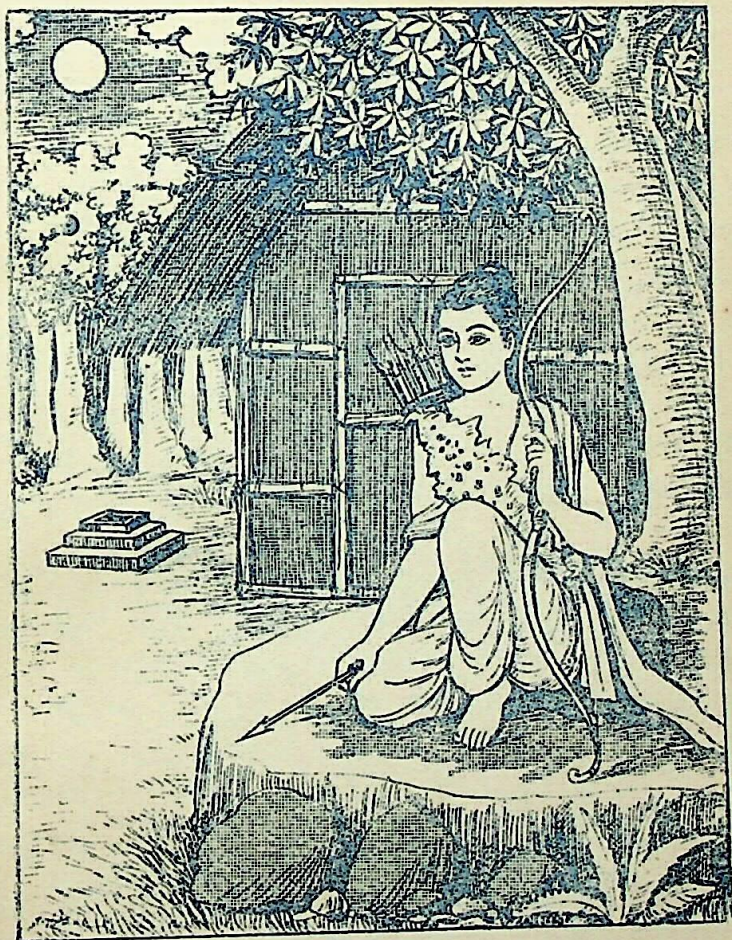
पञ्चवटी की छाया में है, सुन्दर पर्ण-कुटीर बना,
उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर धीर वीर निर्भीक मना,
जाग रहा यह कौन धनुर्धर, जब कि भुवन भर सोता है ?
भोगी कुसमायुध योगी-सा बना दृष्टिगत होता है ।
बना हुआ है जिसका प्रहरी, उस कुटीर में क्या धन है
जिसकी रक्षा में रत इसका तन है, मन है, जीवन है !

सुकाल के लिए तो विवेक का शासन जरूरी है। श्री राम की उपस्थिति से वह सारा वन प्रदेश ही एक आदर्श राज्य बन गया था। भरत ने राम के आश्रम की ओर बढ़ते ही इसका अनुभव किया।

तब निषाद ऊँचे चढ़ि धाई ❋ कहेउ भरत सन भुजा उठाई।
नाथ देखियत विटप बिशाला ❋ पाकरि जम्बु रसाल तमाला॥

(कुछ दूर आगे बढ़ने पर) निषाद ने दौड़कर ऊंचे चढ़कर भरत से भुजा उठाकर कहा— हे स्वामी ! जो वे पकरिया, जामुन, आम, और तमाल के बड़े भारी वृक्ष देख पड़ते हैं—

तिन तरुवरन मध्य वट सोहा ❋ मञ्जु विशाल देखि मन मोहा।
तेहि तरु सरित समीप गुसाई ❋ रघुबर पर्णकुटी तहें छाई॥

उन्हीं उत्तम वृक्षों के बीच एक विशाल और सुन्दर वट वृक्ष है, जिसे देखकर मन प्रसन्न होता है। उसी वृक्ष के नीचे श्री राम ने पर्णकुटी बनाई है।

तुलसी तरुवर विविध सुहाये ❋ कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषण लगाये
वट छाया वेदिका बनाई ❋ सिय निज पाणि सरोज बनाई॥

वहाँ अनेक प्रकार के तुलसी के वृक्ष शोभित हैं, जिनको कहीं २ सीता और कहीं लक्ष्मण ने लगाया है। बरगद की छाया में सीता जी ने अपने ही कर-कमलों से सुंदर यज्ञवेदी का निर्माण किया है (जहाँ वे सभी दैनिक अग्निहोत्रादि नित्यकर्म एवं सत्सङ्ग करते हैं।)

सखा समेत मनोहर जोटा ❋ लखेउ न लषण सघन वन ओटा।
भरत दीख प्रभु आश्रम पावन ❋ सकल सुमंगल सदन सुहावन॥

(भरत अब आश्रम के निकट आ पहुँचे हैं, जहाँ से) भरत को श्रीराम का पवित्र और सुहावना आश्रम, जो सम्पूर्ण कल्याणों का भन्डार है, स्पष्ट दीख रहा है, किंतु निषाद सहित भरत-शत्रुघ्न को सघन वन की ओट के कारण लक्ष्मण नहीं देख पारहे।

पाहि नाथ कहि पाहि गुसाई ❋ भूतल परेउ लकुट की नाईं।
वचन सप्रेम लषण पहिचाने ❋ करत प्रणाम भरत जिय जाने॥

(भरत दूर से ही श्री राम को देखते ही) हे नाथ ! हे स्वामिन् ! रक्षा कीजिये । ऐसा कहकर लाठी की तरह पृथ्वी पर गिर पड़े । लक्ष्मण ने प्रेमयुक्त वचन सुनकर पहिचान लिये और मन में जाना कि भरत प्रणाम करते हैं।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा ※ भरत प्रणाम करत रघुनाथा ।
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा ※ कहुँ पट कहुं निषङ्ग धनुतोरा ।।

(लक्ष्मण श्री राम के समीप जाकर) पृथ्वी में माथा झुकाकर सप्रेम बोले— हे रामजी ! भरत जी आपको प्रणाम करते है । यह सुन प्रेम से अधीर होकर श्री राम उठे तो वस्त्र कहीं, तरकस कहीं और धनुष-वाण कहीं गिर पड़े ।

दो०—बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरा सबहिं अपान

दयानिधान राम ने भरत को बरवस उठाकर हृदय से लगा लिया । उस समय भरत और राम का यह मिलन देख सब अपने को भूल से गये ।

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि, केवट भेंटेउ राम ।
भूरि भाग्य भेंटे भरत, लक्ष्मण किये प्रणाम ।।

श्री राम प्रेम सहित शत्रुघ्न को मिलकर निषाद को मिले तथा महा-भाग लक्ष्मण ने भरत से मिलते हुए सादर प्रणाम किया ।

भेंटेउ लषण ललकि लघु भाई ※ बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई ।
सानुज भरत उमगि अनुरागा ※ धरि शिर सिय पद पद्म परागा

तदुपरांत लक्ष्मण छोटे भाई (शत्रुघ्न) से ललक कर मिले, फिर निषाद को हृदय से लगा लिया । भरत ने तब शत्रुघ्न सहित उमड़ते हुए प्रेम के साथ सीता जी के चरण रूपी पराग अर्थात् सीता जी की चरण-धूलि को सिर पर धारण किया ।

शील सिन्धु सुनि गुरु अगमानू ※ सीय समीप राखि रिपुदमनू ।
चले सवेग राम तेहि काला ※ धीर धुरन्धर दीन दयाला ।।

शील के समुद्र, धर्म-धुरीण एवं दीनदयालु श्री राम ने जैसे ही गुरु (एवं माताओं आदि) के आने के विषय में सुना तो उसी समय सीता जी के पास शत्रुघ्न को रखकर वे बड़ी शीघ्रता से चले।

गुरुहिं देखि सानुज अनुरागे ※ दण्ड प्रणाम करत प्रभु आगे।
मुनिवर धाय लिये उर लाई ※ प्रेम उमगि भेटे दोउ भाई॥

गुरु जी को देख श्री राम ने लक्ष्मण सहित बड़े प्रेम और आदर से अभिवादन किया। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने दौड़कर उनको हृदय से लगा लिया और दोनों भाइयों से प्रेम पुलकित होकर भेंट की।

दो०—भेंटे रघुवर मातु सब, करि प्रबोध परितोष।
अम्ब ईश आधीन जग, काहु न देइय दोष॥

पश्चात् श्री राम सब माताओं से मिले और सान्त्वना देते हुए समझाने लगे— हे मातः! सारा संसार ईश्वर की व्यवस्था के आधीन है, ऐसा विचार कर किसी को दोष न दीजिये। (अवतारवादी विचार करें)

अति अनुराग अम्ब उर लाये ※ नयन सनेह सलिल अन्हवाये।
तेहि अवसर करि हर्ष विषादू ※ किमि कवि कहै मूक जिमि स्वादू

माताओं ने श्री राम लक्ष्मण को बड़े प्रेम से हृदय से लगा लिया तथा उनको प्रेमाश्रुओं से नहला दिया। उस समय का हर्ष और शोक कवि वैसे ही कहने में असमर्थ है, जैसे गूंगा किसी वस्तु का स्वाद!

मिलि जननी सानुज रघुराऊ ※ गुरु सन कहेउ कि धारिय पाऊ॥
सीय आय मुनिवर पग लागी ※ उचित अशीश लही मन माँगी।

श्री राम ने माताओं से मिलकर गुरु जी से विनय की कि कृपया आश्रम पर पधारिये। (आश्रम पहुँचने पर) सीता ने गुरु वशिष्ठ के चरणों में अभिवादन किया। मुनिराज ने सीता को मनचाहा हार्दिक आशीर्वाद दिया।

मिली सकल सासुन सिय जाई ※ तेहि अवसर करुणा महि छाई।
विकल सनेह सीय सब रानी ※ बैठन सबहिं कह्यो गुरु ज्ञानी॥

जिस समय सीता जी सभी सासुओं से मिलीं, उस समय पृथ्वी पर

करुणा रस छा गया। सीता और सब रानियां प्रेम से व्याकुल हो गईं। तब ज्ञानी गुरु वशिष्ठ ने सबसे बैठने को कहा।

विशेष—यहाँ इस मिलन प्रसङ्ग में वैदिक शिष्टाचार की एक दर्शनीय और अनुकरणीय झाँकी मिलती है।

नृपकर सुरपुर गवन सुनावा ॐ सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।
कुलिश कठोर सुनत कटु बानी ॐ विलपत लषण सीय सब रानीं॥

पश्चात् गुरु वशिष्ठ ने राजा के परलोक-गमन का समाचार सुनाया, जिसे सुन श्री राम को असह्य दुःख हुआ। वज्र से भी कठोर और कटु-वाणी सुन सीता, लक्ष्मण और सब रानियां रोने लगीं।

मरण हेत निज नेह विचारी ॐ भे अति विकल धीर धुर धारी।
मुनिवर बहुरि राम समुझाये ॐ सह समाज सुरसरित अन्हाये॥

अपने प्रेम को पिता जी के मरण का कारण समझ धीरज की धुर को धारने वाले (धैर्य की प्रतिमा) राम बहुत ही व्याकुल हो गये। फिर मुनीश वशिष्ठ ने श्री राम को समझाया ओर शोक निवृति के प्रतीक रूप सभी ने मन्दाकिनी में स्नान किया।

दो०—निशि न नींद नहिं भूख दिन, भरत विकल सुठि शोच
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहि सलिल संकोच॥

इधर भरत को न रात को नींद, न दिन को भूख लगती है। वे तो चिन्ता में ऐसे व्याकुल हैं कि जैसे जल के संकोच से थोड़े कीचड़ में डूबी हुई मछली दुःखित हो।

केहि विधि होइ राम अभिषेकू ॐ मोहिं अब चलत उपाय न एकू।
एकौ युक्ति न मन ठहरानो ॐ शोचत भरतहिं रैन विहानी॥

(भरत को एक ही चिंता है) श्री राम का राज्याभिषेक किस प्रकार से हो? उनको इसका एक भी उपाय नहीं सूझता। एक भी युक्ति उनके मन में नहीं जमती और इसी चिन्ता में रात भर बीत जाती है।

प्रात अन्हाय प्रभुहिं शिर नाई ॐ बैठत पठये ऋषिय बुलाई।
बोले मुनिवर समय समाना ॐ सुनहु सभा सद परम सुजाना॥

भरत प्रातः स्नानादि नित्यकर्म करके श्री राम को अभिवादन करके बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठ ने (सभी को) बुला भेजा । मुनि वशिष्ठ ने भरत एवं सभी सभासदों को सम्वोधित करते हुए कहा कि आप लोग सुनो—

सत्य सन्ध पालक श्रुति सेतू ※ राम जन्म जग मङ्गल हेतू ।
करि विचार जिय देखहु नीकें ※ राम रजाय शीश सबही के ॥

श्री राम सत्य प्रतिज्ञ और वेद की मर्यादा के पालक हैं तथा उनका जीवन (मानो) विश्व कल्याण के लिये है । अतः आप भली प्रकार विचार कर देखें कि श्री राम की आज्ञा (निर्णय) ही सभी को मान्य है ।

बोले मुनिवर वचन विचारी ※ देश काल अवसर अनुहारी ।
सुनहु राम सर्वज्ञ सुजाना ※ धर्म नीति गुण ज्ञान निधाना ॥

पश्चात् श्री राम को सम्वोधित करते हुये देश-काल और परिस्थिति के अनुसार मुनि वशिष्ठ बोले— हे राम ! सुनो, आप सब कुछ जानते हो, चतुर हो तथा धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भण्डार हो ।

दो०—भरत विनय सादर सुनिय करिय विचार बहोरि ।
करव साधु मत लोक मत नृप नय निगम निचोरि ॥

पहले आप आदर सहित (ध्यान पूर्वक) भरत की विनय सुनिये और तव जो साधु (सज्जन पुरुष) और संसार सम्मत हो, जैसा राजनीति कहती हो और जो (परम पवित्र) वेदों का सार-सिद्धांत हो वही कीजिये

दो०—तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात ।
कृपासिन्धु, प्रिय बन्धु सन, कहहु हृदय की बात ।

तब वशिष्ठ जी भरत से बोले— हे तात ! सब सङ्कोच छोड़कर दया के सागर अपने प्रिय बन्धु राम से अपने हृदय की बात कहो ।

सुनि मुनि वचन राम रुख पाई ※ गुरु साहिब अनुकूल अघाई ।
पुलक शरीर सभा भे ठाढे ※ नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥

मुनि के वचन सुन और श्री राम का रुख देख, श्री भरत गुरु वशिष्ठ और स्वामी राम की अनुकूलता पाकर छका गये (आनन्द से भर उठे) । उन

के देह में रोमाँच हो आया और उनके कमल सरीखे नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक आये।

शिशुपन ते परिहरेउँ न संगू ※ कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।
मैं प्रभु कृपारीति जिय जोही ※ हारेउ खेल जितायउ मोही।।

भरत बोले कि मैंने शिशु अवस्था से ही रामजी का साथ कभी नहीं छोड़ा और राम जी ने भी मेरा मन कभी नहीं तोड़ा, मैंने रामजी की अपने प्रति प्रेम की रीति को हृदय से अनुभव किया है, किस प्रकार वे हारे खेल में भी मुझे जिताते थे।

विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा ※ नीच बीच जननी मिस पारा।
इहौ कहत मोहि आजु न शोभा ※ अपनी समुझ साधु शुचि को भा।।

विधाता मेरे इस प्यार को नहीं सह सके, इससे माता की नीचता के बहाने बीच में ही उसे छीन लिया। पर आज यह कहते हुए भी मुझे शोभा नहीं क्योंकि अपनी समझ से सज्जन और पवित्र कौन माना जा सकता है?

कहि अनेक विधि कथा पुरानी ※ भरत प्रबोध कीन्ह मुनि ज्ञानी
बोले उचित वचन रघुनन्दू ※ दिनकर कुल कैरव वन चन्दू।।

अनेक भाँति की उपदेशप्रद प्राचीन कथायें कहकर ज्ञानी मुनि ने भरत को समझाया। तब सूर्यवंश रूपी कोकावेली के यन के लिए चन्द्रमा के समान श्री राम उचित वचन बोले—

तात कुतर्क करहु जनि जाये ※ वैर प्रेम नहिं दुरै दुराये।
हित अनहित पशु पक्षिउ जाना ※ मानुष तन गुण ज्ञान निधाना।।

हे तात! व्यर्थ की कुतर्कणाओं में मत उलझिये। बैर और प्रेम तो छिपाये से भी नहीं छिपता है। अपने हितैषी और विरोधी को पशु-पक्षी तक भी जानते हैं, फिर मानव शरीर तो गुण और ज्ञान का भण्डार ही है।

दो०—मन प्रसन्न करि सकुचि तजि, कहहु करौं सोइ आज
सत्य सन्ध रघुवर बचन, सुनि भा सुखी समाज।।

इसलिए हे भरत! सङ्कोच को छोड़ प्रसन्न मनसे आज तुम जो कहोगे

मैं वहाँ करूंगा। सत्यप्रतिज्ञ श्री राम के यह वचन सुनकर सारी सभा सुखी हुई।

लखि सब विधि गुरु स्वामि सनेहू ✽ मिटेउ क्षोभ नहिं मन सन्देहू।
अब करुणानिधि कीजिय सोई ✽ जन हित प्रभु चित क्षोभ न होई॥

सब प्रकार से गुरु और स्वामी राम का प्रेम देखकर भरत का सब क्षोभ (खेद) मिट गया और मन में सन्देह नहीं रहा। वे बोले— हे दया-निधान! अब वही कीजिये जिसमें सेवक का हित हो और आपके चित्त में क्षोभ न हो।

देव एक विनती सुनि मोरी ✽ उचित होय तस करब बहोरी।
तिलक समाज साजि सब आना ✽ करिय सफल प्रभु जो मन माना

हे देव! मेरी एक विनती सुनकर जैसा उचित हो, वैसा कीजिये। हे प्रभो! मैं तिलक का सब सामान लाया हूँ, यदि मन माने तो आप उसे सफल कीजिये।

दो०—सानुज पठइय मोहिं वन, कीजिय सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिये बन्धु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥

हे नाथ! शत्रुघ्न सहित मुझे वन भेज दीजिये और आप अयोध्या को जाकर सबको सनाथ कीजिये, या फिर दोनों भाई— लक्ष्मण और शत्रुघ्न को वापिस कीजिये, मैं आपके साथ चलूं।

नतरु जाहिं वन तीनिहुँ भाई ✽ बहुरिय सीय सहित रघुराई।
जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई ✽ करुणा सागर कीजिय सोई॥

नहीं तो हे रामजी! हम तीनों भाई वन को जाँय और सीता सहित आप अयोध्या को लौट जाइये। हे दया-सागर! जिस प्रकार आपका मन प्रसन्न हो वही कीजिये।

चुपै रहे रघुनाथ संकोची ✽ प्रभु गति देखि सभा सब शोची।
जनक दूत तेहि अवसर आये ✽ मुनि वशिष्ठ सुनि वेगि बुलाये॥

(भरत का यह प्रस्ताव सुन) श्री राम सङ्कोच वश चुप हैं, कुछ कह नहीं पारहे। श्रीराम की यह दशा देख सब सभा भी विचार में पड़ गई। इसी

समय जनक महाराज के दूत वहाँ आये। मुनिवर वशिष्ठने यह सुनते ही उन्हें बुलाया।

दो०—प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेश।
सहित सभा संभ्रम उठे, रविकुल कमल दिनेश ॥

उस समय महाराज जनक का आगमन सुन सब प्रेममग्न हो गये। सूर्य वंश रूपी कमल के लिये सूर्य के समान श्री राम अचानक ही उठ खड़े हुये।

आबत जनक चले यहि भांती ❋ सहित समाज प्रेम मति मातो।
भाइन सहित राम मिलि राजहिं ❋ चले लिवाय समेत समाजहिं ॥

उधर प्रेम में पगी बुद्धि वाले राजा जनक समाज सहित चले आरहे हैं श्री राम भाइयों सहित (आगे बढ़कर) राजा से मिले और समाज सहित उनको सादर लिवा लाये।

शोक बिकल दोउ राज समाजा ❋ रहा न ज्ञान न धीरज लाजा।
भूप रूप गुण शील सराहीं ❋ शोचहिं शोक सिन्धु अवगाहीं।

(अवध और मिथिला की) दोनों समाजें शोक से व्याकुल हो गईं। वे सब राजा दशरथ के रूप (सौन्दर्य), गुण और शील को सराहते हुये शोक सागर में स्नान करने लगे।

सो०—किये अमित उपदेश, जहं तहं लोगन मुरिवरन।
धीरज धरहु नरेश, कहेउ वशिष्ठ विदेह सन ॥

जहाँ तहां मुनीश्वरों ने लोगों को उपदेश किये और गुरु वशिष्ठ ने जनक जी से कहा—राजन् ! आप धीरज धारण करें।

विशेष —उस दिन की सभा इसके बाद समाप्त हो गई।

गये जनक रघुनाथ समीपा ❋ सनमाने सब रघुकुल दीपा।
समय समाज धर्म अविरोधा ❋ बोले तब रघुवंश पुरोधा× ॥

× कुल पुरोहित वैदिक गृहस्थ की अनिवार्य आवश्यकता है। गार्हस्थ्य जीवन का सर्वोत्तम कल्याण-साधन कभी हमारे 'पुरोहित' होते थे।

(अगले दिन भरत और मुनिवर वशिष्ठ के साथ) जनक जी (सभा के मध्य शोभित) श्री राम के समीप गये। रघुकुल के दीपक श्री राम ने सब का यथोचित सम्मान किया। तब रघुवंश के पुरोहित वशिष्ठ जी ने समय, धर्म और समाज के अनुकूल वचन कहे—

तात राम जस आयसु देहू ※ सो सब करहिं मोर मत एहू।
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी ※ बोले सत्य सरल मृदु बानी॥

हे तात, रामजी! आप जैसी आज्ञा करें वैसा सब करें, यही मेरा विचार है। यह सुन श्री राम दोनों हाथ जोड़कर सत्य, सरल और मधुर वचन बोले—

विद्यमान आपुन मिथिलेशू ※ मोर कहा सब भाँति भदेशू।
राउर राम रजायसु होई ※ राउर शपथ+ रही शिर सोई॥

जहां आप और महाराज जनक विद्यमान हों, वहां मेरा कुछ कहना हर प्रकार से भद्दा या अनुचित है। आप दोनों की जो आज्ञा होगी, आपको सौगन्ध है वह मुझे शिरोधार्य होगी।

दो०—राम शपथ सुनि मुनि जनक, सकुचेउ सभा समेत।
सकल विलोकत भरत मुख, बनै न उत्तर देत॥

रामजी की शपथ सुनकर जनक जी और मुनि वशिष्ठ सभा सहित सकुच गये तथा सब लोग भरत का मुख ताकते हैं उत्तर देते नहीं बनता।

सभा सकुचवश भरत निहारी ※ राम बन्धु धरि धीरज भारी।
करि प्रणाम सब कहँ कर जोरी ※ राम राउ गुरु साधु निहोरी॥

वैदिक पुरोहित का उद्घोष सुनिये— 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।' हम पुरोहित राष्ट्र में जागते हैं। राष्ट्र की प्रजा के लिए यह कितना बड़ा आश्वासन है!

+ लगता है तुलसीदास जी को 'शपथ' बहुत प्रिय है। पदे-पदे वे विश्वास जमाने के लिये शपथ' का उपयोग करते हैं। परन्तु आदर्श समाज में यह स्थिति बाँछनीय नहीं है।

राम भ्राता भरत ने संपूर्ण सभा को संकोच के वश देखा तो धीरज धर सबको हाथ जोड़कर और शिर झुकाकर श्री राम, राजा जनक, गुरु वशिष्ठ और उपस्थित सज्जनों (साधु जनों) को सम्बोधित कर भरत श्रीराम के प्रति बोले—

प्रभु पितु बचन मोहवश पेली ❋ आयउँ इहां समाज सकेली।
सो मैं सब विधि कीन्ह ढिठाई ❋ प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

हे भ्रातः ! आपकी और पिताजी की आज्ञा का मोहवश उल्लङ्घन कर मैं यहाँ समाज बटोर कर आया हूँ। सो मैंने तो सब भाँति धृष्टता की, आपने उसे भी प्रेम वश सेवा मान लिया।

अस कहि भरत विकल भे भारी ❋ पुलक शरीर विलोचन बारी।
प्रभु पद पद्म गहे अकुलाई ❋ समय सनेह न सो कहि जाई॥

ऐसा कहते २ भरत जी बहुत व्याकुल हो उठे, उनके शरीर में रोमाँच हो आया और नेत्रों में जल छा गया। विकल हो उन्होंने रामजी के चरण कमल पकड़ लिये, उस समय का स्नेह कहा नहीं जाता।

कृपासिन्धु सनमानि सुबानी ❋ बैठाये समीप गहि पानी।
भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ ❋ शिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥

दया के सागर श्री राम ने सुन्दर वाणी से आदरपूर्वक भरत को हाथ पकड़ कर पास बिठा लिया। भरत की विनय सुन और स्वभाव देख सभा के सहित श्री राम स्नेह-कातर हो उठे।

बोले वचन वाणि सरबस से ❋हित परिणाम सुनत शशि रस से।
तात भरत तुम धर्म धुरीणा ❋ लोक वेदपथ परम प्रवीणा॥

वे (श्री राम) वाणी के सर्वस्व अर्थात वाणी की सम्पूर्ण विशेषता-युक्त ऐसे वचन, जिनका परिणाम हितकारी और सुनने में अमृत तुल्य हैं, बोले— हे तात भरत ! तुम धर्मवानों में उत्तम और लोक व्यवहार एवं वेद मार्ग के ज्ञाता हो।

जानहु तात तरणि कुलरीती ❋ सत्य सन्ध पितु कीरति प्रीती।
तात तात बिनु बात हमारी ❋ केवल कुलगुरु+ कृपा सँभारी॥

\+ प्राचीन वैदिक युग में प्रत्येक परिवार के 'कुलगुरु' होते थे, जो

हे तात ! सूर्य वंश की रीति तुम जानते हो और सत्यप्रतिज्ञ पिता जी की यश में जैसी प्रीति थी, वह भी तुमको विदित है। हे भ्रातः ! पिता जी के अभाव में हमारी सब बात केवल कुलगुरु वशिष्ठ जी ने दया करके संभाली है।

दो०—राजकाज सब लाज पति, धर्म धरणि धन धाम।
गुरु प्रभाव पालिहि सबहि, भल होइहि परिणाम॥

राज्य के सब काम, लाज, मर्यादा, धर्म, पृथ्वी, धन और गृह सबको गुरु का प्रसाद पालेगा और परिणाम अच्छा होगा।

विशेष—सद्‌गुरु कभी हमारे जीवन के प्रत्येक अङ्ग में संव्याप्त होते थे कैसा स्वर्णिम युग था वह ! यहाँ श्री राम की गुरु वशिष्ठ के प्रति आन्तरिक निष्ठा दर्शनीय है।

तात तुम्हार मोर परिजन की ※ चिन्ता गुरुहिं नृपहिं घर वन की।
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेशू ※ हमहिं तुमहिं सपनेहु न कलेशू॥

हे तात ! हमारी, तुम्हारी और कुटुम्बियों की चिंता गुरु वशि-

परिवार की सर्वविध समुन्नति का मूलाधार होते थे। पारिवारिक कल्याण की प्रत्येक योजना का वह सूत्रधार होते थे। परिवार के हर सदस्य के वैयक्तिक जीवन में इनका प्रवेश होता था। इसी कारण वह सर्वाधिक समादर के अधिकारी भी होते थे। कुलगुरु का आदेश सर्वोपरि होता था। ऋषि वशिष्ठ ऐसे ही कुलगुरु थे। आगे चलकर यह पावन पद्धति विकृत हो गई। कुलगुरु वेद स्वाध्याय से रहित होकर केवल स्वार्थ साधना के लिए पौरोहित्य करने लगे। वे टकापन्थी हो गये। परिवार का कल्याण एवं वेद पथ निर्देशन उनका उद्‌देश्य नहीं रह गया। 'लोभी गुरु लालची चेला, होहिं नरक में ठेलम ठेला' की उक्ति चरितार्थ हुई। 'कनफुकवा' गुरुओं ने 'गुरुडम' का आविष्कार कर अपने जिजमानों (यजमानों=यज्ञशील सद् गृहस्थों) को अज्ञानी, अन्ध-विश्वासी, अन्ध श्रद्धालु और बुद्धू बनाये रखने में ही अपनी स्वार्थ सिद्धि को देखा। हा, हन्त !

—'क्या करता था, क्या लगे करन हमें यही अचम्भा है !!'

और राजा जनक करेंगे। जब हमारे संरक्षक मुनिवर गुरु वशिष्ठ और जनक जी हैं तो हमें-तुम्हें स्वप्न में भी कोई क्लेश नहीं है।

मोर तुम्हार परम पुरषारथ ※ स्वारथ सुयश धर्म परमारथ।
पितु आयसु पालियँ दोउ भाई ※ लोक वेद भल भूप भलाई॥

हमारा, तुम्हारा हित, सुयश, धर्म, परमार्थ और परम परषार्थ (मोक्ष-साधनोपाय) इसमें है कि हम दोनों भाई पिता की आज्ञा का पालन करें। यही उत्तम लोक व्यवहार है और इसी में श्रेष्ठ वेदाज्ञा का पालन तथा राजा की भलाई अर्थात यश है। (राजा के सत्य-वचन की रक्षा होने के कारण)।

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले ※ चलत सुगम पग परत न खाले।
अस विचारि सब शोच विहाई ※ पालहु अवध अवधि भरि जाई॥

प्रिय भाई! गुरु, पिता, माता और स्वामी की आज्ञा पालने से पैर सरल मार्ग पर चलते हैं, नींचे नहीं पड़ते। ऐसा विचार कर सब चिन्ता छोड़ो और जाकर (चौदह वर्ष की) अवधि तक अयोध्या का पालन करो।

विशेष—अयोध्या के चक्रवर्ती राज्य को श्री राम स्वीकार नहीं करा रहे, उधर भरत रामचरणों में इसे स्वीकार कराने की विनय कर रहे हैं। क्य हम राम और रामायण के भक्त इस अनुपम दृश्य के सन्देश पर गम्भीरता से विचारेंगे और तद् वत् ही आचरण करेंगे? कवि ने कैसा सुन्दर लिखा है—

'राजतिलक की गेंद बनाकर खेलन लगे खिलारी।
इधर राम और उधर भरत दोनों ने ठोकर मारी॥
शिक्षा दे रही जी हमको रामायण अति प्यारी॥

देश कोष पुरजन परिवारू ※ गुरुपद रजहि लाग छरभारू।
तुम मुनि मातु सचिव सिखमानी ※ पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

देश, कोष (खजाने), परिवारे और नगर बासियों का भार गुरुओं के चरणों की धूल से निकालेगा। मुनि (गुरुदेव) माताओं और मन्त्रियों का

सिखावन मानकर तुम पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालना।

आदर्श भरत

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही ।
सादर भरत सीस धरि लीन्ही ।।
नन्दिगाँव करि पर्ण कुटीरा ।
कीन्ह निवास धरमधुर धीरा ।।

दो०—मुखिया मुखसो चाहिये, खान पान सों एक ।
पालै पोसै सकल अङ्ग, तुलसी सहित विवेक ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि मुखिया मुख के समान होना चाहिए जैसे कि मुख खाने-पीने के लिए तो एक होता है, परन्तु (वह उसे अपने पास ही न रखकर) सब अङ्गो को विवेक सहित पालता और पुष्ट करता है ।+

राज धर्म सरवस इतनोई ※ जिमि मन माँह मनोरथ गोई ।
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही ※ सादर भरत शीश धरि लीन्ही ॥

सम्पूर्ण राजधर्म इतना ही है । मन में मनोरथ की भांति इस दोहे के थोड़े से शब्दों में प्रजा-पालन का रहस्य छिपा है । (तब भरत के आग्रह पर) श्री राम ने दया कर अपनी खड़ाऊं दीं, उनको आदर सहित माथे पर भरत ने धर लिया ।

चरण पीठ करुणानिधान के ※ जनु युगयामिक प्रजा प्रान के ।
भरत मुदित अवलम्ब लहेते ※ अस सुख जस सियराम रहेते ॥

दया निधान श्री राम की दोनों पादुकायें मानो प्रजा के प्राणों के दो पहरुए हैं । इस अवलम्ब (आश्रय) को पाकर भरत ऐसे प्रसन्न हुए जैसे वे सीता-राम के साथ रहने से होते ।

विशेष—संसार के इतिहास में ऐसा अनुपम आदर्श भारत के अतिरिक्त और कहाँ मिलेगा , जहाँ एक भाई की खड़ाऊँ चौदह वर्ष तक राज्य करती हैं ।※

प्रभु पद पद्म वन्दि दोउ भाई ※ चले शीश धरि राम रजाई ।
मुनि तापस वनदेव निहारी ※ सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥

+यह है 'वैदिक साम्यवाद' का सम्यक् दर्शन ! मारो-काटो, छीनो-झपटो, वाले रूसी साम्यवाद से यह कितना भिन्न और विश्व शांति एवं लोक-कल्याण की आधार शिला है, इस पर विचार करें ।

※ कवि ने ठीक ही लिखा है—
'धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे ।'

श्री राम के चरण कमलों में वन्दना कर भरत-शत्रुघ्न — दोनों भाई श्री राम की आज्ञा को शिर धरकर (अयोध्या को) चले। उन्होंने मुनि-तपस्वी और वनदेवों के प्रति बार-बार कृतज्ञता प्रकट कर सबका आदर किया।

दो०—लषणहि भेंटि प्रणाम करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम अशीश धरि, सकल सुमङ्गल भूरि॥

फिर भरत लक्ष्मण से मिले, तदुपरांत सीता जी को अभिवादन कर उनकी चरण-धूलि माथे पर लगा, सम्पूर्ण उत्तम कल्याणों का आधार रूप उनका सप्रेम आशीर्वाद प्राप्त करके चले।

सानुज राम नृपहिं सिर नाई ॐ कीन्ह बहुत विधि विनय बड़ाई।
सासु समीप गये दोउ भाई ॐ फिरे बन्दि पद आशिष पाई॥

लक्ष्मण सहित राम ने जनक जी को सिर नवाया और अनेक प्रकार से उनकी बड़ाई एवं सविनय कृतज्ञता प्रकट की। तत्पश्चात दोनों भाई सास के पास गये तथा उनके चरणों की वन्दना कर आशीर्वाद लिया।

विशेष—यहाँ माता के समान ही सास का सम्मान दर्शनीय एवं अनुकरणीय है।

मुनि महिदेव साधु सनमाने ॐ बिदा किये निज पितु सम जाने।
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे ॐ सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

रामजी ने मुनि, ब्राह्मण और साधुओं को पिता तुल्य समझ उनको सम्मान पूर्वक विदा किया। स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े और बराबर वाले सभी को कृपालु राम ने आदर सहित लौटाया।

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता ॐ फिरी प्राण प्रिय प्रेम पुनीता।
करि प्रणाम भेंटी सब सासू ॐ प्रीति कहत कवि हिय न हुलासू॥

अपने प्राणप्रिय प्रियतम राम में पवित्र प्रेम वाली सीता कुटुम्बियों माता और पिता से मिलकर आईं तथा प्रणाम कर सब सासों को मिलीं, वह प्रीति कहते कवि के हृदय में हर्ष नहीं होता (वरन करुणा उत्पन्न होती है, बड़ा ही करुण-दृश्य था वह !)

विशेष—यहाँ गोस्वामी जी के 'कवि' के दर्शन कीजिये।

रघुपति पटु पालकी मँगाई ❋ करि प्रबोध सब मातु चढ़ाई।
बार बार हिलिमिलि दोउ भाई ❋ सम सनेह जननी पहुँचाई॥

श्री राम ने उत्तम पालकी मंगवाकर सब माताओं को समझाकर उन पर चढ़ाया। बार-बार हिल मिलकर [अभिवादन करके] दोनों भाइयों ने सब माताओं के प्रति बराबर प्रेम प्रदर्शित कर माताओं को पहुँचाया।

दो०—गुरु गुरुतिय पद वन्दि प्रभु, सीता लषण समेत।
फिरे हर्ष विस्मय सहित, आये पर्ण निकेत॥

गुरु वशिष्ठ और गुरु-पत्नी (माता अरुन्धती) के चरणों में प्रणाम कर सीता और लक्ष्मण सहित श्री राम हर्ष और शोक सहित लौटकर पर्ण-कुटी को आये।

यमुना उतरि पार सब भयऊ ❋ सो वासर बिन भोजन गयऊ।
उतरि देवसरि दूसरि वासू ❋ राम सखा सब कीन्ह सुपासू॥

इधर सब लोग यमुना उतर कर पार हुए। वह दिन बिना भोजन के बीता। गङ्गा उतर कर दूसरा वास किया, वहाँ निषाद ने आतिथ्य किया।

सई उतरि गोमती नहाये ❋ चौथे दिवस अवधपुर आये।
सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू ❋ तिरहुति चले जनक सजि साजू॥

तीसरे दिन सई उतर कर गोमती में स्नान किया तथा चौथे दिन वे अयोध्या में आये। मन्त्रि-परिषद्, गुरु वशिष्ठ और भरत को राज्य सौंप कर जनक जी अपने नगर को चले गये।

राम मातु गुरु पद शिर नाई ❋ प्रभु पदपीठ रजायसु पाई। +
नन्दिग्राम करि पर्णकुटीरा ❋ कीन्ह निवास धर्म धुरधीरा॥

धर्म की धुरी को धारने वाले भरत जी ने राम माता — कौशल्या जी के चरणों में शिर झुकाकर तथा श्री राम की खड़ाऊं को सिंहासन पर रख

+ खड़ाऊं से आज्ञा लेना— खड़ाऊँ जड़ हैं, वह बोलकर आज्ञा क्या देगी? अतः इस शब्द-योजना का भावार्थ यही है कि खड़ाऊंओं को सिंहासन पर रक्खा।

नन्दिग्राम में पर्ण शाला बनवाई और वहीं रहने लगे।

विशेष—संसार के इतिहास में अन्यत्र कहाँ यह दृश्य देखने को मिलेगा जहाँ बड़े भाई की खड़ाऊ १४ वर्ष तक अयोध्या के चक्रवर्ती राज्य पर शासन करती हैं। धन्य है यह आर्यावर्त देश और धन्य है आर्य (वैदिक) संस्कृति ! धन्य है मेरा महान भारत और धन्य है यह विश्ववारा भारतीय संस्कृति ! जिसने संसार को राम और भरत जैसे अनूठे रत्न दिये।

जटा जूट शिर मुनिपट धारी ※ महि खनि कुश साथरी संवारी।
अशन वसन बासन व्रत नेमा ※ करत कठिन ऋषि धर्म सप्रेमा ॥

माथे पर जटाजूट धारे, मुनियों के वस्त्र पहिने, भरत जी पृथ्वी खोद कर वहाँ कुशों की गोंदरी पर रहते है। सामान्य भोजन, वस्त्र, बरतन और समस्त व्रत नियम—ये सब कठिन ऋषियों के धर्म प्रेम पूर्वक पालते हैं।×

दो०—राम प्रेम भाजन भरत बड़ी न यह करतूति।
चातक हंस सराहियत टेक विवेक विभूति ॥

भरत जी राम के [अतिशय] प्रेम पात्र हैं, इसलिये यह साधना बड़ी [आश्चर्यकारक] नहीं है, अर्थात स्वाभाविक ही है। देखो, पपीहा स्वाति के जल में टेक के कारण और हंस [दूध और जल को अलग करने रूप] विवेक-वुद्धि के कारण सराहे जाते हैं। [भरत का आदर्श प्रेम इसी कोटि का है।]

(अयोध्या काण्ड समाप्त)

× श्री राम ने मुनि वेश एवं वनी-जीवन पिता की आज्ञा से ही स्वीकार किया था, किंतु भरत ने राम प्रेम में स्वेच्छया यह सव ग्रहण किया। निस्सन्देह भरत का तप, त्याग और तितिक्षा राम से बढ़कर है।

अरण्य काण्ड

卐***卐

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई * मति अनुरूप अनूप सहाई
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन * करत जे बन सुर नर मुनि भावन

[तुलसीदास कहते हैं कि] अयोध्या नगर निवासियों तथा भरत जी के अनुपम और सुन्दर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब साधारण मनुष्यों, मुनियों और विद्वज्जनों (देव पुरुषों) के मन को प्रिय लगने वाले श्रीराम के वे पवित्र चरित्र सुनिये,जिनको वे वन में कर रहे हैं।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना * चरित किये श्रुति सुधा समाना।
बहुरि राम अस मन अनुमाना * होइहि भीर सबहिं मोहि जाना।।

श्री राम (कुछ काल तक तो) चित्रकूट पर ही रहकर कानों को अमृत के समान आनन्द दायक अनेक प्रकार के चरित्र (कार्य कलाप) करते रहे। फिर श्री राम ने मन में यह विचार किया कि यहां सभी मेरे परिचित हो जाने से (अयोध्या भी समीप ही होने से) बड़ी भीड़ लगी रहेगी।

सकल मुनिन्ह सन विदा कराई * सीता सहित चले दोउ भाई।
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ * सुनत महामुनि हरषित भयऊ।।

[इसलिए] सब मुनियों से विदा लेकर सीता जी सहित दोनों भाई आगे चल दिए। जब श्रीराम अत्रिमुनि के आश्रम में पहुँचे तो उनका आगमन सुनते ही महामुनि हर्षित हो उठे।

करत दण्डवत मुनि उर लाये * प्रेम वारि दोउ जन अन्हवाये।
करि पूजा कहि वचन सुनाये * दिये मूल फल प्रभु मन भाये।।

राम और लक्ष्मण को अभिवादन करते हुओं को ही उठाकर मुनि ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रुओं के जल से दोनों को नहला दिया। तदुपराँत मधुर वचनों से उनका पूजन (सत्कार) करके आतिथ्य में मूल और फल दिये, जो श्री राम को बहुत पसंद आये।

अनुसूया के पद गहि सीता ❋ मिली बहोरि सुशील विनीता ।
ऋषि पत्नी मन सुख अधिकाई ❋ आशिष दीन्ह निकट बैठाई ॥

फिर सीता ने ऋषि पत्नी अनुसूया को चरण स्पर्श करके अभिवादन किया । मुनि पत्नी ने मन में बड़ा सुख माना और आशीर्वाद देकर सीता को पास बिठलाया ।
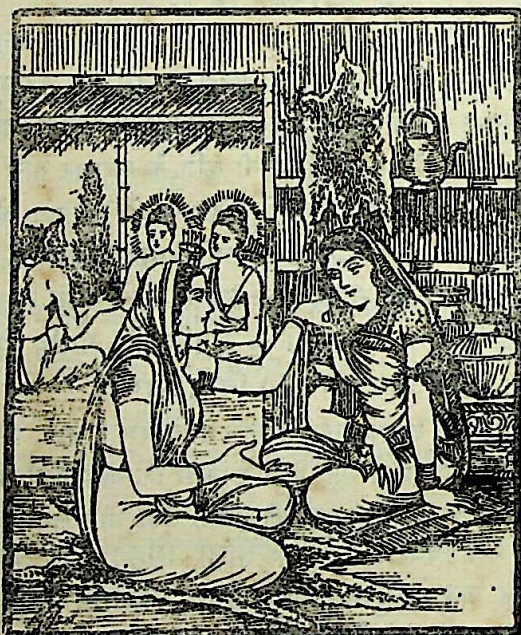
दो०--ऐसे वसन विचित्र सुठि, दिये सीय कहँ आनि ।
सनमाने प्रिय बचन कहि, प्रीति न जाइ बखानि ॥

ऋषि पत्नी ने सीता जी को बड़े ही सुन्दर और विचित्र (विविध प्रकार से चित्रित— रङ्ग विरङ्ग) वस्त्र उपहार में दिये तथा मधुर वचन कहकर सम्मानित किया । इस प्रकार अकथनीय प्रेम प्रकट किया ।

कह ऋषि वधू सरल मृदु बानी ❋ नारि धर्म कछु व्याज बखानी ।
मात पिता भ्राता हितकारी ❋ मित सुख प्रद सुनि राजकुमारी ॥

ऋषि-पत्नी (अनसूया) सरल और कोमल शब्दों में सीता जी के माध्यम से स्त्री मात्र को 'नारी धर्म' का उपदेश करती हैं।—

हे राजपुत्री ! माता, पिता, भाई तथा अन्य हितैषी सीमित सुख देने वाले हैं ।

अमित दानि भर्ता वैदेही ※ अधम सो नारि जो सेव न तेही ।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी ※ आपति काल परखिये चारी ॥

हे सीता ! एक पति ही असीम सुख का दाता है। वह स्त्री (निश्चय ही) नीच है जो उसकी सेवा नहीं करती। धैर्य, धर्म, स्त्री और मित्र इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है।

×एकै धर्म एक व्रत नेमा ※ काय वचन मन पति पद प्रेमा ।
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं ※ वेद पुराण सन्त अस कहहीं ॥

×विशेष—इससे पूर्व की निम्न चौपाई वैदिक आदर्श के प्रतिकूल है।
वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना ※ अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना ※ नारि पाव यमपुर+ दुःख नाना ॥

बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहिरा, क्रोधी और बड़ा ही दीन-दुखी— ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री परलोक में अनेक प्रकार के दुःख भोगती है। अत्र विचार कीजिये :—

'वृद्ध' का विशेषण वृद्ध विवाह का समर्थक है। यह घोर पाप और राष्ट्रिय-अपराध है। 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानम् विन्दते पतिम्' स्पष्टतः यहां सुशिक्षित ब्रह्मचारिणी (वेदविद्) कन्या को अपने समान ही युवा पति को वरण करने का निर्देश किया गया है। अन्य दुर्गुण और दोषों के विषय में भी मानव धर्म प्रणेता महर्षि मनु का स्पष्ट मत है कि ऐसे दुर्गुण और विकलाङ्ग पुरुष या स्त्री को परम पुनीत गृहस्थाश्रम (स्वर्गाश्रम) में प्रवेश का अधिकार ही नहीं है। हां, विवाह के पश्चात् कोई विकृति या दुरवस्था आ घेरे तो अवश्य ही परस्पर स्त्री-पुरुष को सप्रेम निभाना ही चाहिये। और यह व्यवस्था भी केवल स्त्रियों के लिये मानना घोर अन्याय और पाप है। वह तो समान रूप से पुरुषों के लिए भी है। तुलसी रामायण जैसे ग्रंथों को 'धर्म ग्रंथ' की

नारी के लिए— मन, वचन और शरीर (कर्म से) पति चरणों में (अगाध) प्रेम का होना – यह एक ही धर्म तथा एक ही व्रत और नियम है। वेद, प्राचीन सत्य इतिहास और सज्जन पुरुष ऐसा बताते हैं कि संसार में पतिव्रता चार प्रकार की होती हैं।

दो०–उत्तम मध्यम नीच लघु सकल कहौं समुझाय।
आगे सुनहिं ते भव तरहिं, सुनहु सीय चितलाय ॥

वे चार कोटियां हैं— उत्तम, मध्यम, नीच और अधम। मैं इन सबको समझा कर कहती हूँ, जिससे आगे (भावी पीढ़ियां) जो सुनेंगी (और तद्वत् आचरण करेंगी) वे संसार सागर से तर जावेंगी। हे सीता, चित्त लगाकर सुनो।

उत्तम के अस बस मन माहीं ❋ सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम परपति देखहिं कैसे ❋ भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥

उत्तम पतिव्रता वह है जिसके मन में यह धारणा बसी हुई है कि स्वप्नमें भी उनके अपने पतिके अतिरिक्त दूसरा मानव ही संसार में नहीं हैं। मध्यम स्त्री पर पुरुष को वैसे देखती हैं जैसे अपने भाई, पिता और अपने पुत्र को।

कोटि में मान लेने के कारण ही युगकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त को लिखना पड़ा—

नर कृत शास्त्रों के सब बन्धन हैं नारी को ही लेकर।
अपने लिये सभी सुविधायें पहले ही कर बैठे नर।

पर स्मरण रहे कि यह 'नर कृत' (मनुष्य कृत) ग्रंथों की बात हो सकती है। प्रभु की कल्याणी वाणी वेद और वेदानुकूल (ऋषि प्रणीत) आर्ष ग्रंथों में नर नारी के बीच इस प्रकार की विषमता का कोई स्थान नहीं है।

+ यमपुर— कोई स्थान विशेष या लोक विशेष नहीं है। न्याय-नियन्ता होने से ईश्वर का ही एक नाम 'यम' है। ईश्वर की कर्मफल प्रदातृ शक्ति के आधीन हर प्राणी अपने कर्मानुसार भावी जीवन प्राप्त करता है, वह ही यमपुर है।

विशेष — वह अपने बराबर की आयु वाले पुरुष को भाई, अपने से बड़े को पिता और छोटे को पुत्र तुल्य समझती हैं।

(२)— यह मध्यम मार्ग ही व्यावहारिक और आचरणीय है। विवाह संस्कार में प्रयुक्त पाणिग्रहण के मंत्रों—'मह्यं त्वादाद वृहस्पतिः' 'प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्' 'पत्नी त्वमसि धर्मणा' आदि से भी इसी की पुष्टि होती है।

धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं ※ सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं।
बिन अवसर भय के रह जोई ※ जानेहु अधम नारि जग सोई।

जो धर्म का विचार (भय) करके वंशमर्यादा (पातिव्रत) निभाती हैं वे निकृष्ट (नीच) कोटि की स्त्रियाँ हैं, ऐसा वेद कहते हैं (अर्थात् यह कथन वेदानुकूल है)। (मर्यादा तोड़ने का) अवसर न मिल सकने के कारण अथवा लोक लाज (भय) से जो स्त्री मर्यादा न बनी रहती है, उसे संसार में अधम स्त्री जानिये।

पति वञ्चक परपति रति करई ※ रौरव नरक कल्प शत परई।
क्षण सुख लागि जन्म शत कोटी ※दुख न समुझि तेहि सम को खोटी॥

अपने पति से छल करके जो स्त्री पराये पुरुष के साथ सहवास करती है, वह सौ कल्पों तक घोर दुःखों को पाती है। क्षण भर के इन्द्रियसुख के लिये जो करोड़ जन्मों के महादुःखों को न समझे, वैसी नीच स्त्री कौन है ?

विशेष—नरक कोई स्थान विशेष नहीं, दुःख की स्थिति विशेष का नाम है। कल्प की संख्या यह है कि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष एक सृष्टि की आयु है। इतना ही समय प्रलय काल का है अर्थात् ८ अरब ६४ करोड़ वर्ष का एक अहोरात्र। ऐसे ३६० अहोरात्र का एक वर्ष या कल्प होता है और ऐसे सौ कल्पों की बात यहां कही है— अर्थात ३६००० बार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का काल। यह कवि-कल्पना पाप से विरक्ति के लिये है।

बिन श्रम नारि परम गति लहई ※ पतिव्रत धर्म छाँड छल गहई।
पति प्रतिकूल जनमि जहँ जाई ※ विधवा होइ पाइ तरुणाई॥

जो स्त्री छल छोड़कर (निश्छल और निर्मल हृदय से) पातिव्रत धर्म का पालन करती हैं वह बिना अन्य श्रम [किसी अन्य धर्मानुष्ठान के]

मोक्ष पद या भावी जीवन में उत्तम गति प्राप्त करती हैं। इससे भिन्न जो स्त्रियां अपने जीवन में पति के विरुद्ध रहती हैं, वे युवावस्था में ही विधवा हो जाती हैं।

विशेष—कलह-क्लेश के कारण यह स्थिति वर्तमान जीवन में भी सम्भव है, पर कवि का सङ्केत मुख्यतः भावी जीवन के लिये है। यहाँ पर युवावस्था में विधवा होने की बात कहकर बाल-विधवा का निषेध है, इससे बाल विवाह की निषिद्धता स्पष्ट है।

सो०—सुनि सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्राण प्रिय राम, कहेउँ कथा संसार हित ॥

हे सीते! तुमको तो राम प्राणाधिक प्रिय हैं। तुम तो पतिव्रताओं में आदर्श होने से स्त्रियां तुम्हारा उदाहरण सामने रखकर पातिव्रत धर्म का पालन करती हैं (और करेंगी)। अतः यह उपदेश तो संसार की भलाई के लिये है।

सुनि जानकी परम सुख पावा ※ सादर तासु चरण सिर नावा।
तब मुनि सन कह कृपानिधाना ※ आयसु होइ जाउं वन आना ॥

यह सुन सीता जी को परम प्रसन्नता हुई। उन्होंने ऋषि पत्नी को सादर प्रणाम किया। तब दयालु रामजी ने अन्य वन में जाने के लिये मुनिवर से आज्ञा चाही।

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा ※ चले वनहिं सुर नर मुनि ईसा।
आगे राम अनुज पुनि पाछे ※ मुनिवर वेष बने अति आछे ॥

अत्रि मुनि के चरण कमलों में शिर झुकाकर, देव पुरुषों, साधारण मनुष्यों और मुनियों— सभी के प्रशासक श्री राम वन को चले। (वन पथ पर) आगे श्रीराम हैं, उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मण हैं। दोनों ही मुनियों का सुन्दर वेश बनाये बड़े ही सुशोभित हैं।

विशेष—देवता, मुनि और मानव यह अलग २ योनियां नहीं हैं। योग्यता, आचरण और आत्म विकास के अनुसार मानव की ही भिन्न-भिन्न संज्ञायें हैं।

उभय बीच श्री सोहइ कैसी ※ ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ।
मिला असुर विराध मग जाता ※ आवतहीं रघुनाथ निपाता ।।

दोनों के बीच सीता जी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ईश्वर और जीव-(जीवात्मा) के बीच प्रकृति। उनको मार्ग से जाते हुए विराध राक्षस मिला जिसे सामने आते ही श्री राम ने मार डाला।÷

अस्थि समूह देखि रघुराया ※ पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ।
निसिचर निकर सकल मुनि खाये ※ सुनि रघुनाथ नयन जल छाये ।।

(थोड़ा आगे बढ़ने पर ही) श्री राम ने हड्डियों का ढेर देखा, दया से भरकर मुनियों से इसका रहस्य पूछा। [मुनियों ने बताया कि] ये उन मुनियों की अस्थियों के ढेर हैं, जिनको राक्षसों ने खा डाला है। यह सुनकर श्री राम के नेत्र शोकाश्रुओं से भर गये।

÷ यहां गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'त्रैतवाद' के वैदिक (दार्शनिक) सिद्धान्त को मान्यता दी है। पर समीक्षा खण्ड में आप पढ़ेंगे कि गोस्वामीजी की कोई निश्चित मान्यता नहीं थी।

दो०--निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

[वहीं वन पथ में] श्री राम ने भुजा उठाकर पृथ्वी को राक्षसों से रहित करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। पश्चात सभी मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर उनको अपनी प्रतिज्ञा से आश्वस्त करके) सुख-सन्तोष दिया ।※

पन्थ कहत प्रभु भगति अनूपा ※ मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा ।
तुरत सुतीछन गुरु पहिंगयऊ ※ करि दण्डवत कहत अस भयऊ ॥

मार्ग में ईश्वर भक्ति की सुन्दर चर्चा करते हुए, श्री राम मुनि अगस्त्य के आश्रम पर पहुँचे। अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्ण नामक मुनि (जो श्री राम के साथ ही हो लिये थे) शीघ्र ही अपने गुरु के पास पहुँचे और सादर अभिवादन कर कहने लगे—

नाथ कोसलाधीस कुमारा ※ आये मिलन लोक आधारा ।
सुनत अगस्त तुरत उठि धाये ※ देखि राम लोचन जल छाये ॥

हे नाथ ! लोक मङ्गल के आधार राजा दशरथ के पुत्र श्री राम आप से मिलने के लिये आये हैं । यह सुनते ही महर्षि अगस्त्य दौड़कर आये तथा श्री राम को देखकर उनके नेत्रों में हर्ष और प्रेम के आँसू छलक आये ।

मुनि पद कमल परे दोउ भाई ※ रिषि अति प्रीति लिये उर लाई ।
जह लगि रहे अपर मुनि वृन्दा ※ हरषे सब बिलोकि सुख कन्दा ॥

दोनों भाइयों ने मुनिवर अगस्त्य के चरण कमलों में प्रणाम किया । ऋषि ने उनको अत्यधिक प्रेम सहित हृदय से लगा लिया । वहाँ अन्य जितने भी मुनिवर थे, सभी आनन्दकंद राम को देखकर प्रसन्न हुए ।

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं ※ तुम्ह सब प्रभु दुराव कछु नाहीं ।
अब सो मन्त्र× देहु प्रभु मोही ※ जेहि प्रकार मारों मुनि द्रोही ।

※ वाल्मीकि रामायण में यह प्रसङ्ग बड़े ही प्रेरक शब्दों में वर्णित है । 'शुद्ध रामायण' में पढ़ें ।

× नवीनतम वैज्ञानिक आविष्कार और शस्त्रास्त्रों के निर्माण सम्बन्धी अगस्त्य ऋषि का बहुत बड़ा वैज्ञानिक गुरुकुल था, वहाँ । श्री राम ने भी

तव श्री राम ने मुनि से कहा— हे स्वामिन् ! आपसे कोई छिपाव नहीं । प्रभो ! अब मुझे ऐसा मंत्र दीजिये । (ऐसी प्रेरणा और मार्ग दर्शन कीजिये) जिससे मैं मुनियों के शत्रु राक्षसों को मारने में समर्थ हो सकूं ।

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ ※ पावन पंचवटी तेहि नाऊँ ।
चले राम मुनि आयसु पाई ※ तुरतहि पंचवटी नियराई ॥
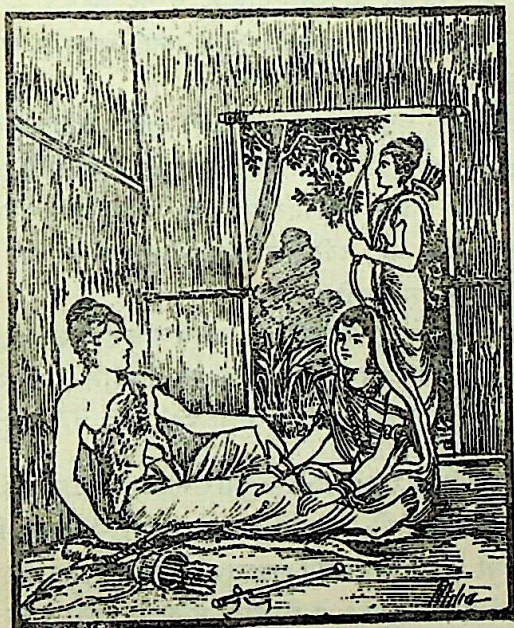
[पंचवटी की एक स्वर्गीय झाँकी]

(उत्तर में ऋषि अगस्त्य ने बताया कि यहाँ समीप ही) 'पंचवटी'

वहां रहकर प्रशिक्षण प्राप्त किया था तथा महर्षि अगस्त्य ने ऋषियों की योजनानुसार श्री राम को अनेक नवीनतम शस्त्रास्त्र भी राक्षसों के वध के लिये दिये थे । यही अगस्त्य मुनि का मन्त्र दान था । वाल्मीकि रामायण में इसका सुंदर और विशद वर्णन किया है जिससे रामायण कालीन वैज्ञानिक प्रगति पर सुंदर प्रकाश पड़ता है । [शुद्ध रामायण में पढ़ें]

नामक बड़ा मनोहर स्थान है, आप वहाँ निवास करें। [वहीं से आपके कार्य की सिद्धि होगी]। श्री राम मुनि की आज्ञा पाकर वहाँ से चल दिये और शीघ्र ही पंचवटी पहुँच गये।

दो०—गृध्रराज सों भेट भइ, बहु विधि प्रीति दृढ़ाय।
गोदावरी समीप प्रभु, रहे पर्णगृह छाय॥

वहाँ श्री राम की गृद्धराज जटायु × से भेट हुई तथा उनके साथ बड़ा ही दृढ़ प्रेम हो गया। श्री राम वहीं गोदावरी नदी के समीप पर्णकुटी बना कर रहने लगे।

जब ते राम कीन्ह तहं वासा ❋ सुखी भये मुनि बीते त्रासा।
गिरि वन नदी ताल छवि छाये ❋ दिन प्रति दिन अति होत सुहाये।

श्री राम ने जब से वहाँ निवास किया, तब से मुनि लोग निर्भय और सुखी हो गये। पर्वत, वन, नदी और ताल शोभा पूर्ण हो गये तथा उनकी सुंदरता दिनों दिन बढ़ने लगी।

खग मृग वृन्द अनन्दित रहहीं ❋ मधुप मधुर गुंजत छवि लहहीं॥
यहि विधि गये कछुक दिन बीती ❋ कहत विराग ज्ञान गुण नीती॥

❋मृग (पशु) तथा पक्षीगण सुखी रहने तथा भौंरे मधुर शब्दों से

× वाल्मीकि रामायण के अनुसार महात्मा जटायु पक्षी न था। वह ऋषि का पुत्र, कश्यप गोत्री, सम्पाति का छोटा भाई, विमान विद्या आदि में प्रवीण वानप्रस्थी ब्राह्मण था। उसे महाराज दशरथ का वयस्य (सहवासी= समान आयु या एक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाला) भी बताया गया है। इसी से राम उनका पितृ तुल्य सम्मान करते थे। विशेष विवेचन 'समीक्षा खण्ड' में पढ़ें।

❋ मृग शब्द तुलसी रामायण में हिरण, शेर और सामान्यतः पशु मात्र के लिये भी प्रयोग में आया है। जहाँ मृग शब्द का प्रयोग 'शिकार' के लिए है, वहां निश्चय ही इसका अर्थ हिंसक जन्तुओं से है, अन्यथा श्री राम यदि साधारणतः सभी पशुओं का शिकार करते तो राम के रहने से वे सुखी क्यों होते ?

गुंजार कर शोभा पाने लगे। इसी आनन्दपूर्ण वातावरण में ज्ञान, वैराग्य और नीति [राज धर्म] की चर्चा करते कुछ दिन वीत गये।

शूर्पणखा रावण की बहिनी ※ दुष्ट दय दारुण जिमि अहिनी।
पञ्चवटी सो गइ इक बारा ※ देख विकल भइ जुगुल कुमारा॥

[इसी बीच] रावण की वहिन शूर्पणखा, जो दुष्ट हृदय वाली और साँपिन की तरह भयानक थी, एक समय पंचवटी को गई। वहां दोनों राजकुमारों को देख विकल (काम पीड़ित) हो उठी।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ आई ※ बोली मधुर बचन मुसुकाई।
तुम सम पुरुष न मो समनारी ※ यह सँयोग विधि रचा विचारी॥

वह सुन्दर वेश बनाकर श्री राम के पास पहुँची और मीठे शब्दों में मुस्काती हुई बोली—न तो तुम्हारे समान पुरुष है और न मेरे समान (सुंदर) स्त्री। लगता है ईश्वर ने यह संयोग (जोड़ा) विचार कर ही रचा है।

मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं ※ देखेउँ खोजि लोक तिहुँ माहीं।
ताते अब लगि रही कुमारी ※ मन माना कछु तुमहिं निहारी॥

मैंने तीनों लोकों में खोज लिया, पर मेरे अनुरूप वर न मिला। इसीसे मैं अभी तक कुमारी रही। हाँ, अब तुमको देख कुछ मन माना है।

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता ※ अहै कुमार मोर लघु भ्राता।
गइ लक्ष्मण रिपु भगिनी जानी ※ प्रभु विलोकि बोले मृदु बानी॥

श्री राम (जो ऋषि मुनियों के कष्टदाता रावण को अपना महाशत्रु समझ उसके विनाश के विचार से ही मुनिवर अगस्त्य की प्रेरणा एवं सम्मति से पंचवटी में आकर रहे थे और रावण से युद्ध ठानने के लिए किसी उपयुक्त अवसर या बहाने की खोज में थे) सीता की ओर सङ्केत कर [नीतियुक्त] वचन बोले – मेरा छोटा भाई लक्ष्मण कुमार है। + अर्थात मैं तो विवाहित हूँ, तुम लक्ष्मण के पास जाओ। तब वह लक्ष्मण के पास गई।

+ गोस्वामी जी ने श्री राम द्वारा यह असत्य वचन कहलाया है, जो सर्वथा अयुक्त है। इस युक्ति से इसका औचित्य सिद्ध किया जा सकता है कि राजनीति में ऐसे प्रयोगों को अनुचित या अधर्म नहीं कहा जा सकता।

लक्ष्मण ने भी यह पहिचान लिया कि यह शत्रु की बहिन है। अतएव श्री राम की ओर देखकर वे कोमलता से बोले —

सुन्दरि सुनु मैं उनकर दासा ❋ पराधीन नहिं तोर सुपासा।
प्रभु समरथ कौशलपुर राजा ❋ जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा॥

हे सुन्दरि ! मैं उनका सेवक हूँ। पराये वश होने से तुमको मेरे साथ सुख नहीं होगा। श्री रामजी समर्थ हैं, वे अयोध्या के राजा हैं। वे जो कुछ भी करें, उनको शोभा देगा (अर्थात वे चाहें तो दूसरा विवाह भी कर सकते हैं)।

पुनि फिरि राम निकट सो आई ❋ प्रभु लक्ष्मण पहँ बहुरि पठाई।
लक्ष्मण कहा तोहिं सो बरई ❋ जो तृण तोरि लाज परिहरई॥

फिर वह राम के पास लौट आई और राम ने फिर उसे लक्ष्मण के पास भेजा। तब लक्ष्मण ने कहा— तेरे साथ वही विवाह करेगा जो तिनके की तरह लाज को तोड़ फेंके।

तब खिसियानि राम पहँ गई ❋ रूप भयङ्कर प्रगटत भई।
सीतहिं सभय देखि रघुराई ❋ कहा अनुज सन सैन बुझाई॥

तब वह खिसियानी हुई श्री राम के पास गई और उनसे क्रुद्ध होकर बड़ा भयङ्कर रूप प्रकट किया। सीता को डरा हुआ देख श्री राम ने लक्ष्मण को सङ्केत किया और—

दो०—लक्ष्मण अति लाघव तिहि, नाक कान बिन कीन्ह।
ताके कर रावण कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्ह॥

लक्ष्मण ने उसे शीघ्र नाक-कान विहीन कर दिया। इस प्रकार मानो शूर्पणखा के हाथों उन्होंने रावण को चुनौती देदी।

विशेष—स्पष्ट है कि राक्षस-नाश की अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये श्री राम ने जान-बूझकर शूर्पणखा के माध्यम से रावण को चुनौती दी। शूर्पणखा के नाक-कान काटने का रहस्य इस 'चुनौती' शब्द से सुस्पष्ट हो जाता है।

खर दूषण पहँ गइ बिलखाता * धिक धिक तव पौरुष बल भ्राता ।
तेइँ पूछा सब कहेसि बुझाई * जातुधान सुनि सैन बुलाई ॥

रोती हुई वह (रावण की नासिक छावनी के नायक) खरदूषण के पास गई और बोली— भाई ! तुम्हारे पुरुषार्थ और बल को धिक्कार है । उनके पूछने पर शूर्पणखा ने सब समाचार समझाकर कहा, जिसे सुन खर और दूषण ने राक्षसी सेना युद्ध के लिए बुलाई ।

धूरि पूरि नभमण्डल रहेऊ * राम बुलाइ अनुज सन कहेऊ ॥
ल जानकिहि जाउ गिरि कन्दर * आवा निसिचर कटक भयङ्कर ॥

[सेना की अधिकता से] आकाश-मण्डल धूल से भर गया । तब राम ने लक्ष्मण को बुलाकर कहा कि सीता को पहाड़ की कन्दरा में ले जाओ क्योंकि राक्षसों की भयानक सेना आ पहुँची है ।

सो०— आय गये बगमेल, धरहु धरहु धाये सुभट ।
जथा बिलोकि अकेल बाल रविहिं घेरत दनुज* ॥

वे बगमेल (घोड़ों आदि की वागें ढीली करके दौड़ के) आगये और 'पकड़लो-पकड़लो' चिल्लाते हुए योधा ऐसे दौड़े जैसे प्रातःकाल के सूर्य को अकेला देख राक्षस (बादलों के झुण्ड) घेर लेते हैं ।

घेरि रहे निसिचर समुदाई * दण्डक खग मृग चले पराई ।
प्रभु विलोकि शर सकहिं न डारी * थकित भये रजनीचर भारी ॥

---

* यहां 'दनुज' शब्द का प्रयोग सूर्य (देवता) के अवरोधक बादलों के लिए हुआ है । पवित्र वेदों में ऐसे अनेकों अलङ्कारिक वर्णन हैं । वेदों में बादलों को 'वृत्र' एवं 'असुर' आदि कहा गया है । इनका रहस्यार्थ न समझ कर पाश्चात्य वेद भाष्यकारों और उनके अनुवर्ती अनेकों भारतीय विद्वानों ने भी वेदों में इतिहास देखने का असफल एवं अनर्थकारी प्रयास किया है । लोक भाषा में भी एक शब्द प्रकरण के अनुसार किस प्रकार भिन्न २ अर्थों में प्रयुक्त होता है । यहाँ 'दनुज' शब्द इसका उत्तम उदाहरण है, जिसका अर्थ यहाँ 'बादल' है ।

दण्डक वन को राक्षसों ने घेर लिया, इससे भयभीत हो पशु-पक्षी सब भागने लगे । राक्षस श्री राम को देख वाण नहीं छोड़ पारहे । वे सब थकित (रूप से मोहित) हो गये हैं ।

सचिव बोलि बोले खर दूषण ॐ ये कोउ नृप बालक नर भूषण ।
*सुर नर नाग असुर मुनि जेते ॐ देखे सुने हते हम जेते ॥

मन्त्री को बुलाकर तब खर दूषण ने कहा— ये कोई मनुष्यों में भूषण रूप (नर-रत्न) राजकुमार प्रतीत होते हैं । हमने मानव जाति की सभी श्रेणियों— देवता, मनुष्य, नाग, राक्षस, मुनि आदि के जितने भी मनुष्य देखे और सुने हैं ।

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई ॐ देखी नहिं अस सुन्दरताई ।
जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा ॐ वध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

हे भाइयो ! हमने जन्म भर ऐसी सुन्दरता नहीं देखी । यद्यपि इन्होंने बहिन को कुरूपिणी किया है, तो भी यह अद्भुत मानव वध्य नहीं ।

देहु तुरत निज नारि दुराई ॐ जीवत भवन जाहु दोउ भाई ।
मोर कहा तुम ताहि सुनावहु ॐ तासु वचन सुनि आतुर आवहु ॥

अतः इनसे कहो कि जिस स्त्री को छिपा रखा है, उसे शीघ्र देदें और दोनों भाई जीते जी अपने घर चले जाय । मेरा सन्देश उनसे कहो और जो वे कहें सुनकर शीघ्र आओ ।

दूतन कहा राम सन जाई ॐ सुनत राम बोले मुसुकाई ।
हम क्षत्रिय मृगया वन करहीं ॐतुमसे खल× मृग खोजत फिरहीं ।

दूतों ने जब श्री राम से जाकर कहा तो सुनते ही राम मुस्करा कर बोले— [तुम्हारे स्वामी यह नहीं जानते कि] हम क्षत्रिय हैं, वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे सरीखे दुष्ट मृगों [हिंसक पशुओं] को ढूंढ़ते फिरते हैं ।

---

* स्मरण रहे कि ये सभी मानव से भिन्न अलग २ योनियां नहीं हैं ये विभिन्न भू-भागों में बसने वाली विभिन्न मानव जातियां थीं,जिनमें रङ्गरूप एवं आचार-व्यवहार में थोड़ा बहुत अन्तर स्वाभाविक ही है ।

× यहां मृग के पहले 'खल' शब्द राम-मृगया का रहस्य बताता है ।

जो न होइ बल घर फिरि जाहू ❀ समर विमुख मैं हतौं न काहू।
दूतन जाइ तुरत सब कहेऊ ❀ सुनि खरदूषण उर अति दहेऊ ।।

यदि बल न हो तो घर लौट जाओ, युद्ध विमुख को मैं नहीं मारता। दूतों ने जाकर सब समाचार कहे, जिसे सुनकर खरदूषण का हृदय बहुत जलने लगा।

छन्द— उर दहेउ कहेउ कि धरहु धावहु विकट भट रजनीचरा।
शर चाप तोमर शक्ति शूल कृपाण परघि परशु धरा ।।
प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयो महा।
भे बधिर व्याकुल यातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा ।।

क्रोध से दग्ध हृदय खर बोला— हे राक्षस वीरो ! दौड़ो और पकड़ लो। तब धनुष-बाण, तोमर, शक्ति, शूल, तलवार, परिघ और परशु लेकर राक्षस दौड़े। रामजी ने पहले धनुष का टङ्कोर किया, जिसके कठोर और भयानक शब्द मात्र से राक्षस बहरे और ऐसे व्याकुल हो गये कि उनको उस समय कुछ ज्ञान न रहा।

दो०—सावधान होइ धाये, जानि सबल आराति।
लागे बर्षन राम पर, अस्त्र-शस्त्र बहु भाँति ।।

फिर सावधान हो दौड़े और शत्रु [राम] को बली जानकर श्री राम पर अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र बरसाने लगे।

दो०—तिनके आयुध तिल सम, करि काटे रघुबीर।
तानि शरासन श्रवण लगि, पुनि छाँड़े निज तीर ।।

श्रीराम ने उनके सब शस्त्र काटकर तिल के समान कर दिये और फिर कान तक धनुष तानकर अपने बाण छोड़े।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते ❀ सुर नर मुनि सबके दुख बीते।
तब लक्ष्मण सीतहिं लै आये ❀ प्रभु पद परत हर्षि उर लाये ।।

[श्री राम के युद्ध-कौशल से सब राक्षस खर दूषण सहित मारे गये] इस प्रकार जब श्री राम ने युद्ध में शत्रुओं को जीत लिया तो देवता, मनुष्य

और मुनि— इन सभी मानव समूहों के दुःख जाते रहे। तब [युद्ध समाप्ति पर] श्री लक्ष्मण सीता जी को ले आये और आकर श्री राम के चरणों का स्पर्श किया। राम ने उनको हृदय से लगा लिया।

सीता निरखि श्याम मृदु गाता ※ परम प्रेम लोचन न अघाता।
पञ्चवटी बसि श्री रघुनायक ※ करत चरित सुर मुनि सुखदायक ॥

[वीरतामूर्ति] श्रीराम का कोमल श्याम शरीर देख सीताजी के नेत्र प्रेम से नहीं अघाते। इस प्रकार श्री राम पंचवटी में रहते हुए देवों और मुनियों को सुख देने वाले चरित्र करते रहते हैं।

धुआँ देखि खर दूषण केरा ※ शूर्पणखा तब रावण प्रेरा
बोली वचन क्रोध भरि भारी ※ देश कोष की सुरति बिसारी ॥

खर-दूषण आदि के जलने का धुँआ देखकर शूर्पणखा ने रावण को जा प्रेरणा की। वह बड़ा क्रोध कर बोली— तुमने तो देश और कोष (खजाने) की सुधि ही भुला दी है।

करसि पान सोवसि दिन राती ※ सुधि नं तोहिं शिर पर आराती।
राज नीति बिन धन बिन धर्मा ※ हरिहिं समर्पे बिन सतकर्मा ॥

तुम मदिरा पीते और दिन रात सोते हो। तुमको यह सुधि नहीं कि शत्रु शिर पर आ पहुँचा है। नीति बिना राज्य, धर्म बिना धन, ईश्वरार्पित किये बिना सत्कर्म—

प्रीति प्रणय विन मदते गुनी ※ नाशहिं बेगि नीति अस सुनी।
सङ्ग ते यती कुमन्त्र ते राजा ※ मान ते ज्ञान पान ते लाजा ॥

स्नेह के बिना मित्रता, अभिमान से गुणी— ये सब तुरन्त ही नाश हो जाते हैं, मैंने ऐसी नीति सुनी है। ऐसे ही कुसङ्ग से यती दुष्ट सलाह से राजा, गर्व से ज्ञान और मदिरा पीने से लज्जा नष्ट हो जाती हैं।

सो०—रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गणियन छोट करि।
अस कहि विविध बिलाप करि लागी रोदन करन ॥

शत्रु रोग, अग्नि, पाप, राजा और साँप—'इन्हें छोटा न गिने' ऐसा कह विलाप करके शूर्पणखा रोने लगी।

कहि लंकेश कहसि निज बाता ❋ केइं तव नासा कान निपाता।
अवध नृपति दशरथ के जाये ❋ पुरुष सिंह वन खेलन आये॥

तब रावण ने कहा कि अपनी बात तो कहो— तुम्हारे नाक-कान किसने काट लिए ? शूर्पणखा ने बताया कि (दो) पुरुष सिंह, जो अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं, वन में हिंस्र जीवों का शिकार करने आये हैं।

शोभाधाम राम अस नामा ❋ तिनके संग इक नारि ललामा।
अजहुँ जाइ देखब तुम जबहीं ❋ होइहौ विकल तासु वश तबहीं॥

शोभाधाम राम नामक [बड़ा भाई] है। उसके साथ एक अति लावण्यवती सुन्दरी, स्त्री भी है। अब भी जब तुम उसे जाकर देखोगे तो [काम] विकल होकर उसके आधीन हो जाओगे।

तासु अनुज काटी श्रुति नासा ❋ सुनि तव भगिन करि परिहासा।
निरपराध असि दशा हमारी ❋ अपराधी किमि बचहिं सुरारी॥

उसके छोटे भाई (लक्ष्मण) ने, यह जानकर कि मैं तुम्हारी बहिन हूँ तुम्हारा परिहास (मखौल) करते हुए मेरे नाक-कान काट लिये हैं। हे देव-शत्रो ! मेरी बिना किसी अपराध के यह दशा करदी गई है, फिर अपराधी उनसे कैसे बचेंगे ?

खर दूषण सुनि लागि गुहारा ❋ क्षण महँ सकल कटक उन मारा।
खर दूषण त्रिशिरा कर घाता ❋ सुनि दशशीश जरा सब गाता॥

मेरी पुकार सुन जब खर दूषण मेरा पक्ष लेकर गये तो उन्होंने क्षणभर में [उनके सहित] सब सेना मार गिराई। खर, दूषण और त्रिशिरा [तीनों का] मरना सुन रावण की सब देह जलने लगी।

दो०—शूर्पणखहिं समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
भवन गयउ अति शोचवस, नींद परी नहीं राति॥

शूर्पणखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान कर वह [रावण] महलों में गया, परन्तु चिन्ता के कारण उसे रात भर नींद नहीं लगी।

दशमुख गयउ जहाँ मारीचा ※ नाय माथ स्वारथ रत नीचा ।
नमनि नीच की अति दुखदाई ※ जिमि अंकुश धनु उरगु बिलाई ।

[वहुत सोच विचार के बाद] स्वार्थ में रत नीच रावण मारीच के पास पहुँचा और उसे जाकर माथा झुकाया। नीच का झुकना वड़ा दुःख देता है— जैसे अंकुश, धनुष, सर्प और विल्ली का।

दश मुख सकल कथा तेहि आगे ※ कही सहित अभिमान अभागे ।
होहु कपट मृग तुम छलकारी ※ जेहि विधि हरि आनौं नृप नारी ॥

अभागे रावण ने उसके सामने अभिमान सहित सव कथा कही और कहा कि तुम छल करने में कुशल हो। सो तुम कपटी मृग (सिंह) वनो कि जिससे मैं राजा राम की स्त्री को हर लाऊं।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा ※ बिन फर शर रघुपति मोहि मारा।
शत योजन आयउँ छिन माहीं ※ तिन सन बैर किये भल नाहीं ॥

[तव मारीच बोला—] हे रावण ! जब ये कुमार थे तभी विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गये थे और बिना फर का वाण मुझे मारा था जिससे मैं क्षणभर में ही यहां चार सौ कोस पर आ पड़ा। अतः इनसे वैर करने में भलाई नहीं है।

विशेष—इस विवरण से युद्धास्त्रों के निर्माण में उस युग में किस सीमा तक प्रगति थी, इसका परिचय मिलता है।

रा अस नाम कहत दशकन्धर ※ रहत प्राण नहिं मम उर अन्तर।
जाहु भुवन कुल कुशल विचारी ※ सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी ॥

हे रावण ! रा' सुनते ही मेरे हृदय में प्राण नहीं रहते। इ..से वंश की कुशल विचार कर तुम सीधे घर को जाओ। यह सुनते ही रावण जल उठा और बहुत सी गालियाँ दीं।

उभय भाँति देखा निज मरना ※ तब ताकिसि रघुनायक सरना।
उतरु देत मोहिं बधव अभ.गे ※ कस न मरौं रघुपति सर लागे।

मारीच ने दोनों प्रकार से अपना मरण देखकर श्री राम की शरण को ताका (उसका आश्रय लिया।) उसने सोचा कि यदि इसको उत्तर देता हूँ

[मना करता हूँ] तो यह अभागा मुझे मार डालेगा, तब श्री राम के बाण से ही क्यों न मरूं ?
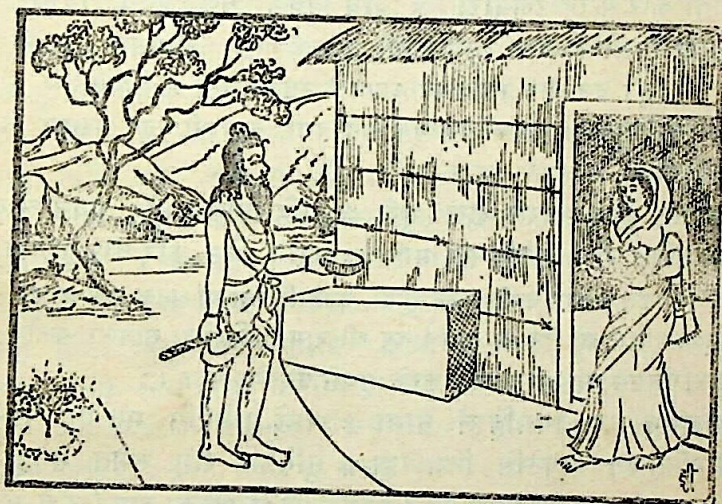
तेहि वन निकट दसानन गयऊ ※ तब मारीच कपट मृग भयऊ।
अति विचित्र कछु बरनिन जाई ※ कनक देह मनि खचित रचाई॥

[मारीच के साथ उक्त व्यवस्था करके] जब रावण दण्डक वन के समीप पहुँचा, तब मारीच कपटी मृग [सिंह या बारहसिंहा] बन गया। सोने का वह शरीर मणियों से जड़कर बनाया था।

सीता परम रुचिर मृग देखा ※ अंग अंग सुमनोहर वेखा।
सुनुहु देव रघुबीर कृपाला ※ एहि मृग कर अति सुन्दर छाला

सीता जी ने परम सुन्दर मृग को देखा, जिसके अङ्ग-अङ्ग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। [वे कहने लगीं —] हे कृपालु देव ! इस मृग की छाल बहुत ही सुन्दर है।

सत्य सन्ध प्रभु बधि करि एही ※ आनहु चर्म कहति वदेही।
प्रभु लछिमनहिं कहा समुझाई ※ फिरत विपिन निसिचर बहु भाई

सीता ने कहा— हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो ! इसे मारकर मृग छाल आप

ला दीजिये। श्री राम ने तब लक्ष्मण को समझाकर कहा— हे भाई ! वन में बहुत से राक्षस घूमते हैं।

सीता केरि करहु रखवारी ※ बुधि विवेक वल समय विचारी ।
प्रभुहिं बिलोकि चला मृग भागी ※ धाये रामु सरासन साजी ॥

तुम बल और समय को ध्यान में रखकर वुद्धि और विवेक से सीता की रक्षा करना । रामको देख मृग भाग चला, राम भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े ।+

प्रकटत दुरत करत छल भूरी ※ एहि विधि प्रभुहिं गयउ लै दूरी
तब तकि राम कठिन सर मारा ※ धरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥

इस प्रकार कभी प्रकट होता, कभी छिपता यों अनेक छल करता हुआ वह श्री राम को दूर ले गया। तब श्री राम ने निशाना साधकर कठोर वाण मारा जिससे वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा ※ पाछें सुमिरेसि मन महँ रामा ।
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा ※ सुमिरेसि राम समेत सनेहा ॥

[पृथ्वी पर गिरते हुए] प्रथम उसने लक्ष्मण का नाम (ऊंचे स्वर से पुकारा और पीछे श्री राम के प्रताप को मन में याद किया । प्राण त्याग के समय उसने अपने [असली] शरीर को प्रकट किया और श्री राम के गौरव को प्रेम पूर्वक स्मरण किया (श्री राम के पराक्रम को श्रद्धापूर्वक सराहा)

आरत गिरा सुनी जब सीता ※ कहि लक्ष्मण सन परम सभीता ।
जाहु वेगि संकट अति भ्राता ※ लक्ष्मण विहँसि कहा नहिं माता

इधर जब सीता जी ने दुःख भरी वाणी (मरते समय मारीच की 'हा लक्ष्मण !' की आवाज) सुनी तो बहुत ही डर कर लक्ष्मण से बोलीं— 'तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई सङ्कट में हैं ।' लक्ष्मण ने तब हंसकर (आत्म-विश्वास के साथ) कहा— मातः ! ऐसा नहीं हो सकता ।

मरम वचन सीता तव बोली ※ प्रभु प्रेरित लछिमन मत डोली ।
वन दिसि देव सौंपि सब काहू ※ चले जहां रावन ससि राहू ॥

+ सीता-हरण की यह योजना कवि-कल्पना की उपज है । यह सत्य प्रतीत नहीं होती । विशेष विचार समीक्षा खण्ड में पढ़ें ।

सीता जी ने तब कुछ हृदय में चुभने वाले व्यङ्ग वचन कहे। इस पर ईश्वर की (कर्मफल) व्यवस्था के आधीन लक्ष्मण की बुद्धि भी स्थिर न रही, (अन्त में) वे वन और दिशाओं के देवता अर्थात ईश्वर के भरोसे सीता को छोड़ रावण रूप चन्द्रमा के लिये राहु तुल्य श्री राम के पास चल दिए। [यह अलङ्कारिक प्रयोग पौराणिक कल्पना पर आधारित है।]

सून बीच दसकंधर देखा ※ आवा निकट जती के वेषा।
नाना विधि करि कथा सुनाई ※ राजनीति भय प्रीति दिखाई ॥

इस बीच में रावण आश्रम को सूना देखकर, सन्यासी के वेश में सीता जी के पास आया। रावण ने सीता जी को अनेक प्रकार की सुहावनी कथायें रचकर सुनाईं। पश्चात राजनीति, भय और लाभ दिखाने लगा।

कह सीता सुनु जती गुसाई ※ बोलेहु वचन दुष्ट की नाई।
तब रावन निज रूप देखावा ※ भई सभय जब नाम सुनावा ॥

सीता जी ने कहा— हे यति गोसाई ! सुनो, तुम तो दुष्ट की तरह वचन कहते हो। तब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और नाम बताया, जिसे सुन सीता भयभीत हो गई।

कह सीता धर धीरजु गाढ़ा ※ आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा
जिमि हरि बधुहि छुद्र सस चाहा ※ भयउ कालवश निसिचर नाहा ॥

सीता जी ने गहरा धीरज धरकर कहा— अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह, प्रभु आ ही रहे हैं। हे राक्षसराज ! जैसे सिंह की स्त्री (सिंहनी) को तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही मृत्युवश हुआ तू मेरी चाहना करता है।

दो०—क्रोधवन्त तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाइ ॥

फिर क्रोध में भरकर रावण ने सीता को रथ में बिठा लिया और बड़ी आतुरता (उतावली) के साथ वह आकाश मार्ग से चला, किन्तु डर के कारण उससे रथ हांका नहीं जारहा।

हा जग एक वीर रघुराया ※ केहि अपराध विसारेहु दाया।
हा लक्ष्मण तुम्हार नहिं दोसा ※ सो फलु पायउ कीन्हेउँ रोसा ॥

[सीता विलाप कर रही थीं—] हा, संसार के अद्वितीय वीर श्री रघुनाथ जी ! आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी । हा, लक्ष्मण ! तुम्हारा दोष नहीं हैं । मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया !

बिपति मोर को प्रभुहि सुनावा ※ पुरोडास चह रासभ खावा ।
सीता कै विलाप सुनि भारी ※ भये चराचर जीव दुखारी ॥

हा, मेरी विपत्ति श्री राम जी को कौन सुनावेगा ? हा, यज्ञ की पवित्र हवि को (जो देवों का भाग हैं) गधा खाना चाहता है ! सीता का भारी विलाप सुन मानो जड़-चेतन सभी दुःखी हो गये ।

गीधराज+ सुनि आरत बानी ※ रघुकुल तिलक नारि पहिचानी
अधम निशाचर लीन्हसि जाई ※ जिमि मलेछ बस कपिला गाई ॥

आर्य प्रवर जटायु ने (जो वहां समीप ही रहते थे) दुःखभरी वाणी सुनकर पहिचान लिया कि यह राम-पत्नी सीता है । [उसने देखा कि] नीच राक्षस उसे (ऐसी बुरी तरह) लिये जाता है मानो कपिला गाय म्लेच्छ के पाले पड़ गई हो ।

सीते पुत्रि※ करसि जन त्रासा※ करिहउँ जातुधान कर नासा ।
रे रे दुष्ट ठाढ़ किमि रहही ※ निर्भय चलेसि न जानहि मोही ॥

[वह बोला—] हे पुत्रि सीते ! भय मत कर । मैं इस राक्षस का

+ वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता हा राम ! हा लक्ष्मण ! करती जटायु का नाम लेकर जोर से कहती है —

'जटायो ! पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् ।
अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पाप कर्मणा ॥ अरण्य काण्ड ४९।३८ ॥'

अर्थात् हे आर्य जटायो ! देखो, यह पापी राक्षस मुझे बलात् लिये जाता है । तुम मेरी दशा राम से ठीक २ कह देना ।

विशेष—जटायु के लिए यहां 'आर्य' का सम्बोधन है । पशु-पक्षी के लिए यह प्रयोग नहीं हो सकता ।

※ यहां जटायु ने सीता को पुत्री कहकर सम्बोधित किया है । क्या किसी पक्षी द्वारा ऐसा प्रयोग सम्भव है ?

नाश करूंगा। (उसने ललकार कर कहा—) रे-रे दुष्ट ! खड़ा क्यों नहीं होता ? निडर होकर चला जाता है, क्या तूने मुझे नहीं जाना ?

जाना जरठ जटायू "हा * मम करतीरथ छाँडिहि देहा ।
सुनत गीध क्रोधातुर धावा * कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥

रावण ने उसे पहिचाना कि यह तो वृद्ध महात्मा जटायु है। वह बोला— अच्छा है, मेरे हाथ रूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा। यह सुन जटायु अत्यन्त क्रोधित होकर दौड़ा और बोला— हे रावण ! मेरा सिखावन सुन।

तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू * नाहिंत अस होइहि बहु बाहू ।
राम रोष पावक अति घोरा * होइहि सकल सलभ कुल तोरा ।

तू सीता जी को छोड़ सकुशल अपने घर चला जा। नहीं तो हे (बहु-बाहू=बहुत शक्ति और साधनों वाले) रावण ! ऐसा होगा कि—श्री राम की भयङ्कर क्रोधाग्नि में तेरा सारा वंश पतङ्गा होकर भस्म हो जायेगा।

उतरु न देत दसानन जोधा * तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ।
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा * सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ।

योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब जटायु क्रोध करके दौड़ा। उसने रावण के बाल पकड़कर उसे रथ के नीचे उतार लिया रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब जटायु सीता को लौटाकर चलने लगा।

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना * काढ़ेसि परम कराल कृपाना ।
काटेसि अङ्ग परा फुर धरनी * सुमिरि ईस करि अदभुत करनी ॥

तब खिसियाये हुए रावण ने क्रोधित होकर भयानक तलवार को निकाला। उससे (नर-रत्न) जटायु के अङ्गों को शीघ्र ही काट गिराया। (जटायु पड़ा हुआ) ईश्वर की अद्‌भुत लीला का स्मरण करने लगा।

सीतहि यान चढ़ाइ बहोरी * चला उताइल त्रास न थोरी ।
करति बिलाप जाति नभ सीता * व्याध बिबस जनु मृगी सभीता ।

सीता जी को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला। उसको कम भय न था। सीता आकाश में विलाप करती जा रही हैं, मानो व्याध के जाल में फंसी हुई कोई भयभीत हिरनी हो।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी * कहि प्रभु नाम दीन्ह पट डारी ।
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ * बन असोक महँ राखत भयऊ ॥

मार्ग में एक पर्वत पर बैठे वानर जाति के कुछ वीरों को देख कर श्री राम का नाम लेते हुए सीता जी ने कुछ वस्त्र डाल दिये । इस प्रकार वह (रावण) सीता जी को ले गया और उनको अशोक वन में रक्खा ।

दो०—हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ ।
तब असोक पादप तर, राखिसि जतन कराइ ॥

सीता को (अपने अनुकूल करने के लिए , जब बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर वह दुष्ट हार गया, तब यत्न कराके [सब व्यवस्था ठीक कराके] अशोक वृक्ष के नीचे अशोक वाटिका में, रख दिया ।

रघुपति अनुजहि आवत देखी * बाहिज चिन्ता कीन्हि बिसेषी ।
जनक सुता परिहरहु अकेली * आयहु तात बचन मम पेली ॥

(इधर) श्री राम ने भाई लक्ष्मण को आते देख बड़ी चिन्ता प्रकट की [और कहा—] हे भाई ! तुमने जानकी को अकेला छोड़ दिया और मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन कर यहां चले आये ।

निसिचर निकर फिरहिं वन माहीं * मम मन सीता आश्रम नाहीं ।
गहि पद कमल अनुज कर जोरी * कहेउ नाथ कछुमोहि न खोरी ॥

राक्षसों के समूह वन में फिरते रहते हैं । मुझको लगता है कि सीता आश्रम में नहीं हैं । लक्ष्मण ने श्री राम के चरण स्पर्श कर हाथ जोड़कर कहा— हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है ।

अनुज समेत गये प्रभु तहवाँ * गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ।
आश्रम देखि जानकी हीना * भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥

लक्ष्मण सहित श्री राम वहां गये, जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था । जानकी को आश्रम में न देखकर श्री राम जी सर्वथा साधारण मानव की तरह व्याकुल और दुःखी हो गये (एक महापुरुष के अनुरूप धैर्य को वे खो बैठे ।)

हा गुन खानि जानकी सीता * रूप सील ब्रत नेम पुनीता।
लछिमन समुझाये बहु भाँती * पूछत चले लता तरु पाँती ॥

[श्री राम विलाप करने लगे—] हा, गुणों की खान जानकी ! हा रूप, शील, सत्यव्रत और नित्यकर्म पालन से पवित्र सीते ! (तुम कहां हो ?) लक्ष्मण ने उनको अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास किया (पर श्री राम का शोकावेग बढ़ता ही गया, शोकावेग से श्री राम की मनः स्थिति ऐसी हो गई कि) वे लता और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी * तुम देखी सीता मृगनैनी ।
खंजन सुक कपोत मृग मीना * मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥

हे पक्षियो ! हे पशुओ ! हे भौंरों की पंक्तियो ! तुमने कहीं मृग-नयनी सीता को देखा है ? खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौंरों का समूह, प्रवीण कोयल—

कुन्द कली दाड़िम दामिनी * कमल सरद ससि अहि-भामिनी ।
श्री फल कनक कदलि हरषाहीं * नेकु न संक सकुचि मनमाहीं ॥

कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद् का चन्द्रमा और नागिनी, वेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं। इनके मन में तनिक भी शङ्का और सङ्कोच नहीं है।

सुनु जानकी तोहु बिनु आजू * हरषे सकल पाइ जनु राजू ।
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं * प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥

हे जानकी ! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हो रहे हैं, मानो राज पा गये हों [अर्थात तुम्हारे विभिन्न अङ्गों की तुलना में ये सब तुच्छ अपमानित और लज्जित थे। आज तुमको न देखकर ये अपनी शोभा के अभिमान में फूल रहे हैं]। तुमसे यह अनख (स्पर्धा) कैसे सही जाती है ? हे प्रिये ! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं हो जातीं ?

विशेष—यहां कवि की काव्य-प्रतिभा का हृदयग्राही परिचय मिलता है

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी * मनहुँ महा बिरही अति कामी ।
आगें परा गीधपति देखा * सुमिरत राम चरन सुभ रेखा ।

यों सीतापति राम सीता को खोजते हुए इस प्रकार विलाप करते हैं,

मानो महा विरही और अत्यन्त कामी हों* । आगे जाने पर उनको महात्मा जटायु मिले, जो राम-चरण की शुभ रेखा का स्मरण कर रहे थे अर्थात वे श्री राम के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

दो० — कर सरोज सिर परसेउ कृपासिन्धु रघुवीर ।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर ।।

कृपासागर राम ने अपने कर-कमलों से उनके शिर का स्पर्श किया । शोभाधाम राम का मुख देखते ही मानो जटायु की सब पीड़ा जाती रही ।

तब कह गीध बचन धरि धीरा * सुनहु राम भजन भवभीरा ।
नाथ दसानन यह गति कीन्ही * तेहिं सठ जनकसुता हरि लीन्ही ।।

धैर्य धारण कर जटायु बोला — हे संसार के कष्टों को दूर करने वाले (जन-समाज को सुख देने वाले) राम ! सुनो, रावण ने [सीता-रक्षणके प्रयास में] मेरी यह दशा की है । वही दुष्ट जानकी को हर ले गया है ।

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं * बिलपति अति कुररी की नाईं ।
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना * चलन चहत अब कृपा निधाना ।।

हे स्वामिन् (राजन्) राम ! वह सीता को लेकर दक्षिण दिशा को गया है । सीता कुररी की तरह अत्यन्त विलाप कर रही थीं । हे राम ! मैंने (अपनी योगविद्या से) आपके दर्शनों तक के लिए यह सन्देश देने के लिए) प्राण रोक रखे थे । हे कृपानिधान ! अब ये चलना ही चाहते हैं ।

जल भरि नयन कहहिं रघुराई * तात कर्म निज तें गति पाई ।
परहित बस जिन्ह के मन माहीं * तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछुनाहीं ।।

नेत्रों में जल भरकर श्री राम कहने लगे - हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से यह वीरोचित दुर्लभ गति पाई है । [सत्य ही है] जिनके

---

* महापुरुषों में कभी २ इस प्रकार की मानव सुलभ दुर्बलतायें भी देखने को मिलती हैं । श्री राम भी उसके अपवाद न थे । यहाँ राम जीवन की उसी प्रकार की झांकी प्रस्तुत है । सीता हरण और राम-विलाप का यह संपूर्ण प्रसङ्ग अवतारवाद की अवैदिक मान्यता पर गहरी चोट है ।

मन में दूसरों का हित समाया रहता है, उनके लिये संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं है ।

पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई ※ चले विलोकत वन बहुताई ।
वन-वन ढूँढ़त राम उदारा ※ शबरी के आश्रम पगु धारा ।।

फिर दोनों भाई सीता को खोजते हुए और वन की बहुताई (विविधता=सुन्दरता) को देखते हुए चले । दयालु श्री राम वन-वन में सीता को ढूंढ़ते हुए शबरी (भीलनी) के आश्रम पर पधारे ।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा ※ पुनि-पुनि पद सरोज शिरनावा ।
सादर जल लै चरण पखारे ※ पुनि सुन्दर आसन बैठारे ।

(राष्ट्रवीर राम को आया देख) शबरी प्रेम-मग्न हो गई उसके मुखसे वचन न आता था । उसने बार-बार (राजा राम के) चरण कमलों में शिर नवाया । फिर आदर से जल लेकर चरण धोये और उनको सुन्दर आसन पर बिठाया ।

विशेष—वैदिक संस्कृति में आतिथ्य की यही पुण्य परम्परा है ।

दो०—कन्द मूल फल सरस अति, दिये राम कहं आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खायउ, बारहिं बार बखानि ।।

शबरी ने रसीले कन्द-मूल-फल लाकर राम लक्ष्मण को दिए । उन्होंने प्रेम सहित बार-बार प्रशंसा करके उनको खाया । (जूंठे वेर की बात गलत है)

पाणि जोरि आगे भइ ठाढ़ी ※ प्रभुहिं विलोकि प्रीति अति बाढ़ी ।
केहि विधि अस्तुति करहुँ तुम्हारी ※ अधम जाति मैं जड़मति नारी ।।

पश्चात शबरी हाथ जोड़कर सामने खड़ी हुई, श्री राम (के कृपा-भाव) को देख बड़ी ही कृतज्ञ हुई और बोली — मैं आपका किस प्रकार से कीर्ति-गान करूं ? मै एक तो नीच जाति, दूसरे बहुत ही जड़ बुद्धि वाली हूँ ।

विशेष—यहाँ शबरी ने अपने को नीच जाति कहा है । ध्यान रहे कि जाति केवल एक है— मानव जाति । ऊंच-नीच की भावना घोर पाप है ।

अधम ते ※अधम अधम अतिनारी ※ तिन महँ मैं मतिमन्द गँवारी ।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता ※ मानों एक भक्ति करि नाता ।।

※ यहाँ स्त्री जाति को नीचातिनीच बताना अत्यधिक गर्हित और घोर निन्दनीय है । इस पर विस्तार से समीक्षा खण्ड में विचार करेंगे ।

स्त्रियाँ नीचातिनीच से भी नीच होती है। उनमें मैं और भी मन्दबुद्धि और गंवारिन हूँ। श्री राम ने इस पर कहा— हें देवि! मैं तो केवल प्रेम (भक्ति) का ही नाता मानता हूँ। [यहाँ राम ने भेद-भाव के पाप का खंडन किया है।]

जाति पाँति कुलधर्म बड़ाई ❊ धन बल परिजन गुण चतुराई।
भक्ति हीन नर सोहै कैसे ❊ बिन जल वारिद देखिय कैसे ॥

(हे देवि!) उत्तम जाति, कुल, व्यवहार, बड़ाई, धन, पराक्रम, गुण, और चतुरता ये सब हों तो भी ईश्वर प्रेम से रहित वैसा ही लगता है जैसे जल के बिना मेघ।

विशेष—हमें यह स्मरण रखना है कि सच्चा ईश्वर प्रेम है— ईश्वर का प्रजा से प्रेम, प्राणिमात्र से प्रेम, देश, जाति और धर्म से प्रेम।

धरती पर सुख-शान्ति बढ़ाओ, देकर निज श्रम-शक्ति।
मानवता का अर्थ यही है, और यही प्रभु भक्ति ॥

चले राम त्यागेउ वन सोऊ ❊ अतुलित बल नर केहरि दोऊ।
विरही इव प्रभु करत विषादा ❊ कहत कथा अनेक संवादा।

(शबरी से विदा लेकर) अमित बलयुक्त दोनों नरसिंहों ने वह वन भी छोड़ दिया। श्री राम अनेकों कथा और आख्यान कहते हैं तथा वियोगी पुरुष की तरह शोक करते हैं।

पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा ❊ पंपा नाम सुभग गंभीरा।
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए ❊ बहु विधि कानन विटप सुहाए ॥

फिर श्री राम पम्पा नामक गहरे और सुन्दर सरोवर के किनारे आये उस झील (सरोवर) के समीप मुनियों ने आश्रम बना रखे हैं, जिनके चारों ओर अनेक वृक्ष हैं।

दो० फल भारन नमि विटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसम्पति पाइ ॥

वे सभी वृक्ष फलों के बोझ से झुक कर पृथ्वी के पास आ गये हैं, जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाने पर (विनय से) झुक जाते हैं। ॐ

卐卐卐

किष्किन्धा काण्ड

आगे चले बहुरि रघुराई। ऋष्यमूक पर्वत नियराई।
तहं रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बलसीवा॥

श्रीराम पुनः आगे बढ़े तो पास ही ऋष्यमूक पर्वत आ गया। उस पर्वत पर वानर राष्ट्र के राजा बाली के विरोध के कारण उसके छोटे भाई सुग्रीव मंत्रियों सहित रहते थे। अतुलनीय बल की सीमा रूप राम और लक्ष्मण को आता हुआ देख कर—

अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना।
धरि वटु रूप देखिहहु जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई।

सुग्रीव बहुत ही भयभीत होकर बोले— हे हनुमान ! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूप (शक्ति और सौन्दर्य) के भण्डार हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाकर देखो। अपने हृदय में उनकी यथार्थ बात जान कर मुझे इशारे से समझाकर कह देना।(जिससे-)

पठए बालि होहिं मन मैला। भागों तुरत तजौं यह सैला।
विप्र रूप धरि कपि तहं गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

यदि इनके मन में कुछ विकार हो और ये बाली के भेजे हुये हों तो मैं तुरन्त यह पर्वत छोड़कर भाग जाऊँ। (यह सुन) हनुमान् ब्राह्मण का वेश धरकर वहां गये और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे—

को तुम श्यामल गौर शरीरा। क्षत्रिय रूप फिरहु वन वीरा।
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु विचरहु वन स्वामी॥

हे वीर ! सांवले और गोरे शरीर वाले आप कौन हैं, जो क्षत्रिय के

रूप में वन में फिर रहे हैं ? हे स्वामी ! कोमल चरणों वाले आप यहां वन की कठोर भूमि पर किस कारण विचर रहे हैं ?

मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह वन आतप बाता।
की तुम्ह तीन देव महं कोऊ। नर नारायण की तुम्ह दोऊ॥

आपके कोमल और सुन्दर अङ्ग मन को आकर्षित करने वाले हैं, फिर भी आप वन के असह्य धूप और हवा के झोंकों को सह रहे हैं ! क्या आप त्रिदेव- ब्रह्मा, विष्णु,महेश में से कोई हैं, या आप दोनों नर और नारायण के प्रति रूप हैं ?

दो०–जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार॥

अथवा आप जगत् के निमित्त कारण (निर्माता) और सम्पूर्ण लोकों के स्वामी स्वय भगवान् हैं, जिन्होंने लोगों को भवसागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का भार नष्ट करने के लिये मनुष्य रूप में अवतार लिया है ?

कौशलेश दशरथ के जाये। हम पितु वचन मानि वन आये।
नाम राम लछिमन दोऊ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥

उतर में विप्रवर हनुमान् द्वारा किये गये इन समस्त कल्पित (असम्भव) सम्भावनाओं को अस्वीकारते हुए श्रीराम सिर्फ यह कहते हैं- हम अयोध्या के राजा दशरथजी के पुत्र हैं, हम दोनों भाई हैं (न हम कल्पित त्रिदेवों में से कोई हैं, न नर-नारायण या किसी अवतार की कल्पना के प्रति-रूप हैं) हम पिताजी की आज्ञा से वन आये हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं। हमारे साथ (सीता नामक) सुन्दर सुकुमारी स्त्री भी थी।

इहाँ हरी निसिचर वैदेही। विप्र + फिरहिं हम खोजत तेही।
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु विप्र निज कथा बुझाई॥

+ महावीर हनुमान एक आदर्श वानर कुलोत्पन्न क्षत्रिय थे। वीर होने के साथ ही ये परम धार्मिक और महान् विद्वान भी थे। वे बन्दर (पशु) नहीं थे। बन्दर को आप कैसे ही वस्त्रादि पहिनायें, कैसी ही साज सज्जा

हे विप्रवर ! यहां वन में किसी राक्षस ने (मेरी पत्नी) जानकी को हर लिया। हम उसे ही खोजते हैं। यही हमारा (संक्षिप्त और सत्य) परिचय है। हे विप्रवर ! अब आप अपना परिचय दें।

नाथ सैल पर कपि पति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई।
तेहि सन नाथ मयत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजं॥

(उत्तर में श्री हनुमान कहते हैं-) हे स्वामी ! इस पर्वत पर वानर-राज सुग्रीव रहते हैं। वह आपके सेवक हैं अर्थात् आपकी सेवा करेंगे (और मैं उनकी सेवा में हूँ) हे भगवन् ! आप उनसे मित्रता करें और उसे दीन समझ (सेवा में लेकर) निर्भयता प्रदान करें।

सो सीता करि खोज कराई। जह तहं मरकट कोटि पठाई।
एहि विधि सकल कथा समुझाई। लिय दोउ जन पीठि चढ़ाई॥

वह भी इधर उधर (सर्वत्र) करोड़ों (बहुत से) वानरों की भेज कर सीताजी की खोज करायेगा [और इस प्रकार आपका सहायक सिद्ध होगा।]

करें वह मनुष्य नहीं दीख सकता। राम जैसे विज्ञानी महापुरुष को वह धोखा नहीं दे सकता कि राम उसे 'विप्र' कह कर सम्बोधित करें। वाल्मीकि रामायणमें श्रीराम लक्ष्मणसे हनुमान्की विद्याकी प्रशंसा करते हुये कहते हैं-'इस विद्वान् ब्राह्मण का उच्चारण कितना शुद्ध है,व्याकरण की एकभी अशुद्धि इसके उच्चारण में नहीं है, यह वेद-वेदाङ्गों का ज्ञाता है'आदि'। स्पष्ट है कि विद्या और बल के महाधनी हनुमान को बन्दर बताना अपने महान इतिहास को अपने हाथों विनष्ट करने ऐसा घोर कर्म है। आर्योत्तम हनुमान् हमारे महान् पूर्वज थे। शीघ्र ही हम 'शुद्ध हनुमच्चरित' प्रकाशित करेंगे।

+यहां वीरवर हनुमान ने राम का परिचय जानने के प्रसङ्ग में जितनी पौराणिक सम्भावनायें प्रकट की हैं, श्री राम ने अपना सत्य सरल और संक्षिप्त परिचय देकर उनकी असत्यता को स्वयं उद्घोषित कर दिया है। श्री राम ने हनुमान की किसी भी सम्भावना का समर्थन नहीं किया। तुलसी रामायण का यह प्रसंग अवतारवाद की मिथ्या एवं नाशकारी कल्पना पर वज्र प्रहार तुल्य है। विशेष विचार समीक्षा खण्ड में पढ़ें।

जब सुग्रीव राम कहं देखा। अतिसय जन्म सफल करि लेखा।
सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा।।

जब सुग्रीव ने श्री राम के दर्शन किये तो (अपनी सफलता की दिशा में एक शुभ चिन्ह मान) अपने जीवन को अत्यधिक सफल अनुभव किया। उसने आदर सहित उनके चरणों में अभिवादन किया। श्रीराम और लक्ष्मण भी उसे गले लगाकर मिले।

दो०—तब हनुमन्त उभय दिसि, की सब कथा बुझाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ।।

तब श्री हनुमान ने दोनों ओर का वृत्त समझाकर [दोनों की आवश्यकता और एक दूसरे के लिये उपयोगिता बताकर] यज्ञ का आयोजन किया और यज्ञाग्नि को साक्षी करके दृढ़ मित्रता के बन्धन में उन्हें बांध दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण वृत्त (मित्रता में दोनों का लाभ) समझा कर (स्वीकृति मिलने पर) हनुमान् ने राम-लक्ष्मण दोनों को पीठ पर चढ़ा लिया।

विशेष—"यज्ञोवै श्रेष्ठतम कर्म" किसी भी सत्कार्य की संज्ञा 'यज्ञ' है। अतः किसी शुभ संकल्प की दृढ़ता के लिये उसके प्रतीक रूप यज्ञाग्नि को साक्षी बनाना वैदिक संस्कृतिमें आवश्यक माना जाता था(कोई मूर्ति की साक्षी न थी)

कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाखा।
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेश कुमारी।।

दोनो ने (हृदय से) प्रीति में कुछ भी अन्तर नहीं रखा अर्थात् दोनों अभिन्न हो गये। लक्ष्मण ने श्रीराम का चरित (और वर्त्तमान विपत्ति के विषय में) विस्तार से बताया। तब सुग्रीव ने नेत्रों में जल भरकर कहा—हे नाथ ! सीता जी [अवश्य] मिल जावेंगी।

मन्त्रिन्ह सहित इहां एक बारा। बैठि रहउं कछु करत विचारा।
गगन पन्थ देखो मैं जाता। परबस परी बहुत बिलखाता।।

मैं एक बार मन्त्रियों सहित बैठकर कुछ विचार कर रहा था कि (अनायास) शत्रु के वश में पड़ी बहुत विलाप करती सीता को मैंने आकाश मार्ग से जाते देखा

राम राम हा राम पुकारी । हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी।
माँगा राम तुरत तेहि दीन्हा । पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ।।

हमें देखकर उन्होंने "राम ! हा राम !" पुकारते हुए कुछ वस्त्र गिरा दिये थे । राम ने उन्हें माँगा । सुग्रीव ने तुरन्त ही उन्हें श्रीराम को दे दिया । श्रीराम ने सीता के वस्त्रों को हृदय से लगा अत्यधिक शोक प्रकाशित किया । +
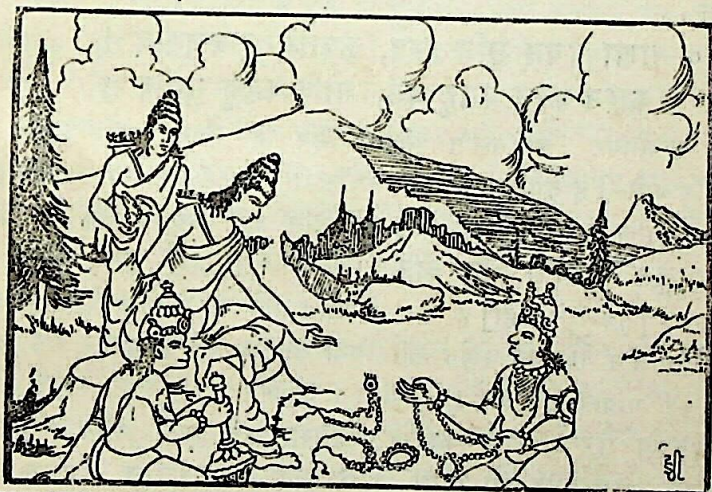
+ यहाँ गोस्वामी जी ने भारतीय (वैदिक) संस्कृति की महत्ता एवं उच्चता के निदर्शक एक बड़े ही सजीव, सरस और सत्य ऐतिहासिक वृत्त को छोड़ दिया है। वस्त्रों के साथ कुछ गहने भी थे । श्री राम उन आभूषणों को पहिचानने के लिये श्री लक्ष्मण को कहते हैं । लक्ष्मण इसका बड़ा ही मार्मिक, प्रेरणाप्रद और अनुकरणीय उत्तर देते हैं । महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में वे कहते हैं—

नाहं जानामि केयूरे नैव जानामि कुण्डले ।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभि वन्दनात् ।।

अर्थात् हे भ्रातः ! मैं न तो माता सीता के भुजबन्दों की पहिचान कर सकता हूँ, न कुण्डलों की । हाँ नूपुरों, की पहिचान कर सकता हूँ क्योंकि प्रति दिन माँ सीता के चरणों में अभिवादन किया करता था । अहा ! कैसी स्वर्गीय झाँकी है, यह ! इसी से तो मेरे राम और लक्ष्मण अमर हैं !!

कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा * तजहु सोच मन आनहु धीरा ।
सब प्रकार करिहउं सेवकाई * जेहि विधि मिलहि जानकी आई ।

सुग्रीव ने कहा—हे रामजी, सुनिये । आप शोक त्याग, मन में धीरज लायें । मैं उन सब उपायों से आपकी सेवा करूंगा, जिससे सीताजी आपको मिलें ।

दो०—सखा वचन सुनि हरषे, कृपासिन्धु बलसीव ।
कारन कवन बसहु वन, मोहिं कहहु सुग्रीव ॥

कृपासागर बलनिधान श्रीराम मित्र के वचन सुन प्रसन्न हुए [और बोले–] हे सुग्रीव ! मुझे बताओ कि आप वन में किस कारण रहते हो ?

नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई । प्रीति रही कछु बरनि न जाई ।
मय सुत मायावी तेहि नाऊं । आवा सो प्रभु हमरे गांऊ ॥

[सुग्रीव ने कहा] हे नाथ ! बालि और मैं दो भाई हैं । हम दोनों में ऐसा प्रेम था जिसे वर्णन नहीं किया जा सकता । हे प्रभो ! मय दानव का पुत्र मायावी एक बार हमारे नगर में आया ।

अर्धरात्रि पुर द्वारा पुकारा । बाली रिपु बल सहै न पारा ।
धावा बालि देखि सो भागा । मैं पुनि गयउं बन्धु संग लागा ॥

उसने आधीरात के समय नगर के फाटक पर आकर ललकारा । बालि शत्रु की ललकार को सह न सका । वह दौड़ा, उसे देखकर मायावी भागा । मैं भी भाई के सङ्ग लगा चला गया ।

गिरिवर गुहा पैठ सो जाई । तब बाली मोहि कहा बुझाई ।
परिखेसु मोहि एक पखवारा । नहिं आवौं तब जानेसु मारा ॥

वह एक पर्वत की गुफा में जा घुसा । तब बालि ने मुझे समझाकर कहा—तुम एक पखवाड़े (पन्द्रह दिन) तक मेरी बाट देखना यदि मैं उतने दिनों तक न आऊं तो जान लेना कि मैं मारा गया ।

+ बन्दरों के कौनसे राजा और नगर बसे होते हैं ? सत्य यह है कि रामायण काल में दक्षिण में दो बड़े राष्ट्र — असुर राष्ट्र और वानर राष्ट्र थे । यह सम्पूर्ण वर्णन वानर राष्ट्र का है ।

मास दिवस तहं रहेउं खरारी । निसरी रुधिर धार तहं भारी ।
बालि हतेसि मोहि मरिहि आई । सिला देइ तहं चलेउ पराई ।।

हे खरारि राम ! मैं वहाँ एक महीने तक रहा, तब उस गुफा में से रक्त की धारा निकली । मैंने समझा कि उसने बालि को मार डाला, अब मुझे आकर मारेगा । इसलिये मैं गुफा के द्वार पर शिला लगाकर भाग आया ।

मन्त्रिन्ह पुर देखा बिनु सांई । दीन्हेउ मोहि राज बरिआई ।
बाली ताहि मारि गृह आवा । देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा ।।

मन्त्रियों ने नगर को बिना राजा के देखकर मुझे जबर्दस्ती राज्य दे दिया । इधर बालि उसे मार कर जब घर आया तो मुझे [राजसिंहासन पर देखकर] उसने मेरे साथ विरोध ठान लिया [उसने समझा कि यह राज्य के लोभ से ही गुफा द्वार पर शिला दे आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूं, और यहाँ आकर राजा बन गया]

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी । हरि लीन्हेसि सर्वसु अरु नारी ।
सुनि सेवक दुख दीन दयाला । फरकि उठीं दोउ भुजा बिसाला ।।

उसने मुझे शत्रु की तरह बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व एवं स्त्री आदि को भी हरण कर लिया । दीन दयालु श्री राम की दोनों विशाल भुजायें अपने सेवक * (सुग्रीव) का दुःख सुनकर फड़क उठीं ।

दो०—सुनु सुग्रीव मैं मारिहउँ बालिहिं एकहि बाण ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गये न उबरहिं प्रान ।।

हे सुग्रीव ! सुनो, मैं बालि को एक ही बाण से मार डालूंगा । ब्रह्मा और शिव की शरण में जाने पर भी उसकी प्राण रक्षा न हो सकेगी (यहाँ पुनः त्रिदेवों की पृथक्-पृथक् सत्ता मानकर पौराणिक विचित्र कल्पना का सहारा लिया गया है।)

जे न मित्र दुख होंहि दुखारी । तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ।
निज दुख गिरि सम रज कर जाना । मित्र के दुख रज मेरु समाना ।।

---

* यहाँ मित्र शब्द उपयुक्त था । पर 'अवतारवाद' का कीड़ा गोस्वामी जी को पदे-पदे परेशान करता है ।

जो लोग मित्र के दुःख से दुखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है। सच्चा मित्र वह है जो अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान थोड़े से दुःख को मेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने।

कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा। गुन प्रगटै अबगुनहिं दुरावा।
देत लेत मन संक न करई। बल अनुमान सदा हित करई॥

मित्र का धर्म है कि वह अपने मित्र को बुरे मार्ग से रोक कर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुणों को प्रकाशित करे और अवगुणों को छिपावे। देने-लेने में मन में शङ्का न रक्खे, अपनी शक्ति के अनुसार सदा ही हित करता रहे।

विपति काल कर सतगुन नेहा * श्रुति कह सन्त मित्र गुण एहा।
आगे कह मृदु बचन बनाई * पाछें अनहित मन कुटिलाई॥

और विपत्ति के समय सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं (यह वचन वैदिक शिक्षा की भावना के अनुसार है) कि सन्त (श्रेष्ठ) मित्र के ये गुण (लक्षण) हैं। जो सामने तो बना-बना कर कोमल वचन कहता और पीठ पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है.—

जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।
सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब विधि करब काज मैं तोरे॥

हे भाई! (इस तरह) जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है। हे सखे! मेरे बल पर अब तुम चिन्ता छोड़ो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे कार्य की सिद्धि करूंगा।

ल सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा।
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥

पश्चात् सुग्रीव को साथ ले और धनुष बाण धारण कर श्रीराम चले, श्रीराम की प्रेरणा से सुग्रीव उत्साह पाकर बालि के पास जाकर गरजा।

भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा।
तब सुग्रीव बिकल होई भागा * मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥

सन्मित्र के लक्षणों का यह विवेचन 'राम चरित मानस' के सुन्दरतम स्थलों में से है। ऐसे सुन्दर और सरस प्रसङ्गों की अवतारणा के कारण ही गोस्वामी जी के चरणों में हमारा मस्तक झुक जाता है।

दोनों भिड़ गये । बालि ने सुग्रीव को बहुत धमकाया और घूंसा मार कर बड़े जोर से गरजा। तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। घूंसे की चोट उसे वज्र के समान लगी।

मैं जो कहा रघुवीर कृपाला। बन्धु न होइ मोर यह काला।
एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम ते मारेऊं नहिं सोऊ॥

[सुग्रीव ने आकर कहा—] हे कृपालु रघुवीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं है, काल है।। श्रीराम ने तब कहा—] तुम दोनों भाइयों का एक-सा ही रूप है। इसी भ्रम में मैंने उसको नहीं मारा। ×

मेली कण्ठ सुमन की माला। पठवा पुनि बल देइ विसाला।
पुनि नाना विधि भइं लराई। विटप ओट देखहिं रघुराई॥

तब श्रीराम ने (अलग पहिचान के लिये) सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी और उसे अत्यधिक उत्साहित करके पुनः भेजा। फिर दोनों में अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। श्रीराम वृक्ष की आड़ से देखते रहे।

दो०—बहु छल बल सुग्रीव कर, हियँ हारा भय मानि।
मारा बाली राम तब, हृदय माझि सर तानि॥

सुग्रीव ने बड़े दांव-पेच लड़ाये पर (अन्त में) भय मानकर उसका हृदय हार गया। तभी श्रीराम ने तान कर बाली के बाण मारा।

परा विकल महि सर के लागे। पुनि उठ बैठि देखि प्रभु आगे।
हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥

+यहाँ गो० तुलसीदास जी ने स्वयं राम का भ्रमित होना तथा उनकी अल्पज्ञता को स्वीकार किया है। 'भ्रम' के कारण वे बाली और सुग्रीव को पहिचान नहीं स । स्पष्ट है कि श्रीराम का ज्ञान निर्भ्रम नहीं है और न वे सर्वज्ञ हैं। दोनों भाइयों में भेद करने और अपनी पहिचान के लिये वे सुग्रीव को पुष्प माला पहिनाते हैं। क्या अब भी श्रीराम को ईश्वरावतार कहना दुराग्रह मात्र नहीं है? विशेष विस्तार समीक्षा खण्ड में पढ़ें।

बाण के लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, किन्तु श्रीराम को सामने आया देख वह फिर उठकर बैठ गया। (क्षत्रिय प्रवर राम की वीरता के लिये) उसके हृदय में प्रेम था (किन्तु श्रीराम के विचित्र व्यवहार से) उसकी वाणी में (स्वभावत:) कठोरता आ गई। वह श्रीराम की ओर देखकर बोला—

धर्म हेतु अवतरेउ गोसाईं। मारेहु मोहि व्याध की नाईं।
मैं वैरी सुग्रीव पिआरा। कारण कवन नाथ मोहि मारा॥

हे रामजी ! (सुना है आप एक आदर्श क्षत्रिय वीर है अत: विश्व-मञ्च पर) आपका अवतरण (जन्म) धर्म की रक्षा के लिये है। फिर हे महाराज ! मुझे आपने एक व्याध की तरह (छिपकर) क्यों मारा ? मैं आपका वैरी और सुग्रीव आपका प्यारा कैसे ? (कृपा कर बतायें कि आपने मुझे किस कारण से मारा है ?)

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी।
इन्हहि कुदृष्टि विलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

[श्रीराम ने कहा] हे मूर्ख ! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या ये चारों ही समान हैं (पुत्री के ही समान हैं) इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता। *

*बालि के इस ज्वलन्त प्रश्न का गो० तुलसीदास ने श्रीराम के द्वारा जो समाधान प्रस्तुत कराया है भावात्मकता अथवा नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में उससे कुछ तो समाधान मिलता है पर निश्चय ही यह पूर्ण समाधान नहीं कहा जा सकता। आगे सुग्रीव भी तारा को पत्नी बना लेता है और विभीषण ने मन्दोदरी को पत्नी बनाकर भी यही कुछ किया है। पर सुग्रीव और विभीषण राम के कोप-भाजन तो कहां, उलटे स्नेह-भाजन हैं। फिर श्रीराम ने बाली को छिपकर क्यों मारा ?

आदर्श महापुरुष श्रीराम के पवित्र जीवन में बालीवध का प्रसङ्ग युगों २ से जन मानस को उद्वेलित करता रहा है। इसका औचित्य न हो, ऐसी बात नहीं है। पर उसे खोजने के लिये हमें इस सम्पूर्ण प्रसङ्ग की गहराइयों मे उतरना होगा।

तारा विकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया।
छिति जल पावक गगन समीरा। पञ्च रचित अति अधम शरीरा ॥

(वालि-पत्नी) तारा को व्याकुल देखकर श्रीराम ने उसके अज्ञान को दूर कर उसे प्रबोध कराया कि यह अधम (नाशवान्) शरीर तो पृथ्वी, जल,

---

(१) श्रीराम को जटायु द्वारा तथा अन्य प्रकार से भी अब तक यह निश्चित रूप से ज्ञात हो चुका था कि सीता का हरण रावण के द्वारा हुआ है। इतने प्रबल शत्रु से उन्हें मोर्चा लेना था। एक उपाय इसका यह भी हो सकता था कि राम भरत को सूचित करते, अयोध्या से सेना आती और रावण से लड़ा जाता। पर वह न तो शक्य था और न राम जैसे अद्वितीय वीर के गौरव के अनुरूप ही। तब क्या हो? राम इसकी चिन्ता में ही थे, कि उन्हें ऋष्यमूक पर्वत पर आने से एक अपूर्व अवसर मिल गया।

(२) रामायण काल में चार महाराष्ट्र देखने को मिलते हैं। १-देव राष्ट्र इन्द्र आदि जिसके शासक थे २--आर्यराष्ट्र—जिसका मुख्य केन्द्र अयोध्या था। ३-वानरराष्ट्र—जिसकी राजधानी किष्किन्धापुरी थी ४-असुरराष्ट्र—जिसका अधिपति रावण था। असुरराष्ट्र इन दिनों बड़ा प्रबल हो रहा था। वानर राष्ट्र का स्वामी वाली महाबलवान् था। रावण को भी एक बार तो ६ महीने तक उसकी कांख (आश्रय—संरक्षण या शरण) में रहना पड़ा था। अन्ततः सन्धि हुई और इन दोनों की बड़ी घनिष्ठ मित्रता हो गई वह मित्रता बराबर चली आती थी। इसी मित्रता के कारण रावण की एक सैनिक छावनी नासिक में (पंचवटी के निकट) थी।

(३) रावण को विनष्ट करने के लिये श्रीराम के निकट सबसे सरल मार्ग यही था कि किसी प्रकार वानरराष्ट्र की मैत्री भंग हो और वानरराष्ट्र पूरे बल और साधनों के साथ राम के साथ उठ खड़ा हो। ईश दया से वह संयोग उपस्थित हो गया। श्रीराम और सुग्रीव दोनों को ही एक दूसरेकी समान रूपसे आवश्यकता थी। दोनों ही समान रूप से दुःखी थे। श्रीराम को पत्नी का दुःख था तो सुग्रीवको भी न केवल पत्नी वरन् राज्य से निकाल देनेका भी दुःख था। 'समान शील व्यसनेषु सख्यम्' के अनुसार दोनों की मित्रता हो गई। श्रीराम को यहाँ हम एक महान् राजनीतिज्ञ के रूप में देख सकते हैं।

अग्नि आकाश और वायु—इन पांचों तत्वों से रचा गया है। (यहां शरीर को अधम कहना वेदोपदेश के प्रतिकूल है। वेद में शरीर को दैवी नौका कहा गया है। अतः अधम का अभिप्राय यहां 'नाशवान्' से है।

प्रकट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि कारण रोवा।
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा ॥

(हे देवि !) वह पाञ्चभौतिक शरीर तो अब भी तुम्हारे सामने पड़ा है। और जीवात्मा तो नित्य अविनाशी है, फिर तुम किस कारण रोती हो ? पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव को आज्ञा देकर वैदिक विधि से वाली का अन्त्येष्ट संस्कार सम्पन्न कराया। विशेष--वाल्मीकि रामायण में इस वैदिक अन्त्येष्टि संस्कार का बड़ा सुन्दर और विशद वर्णन है। यहां भी हम देख सकते हैं कि दाह-क्रिया के पश्चात् की जाने वाली किसी पौराणिक क्रिया का उल्लेख नहीं है।

सुग्रीव के सहायक बनकर बालिवध द्वारा उन्होंने सम्पूर्ण वानरराष्ट्र को अपना चरण-चेरा बना लिया।

(४)श्रीराम जानते थे कि सम्मुख युद्ध में बालि को जीतना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा। यहाँ पुनः उन्होंने राजनीति (राजधर्म) का आश्रय लिया, अपने को परीक्षण में नहीं डाला। अपने शत्रु के सबसे बड़े सहायक बालि को छिपकर मारने में ही उन्होंने अपनी योजना की सफलता देखी (ऐसा करना राजधर्म में सर्वथा विहित है। मानवधर्म प्रणेता महर्षि मनु ने मनुस्मृति में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है) और हमने देखा कि ईश्वर कृपासे श्री राम अपनी इस राजनीति में पूर्णतया सफल रहे। इस प्रकार महामानव श्रीराम के जीवन का यह पक्ष उनके चरित्र की किसी दुर्बलता का नहीं वरन् राजनीतिज्ञ के रूप में उनकी एक विशेषता का ही परिचायक है। साथ ही इस विवेचन से इस भ्रान्ति का भी समूलोन्मूलन हो जाता है कि बालि,हनुमान्,सुग्रीव,तारा आदि बन्दर-बन्दरी थे। ये सभी मानव जाति के रत्न, शूरवीर तथा कर्तव्य परायण नर-नारी थे। इनके राष्ट्र का नाम वानर राष्ट्र था और इसी से ये सभी वानर कहलाते थे जैसे जर्मन, अंगरेज, फ्रांसीसी, चीनी रूसी आदि।

राम कहा अनुजहिं समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई।
रघुपति चरन नाइ कर माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा ।।

तब श्रीराम ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। श्रीराम की प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग उन्हें मस्तक नवाकर चले।

दो०—लछिमन तुरत बुलाये, पुरजन विप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहं, अंगद कह युवराज ॥

श्रीलक्ष्मण ने तुरन्त ही सब नागरिकों और विद्वत्समाज को बुलाया और (उनकी उपस्थिति में) सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य और अंगद को युवराज पद दिया।

पुनि सुग्रीवहिं लीन्ह बुलाई। बहु प्रकार नृप नीति सिखाई।
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाऊं दस चारि बरीसा ।।

फिर श्रीराम ने सुग्रीव को बुलाकर उसे अनेक प्रकार से राजधर्म की शिक्षा दी और कहा—हे वानर राज सुग्रीव! सुनो, (पिताजी की आज्ञानुसार) मुझे चौदह वर्ष तक नगर में नहीं जाना। (यह चौदहवाँ वर्ष चल रहा है)

गत ग्रीषम वर्षा ऋतु आई। रहिहउं निकट सैल पर छाई।
अंगद सहित करहु तुम राजू। सतत हृदय धरेउ मम काजू ।।

ग्रीष्म ऋतु बीतकर वर्षा ऋतु आ गई है, अतः मैं यहाँ पास ही पर्वत पर टिकूंगा। तुम अंगद सहित राज्य करो और मेरे काम को सदा ध्यान में रखो।

जब सुग्रीव भवन फिरि आए। राम प्रवरषन गिरि पर छाए।
फटकि सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहां दोउ भाई ।।
बरषा काल मेघ नभ छाये। गरजत लागत परम सुहाये ।।

जब सुग्रीव घर लौट आये तब श्रीराम प्रवर्षण पर्वत पर जा ठहरे। वहाँ अत्यधिक शुभ्र (स्वच्छ) और शोभनीय स्फटिक शिला पर श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई सुखासन से बैठे हैं। वर्षाकाल है। आकाश में बादल छाये हैं। गरजते हुए ये बहुत ही सुहावने लग रहे हैं।

दो०—लछिमन देखहु मोरगन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहं देखि ॥

(श्रीराम कहते हैं–) हे लक्ष्मण ! देखो, मोरों के समूह बादलों को देखकर (हर्ष से) नाच रहे हैं, जैसे वैराग्य (अनासक्ति) प्रेमी सद्गृहस्थ किसी विष्णु (ईश्वर) भक्त को देखकर हर्षित होते हैं।

विशेष—यहाँ वैराग्य का अर्थ साँसारिक कर्त्तव्य कर्मों से भागना नहीं है, वरन् ईश्वरार्पित बुद्धि या अनासक्त भाव ही वैराग्य का सत्यार्थ है। गीताकार ने इसी कर्म-कौशल को 'योग' कहा है। हां, गृहस्थी भी योगी होता है। सत्य तो यह है कि गृहस्थ योग की साधना सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधना है। महाराज जनक इसके एक आदर्श उदाहरण हैं।

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा।
दामिनि दमक रहि न घन माहीं। खल की प्रीति यथा थिर नाहीं ॥

(हे लक्ष्मण !) आकाश में बादल घुमड़-घुमड़ कर घोर गर्जना कर रहे हैं। सीताजी के बिना मेरा मन डर रहा है। (यहां पुनः राम के विरही हृदय का चित्रण है) बिजली की चमक बादल में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती। (राजनीति का कैसा सुन्दर सूत्र है, यह!)

बरषहिं जलद भूमि निअराए। जथा नवहिं बुध बिद्या पाए।
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन सन्त सह जैसे ॥

बादल पृथ्वी के समीप आकर बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् हो जाते हैं। बूंदों की चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन सन्त सहते हैं।

छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुं धन खल इतराई।
भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहि माया लपटानी ॥

छोटी नदियां भरकर (किनारों को) तुड़ाती चल रही हैं, जैसे दुष्ट थोड़ा धन पाकर भी इतराकर मर्यादाओं को तोड़ने लगते हैं। पृथ्वी पर पड़ते ही (वर्षा का शुद्ध) जल इस प्रकार गंदला हो गया है, जैसे प्रकृति के सान्निध्य में जीवात्मा।

विशेष—यहां यह स्मरणीय है कि प्रकृति निन्दनीय या अनावश्यक नहीं है। वह भी अनादि सत्ता है और परमात्म तत्व की प्राप्ति के लिये वह जीवात्मा के लिये अनिवार्य साधन है। प्रकृति (साधन) के माध्यम से ही साध्य परमात्मा की प्राप्ति सम्भव है। हाँ, प्रश्न साधन के दुरुपयोग और सदुपयोग का है। साधन को ही साध्य मान लेने वालों के लिये प्रकृति प्रभु प्राप्ति में सहायक न होकर निश्चय ही बाधक सिद्ध होती है। "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" के आदर्श को धारण करने वालों के लिये प्रकृति माता बन कर अपने पुत्रवत् जीवात्मा को पिता परमात्मा की गोद में सौंप देती है (मोक्ष प्राप्त-कराती है।)

सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहं आवा।
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि हरि जन पाई॥

जल (सभी ओर से) एकत्र हो-होकर तालाब में भर रहा है, जैसे (एक-एक कर) सभी सद्गुण सत्पुरुष के पास चले आते हैं। नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही सुस्थिर हो जाता है जैसे प्रभु भक्त प्रभु को प्राप्त कर अचल (आवागमन से मुक्त) हो जाता है।

विशेष—गोस्वामीजी की यह तुलना बहुत ही उपयुक्त है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि नदी का जल समुद्र में सुस्थिरता प्राप्त करने के पश्चात् भी पुनः सूर्य किरणों द्वारा मेघ बनकर नदी में आ जाता है। इसी प्रकार जीवात्मा भी एक सुदीर्घ काल तक ईश्वर के सान्निध्य मे रहने के पश्चात् पुनः मुक्ति से लौटता है। 'मुक्ति से पुनरावृत्ति' के सत्य वैदिक सिद्धान्त की यहां बड़ी सुन्दर पुष्टि होती है।

दो०—हरित भूमि तृन संकुलित, समुझि परहिं नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवाद तें, लुप्त होहिं सदग्रन्थ॥

पृथ्वी घास से परिपूर्ण हो जाने से हरी हो गई है, जिससे रास्ते दीख नहीं पड़ते (छिप गये हैं) जिस प्रकार पाखण्ड मतों के प्रचार से सद्ग्रन्थ लुप्त प्राय हो जाते हैं।

विशेष—कभी सारे संसार में एक ही धर्म था—वैदिक धर्म, एक ही

सद्ग्रन्थ (धर्म ग्रन्थ) था—वेद, एक ही गुरु मन्त्र था—गायत्री, एक ही उपास्यदेव था—ओ३म्। परन्तु मध्यकाल में आलस्य और अज्ञान की वर्षा के कारण अनेक पाखण्डपूर्ण मत पन्थों की घास उग आने से परम पवित्र (ईश्वरोक्त) वेद और वेद-पथ लुप्त प्राय हो गया था। वेदों के साथ दर्शन (शास्त्र) और उपनिषदों के नाम तकभी हम भूल गये थे। ऋषि दयानन्द ने अपनी शुद्ध तर्कणा के शस्त्र से इस घास एवं झाड़ झङ्खाड़ को काट कर लुप्त प्राय वेद पथ को फिर से प्रशस्त किया, सबके दृष्टिगत कराया। वेदों की दुहाई दे देकर अनेक जाल ग्रन्थ रच दिये गये थे अनेकों आर्षग्रन्थों एवं इतिहास ग्रन्थों में वाममार्गियों एवं विधर्मियों द्वारा मिलावटें करदी गई। ऋषि ने उन सबका निराकरण कर फिर से वेदों का प्रकाश किया। भारत में वेद न मिले तो जर्मन से लाकर फिर से आर्य जाति के जीवनाधार वेद हमें वापिस दिये तथा वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म बताया, इसलिये समस्त मानव जाति ऋषि की ऋणी है।

दादुर धुनि चहुं दिसा सुहाई। पढ़हिं वेद जनु वटु समुदाई।
नव पल्लव भे विटप अनेका। साधक मन जस मिलें विवेका।।

चारों दिशाओं में मेढ़कों को ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है मानो ब्रह्मचारी गण वेद पाठ कर रहे हों। * अनेकों वृक्षों में नये पत्ते आने से वे ऐसे हरे भरे (सुशोभित) हो गये हैं जैसे साधक कामन विवेक (निर्मल ज्ञान) पाने पर हो जाता है।

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमइ दूरी।।

मदार (आक) और जवासा पत्तों से रहित हो गये, जैसे उत्तम राज्य में दुष्टों का उद्यम बहा जाता है। (उनकी एक नहीं चलती) + (वर्षा की अधिकता से) धूल इस प्रकार दूर हो गइ—देखने को नहीं मिलती, जिस

---

* कैसा सुनहरी युग था वह, जब हमारे विद्यार्थी अन्य अवैदिक और (अवैज्ञानिक) ग्रन्थों में सिर न खपाकर केवल सब सत्य विद्याओं के पुस्तक वेद का अध्यन करते थे।

प्रकार क्रोध धर्म को दूर कर देता है। (अर्थात् क्रोध का आवेग आने पर धर्म का ज्ञान नहीं रहता।+

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी की सम्पति जैसी।
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दम्भिन कर जुरा समाज़ा॥

ससि = शस्य (अन्न) से युक्त—लहलहाती खेती से हरी भरी-पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी उपकारी पुरुष की सम्पत्ति। रात्रि के घने आकाश में जुगुनू ऐसे लगते हैं, मानो दम्भियों का समाज आ जुटा हो।

विशेष—ध्यान दीजिये जुगनू रूप दम्भी अज्ञान के अंधेरे में ही चमकते हैं। ज्ञान-सूर्य के उदय होने पर उनका अस्तित्व खतरे में, उनकी दुकानें बन्द! इसीसे दम्भी पाखण्डी पोप ज्ञानालोक का (वैदिक सद्धर्म) का विरोध करते हैं।

महाबृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि स्वतन्त्र भए बिगरहिं नारी।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद नाना॥

भारी वृष्टि से खेतों की क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे अति स्वतन्त्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतों को निरा रहे हैं (उनमें से घास आदि को निकाल कर फेंक रहे हैं,जैसे विद्वान् सब प्रकार के मद (अभिमान) और मोह का त्याग कर देते हैं।

विशेष—यहाँ नारी के स्वतन्त्र न रहने का अर्थ यह नहीं है कि नारी को गुलाम या दासी बनाकर रखना चाहिये। नारी पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है, सहचरी है, जीवन साथी है और है उसकी श्रेष्ठतम सखा। 'सखे सप्तपदी भव' में इसी मित्रधर्म पालन की तो गूंज है। श्रीराम और सीता के बीच

+काश, हमारा स्वराज्य, सुराज्य बन सका होता—गान्धी के सपनों का 'रामराज्य' और देव दयानन्द की भावनाओं का वैदिक राज्य बना होता तो आज आये दिन "खलों के उद्यम" देखने को न मिलते! उत्तम राज्य का आधार है—दण्ड। 'दण्ड: धर्म विदुर्बुधः' जिससे 'खल उद्यम' (गुण्डागर्दी) सर्वथा मिट सके। उत्तम राज्य की कसौटी है उसमें सर्व प्रथम 'खल उद्यम' (गुण्डा-गर्दी) का काला मुंह किया जावे।

यह सखाभाव पराकाष्ठा को प्राप्त है। फिर यहाँ नारी की स्वतन्त्रता का जो अभिप्राय है वह 'महावृष्टि'-अति स्वतन्त्रता या उच्छृङ्खलताकी ओर संकेत करता हैं— जिसका परिणाम है 'चलि फूटि कियारी' अर्थात् मर्यादाओं का उल्लंघन। यह तो निश्चयही अवाञ्छनीय है। मनुस्मृति आदि में जहाँ भी नारी की स्वतन्त्रता को मर्यादित करने का प्रयास किया गया है, वहां २ इस प्रकार की उच्छृङ्खलता का ही निषेध समझें। पश्चिम के प्रवाह में स्वतन्त्रता या पुरुष के साथ स्पर्धा के भ्रामक नारे की लहर में भारतीय नारी जिस मर्यादा-हीनता या उच्छृङ्खलता को अपनाने लगी है, वह नारी के लिए गौरव की वस्तु नहीं। इतना ही नहीं उसमें नारी के साथ ही सम्पूर्ण राष्ट्र का सर्वनाश निश्चित हैं। लज्जा युक्त मर्यादित स्वतन्त्रता में ही नारी की शोभा है।

(२) चतुर किसान की तरह ही सजग समाज सुधारक भी समाज रूपी खेत में उग आये निरर्थक परम्पराओं, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों रूपी घास-पात को निकाल फेंकता है, और इस प्रकार उपयोगी तत्वों (पद्धतियों) के विकास का मार्ग बनाता है। यही 'युग निर्माण या मानव निर्माण' की पृष्ठ भूमि है—दुरितों का निष्कासन और भद्रताओं का निवसन ही राष्ट्र निर्माण की कुंजी है।

देखिअत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिमि धर्म नसाहीं।
ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपजि न कामा॥

(वर्षा के कारण) चक्रवाक पक्षी दिखाई नहीं देरहे जैसे हृदय में कालिमा आने पर धर्म वृत्ति (कर्त्तव्य-भावना) नष्ट हो जाती है। (यहां कलि का अर्थ कलियुग करना समीचीन नहीं) ऊसर में वर्षा होने पर भी वहां घास तक नहीं उगती जैसे प्रभु भक्त के हृदय में काम-विकार उत्पन्न नहीं होता (सच्चे प्रभु भक्त का हर कार्य निष्काम भाव से—ईश्वरार्पित बुद्धि से— होने से काम या कामना का बीज ही नहीं रहता)

विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ज्ञाना॥

(वर्षा ऋतु में) पृथ्वी अनेक तरह के जीवों से भरी उसी तरह शोभित

है जैसे सुराज्य पाने पर प्रजा की वृद्धि (प्रजा के यश और वैभव की वृद्धि) होती है। + जहां तहां अनेक राहगीर थककर ठहरे हुए हैं जैसे ज्ञान प्राप्त होने पर इन्द्रियां (शिथिल होकर) विषयों की ओर जाना छोड़ देती हैं।

दो०—कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के ऊपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥

कभी २ वायु बड़े वेग से चलने लगती है जिससे बादल जहां तहां विलीन हो जाते हैं, जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं। (जैसे भारत राष्ट्र रूपी विशद कुल या वृहद् राष्ट्र परिवार में स्वार्थी कपूतों के उत्पन्न हो जाने से उनके पाखण्ड रूप दुष्कर्मों की आंधी में वैदिक सद्धर्म का लोप हो गया था।

दो०—कबहुँ दिवस महं निबिड़ तम, कबहुँक प्रकट पतङ्ग।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥

कभी (बादलों के कारण) दिन में घोर अंधेरा छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं (जिससे लोक फिर प्रकाश से भर उठता है) जैसे कुसङ्ग पाकर ज्ञान (आत्म-प्रकाश) नष्ट हो जाता है और सत्सङ्ग मिलने पर फिर हृदय आत्म-ज्योति से ज्योतित हो उठता है।

विशेष—राष्ट्र जीवन में भी जब जब अज्ञान, अन्धविश्वास, गुरुडम और पाखण्डों के काले-काले बादल सद्ज्ञान के सूर्य को ढक लेते हैं, सारा राष्ट्र अज्ञान के अंधेरे में डूब जाता है। पर जब कभी किसी महापुरुष की सत्संगति से अज्ञान की बदलियां छटती हैं सद्ज्ञान (वेद) के सूर्य का फिर से प्राकट्य होता है तो राष्ट्र-जीवन फिर से एकबार नव जीवन और आत्म चेतना से भर जाता है।

+ प्रजा की वृद्धि 'सुराज्य' का प्रमाण है। सुराज्य में प्रजा (उत्तम सन्तान) की वृद्धि होती है। आज प्रजा-वृद्धि को 'परिवार नियोजन' के कुचक्र द्वारा रोका जा रहा है। स्पष्ट है कि यह कुराज्य का लक्षण है। निःसन्देह आज का शासन-सुशासन नहीं, कुशासन या दुश्शासन है। किसी अर्जुन का गाण्डीव ही इस स्थिति से भारत को उबारेगा और मेरे भारत को महा-भारत, का रूप देगा।

वरषा विगत शरद ऋतु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई।
फूलें कास सकल महि छाई। जनु वरषा कृत प्रगट बुढ़ाई॥

हे लक्ष्मण ! देखो, वर्षा बीत गई और परम सुन्दर शरद्-ऋतु आ गई। फूले हुए कास से सारी पृथ्वी शोभित हो उठी मानो वर्षा ऋतु ने (कास रूपी सफेद बालों के रूप में) अपना बुढ़ापा प्रकट किया है।

उदित अगस्त पन्थ जल सोखा। जिमि लोभहिं सोखइ सन्तोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

अगस्त्य नक्षत्र ने उदय होते ही मार्ग का जल सुखा डाला, जैसे सन्तोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का जल निर्मल हो जाने से वैसा ही सोहता है, जैसे मद और मोह से रहित सन्तों का हृदय।

रस-रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।
जानि शरद ऋतु खञ्जन आये। पाय समय जिमि सुकृत सुहाये॥

नदियों और तालाबों का पानी धीरे-धीरे सूख रहा है, जैसे ज्ञानी जन धीरे-धीरे ममता का त्याग करते हैं। (पर ममत्व त्याग का अर्थ रस-हीनता=नीरसता या शुष्कता नहीं वरन् आसक्ति-त्याग है।) शरद् ऋतु को आया जान खञ्जन पक्षी आगये हैं जैसे सुकृत (पुण्यों) का फल समय पाकर ही फलित होता है।

विशेष—कर्म का विपाक काल पूर्ण होने पर ही उसका फल मिलता है। कई बार पुण्यात्माओं को कष्ट पाते देख और पापात्माओं को फलते-फूलते देख साधारण दृष्टि से देखने वाले लोग ईश्वर के अस्तित्व और उसकी न्याय-व्यवस्था में ही विश्वास खो बैठते हैं। पर यह तो अज्ञानता है किसी भी कर्म का फल उसके विपाक काल की अवधि पूर्ण होने पर ही मिलेगा। एक वृक्ष एक वर्ष मे फल देने लगता है, दूसरा तीन वर्ष या अधिक में। किस कर्म का विपाक काल कब है, यह उस न्याय-नियन्ता के ज्ञान में ही है। वर्त्तमान के सुख-दुःख आंशिक रूप से तो इस जीवन के कर्मों का परिणाम भी होते हैं, पर अधिकांश पूर्व जन्मों के कर्म-बीज ही इस जीवन में फलते और इस जीवन के कर्म बीज कुछ तो इसी जीवन पर अधिकांश में भावी जीवन में समय पर फलित होंगे।

पंक न रेणु सोह अस धरनी । नीति निपुण नृप की अस करनी ।
जल संकोच बिकल भये मीना । विविध कुटुम्बी जनु धनहीना ।।

कीचड़ और धूलि न होने से पृथ्वी ऐसी सोहती है, जैसे नीति में निपुण राजा की कर्त्तव्य शीलता । (जिसमें कीचड़=मलिनता एवं छल-छद्म का लेश नहीं होता) जल थोड़ा होने से मछलियां व्याकुल हैं जैसे धन से हीन बड़े कुटुम्ब वाला पुरुष ।

विशेष—पारिवारिक (गार्हस्थ्य) जीवन के लिये तो विशेष रूप से धन की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है । वैदिक जन विनय करते हैं—'वयं भगवन्तः स्याम' प्रभो ! हमें ऐश्वर्य प्रदान करो, श्रेष्ठ धनों के स्वामी बनाओ । हम भूलें नहीं कि लोक और परलोक की समन्वित साधना ही धर्म है ।

दो०—चले हर्ष तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि ।
जिमि हरि भक्तिहिं पाय श्रम, तजहि आश्रमी चारि ।।

राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिक्षुक अपना-अपना नगर छोड़कर हर्ष से चले जैसे भगवान् की भक्ति पाकर भक्त चारों आश्रमों के परिश्रम छोड़ देते हैं ।*

---

* यह विचार सर्वथा अवैदिक है तथा राष्ट्र द्रोह की कोटि में आता है । ईश्वर भक्ति का अर्थ —परिश्रम या पुरुषार्थ से विरहित होकर निकम्मा और आलसी बनना कदापि नहीं है । वर्णाश्रम धर्मही वैदिक धर्म है। वर्ण और आश्रमके अनुसार स्व-स्व कर्त्तव्यका कर्त्तव्य बुद्धिसे पालनही सच्ची ईश्वर भक्ति है । ईश्वर भक्ति के नाम पर राष्ट्र को श्रम-विहीन बनाना पुरुषार्थ-हीन बनाना सबसे बड़ा राष्ट्र-द्रोह है । क्या ईश्वर भक्त विद्यार्थी विद्या पढ़ना छोड़ दे, क्या ईश्वर भक्त गृहस्थी गृहस्थ के पवित्र कर्त्तव्यों को त्याग दे, क्या ईश्वर भक्त वानप्रस्थी यज्ञ, स्वाध्याय, जप और आत्म-साधना के श्रम को त्याग दे और क्या ईश्वर भक्त संन्यासी राष्ट्र को सन्मार्ग पर चलाने के पवित्र कर्त्तव्य को भुला दे ? क्या इसका नाम ईश्वर भक्ति है ? क्या ब्राह्मण राष्ट्र में अज्ञान-नाश, क्षत्रिय राष्ट्र में अन्याय-नाश और वैश्य राष्ट्र में अभाव-नाश के कर्त्तव्यों को त्याग दें और शूद्र अपनी सेवा-साधना को तिलाञ्जलि दे दे, तभी ये

सुखी मीन जहं नीर अगाधा। जिमि हरि शरण न एकौ बाधा।
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी। जिमि दुर्जन पर सम्पति देखी॥

जहां जल गहरा है वहाँ मछलियाँ कैसे सुख से हैं कि जैसे स्वयं को ईश्वरार्पित कर देने वाले (अपने हर कार्य को ईश्वर की आज्ञा के अनुसार, ईश्वराज्ञा के पालन के रूप में करने वाले) को कोई विघ्न-बाधा नहीं होती। रात्रि को देखकर चकई-चकवा के मन मे दुःख होता है, जैसे पराया वैभव देखकर दुष्ट लोगों को पीड़ा होती है।

विशेष—वेद माता का आश्वासन है—

"यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि" ईश्वर के समर्पक का निश्चित कल्याण होता है। क्योंकि ऐसे देव पुरुष का कोई कार्य अपनी अपेक्षा से नहीं होता। वह निकम्मा नहीं, सबसे अधिक सक्रिय (क्रियाशील = पुरुषार्थी) होता है, वह। पर उसका प्रत्येक कार्य ईश्वराज्ञा-पालन रूप होता है। वह अपनी

सब ईश्वर भक्त बनेंगे? हमारा निवेदन यह है कि यह वाममार्ग है, उलटा रास्ता है। सत्य यह है कि इन विविध कर्त्तव्यों (धर्मों) का पालन ही ईश्वर-भक्ति या प्रभु प्राप्ति का श्रेष्ठतम साधन है। दुर्भाग्य है हमारा, हमने इस पाप पूर्ण विचार को अपने समाज में प्रतिष्ठित किया है, इसीसे हमारे यहाँ श्रम की प्रतिष्ठा नहीं। हमारे यहाँ आज वह बड़ा है जो अपना काम स्वयं नहीं करता। श्रम की प्रतिष्ठा करने वाले जापान जैसे छोटे-छोटे देश भी आज कितने समुन्नत हैं, जबकि श्रम के प्रति हीन दृष्टिकोण रखने के कारण हम स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र बने हैं। भिखारी बने हैं, गिरवी रख दिया है, हमने अपने महान् देश को! हा, हन्त!! ध्यान रहे ईश्वर भक्ति के इस विकृत स्वरूप के कारणही हमने अपने देशकी नई पीढ़ी को ईश्वर और धर्म का विरोधी (नास्तिक) बनाने का पाप स्वयं किया है। ईश्वर खुशामद पसन्द नहीं है। ईश्वर भक्ति का अर्थ कर्त्तव्य कर्म से छुट्टी लेकर माला घुमाना मात्र नहीं है। ईश्वर भक्ति का अर्थ है-ईश्वर की आज्ञा का पालन। ईश्वर की आज्ञाहै। वेदोक्त कर्त्तव्य कर्म अर्थात् वर्णाश्रम धर्म का पालन हम भूलें नहीं, Work is WorShip।

जीवन नौका की डाँड उसे संभला देता है, उसे पने जीवन का अध्यक्ष बना लेता हैं। वह उसके कन्धों पर अपने सब जीवन-भार को डाल देता है, जो सब सहने में समर्थ है। कष्ट भगवद् भक्त के जीवन में भी आते हैं और कभी २ तो अधिक आते हैं, कहना चाहिये प्राय: अधिक आते हैं, पर उसे भी वह आत्म-समर्पक अपनी करनी का फल समझ प्रसन्नता से सहता हैं। दु:ख और कष्टों को भी वह अपने प्रियतम का प्रसाद समझ अपना सखा बना लेता है। श्रीराम सीता आदि का पवित्र जीवन इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। कैसा होता है सच्चा प्रभु भक्त, यह हम श्रीराम के जीवन से सीखें।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहै न शंकर द्रोही।
शरदातप निशि शशि अपहरई। सन्त दरश जिमि पातक टरई॥

पपीहा प्यास अधिक लगने से स्वाति की बूंद के लिये तरसता है, जैसे शंकर (सबके कल्याणकर्त्ता ईश्वर) का द्रोही (सांसारिक तृषा = तृष्णा का दास होने से) सुख या स्वस्ति के लिये तरसता है (उसे सुख नहीं मिलता) शरद की कड़ी धूप की तपन रात्रि में चन्द्रमा के दर्शन या चन्द्रकिरणों की शीतलता के सान्निध्य से दूर हो जाती है जैसे सज्जन पुरुषों के दर्शन (सत्संगति) से पाप-ताप दूर हो जाते हैं।

विशेष—(१) निस्सन्देह भगवान् का द्रोही व्यक्ति हो या जाति उसे सुख नहीं मिलता। पर भगवान् के द्रोह का अर्थ क्या है? दिन रात ईश्वर-ईश्वर चिल्लाने वाला व्यक्ति या समाज भी यदि ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध चलता है तो वह शंकर (कल्याण कर्त्ता) प्रभु का द्रोही है। जो अपने मित्रों पड़ौसियों और देश वासियों का शम्(कल्याण) नहीं करता, वह शंकर-द्रोही है। जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव की दीवाल खड़ी करता है ईश्वर के पवित्र ज्ञान द्वारा आत्म-कल्याण करने के मानव मात्र के अधिकार से किसी वर्ण विशेष को रोकता है, छूतछात के पाप को समाज में स्थान देकर भगवान् के अमृत पुत्र मानव को-अपने ही भाई को 'अछूत' की संज्ञा देता है, वह शङ्कर द्रोही है। वह कहां चाहता है अपना और समाज का कल्याण?

जो देश और जाति के उत्थान और निर्माण की कल्याणकारी योजनाओं का विरोध करता और देश को रसातल की ओर ले जाने वाली

अकल्याणकारी रूढ़ियों का समर्थन करता है,वह शङ्कर भगवान् का द्रोही है। और जब वह ऐसे पापों का समर्थन ईश्वर और धर्म का नाम लेकर करता है तब तो वह प्रभु शङ्कर का घोर द्रोही हो जाता है। ऐसे व्यक्ति और समाज का दिने-दिने ह्रास और विनाश ही होता है, उसे सुख शान्ति कहां ? दूसरी ओर एक मनुष्य या समाज वह भले ही शङ्कर प्रभु का नाम न भी लेता हो (लेता है तो सर्वोत्तम लेना ही चाहिये) पर यदि वह प्रभु की कल्याणकारी आज्ञाओं का पालन करता है, मानव मात्र को प्रभु पुत्र और अपना भाई समझ समान रूप से प्यार करता है, बिछुड़ों को गले लगाता है, गिरे हुओं को उठाता, दुखियों के आंसू पोंछता गरज शङ्कर भगवान् की प्यारी प्रजा के 'शम्' या कल्याण के लिये ही जीता है वह 'शङ्कर' का सच्चा भक्त है। शङ्कर प्रभु ऐसे व्यक्ति और समाज का निश्चित कल्याण करते हैं।

हमारे पास वेद जैसा ईश्वरीय ज्ञान है, राम-कृष्ण जैसे महान् आदर्श हैं, गौतम-कपिल-पतञ्जलि-व्यास-जैमिनि-शङ्कर और दयानन्द जैसे ऋषि महर्षि हैं, पर कल्याण हमसे क्यों रूठा हुआ है। शङ्कर भगवान् हमारा 'शम्' क्यों नहीं कर रहे ? और दूसरी ओर अन्य लोग प्रत्यक्षत: शंकर के उपासक न होकर भी बढ़ रहे हैं, क्यों ? हम खोजेंगे तो ज्ञात होगा कि हम, हमारा समाज शङ्कर-द्रोही है और वे शंकर के प्रेमी हैं। क्या हम गोस्वामी जी की चेतावनी से भी चेतेंगे ?

(२) सन्तों के दर्शन का अर्थ उनके आकार-प्रकार की बाहरी सुन्दरता असुन्दरता और दाढ़ी मूंछ आदि के दर्शन से नहीं, वरन् उनके विचार-व्यवहार और आचार के दर्शन अर्थात् सत्संगति है। सत्संगति निश्चय ही पाप दूर होते हैं। पर ध्यान रहे किये हुए पापों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। श्रीराम आदि को भी भोगना पड़ा। कोई उससे बच नहीं सकता। वैदिक सिद्धान्त है—"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभं" हाँ, सत्संगति से किये गये पापों का जो दूसरा परिणाम 'वासना' के रूप में होता है। वह दुष्ट वासना धूमिल होती है। तथा सत्सङ्गति के साबुन से मन की मैल धुल कर अनागत पापों की प्रवृत्ति का दलन होकर आगे पाप को करने से मनुष्य दूर हो जाता है। हम पापों के फल से तो न सत्सङ्ग-स्नान बचा सकता है

न यम द्वितीया के दिन यमुना का स्नान और न दशहरे के दिन नीलकण्ठ का दर्शन ! (हां, गङ्गा स्नान आदि से अन्य अनेकों लाभ हैं ।)

देखहिं विधु चकोर समुदाई ※ चितवहिं हरिजन हरि जिमि पाई ।
मशक दंश बीते हिम त्रासा ※ जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा ।।

चकोर गण चन्द्रमा को देखकर वैसे ही प्रसन्न होते हैं, जैसे भगवद्-भक्त परमेश प्रभु का हृदय मन्दिर में दर्शन पाकर विभोर हो जाते हैं । जाड़े के डर से मसे और डाँस विनष्ट हो गये जैसे ब्राह्मण (विद्या के प्रतिनिधि) से वैर करने से वंश नष्ट हो जाता है ।

विशेष—ब्राह्मण राष्ट्र के सबसे प्रबल शत्रु अज्ञान का विनाशक होने से राष्ट्र का शीर्ष मुकुट है । वह राष्ट्र के विद्या बल का प्रतीक है । ब्राह्मण का द्रोही विद्या का द्रोही है, ज्ञान-विज्ञान का द्रोही है । कोई भी व्यक्ति हो या समाज जो सद्ज्ञान से वैर और अज्ञान (अविद्या) से प्रेम करता है, वह निश्चय ही विनाश को प्राप्त होता है । इसीलिये तो—'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि' प्रत्येक आर्य श्रेष्ठ मानव का करणीय कर्तव्य है ।

सो०—भूमि जीव संकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय ।
सद्गुरु मिले ते जाहिं जिमि, संशय भ्रम-समुदाय ।।

पृथ्वी वर्षामें जीव-जन्तुओं से भरगई थी, शरद के शुभागमन से वे सब चल बसे जैसे सद्गुरु के मिलने पर सब सन्देह और भ्रम नष्ट हो जाते हैं ।

विशेष—सद्गुरु शिष्य को विज्ञानी बनाता है, उसे अन्धविश्वासी या अन्धश्रद्धालु नहीं बनाता । वह अपने नाम से किसी नये मत-पन्थ का प्रचलन नहीं करता है । वरन् सृष्टि के आदि ज्ञानस्रोत परम प्रभु की कल्याणी वेद के सदुपदेश से शिष्य के संशयों और भ्रमों का नाश करता है । गुरुडम और पन्थाईपन को वह मिटाता है । तर्क ऋषि रूप तलवार लेकर वह पाखंड मतों द्वारा प्रचलित संशय जाल को काट गिराता है । वह कनफुकवा गुरु बन कर अपनी पूजा नहीं कराता, वरन् ईश्वर की सच्ची पूजाका मार्ग बताता है । ऐसे सत्योपदेष्टा सद्गुरु के समक्ष कौन हृदयहीन है, जो शत-शत बार नत मस्तक न हो ?

वर्षा विगत शरद् ऋतु आई ※ सुधि न तात सीता की पाई ।
सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी ※ पावा राज्य कोष पुर नारी ।

(श्री राम कहते हैं—) हे भाई ! वर्षा बीत गई है, शरदऋतु आ गई किन्तु अभी तक सीता का कोई समाचार नहीं मिला । सुग्रीव ने भी राज्य खजाना, नगर और स्त्री आदि को पाकर (उसमें चूर होकर) मेरे कार्य को भुला दिया है ।

जेहि शायक मारा मैं बाली ※ तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली ।
लक्ष्मण क्रोधवन्त प्रभु जाना ※ धनुष चढ़ाइ गह्यो कर बाना ।।

मैंने जिस बाण से बाली का वध किया है, उसी से कल मूर्ख सुग्रीव को भी मारूंगा । लक्ष्मण ने श्री राम को क्रोधित देखकर स्वयं धनुष बाण हाथ में लेकर चढ़ाया [श्री राम का यह क्रोध मानवोचित ही था] ।

दो०--तब अनुजहि समुझायहु, रघुपति करुणासींव ।
भय दिखाइ लै आवहु, तात सखा सुग्रीव ।।

तब (राजधर्म के महान् पण्डित) दयालुता की सीमा रूप श्री राम ने लक्ष्मण को समझाया कि हे तात ! मित्र सुग्रीव को (थोड़ा) भय दिखा कर साथ ले आओ ।

इहाँ पवनसुत कीन्ह विचारा ※ राम काज सुग्रीव बिसारा ।
तेहि अवसर लक्ष्मण पुर आये ※ क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये ।।

इधर पवनपुत्र हनुमान भी विचार कर ही रहे थे कि सुग्रीव ने राम के कार्य को भुला ही दिया । उसी समय लक्ष्मण नगर में जा पहुँचे । उनके क्रोध को देख वानर इधर उधर दौड़े ।

क्रोधवन्त लक्ष्मण सुनि काना ※ कह कपीस अतिशय अकुलाना ।
तुम हनुमन्त संग लै तारा ※ करि विनती समझाउ कुमारा ।।

सुग्रीव ने जब अपने कानों से लक्ष्मण के क्रोधित होने की बात सुनी तो अत्यन्त व्याकुल होकर बोला – हे हनुमान् ! तुम (विदुषी) तारा को साथ लेकर जाओ और राजकुमार को विनय पूर्वक समझाओ ।

करि विनती मंदिर लै आये * चरण पखारि पलंग बैठाये ।
तब कपीस चरणन शिर नावा * गहि भुज लक्ष्मण कण्ठ लगावा ।।

(श्री हनुमान् तारा सहित) विनय करके श्री लक्ष्मण को भवन में ले गये और उनके चरण धोकर पलङ्ग पर बिठलाया । तब सुग्रीव ने चरणों में मस्तक झुका दिया । लक्ष्मण ने बांह पकड़ कर गले से लगाया ।

दो०—हर्षि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ ।
रामानुज आगे किये, आये जहँ रघुनाथ ।।

तब अङ्गदादि वानरों को साथ लेकर और लक्ष्मणजी को आगे करके (अर्थात् उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित हो श्री राम के पास चले ।

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी * नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी ।
अतिसय प्रबल देव यह माया * छूटइ करहिं ईस जब दाया ।।

श्री राम के चरणों में शिर नवा, हाथ जोड़कर सुग्रीव ने कहा—हे नाथ ! मेरा कुछ दोष नहीं है । हे देव ! प्रकृति का आकर्षण बड़ा प्रबल है । ईश्वर की जब कृपा होती है, तभी उससे छुटकारा मिलता है ।

विशेष—सब कुछ ईश्वर के मत्थे डालकर स्वयं को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करने की कैसी अनोखी कला है जो हमारे समाज ने अपनाई हुई है, उसी का प्रतिनिधित्व यहाँ सुग्रीव कर रहा है । हमें स्मरण रहे कि इस प्रकार कर्तव्य की उपेक्षा सर्वनाश का मूल है ।

नारि नयन सर जाहि न लागा * घोर क्रोध तम निसि जो जागा ।
लोभ पाँस जेहि गर न बँधावा * सो नर तुम समान रघुराया ।।

स्त्री का नेत्र-वाण जिसे नहीं लगा, जो भयङ्कर क्रोध रूपी अंधेरी रात में जागता रहता है (क्रोधान्ध नहीं होता) और लोभ की फाँसी से जिसने अपना गला नहीं बंधाया है (अर्थात् काम, क्रोध और लोभ पर जिस ने विजय पाई है) । हे रामजी ! वह मानव आपकी भाँति ही (आदर्श) नर-रत्न है । [यहाँ श्री राम को 'नर' कहा है ।]

विशेष—यह तो ठीक है कि इन विकारों पर विजय पाने वाला व्यक्ति आदर्श है । पर उस आदर्श तक पहुँचने का प्रयास तो सभी का होना ही

चाहिये। मानव जीवन प्राप्त ही इसीलिए हुआ है। ऐसा मानकर कि कोई विशिष्ट व्यक्ति (या अवतार आदि ही) इस स्थिति को पा सकता है, तदर्थ कोई प्रयास ही न करना आत्महीनता का शिकार होना है। यह आत्महीनता (अवमान) अभिमान से कम भयङ्कर पाप नहीं है। अभिमान से उन्नत-जन भी नीचे गिर जाता है, तो अवमान या आत्महीनता का शिकार नीचे पड़ा हुआ मानव कभी ऊंचा उठ ही नहीं सकता। हमारे राष्ट्रीय एवं जातीय पतन का कारण अभिमान से भी अधिक अवमान है।

यह गुन साधन तें नहिं होई ॥ तुम्हरी कृपा पाव कोई-कोई ।
तब रघुपति बोले मुसुकाई ॥ तुम प्रिय मोहि भरत को नाई ॥

और यह गुण [यह उन्नत स्थिति] किसी प्रकार की साधन-शीलता या पुरुषार्थ से सम्भव नहीं है, यह तो आपकी कृपा से ही किसी २ को प्राप्त होती है। तब श्री राम मुस्कराते हुए बोले— हे सुग्रीव ! तुम मुझे भरत के समान प्रिय हो। (कैसा खुशामद-पसन्द चित्रित किया है यहाँ, श्री राम को !)

विशेष —यहाँ पुनः कर्म सिद्धान्त और पुरुषार्थवाद पर चौका ही लगा दिया है। स्पष्ट है कि साधन (उपाय करना—पुरुषार्थ करना) व्यर्थ है ! हा, वे कैसे दुर्भाग्य के क्षण थे जब ईश्वरभक्ति के नाम पर यह पुरुषार्थ-हीनता का पाप मेरे महान् राष्ट्रको चिपटा था। प्रभो ! हम इस वैदिक सन्देश को क्यों भूल गये— 'इन्द्रः इच्चरतः सखा' कि ईश्वर पुरुषार्थी का मित्र है ! इन्द्र (ऐश्वर्य का स्वामी) प्रभु अपने उसी मित्रको ऐश्वर्य दान करता है जो पुरुषार्थ करता है।

"God helps those, who help themselves" ईश्वर उनकी सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता (पुरुषार्थ) करते हैं। 'हिम्मते मर्दां मददे खुदा' ईश्वर साहसी (पुरुषार्थी) की सहायता करता है। हाय ! यह बिलकुल मोटी बात भी हमने कैसे भुलादी, कि माँ भी बच्चे को दूध तब पिलाती है, जब वह रोता है।

हम भूलें नहीं कि 'ईश्वर चाहे जिस पर कृपा और चाहे जिस पर अकृपा करता है।' ऐसा कहकर हम ईश्वर की ईश्वरता और न्यायप्रियता पर

अमिट कलङ्क लगाते हैं। हमारे प्रिय मित्रो ! सत्य यह है कि ईश्वर की कृपा की वर्षा तो अहर्निशि (रात दिन) अनवरत रूप से [लगातार] सब पर बिना किसी भेदभाव से समान रूप से हो रही है। पर जिस तरह वर्षा में दो वर्तन रखदें, जिनमें से एक साबित हो और दूसरे के तले में छेद हो तो आप देखेंगे कि एक वर्तन वर्षा से लबालब भर गया है और दूसरे में एक भी बूंद जल नहीं है, जबकि वर्षा दोनों पर समान हुई। ठीक इसी तरह जिनके जीवन–पात्र में दुर्गुण रूपी छेद है उनके जीवन पात्र में ईश्वर कृपा की वर्षा का जल दीख नहीं पड़ता और निर्दोष जीवन उसकी कृपा का लाभ उठाते हैं यह भेद ईश्वर की अपेक्षा से नहीं, मानव की अपनी जीवन पद्धति की अपेक्षा से है। इसलिए यह मान्यता भ्रामक और अशुद्ध है कि ईश्वर जिन पर कृपा करता है, वे ही पाप-ताप और दुर्गुण-दुरितों से बच पाते हैं। (हमारे महान राष्ट्र को ऐसी निकम्मी मान्यताओं ने ही कर्तव्यहीन और परमुखापेक्षी बनाया है) सत्य यह है कि जो अपनी कर्तव्यनिष्ठा और साधना से अपने जीवन-पात्र को छिद्र रहित (दोष रहित) बनाते हैं या बनाने के लिए सतत पुरुषार्थ करते हैं, वे ही ईश्वर कृपा का (जो सब काल में सब पर समान रूप से है) लाभ उठा पाते हैं।

अस कपि एक न सेना माहीं ※ राम कुसल जेहि पूछी नाहीं।
ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई ※ कह सुग्रीव सबहिं समुझाई॥

तब सुग्रीव की विशाल सेना में (आदर्श राजा उदारचेता एवं व्यवहार कुशल) श्री राम ने प्रत्येक वानर से कुशलता पूछी। वानर गण आज्ञा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गये। तब सुग्रीव ने सबको समझाकर कहा—

राम काजु अरु मोर निहोरा ※ वानर जूथ जाहु चहुँ ओरा।
जनकसुता कहुँ खोजहु जाई ※ मास दिवस महँ आयहु भाई॥

हे वानर बन्धुओ ! यह श्री राम का कार्य है और मेरा अनुरोध है। आप लोग सर्वत्र जाकर जानकी जी का पता लगावें और एक महिने भर ही में यहां लौट आवे।

दो०-बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरन्त ।
तब सुग्रीव बुलाए, अंगद नल हनुमन्त ॥

सुग्रीव का आदेश सुनते ही सब बानर तुरन्त भिन्न २ दिशाओं को चल दिये । तब सुग्रीब ने अंगद, नल, हनुमान आदि (प्रधान-प्रधान योद्धाओं को) को बुलाकर कहा—

सुनहु नील अंगद हनुमाना ❋ जामवन्त मति धीर सुजाना ।
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू ❋ सीता सुधि पूँछेहु सब काहू ॥

हे धीरबुद्धि और चतुर नील, अंगद, जाम्बवान् और हनुमान् ! आप सब श्रेष्ठ योद्धा मिलकर दक्षिण दिशा को जाओ और सब किसी से पूछकर सीता जी का पता लगावें ।

आयसु माँगि चरन सिरु नाई ❋ चले हरषि सुमिरत रघुराई ।
पाछें पवन तनय सिरु नावा ❋ जानि काज प्रभु निकट बोलावा ॥

आज्ञा पाकर सभी को शिर नवाया और श्री राम का (श्री राम के कार्य का) स्मरण करते हुए चले । पीछे पवनपुत्र हनुमान ने प्रणाम किया, कार्य का विचार कर श्री राम ने उनको अपने पास बुलाया ।

परसा सीस सरोरुह पानी ❋ कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ।
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु ❋ कहि बल विरह बेगि तुम आयहु ॥

श्री राम ने अपने कर-कमल से हनुमान के शिर का स्पर्श किया और अपना सच्चा प्रेमी जानकर उनको अपने हाथ की अंगूठी उतार कर दी और कहा— तुम सीता को अनेक प्रकार से समझाना तथा मेरा बल और वियोग-जन्य दशा बताकर शीघ्र लौट आना ।

दो०—चले सकल वन खोजत, सरिता सर गिरि खोह ।
राम काज लय लीन मन, बिसरा तन कर छोह ॥

सब बानर वन, नदी, तालाब और कन्दराओं में खोजते हुये आगे बढ़े जा रहे हैं । मन श्री राम के कार्य में लवलीन है, शरीर तक का प्रेम [ममत्व या ध्यान] नहीं रह गया है ।

इहाँ बिचारत कपि मन माहीं ※ बीती अवधि काज कछु नाहीं।
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता ※ विनु सुधि लिएँ करब का भ्राता॥

[खोज करते २ एक मास की अवधि बीत जाती है तब] वानर विचार करते हैं कि अवधि तो बीत गई, पर कार्य सिद्ध नहीं हुआ। सब मिलकर आपस में बात करने लगे कि हे भाई! अब तो सीता की खबर लिए बिना लौटकर क्या करेंगे?

अस कह लवन सिन्धु तट जाई ※ बैठे कपि सब दर्भ डसाई।
एहि विधि सम्मति करि बहु भाँती ※ गिरि कंदरा सुनी सम्पाती।

ऐसा कहकर वे सभी समुद्र के किनारे आ गये और वहां कुश बिछा उस पर बैठ कर सीताजी के खोजने के विषयक अनेक प्रकार से सम्मति करने लगे। यह सब चर्चायें वहीं पास पर्वत की गुफा में बैठे (जटायु के भाई) सम्पाती ने सुनीं।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका ※ तहँ रह रावन सहज असंका।
तहँ असोक उपवन जहँ रहई ※ सीता बैठि सोच रत अहई॥

[सम्पाती ने उनको बताया—] त्रिकूट पर्वत पर लङ्का बसी हुई है। वहाँ स्वभाव से ही निडर रावण रहता है और वहीं पर अशोक नाम का उपवन [बागीचा] है, जहां सीता रहती हैं और चिन्ता-मग्न बैठी रहती हैं।

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा ※ जियँ संसय कछु फिरती बारा।
जामवन्त कह सुनु हनुमाना ※ का चुप साधि रहेउ बलवाना॥

[यह सुनकर] अङ्गद ने कहा— मैं इधर से तो तैर कर समुद्र पार हो जाऊंगा, परन्तु [अधिक थक जाने के कारण] लौटकर आ पाने के विषय में मुझे कुछ सन्देह है। तभी जामवन्त बोले— हे हनुमान्! सुनो, तुम महावीर होकर भी चुप साधे कैसे बैठे हो?

कवन सो काज कठिन जग माहीं ※ जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं।
इतना करहु तात तुम्ह जाई ※ सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥

[हनुमान को प्रोत्साहित करते हुए वे बोले—] हे तात! इस संसार में ऐसा कौन सा कठिन कार्य है, जो तुमसे न हो सके। हे तात! इस समय तुम जाकर इतना ही करो कि सीता जी को देखकर लौट आओ और उनकी खबर कह दो। ※※※

भूल सुधार—बालकाण्ड पृष्ट संख्या ११ को १२ तथा १२ को ११ मानकर पढ़िये। छपने तथा पृष्ठ लगने में भूल हुई है, उसे सुधार लें।

आदर्श सेवक, ब्रह्मचर्य व्रती

महावीर हनुमान्

सुन्दर काण्ड

—卐—

जामवन्त के वचन सुहाए ❋ सुनि हनुमन्त हृदय हरषाए ।
तब लगि मोहि परखेउ तुम्ह भाई❋ सहि दुख कन्द मूल फल खाई ।।

जाम्बवान् के सुन्दर वचन सुनकर हनुमान हृदय में बड़े प्रसन्न हुए । वे बोले—हे भाई ! तुम लोग दुःख सहकर, कन्द मूल फल खाकर तब तक मेरी राह देखना—

जब लगि आवौं सीतहि देखी ❋ होइह काजु मोहि हरष विशेखी ।
यह कहि नाइ सबन्हि कहं माथा ❋ चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ।

जब तक मैं सीताजी को देखकर [लौट] न आऊं । काम अवश्य होगा (क्योंकि) मेरे हृदय में विशेष हर्ष हो रहा है [यह उत्साह सफलता का सूचक है] । ऐसा कहकर सबको शिर झुका कर प्रसन्न वदन वे श्री राम को (राम के कार्य को) हृदय में धारण कर के चल दिये ।

निशिचर एक सिंधु महं रहई ❋ करि माया नभ के खग गहई ।
ताहि मारि मारुत सुत वीरा ❋ वारिधि पार गयउ मति धीरा ।।
तहाँ जाय देखी वन शोभा ❋ गुञ्जत चंचरीक मन लोभा ।

सागर में एक राक्षस रहता था जो छल-कपट द्वारा आकाश के पक्षियों को पकड़ता था । पवनपुत्र धीरबुद्धि हनुमान उसे मारकर तथा मार्ग को सब अन्य बाधाओं पर विजय पाते हुए [अन्ततः] समुद्र के पार हो गये । वहाँ जाकर उन्होंने वन की शोभा देखी, जहाँ मधु (पुष्प रस) के लोभ से भौंरे गुंजार कर रहे थे ।

नाना तरु फल फूल सुहाये ❋ खग मृग वृन्द देखि मन भाये ।
सैल विशाल देखि एक आगें ❋ ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें ।।

अनेकों प्रकार के वृक्ष फल-फूल से शोभित हैं । पक्षी और पशुओं के

समूह उनके मन को बड़े प्रिय लग रहे थे। तभी सामने एक विशाल पर्वत देख कर हनुमान भय त्यागकर उस पर दौड़कर जा चढ़े।

गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी ※ कहि न जाइ अति दुर्ग विशेखी।
अति उतंग जलनिधि चहुपासा ※ कनक कोट कर परम प्रकासा।।

पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा नहीं जाता। वह अत्यंत ऊंचा है, उसके चारों ओर समुद्र है। सोने के परकोटे (चहार दीवारी) का प्रखर प्रकाश हो रहा है।

छं०—कनक कोट विचित्र मनि कृत सुन्दरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुवट्ट बीथीं चारु पुर बहु विधि घना।।
गजबाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि कोगनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै।

विचित्र मणियों से जड़ा हुआ सोने का परकोटा है, उसके अन्दर बहुत से सुंदर-सुंदर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुंदर मार्ग और गलियां हैं। सुंदर नगर बहुत प्रकार से सजा हुआ हैं। हाथी-घोड़े, खच्चरों के समूह तथा पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है ? अनेक वेशों में सज्जित राक्षसों के दल हैं, उनकी अत्यंत बलवती सेना वर्णन करने में नहीं आती ?

दो०—पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह विचार।
अति लघु रूप धरों निसि नगर करों पइसार।।

अनेकों नगर रक्षक देखकर हनुमानजी ने मन में विचार किया कि मैं बहुत ही लघु (छोटे = साधारण) वेश में रात्रि के समय नगर में प्रवेश करूं।

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना ※ पैठा नगर सुमिरि भगवाना।
नाम लंकिनी एक निसिचरी ※ सो कह चलेसि मोहि निन्दरी।

हनुमान ने [अपनी योजनानुसार] ईश्वर के स्मरण पूर्वक अति साधारण वेश में नगर में प्रवेश किया। [द्वार पर ही उन्हें] लंकिनी नामक एक राक्षसी [जो नगर-रक्षिका थी] मिली। वह बोली—कौन है जो मेरा निरादर करके [बिना मुझसे पूछे] चला जा रहा है ?

मुठिका एक महा कपि हनो ※ रुधिर बमत धरनी ढलमनो।
पुनि संभारि उठो सो लङ्का ※ जोरि पानि कर विनय ससङ्का ॥

वानर श्रेष्ठ हनुमान ने उसे एक घूंसा मारा, जिससे वह खून की उलटी करती हुई पृथ्वी पर लुढ़क पड़ी। [तब हनुमान ने बताया कि मैं राम का दूत हूँ और सीता की खोज के लिए आया हूँ]। वह लङ्किनी फिर अपने को संभाल कर उठी और डरी हुई, हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहने लगी।+

दो०—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अङ्ग।
तुलहि न सकल ताहि मिलि जो सुख लव सत्संग ॥

हे तात ! स्वर्ग [इस लोक में ही विशेष सुख की अवस्था] और मोक्ष के सब सुखों को तराजू के एक पलड़े में रक्खा जाय, तो भी वे मिलकर [दूसरे पलड़े पर रक्खे हुए] उस सुख के बराबर नहीं हो सकते जो क्षण-मात्र के सत्सङ्ग से होता है।

तात मोर अति पुन्य बहूता ※ देखेउ नयन राम कर दूता।
गयउ दसानन मन्दिर माहीं ※ अति विचित्र कहिजात सो नाहीं।

[इसलिये] हे तात ! मेरे बड़े पुण्य हैं जो मैं श्रीराम के दूत (आप) को नेत्रों से देख पाई। फिर हनुमान रावण के महल में गए, वह अत्यंत ही विचित्र था जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

शयन किए कपि देखा तेही ※ मन्दिर महुं न दीखि वैदेही।×
भवन एक पुनि दीख सुहावा ※ हरि मन्दिर तहं भिन्न बनावा ॥

हनुमान जी ने रावण को शयन किये देखा, परंतु महल में जानकी नहीं दिखाई दीं। फिर एक सुन्दर भवन दिखाई दिया उसमें 'उपासना-गृह'

+ लङ्का बड़ी वीराङ्गना थी। हनुमान् द्वारा विजित होने पर उसे विश्वास हो गया कि अब रावण की कुशल नहीं है। इसलिये उसका सशङ्कित होना स्वाभाविक ही था। उसे विश्वास हो गया कि श्रीराम निश्चित विजयी होंगे।

× वाल्मीकि रामायण में यहां स्पष्ट वर्णन है कि हनुमान ने दो भुजा वाले [एक सिर वाले] रावण को अन्तःपुर में स्त्रियों के साथ देखा।

(सन्ध्यालय) अलग से बना था ।*

लङ्का निसिचर निकर निवासा * इहाँ कहां सज्जन कर बासा ।
मन महुं तरक करैं कपि लागा * तेही समय विभीषनु जागा ।।

लङ्का तो राक्षसों का निवास स्थान है (यहाँ राक्षस शब्द का प्रयोग आचरण से सम्बन्ध रखता है) यहाँ सज्जन का वास कहाँ ? हनुमान् मन में तर्क (विचारपूर्ण चिन्तन) कर ही रहे थे कि उसी समय विभीषण जागा ।

विप्र रूप धरि बचन सुनाए * सुनत विभीषन उठि तहं आए ।।
करि प्रनाम पूंछी कुसलाई * बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ।

[उससे परिचय प्राप्त करने का निश्चय कर] हनुमान् ने ब्राह्मण वेश धारण कर उसे पुकारा । सुनते ही विभीषण वहां उठकर आये । प्रणाम करके कुशल पूछी [और कहा कि] हे ब्राह्मणदेव ! अपनी कथा समझाकर कहिए ।

दो०—तब हनुमन्त कही सब, राम कथा निज नाम ।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुनग्राम ।।

तब हनुमान्‌जी ने श्रीराम की सारी कहानी कहकर अपना नाम [और आने का प्रयोजन] बताया । सुनकर दोनों के शरीर पुलकित हो गए और श्री राम के गुणों का स्मरण कर दोनों के मन [प्रेममें] मग्न हो गए ।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी * जिमि दसनन्हि महुं जीभ विचारी
पुनि सब कथा बिभीषन कही * जेहि विधि जनकसुता तहं गई ।।

हे हनुमान् ! हमारी रहनी रहने का ढंग सुनो । मैं यहां वैसे ही हूँ जैसे दाँतों के बीच में बेचारी जीभ । फिर विभीषण ने [सीता हरण के पश्चात्] लङ्का में सीता जी कहाँ और किस प्रकार रहीं, वह सब कथा कह सुनाई ।+

---

* वाल्मीकि रामायण के अनुसार हनुमान् ने घर-घर में राक्षसों को अग्निहोत्र करते देखा । स्पष्ट है कि 'राक्षस' यह शब्द तब एक जाति (nation) के लिए प्रयुक्त होता था, दुर्गुण वाचक नहीं था जैसा कि अब इसका अर्थ 'दुष्ट' आदि समझा जाता है ।

+ इतिहास की धाराओं के मोड़ में विभिन्न व्यक्तित्व भी उसी के

सीता की ईश्वर-निष्ठा
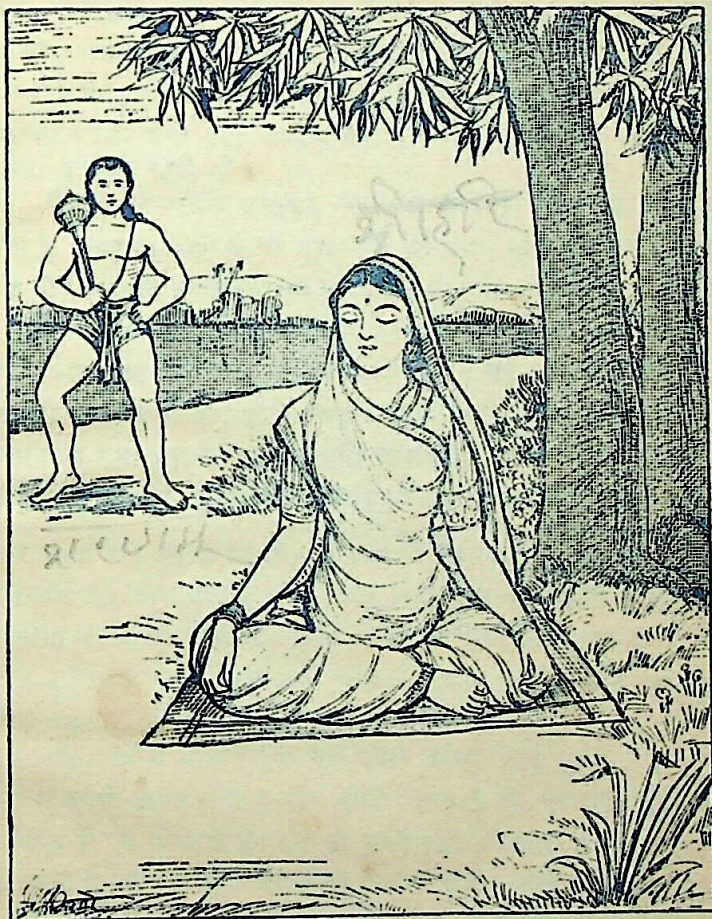
सीताजी को खोजते हुए अन्त में अशोक वाटिका के मध्य श्रीहनु-मान् ने एक नदी को देखा। बस, उन्हें निश्चय होगया कि—

यदि जीवति सा देवी ताराधिपति भानुना ।
आगमिष्यति सावश्यमिमाँ शीतजलां नदीम् ॥ सु०१४।५१

— यदि जानकी जीती है तो इस शीत जल वाली नदी पर (संध्या करने) अवश्य आयेगी। (धन्य था वह वैदिक युग !)

जुगुति बिभीषन सकल बताई ॐ चलेउ पवनसुत बिदा कराई।
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवां ॐ बन अशोक सीता रह जहवां ।।

विभीषण ने [सीता-दर्शन की] सब युक्तियां बताईं । हनुमान् विदा लेकर चले । फिर उसी अति सामान्य वेश में वे अशोक-वन के उस भाग में गए जहां सीताजी रहती थीं ।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में सीता-खोज का बड़ा ही मनोरम चित्रण है । दिनभर सीताजी का कुछ पता नहीं लगा, शाम हो आई । अशोक वन में खोजते-खोजते हनुमान्‌जी को एक छोटी सी नदी दिखाई दी । वे खिल उठे । बड़े निश्चयात्मक रूप में एक विचार उनके मस्तिष्क में कौंध जाता है कि यदि आर्या सीता जीवित हैं तो इस संध्याकाल में वह इस नदी के तट पर अवश्य ही संध्या करने आई होंगी । महर्षि बाल्मीकि के शब्दों में—

सन्ध्याकाल मनः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदी चेमांशु भजलाँ संध्यार्थे वर वर्णिनी ।।१४।४९।।

अनुरूप अपना रङ्ग-रूप ले लेते हैं । श्रीराम की विजय हुई, बिभीषण लंकेश बना । अतः उसे आज साधु (श्रेष्ठ मानव) की संज्ञा दी जाती है । रावण की अनीति का विरोध निस्सन्देह उसके जीवन का एक पवित्र पहलू है । परंतु हम यह नहीं भूलें कि बिभीषण का जीवन (राज्य के लोभ में) भ्रातृ-द्रोह का एक अन्यतम उदाहरण भी है ।

इस प्रसंग में श्रीराम पुनः एक उदार चरित किन्तु कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में हमारे सामने आते हैं और इसके सूत्रधार थे पवनपुत्र हनुमान । सीता-खोज के इस प्रसंग में हनुमान की सबसे बड़ी सफलता 'लङ्का-दहन' ही मानी जाती है, और है भी । पर हमारे विचार में यह अग्नि लङ्का के महलों और मकानों में उतनी नहीं लगी थी, जितनी लङ्का की जनता के हृदयों में । (१) यह अग्नि प्रथम तो लङ्का की जनता का मनोबल गिराने के रूप में (२ . द्वितीय "फूट की आग" के रूप में जिसे विभीषण और उसके कुछ समर्थकों के हृदयों में लगा सकने में हनुमान सफल हुए । हमारे विचार में इस फूट की आग द्वारा ही हनुमान ने वास्तविक लङ्का-दहन किया था । बाहरी लङ्का-दहन शायद इतना महत्वपूर्ण नहीं था ।

यदि जीवति सा देवी ताराधिपति भानुना ।
आगमष्यति सावश्य मिमां शीत जलां नदीम् ।।१४।५१।।

अहा ! कैसी स्वर्णिम झाँकी है, यह ! आर्य देवी सीता मृत्यु-मुख में पड़ी भी, राक्षसों की कैद में पड़ी हुई भी संध्योपासना करने अवश्य आयेगी । अन्यथा मानना ,होगा कि वह जीवित नहीं है । और हनुमान जी की यह धारणा सत्य ही थी । महर्षि बाल्मीकि के अनुसार हनुमान को सीताजी के प्रथम दर्शन नदी तट पर ही हुए ।

दो०—निज पद नयन दिये मन, राम पद-कमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ।।

वहाँ पहुँच हनुमान जी ने देखा—सीता जी नेत्रों को अपने चरणों में लगाए हुये हैं [नीचे की ओर देख रही हैं] और मन श्रीराम के चरणों में लीन है । जानकी जी को इस प्रकार दीन (दुखी) देख हनुमान बहुत ही दुखी हुये ।

तरु पल्लव महुं रहा लुकाई ※ करइ बिचार करौं का भाई ।
तेइ अवसर रावनु तहं आवा ※ संग नारि बहु किए बनावा ।।

हनूमान जी घने वृक्षों के पत्तों में छिप रहे और अपने आप वे विचार करने लगे कि भाई ! अब मैं क्या करूं ? (इनका दुख कैसे दूर करूं ?) उसी समय बहुत सी स्त्रियों को साथ लिए सज-धज कर रावण वहाँ आया ।

बहु विधि खल सीतहि समुझावा ※ साम दाम भय भेद देखावा ।
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी ※ मन्दोदरी आदि सब रानी ।।

इस दुष्ट ने सीता जी को बहुत प्रकार से समझाया । साम, दाम. भय और भेद की चारों नीतियों का प्रयोग किया । और कहा हे सुमुखि ! सुनो, मन्दोदरी आदि सब रानियों को—

तब अनुचरी करउं पन मोरा ※ एक बार बिलोकु मम ओरा ।
तृन धरि ओट कहति वैदेही ※ सुमिरि अवधपति परम सनेही

मैं तुम्हारी दासी बना दूंगा, यह मेरा प्रण है । तुम एक. बार मेरी ओर (प्रेमपूर्वक) देखो तो सही । अपने परम स्नेही कौशलाधीश श्री राम

का स्मरण करके जानकी जी तिनके (वृक्ष) की आड़ करके कहने लगीं—

विशेष—यहाँ गोस्वामी जी ने मध्यकालीन पर्दा-प्रथा का संकेत किया प्रतीत होता है।

सुनु दशमुख खद्योत प्रकाशा * कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा।
सठ सूने हरि आनेहि मोही * अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

हे दशमुख ! * सुन, जुगनू के प्रकाश से क्या कभी कमलिनी खिल सकती है ? हे पापी ! तू मुझे सूने से हर लाया है। रे अधम, निर्लज्ज ! तुझे लज्जा नहीं आती ?

दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहि भानु समान।
परुष वचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन।

अपने को जुगनू के समान और श्रीराम को सूर्य के समान सुनकर तथा सीता के कठोर वचनों को सुनकर रावण तलवार निकाल बड़े क्रोध से बोला।

सीता तैं मम कृत अपमाना * कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना
नाहि त सपदि मानि मम बानी * सुमुखि होति नतु जीवन हानी॥

सीता ! तूने मेरा अपमान किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाण से काट डालूंगा। नहीं तो अब भी मेरी बात जल्दी मान ले। हे सुमुखि ! अन्यथा तुझे प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर * प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।
सो भुज कण्ठ कि तव असि घोरा* सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा॥

[सीता जी ने कहा—] हे रावण ! श्रीराम की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी की सूड़ के समान (पुष्ट और विशाल है, या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ ! सुन यही मेरा सच्चा प्रण है।

सुनत वचन पुनि मारन धावा * मय तनया कहि नीति बुझावा।
मास दिवस में कहा न माना * तो मैं मारवि काढ़ि कृपाना॥

---

* रावण एक सिर और दो भुजा वाला ही था, इसका विशेष विवेचन समीक्षा खंड में पढ़ें।

सीता जी के ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा, तब मन्दोदरी ने उसे नीति कहकर समझाया। [तब रावण ने कहा—] यदि महिने भर में यह कहा नहीं मानती तो इसे तलवार निकालकर मार डालूंगा।

दो०—भवन गयउ दसकँधर, इहां पिशाचिनि वृन्द :
सीतहि त्रास दिखावहिं, धरहिं रूप बहु मन्द ।।

[यह कह] रावण महलों में चला गया। यहां राक्षसियाँ (रावण के आदेशानुसार) बहुत से बुरे रूप धर कर सीता जी को डर दिखलाने लगीं।

दो०—जहँ तहं गईं सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि, मारिहि निसिचर पोच ।।

इसके बाद वे सब (सोने के लिये) अपने-अपने स्थान पर चली गईं। सीताजी सोचने लगीं कि एक महीना बीत जाने पर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा।

त्रिजटा सन बोली कर जोरी ※ मातु विपति संगिनि तैं मोरी।
तजौं देह करु बेगि उपाई ※ दुसह विरहु अब नहिं सहि जाई।

सीता जी हाथ जोड़कर त्रिजटा [यह राक्षसी सीताजी का आदर करती थी] से बोलीं —हे माता! तू मेरी विपत्ति की संगिनी है। जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूं। बिरह असह्य हो चला है, अब सहा नहीं जाता।

निसि न अनल मिलि सुनु सुकुमारी※अस कहि सो निज भवन सिधारी
कह सीता विधि भा प्रतिकूला ※ मिलिहि न पावक मिटहि न सूला

हे सुकुमारी सुनो! रात्रि के समय आग नहीं मिलेगी। ऐसा कहकर वह (सीताजी को अनेक विधि सान्त्वना देकर) अपने घर चली गई। सीता जी तब स्वयं ही कहने लगीं— (क्या करूं ?) विधाता ही विपरीत हो गया, न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी।

देखिअत प्रगट गगन अङ्गारा ※ अवनि न आवत एकउ तारा।
पावकमय ससि स्रवत न आगी ※ मानहुँ मोहि जानि हत भागी ।।

आकाश में (तारे रूप) अङ्गारे प्रकट दिखाई दे रहे हैं, पर पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता। चन्द्रमा अग्निमय है, पर वह भी मानो मुझे भाग्यहीना समझकर आग नहीं बरसाता।

सुनहि विनय मम विटप असोका ※ सत्य नाम करु हरु मम सोका।
नूतन किसलय अनल समाना ※देहि अगिनि जनि करहि निदाना।

हे अशोक (वृक्ष) ! मेरी विनती सुन। मेरा शोक हर ले और अपना "अशोक" नाम सार्थक कर। तेरे नये-नये कोमल पत्ते अग्नि के समान हैं। उनमें से अग्नि दे दे, इस विरह-व्यथा को अन्तिम विन्दु (चरम-सीमा) तक न पहुँचा।

सो० —कपि करि हृदय विचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अङ्गार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ।।

तब हनूमान जी ने हृदय में विचार कर (सीता जी को अत्यन्त दुखी देख उपयुक्त अवसर जान) अंगूठी डाल दी, मानो अशोक ने अङ्गारा दे दिया (यह समझ) सीताजी ने हर्षित हो, उठकर उसे हाथ में ले लिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर ※ राम नाम अङ्कित अति सुन्दर।
चकित चितव मुदरी पहिचानी ※ हरष विषाद हृदय अकुलानी ।।

जब उसने राम नाम से अङ्कित उस अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर अँगूठी को देखा तो अँगूठी को पहचान कर सीता जी आश्चर्यचकित होकर उसको देखने लगीं। और हर्ष तथा विषाद ['दोनों ही भावों की बाढ़ से] हृदय में अकुला उठीं।

सीता मन विचार कर नाना ※ मधुर वचन बोलेउ हनुमाना।
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई ※ आदिहु तैं सब कथा सुनाई ।।

सीता जी (असमंजस में पड़कर) अनेक प्रकार से मन में कल्पनायें करने लगीं। तब श्री हनुमान मधुर कण्ठ से आदि से अब तक की कथा कहने लगे। सीता जी ने उसे मन लगाकर बड़ी तन्मयता से सुना। और बोलीं—

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई ※ कही सो प्रकट होत किन भाई।
रामदूत मैं मातु जानकी ※ सत्य शपथ करुणानिधान की ।।

हे भाई ! जिसने कानों के लिये अमृत के समान कथा सुनाई है, वह प्रत्यक्ष क्यों नहीं हो जाता ? [श्री हनुमान ने तब सामने आकर कहा—] हे माता जानकी जी ! मैं श्री राम का दूत हूँ । दया के भँडार श्री राम की शपथ करके यह सत्य कहता हूँ ।

यह मुद्रिका* मातु मैं आनी ※ दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ।
हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी ※ सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी ॥

हे माता ! यह अंगूठी मैं लाया हूँ जिसे मुझे श्रीराम ने आपके लिये निशानी के रूप में दिया था । तब हनुमान को (निश्चित रूपेण) श्रीराम का सेवक जानकर सीता जी का प्रेम सघन हो गया, नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक आये और शरीर रोमाँचित हो गया ।

बूढ़त विरह जलधि हनुमाना ※ भयउ तात मो कहँ जलजाना ।
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी ※ अनुज सहित सुख राशि खरारी ॥

सीता जी ने कहा—हे तात हनुमान् ! विरह-सागर में डूबती हुई मुझको तुम जहाज बन गये । अब तुम लक्ष्मण जी सहित राक्षसों के शत्रु सुख-धाम राम की कुशल मङ्गल कहो । मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ ।

दो०—रघुपति कर सन्देसु अब, सुनु जननी धरि धीर ।
अस कहि कपि गद्-गद् भयउ भरे विलोचन नीर ॥

[तब हनुमान बोले—] हे माता ! अब धीरज धरकर आप श्रीराम का सन्देश सुनिये । ऐसा कहकर हनुमान्जी प्रेम से गद्-गद हो गये और उनके नेत्र प्रेमाश्रु पूर्ण हो गये ।

---

* यहाँ यह प्रश्न होता है कि केवट-प्रसङ्ग में श्रीराम के पास अंगूठी नहीं थी । वे केवटको पारश्रमिक देना चाहते थे,पर पास कुछ न होने से नहीं दे सके थे । तब उन्होंने सीताजी को सङ्केत किया और सीताजी ने अपनी मणि-मुद्रिका दी थी । इस प्रकार जब रामजी के पास अंगूठी थी ही नहीं, तो अब श्री राम ने कहाँ से दे दी ? प्रश्न तो ठीक ही है, पर हमारे विचार में तो यह केवट का प्रसङ्ग ही सर्वथा निराधार है, अतः यह प्रश्न भी इस स्थिति में समाप्त हो जाता है ।

कहेउ राम वियोग तव सीता ॐ मो कहँ सकल भये विपरीता।
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू ॐ काल निसा सम निसि ससि भानू

[हनुमान् जी बोले—] श्री राम ने कहा है कि हे सीते ! तुम्हारे वियोग में मेरे लिये सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गये हैं। वृक्षों के नये-नये कोमल पत्ते मानो अग्नि के समान, रात्रि काल-रात्रि के समान और चन्द्रमा सूर्य के समान प्रतीत होते हैं।

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा ॐ जानत प्रिया एकु मनु मोरा।
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं ॐ जानु प्रीति रस इतनेहु माहीं॥

हे प्रिये ! मेरे और तेरे प्रेम का रहस्य एक मात्र मन ही जान सकता है, और वह मन सदा तेरे पास ही रहता है। बस, तेरे प्रति मेरे प्रेम का सार इतने में ही समझ ले।

प्रभु सन्देस सुनत वैदेही ॐ मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।
कह कपि हृदय धीर धरु माता ॐ सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥

श्रीराम का सन्देश सुनते ही सीताजी प्रेम में मग्न हो गईं, उनको शरीर की सुध न रही। हनुमान् जी ने कहा—हे माता ! हृदय में धैर्य धारण करो और सेवकों को सुख देने वाले श्री राम की महिमा (प्रताप) का स्मरण करो।

मन सन्तोष सुनत कपि बानी ॐ भगति प्रताप तेज बल सानी।
आशिष दीन्हि राम प्रिय जाना ॐ होहु तात बल शील निधाना॥

भक्ति, प्रताप, तेज और बल से युक्त हनुमान् की वाणी सुनकर सीता जी के मन में बड़ा सन्तोष हुआ। और उन्होंने हनुमान को राम के प्रिय जान कर आशीर्वाद दिया कि हे तात ! तुम बल और शील के निधान होओ।

चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा ॐ फल खाएसि तरु तोरें लागा।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे ॐ कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥

तब हनुमान सीता जी को अभिवादन कर बाग में घुस गये तथा फल खाने और वृक्षों को तोड़ने लगे। वहाँ बहुत से योद्धा रक्षक थे, उनमें से कुछ को मार डाला और कुछ ने रावण से जाकर पुकार की।

नाथ एक आवा कपि भारी ※ तेहिं असोक वाटिका उजारी ।
सुनि रावन पठये भट नाना ※ तिन्हहि मारि गर्जेउ हनुमाना ॥

हें स्वामिन् ! एक बड़ा भारी वानर आया है, उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली है । यह सुन रावण ने बहुत से योद्धा भेजे । उन्हें मारकर हनुमान ने गर्जना की ।

पुनि पठयउ तेहि अच्छकुमारा ※ चला सङ्ग लै सुभट अपारा ।
आवत देखि विटप गहि गर्जा ※ ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ॥

फिर रावण ने अक्षयकुमार को भेजा, वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओं को लेकर चला । उसे आते देखकर हनुमान जी ने एक वृक्ष (हाथ में) लेकर ललकारा और उसे मारकर बड़े जोर से गर्जना की ।

सुनि सुत वध लँकेस रिसाना ※ पठयेसि मेघनाद बलवाना ।
मरेसि जनि सुत बाँधेसि ताही ※ देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ॥

पुत्र का वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा । उसने (अपने जेठे पुत्र) मेघनाद को भेजा और कहा कि हे पुत्र ! उसे मारना नही, बाँध कर लाना ताकि यह देखा जाय कि यह वानर कहाँ का है ?

चला इन्द्रजित अतुलित जोधा ※ बन्धु निधन सुनि उपजा क्रोधा ।
कपि देखा दारुन भट आवा ※ कटकटाइ गरजा अरु धावा ॥

इन्द्र को जीतने वाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला । भाई का मारा जाना सुन उसे क्रोध हो आया । हनुमान जी ने देखा कि अबकी बार भयानक योद्धा आया है, तब वे कट-कट कर गरजे और दौड़े ।

ब्रह्म बान कपि कहुं तेहि मारा ※ परतिहुं बार कटक सँहारा ।
तेहि देखा कपि मूर्छित भयऊ ※ नाग पास बांधेसि लै गयऊ ॥

उसने हनुमान जी को ब्रह्म-बाण मारा [जिसके लगते ही हनुमान गिर पड़े] परन्तु गिरते गिरते भी उन्होंने बहुत सी सेना मार डाली । जब उसने देखा कि हनुमान मूर्छित हो गये हैं, तब वह उनको नागपाश से बाँधकर ले गया ।

दो० —कपिहि विलोकि दसानन, बिहसा कहि दुर्बाद ।
सुत वध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदय विषाद ॥

हनुमान जी को देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हंसा, फिर पुत्र वध का स्मरण करके उसका हृदय दुःख से भर गया।

कह लँकेस कवन तें कीसा ॥ केहिके बल घालेसि बन खीसा।
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोहीं ॥ देखउँ अति असङ्क शठ तोही ॥

रावण ने कहा— रे वानर! तू कौन है? किसके वल पर तूने वन को उजाड़ कर नष्ट कर डाला? क्या तूने मेरा नाम और यश नहीं सुना? रे शठ! मै तुझे अत्यन्त निःशङ्क देखरहा हूँ।

मारे निसिचर केहिं अपराधा ॥ कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा
जानउं मैं तुम्हारि प्रभुताई ॥ सहसबाहु सन परी लराई ॥

तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा? रे मूर्ख! वता, क्या तुझे प्राणों का भय नहीं हैं? (इसके उत्तर में व्यङ्ग पूर्वक हनुमान बोले—) मैं तुम्हारी महिमा को खूब जानता हूँ। सहस्रबाहु× से तुम्हारी लड़ाई हुई थी।

समर बालि सन करि जसु पावा ॥ सुनि कपि वचन विहसि बिहराना
खायउं फल प्रभु लागा भूखा ॥ निज सुभाव तें तोरेउं रूखा ॥

और बालि से भी युद्ध करके तुमने जो यश प्राप्त किया था। (वह भी मुझे ज्ञात है)※। हनुमान जी के (मार्मिक) वचन सुन रावण ने हंसकर

× सहस्रवाहु भी उसी प्रकार का अलङ्कारिक प्रयोग है, जैसे पंचानन चतुर्मुख, षडानन, दसकन्धर आदि। इसका अर्थ यह नहीं कि सचमुच कोई ऐसा मनुष्य जन्मा था, जिसके हजार भुजाये थीं। हजारों शत्रुओं से अकेला एक साथ युद्ध कर सकने वाला काव्य की भाषा में सहस्रबाहु है। युद्ध करने के हजारों साधन जिसके पास हैं, वह भी सहस्रबाहु है। पुरुष सूक्त (यजुर्वेद के ३१वें अध्याय) के प्रथम मन्त्र में परमात्मा को सहस्रबाहु कहा है। स्पष्ट ही उसका अर्थ असंख्य कर्मों को सम्पादित करने की शक्ति रखने वाला है, ईश्वर की भौतिक हजार भुजायें हैं, यह उसका कदापि अर्थ नहीं है। अलङ्कारों को ऐतिहासिक सत्य मानकर बड़ा अनर्थ हुआ है।

※ रावण बालि से युद्ध में हारकर ६ महिने तक उसकी कैद अथवा आश्रय में रहा था। अलङ्कारिक भाषा में इसी को 'काँख में रहना' कहा है।

बात टाल दी। (हनुमान का कथन जारी रहा) और हे राजन् ! मुझको भूख लगी थी, यों फल खाये। कुछ वृक्ष (वृक्षों की डालें) मैंने अपने स्वभाव वश (मौज में) तोड़ दिये।

जिन्ह मोहि मारा तें मैं मारे ※ तेहि पर बांधेउ तनय तुम्हारे।
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा ※ कीन्ह चहउं निज प्रभु कर काजा

जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझे बाँध लिया। [किन्तु] मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने स्वामी (राम) का कार्य किया चाहता हूँ।

विनती करउं जोरि कर रावन ※ सुनहु मान तजि मोर सिखावन।
ऋषि पुलस्ति जस विमल मयंका ※ तेहि ससि महुँ जनि सेहु कलंका

हे रावण ! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, कि तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। (विचारो कि) ऋषि पुलस्त्य का यश निर्मल चन्द्रमा के समान है। उस चन्द्रमा में तुम कलङ्क न बनो।

दो०—प्रनतपाल रघुनायक करुनासिन्धु खरारि।
गए सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध विसारि॥

खर के शत्रु श्री राम शरणागत रक्षक और दया के समुद्र हैं। शरण जाने पर वे तुम्हारा सब अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरण में ले लेंगे।

बोला विहसि महा अभिमानी ※ मिला हमहि कपि गुरु बड़ ज्ञानी
मृत्यु निकट आई खल तोही ※ लागेसि अधम सिखावन मोही।

[यह सुन] घोर अभिमानी रावण बहुत हंसकर (व्यङ्ग से) बोला कि हमें खूब यह वानर ज्ञानी गुरु मिल गया। (फिर क्रोध पूर्वक बोला) रे दुष्ट ! तेरी मृत्यु निकट आ गई है। अधम ! मुझे शिक्षा देने चला है।

उलटा होइहि कह हनुमाना ※ मति भ्रम तोर प्रगट मैं जाना।
सुनत निसाचर मारन धाए ※ सचिवन्ह सहित विभीषनु आए।

हनुमान् ने कहा— इससे उलटा ही होगा (अर्थात् मृत्यु तेरी निकट आई है, मेरी नहीं) यह तेरा मतिभ्रम (बुद्धि का फेर) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है। यह सुनते ही (रावण के आदेश पर) राक्षस हनुमान् को मारने दौड़े, उसी समय मन्त्रियों के साथ विभीषण वहाँ आ पहुँचे।

नाइ सीस करि बिनय बहूता ※ नीति विरोध न मारिअ दूता ।
आन दण्ड कछु करिअ गोसाईं ※ सबहीं कहा मन्त्र भल भाई ॥

विभीषण ने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावण से कहा कि दूत को मारना नीति के विरुद्ध है। हे स्वामी ! कोई दूसरा दण्ड ही देना चाहिये। सबने कहा—भाई, यह सलाह उत्तम है ।

दो०—कपि कें ममता पूंछ पर सबहि कहउ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बांधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥

तब रावण बोला—मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि वानर जाति को अपने विशेष जातीय चिन्ह लाङ्गूल (पूंछ) से विशेष स्नेह होता है (उसे वह अपने राष्ट्रीय-स्वाभिमान का चिन्ह समझता है)। अतः तेल में कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछ+ से बाँध दो, फिर आग लगा दो ।

पूंछ हीन बानर तहं जाइहि ※ तब सठ निज नाथहि लइ आइहि
जिन्ह कै कीन्हसि बहुत बड़ाई ※ देखेउं मैं तिन्ह कै प्रभुताई ॥

यह वानर जब अपने राष्ट्रीय चिन्ह— पूंछ से रहित हो जायगा तब अत्यधिक अपमानित होने से यह मूर्ख अपने स्वामी को बुलाकर लावेगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ !

वचन सुनत कपि मन मुसुकाना ※ भइ सहाइ जगदीश्वर जाना ।
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी ※ नगर फेरि पुनि पूंछ पजारी ॥

+ वाल्मीकि रामायण में इसे लाङ्गूल कहा है। वानरों का यह विशेष राष्ट्रीय चिन्ह था; जिस प्रकार चोटी और जनेऊ आर्य जाति के जातीय गौरव के प्रतीक हैं। हम जानते हैं कि अनेक वीरों ने-- नन्हे-नन्हे बच्चों तक ने अपने सिर कटा दिये, चोटी नहीं कटाई। ऐसा होता है राष्ट्रीय या जातीय गौरव के पुण्य प्रतीको के प्रति निष्ठाभाव। हा हन्त ! आज हम स्वयं अपने हाथों चोटी व यज्ञोपवीत की इस गौरव गरिमा को भुलाकर स्वयं चोटियाँ कटा रहे हैं। जनेऊ का तो कहीं पता ही नहीं है।

यह वचन सुन हनुमान मन में मुसकाये और सोचा कि जगत्पिता परमात्मा ने मेरी खूब सहायता की। हनुमान को नगर में घुमाकर सब ढोल बजाते और तालियाँ पीटते हैं। पुनः पूंछ में आग लगा देते हैं।

निबुकि चढेउ कपि कनक अटारी ॐ भईं सभीत निसाचर नारी।
देह बिसाल परम हरुआई ॐ मन्दिर ते मन्दिर चढ़ि धाई॥

[आग लगते ही] हनुमान् बन्धन से निकल कर सोने की अटारियों पर जा चढ़े। यह देख राक्षसियाँ भयभीत हो उठीं। हनुमान् जी का शरीर विशाल होने पर भी बड़ा फुर्तीला है जिससे वे एक भवन से दूसरे पर दौड़-दौड़कर जा चढ़ते हैं। [ज्ञात होता है कि हनुमान एक उच्च कोटि के योगी भी थे।]

जरइ नगर भा लोग बिहाला ॐ झपट लपट बहु कोटि कराला।
तात मातु हा सुनिअ पुकारा ॐ एहि अवसर को हमहिं उबारा॥
उलटि पलटि लङ्का सब जारी ॐ कूदि परा पुनि सिन्धु मझारी।

[बड़े कौशल से अपने को बचाकर] हनुमान नगर को जलाने लगे आग की करोड़ों (अनेकों) भयङ्कर लपटें झपट रही हैं। यह देख लोग बेहाल हो गये। हाय बप्पा ! हाय मैया ! इस अवसर पर हमें कौन बचावेगा ? (चारों ओर) यही पुकार सुनाई पड़ रही है। इस प्रकार हनुमान जी ने उलट-पलट कर (एक ओर से दूसरी ओर तक) सारी लङ्का जला दी और फिर वे समुद्र में कूद पड़े।

दो०—पूंछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनक सुता के आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥

पूंछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर पूर्ववत् साधारण रूप में (वीरोचित उग्र या विशाल रूप त्याग कर) हनुमान सीता जी के सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए।

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा ॐ जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा।
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ ॐ हरष समेत पवनसुत लयऊ॥

हनुमान ने कहा—हे माता ! आप भी मुझे कोई चिन्ह दीजिये, जैसे

कि श्री राम ने मुझे दिया था। तब सीता जी ने चूड़ामणि उतार कर दी। हनुमान् ने उसे हर्ष पूर्वक लिया।

कहेउ तात अस मोर प्रनामा ※ सब प्रकार प्रभु पूरन कामा।
दीनदयाल विरदु सम्भारी ※ हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

सीता जी ने कहा—हे तात ! श्री रामजी को मेरा प्रणाम निवेदन करके ऐसा कहना— 'हे स्वामिन् ! आप तो पूर्णकाम हैं पर दीनों पर दया करना आपका विरद हैं, उसे याद करके हे नाथ ! मेरे भारी सङ्कट को दूर कीजिये।'

दो०—जनक सुतहि समुझाइ करि बहु विधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहि कीन्ह ॥

हनुमान जी ने सीता जी को समझाकर अनेक प्रकार से धीरज दिया और उनके चरण-कमलों में सिर नवाकर श्री राम के पास प्रस्थान किया।

नाघि सिन्धु एहि पारहि आवा ※ सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा
हरषे सब विलोकि हनुमाना ※ नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना ॥

समुद्र तैर कर हनुमान जब इस पार आये तो उन्होंने हर्ष-ध्वनि की। सभी वानर हनुमान जी को देखकर प्रसन्नता से भर गये, मानो उनको नया जन्म मिला हो।

चले हरषि रघुनायक पासा ※ पूंछत कहत नवल इतिहासा।
आइ सबन्हि नावा पद सीसा ※ मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा

सब हर्षित होकर (लङ्का के) नये-नये इतिहास (वृत्तान्त) पूछते कहते हुए श्री राम के पास चले। सबने पहुँचकर सुग्रीव के चरणों में सिर नवाया। वह सबसे बड़े प्रेम से मिले।

दो०—प्रीति सहित सब भेटे रघुपति करुना पुंज।
पूंछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कँज ॥

परम दयालु श्री राम सबसे प्रेम सहित गले लगाकर मिले और कुशल पूछी। (वानरों ने कहा—) हे नाथ ! आपके चरण कमलों के दर्शन पाने से अब सब कुशल है।

पवन तनय के चरित सुहाये ※ जामवन्त रघुपतिहि सुनाए।
नाथ पवनसुत कीन्ह जो करनो ※ सहसहुं मुख न जाइ सो बरनी

तब जाम्बवान् ने हनुमान जी के सुन्दर चरित्र (साहस पूर्ण कार्य) श्री राम को सुनाये और कहा— हें नाथ ! पवनपुत्र हनुमान ने जो महान् कार्य किया है, उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए ※ पुनि हनुमान हरषि उर लाए।
कहहु तात केहि भांति जानकी ※ रहति करति रक्षा स्वप्रान को ॥

[वह वृत्तान्त] सुनने पर श्री राम के मन को बहुत ही प्रिय लगे। उन्होंने हर्षित हो हनुमान् जी को फिर हृदय से लगा लिया और कहा— हे तात ! कहो, सीता किस प्रकार रहती हैं और अपने प्राणों की रक्षा कैसे करती है ?

दो०—नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥

[हनुमान् जी ने कहा—] आपका नाम रात-दिन पहरा देने वाला है, आपका ध्यान ही किवाड़ हैं। नेत्रों को आपके चरणों में लगाये रहती हैं, यही ताला लगा है, फिर प्राण जायं तो किस मार्ग से ?

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्हीं ※ रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्हीं।
नाथ जुगल लोचन भरि बारी ※ बचन कहे कछु जनक दुलारी ॥

चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि [उतार कर] दी। श्री राम ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया। (श्री हनुमान् ने फिर कहा—) हे नाथ ! दोनों नेत्रों में जल भर कर उन्होंने तब (इस प्रकार) कुछ शब्द कहे :—

मन क्रम वचन चरन अनुरागी ※ केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।
अवगुन एक मोर मैं माना ※ बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ॥

'हे स्वामी ! मैं तो मन बचन और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिनी हूँ। फिर आपने मुझे किस अपराध से त्याग दिया ? (हाँ) एक दोष मैं अपना (अवश्य) मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गये !

नाथ सो नयनन्हि को अपराधा ※ निसरत प्रान करहिं हठि बाधा ।
सीता कै अति बिपति बिसाला ※ बिनहिं कहें भलि दीन दयाला ॥

किन्तु हे नाथ ! यह तो नेत्रों का अपराध है जो प्राण निकलने में हठ पूर्वक बाधा देते हैं । [सच में] सीता जी की विपत्ति बहुत बड़ी है, उसे न कहना ही अच्छा !

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा ※ स्वास जरइ छन माहिं सरीरा ।
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी ※ जरैं न पाव देह बिरहागी ॥

विरह अग्नि है, शरीर रुई है और श्वास पवन है, इस प्रकार (अग्नि और वायु का संयोग होने से) यह शरीर क्षणमात्र में जल सकता है, परन्तु नेत्र अपने (दर्शन) लाभ के लिये जल (आँसू) बरसाते रहते हैं, जिससे विरह की आग से भी देह जल नहीं पाती ।

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना ※ भरि आये जल राजिव नयना ।
सुनु कपि तोहि समान उपकारी ※ नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी

सीता जी का दुःख सुनकर सुखधाम श्री राम के कमल-नेत्र अश्रुपूरित हो गये । और बोले— हे हनुमान् ! तेरे समान मेरा उपकारी कोई भी मानव शरीर धारी— साधारण मनुष्यों, देवों और मुनियों आदि में से— नहीं है ।

विशेष—यहां यह तीनों गुण कर्मानुसार मनुष्य की ही संज्ञायें हैं ।

प्रति उपकार करौं का तारा ※ सनमुख होइ न सकत मुख मोरा ।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं ※ देखउं करि विचार मन माहीं ।

हे हनुमान् ! मैं तुम्हारा क्या प्रत्युपकार [बदले में उपकार] कर सकता हूँ , उसकी कल्पना मन से भी शक्य नहीं है । हे पुत्र ! सुन, मैंने मन में खूब विचार करके देख लिया है कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता ।

तब रघुपति कपि पतिहि बोलावा ※ कहा चलैं कर करहु बनावा ।
चला कटकु को बरनैं पारा ※ गर्जहिं बानर बृन्द अपारा ॥

तब श्रीराम ने कपि पति सुग्रीव को बुलाया और कहा - हे सुग्रीव ! तुम आगे का कार्यक्रम निर्धारित करो व युद्धार्थ कूच की व्यवस्था करो । [सुग्रीव का संकेत मिलते ही] सेना चल पड़ी, उसका वर्णन कौन कर

सकता है ? (सभी ओर) असंख्य वानर-समूह गर्जना कर रहे हैं।

दो०—एहि विधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहं तहं लागे खान फल विपुल सुभट कपि वीर ॥

इस प्रकार कृपानिधान श्री राम समुद्र तट पर जा उतरे। वहुत से सुभट वानर वीर जहां-तहां फलादि खाते घूम रहे हैं।

उहाँ निसाचर रहहि सशंका ❊ जब ते जारि गयो कपि लंका।
निज निज गृह सब करहिं बिचारा ❊ नहि निसिचर कुल केर उबारा।

उधर जब से हनुमान् जी लङ्का जला गये, तब से सभी राक्षस वहुत सशङ्कित रहते हैं। सब अपने२ घरोंमें यही विचारते हैं कि अब राक्षसकुल का वचाव नहीं।

वैठेउ सभा खबरि अस पाई ❊ सिन्धु पार सब सेना आई।
बूझेसि सचिव उचित सब कहहू ❊ ते सब हँसे मौन करि रहहू ॥

[रावण] यह खबर पाकर कि राम-सेना समुद्र पार आ गई है, सभा में वैठा और मन्त्रियों से पूछने लगा— इस समय क्या करना उचित है, सो बताइये ? वे सब मंत्री हंसे और परस्पर कहने लगे कि चुप ही रहना ठीक है।

अवसर जानि विभीषण आवा ❊ भ्राता चरन शीश तेइं नावा।
जो कृपालु पूंछेउ मोहि बाता ❊ मति अनुरूप कहब मैं ताता ॥

उचित समय जानकर विभीषण वहाँ आये और आकर भाई रावण के चरणों में माथा नवाया। [और वोले—] हे भाई ! आपने जो बात मुझसे पूछी है, उसके विषय में मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ।

जो आपनु चाहहु कल्याना ❊ सुमति सुयश शुभगति सुख नाना
तौ पर नारि लिलार गोसाईं ❊ तजहु चौथि चन्दा की नाईं ॥

हे स्वामी ! यदि आप अपना कल्याण, उत्तम बुद्धि, सुयश, अच्छी गति और अनेक प्रकार के सुख चाहते हैं तो पराई स्त्री के मुख का दर्शन चौथ के चन्द्र दर्शन की तरह छोड़ दो [यहाँ एक पौराणिक कल्पना की ओर संकेत है]।

दो०—सचिव वैद्य गुरु तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तनु तीनि कर होइ वेग ही नास ।।

[हे राजन् !] मंत्री, गुरु और वैद्य ये तीन यदि डर से प्रिय कहे तो क्रमशः राज्य, धर्म और शरीर का शीघ्र ही नाश हो जाता है ।

मालवन्त अति सचिव सयाना ❋ तासु वचन सुनि अति सुख माना
तात अनुज तव नीति विभूषण ❋ सो उर धरहु जो कहत विभीषण

बड़े ही चतुर 'माल्यवान्' नामक मंत्री ने विभीषण के इन वचनों को सुनकर बड़ा सुख माना और (रावण से) कहा—हे तात ! तुम्हारे छोटे भाई विभीषण परम नीतिज्ञ हैं । अतएव उन्होंने जो कहा है, उसे हृदय में धरिये ।

रिपु उत्कर्ष कहत शठ दोऊ ❋ दूरि न करौं इहां है कोऊ ।
मालवन्त गृह गयउ बहोरी ❋ कहै विभीषण पुनि कर जोरी ।।

रावण बोला—ये दोनों शठ शत्रु पक्ष की उन्नति की बातें करते हैं, यहां है कोई, जो इनको दूर करदे ? फिर माल्यवान तो घर चला गया, पर विभीषण फिर हाथ जोड़कर बोले—

सुमति कुमति सबके उर रहई ❋ नाथ पुराण निगम अस कहई ।
जहाँ सुमति तहं सम्पति नाना ❋ जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना

हे स्वामिन् ! अच्छी और बुरी बुद्धि सबके होती है । वेद और प्राचीन इतिहास (पुराण) ऐसा कहते हैं कि जहाँ सुमति है, वहाँ अनेक प्रकार की सम्पदायें और जहाँ कुमति है, वहाँ विपत्ति होती है ।

तव उर कुमति बसी विपरीता ❋ हित अनहित मानहु रिपु मीता
काल राति निसिचर कुल केरी ❋ तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ।।

तुम्हारे हृदय में उलटी बुद्धि बसी है, जिससे हित को अनहित और मित्र को शत्रु मानते हो । सीता राक्षसों के कुल की काल-रात्रि है । (दुर्भाग्य से ही) उसके लिए तुम्हारा इतना दुराग्रह है ।

सुनत दसानन उठा रिसाई ❋ खल तोहि निकट मृत्यु अब आई
मम पुर बसि तपसिन पर प्रीती ❋ सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती

यह सुनते ही रावण क्रुद्ध हो उठा और बोला—हे दुष्ट ! मृत्यु अबतो निकट ही आ गई है। हे शठ ! मेरे नगर में बस कर तपस्वियों पर प्रीति ! जाकर उनसे ही मिल और उनको ही नीति सिखा।

अस गहि कीन्हेसि चरण प्रहारा ※ अनुज गहे पद बारहिं बारा।
सचिव संग लै नभ पथ गयऊ ※ सबहिं सुनाइ कहत अस भयऊ॥

ऐसा कहकर रावण ने विभीषण को लात से मारा, विभीषण ने बार-बार चरण पकड़े। तब विभीषण अपने मन्त्रियों सहित आकाश मार्ग × (वायुयान) से यह कहते हुए गए —

दो०—राम सत्य सङ्कल्प प्रभु सभा काल वश तोरि।
मैं रघुवीर शरण अब जाउं खोरि नहिं मोरि॥

श्री राम सत्य प्रतिज्ञ हैं और तेरी सभा काल के वश है। मैं अब श्री राम की शरण जाता हूँ। मुझे कोई दोष नहीं दे। +

कपिन विभीषण आवत देखा ※ जाना कोउ रिपु दूत विशेषा।
जानि न जाइ निसाचर माया ※ काम रूप केहि कारण आया॥

वानरों ने विभीषण को आते देखकर समझा कि शत्रु का कोई दूत विशेष है। राक्षसों की लीला कुछ जानी नहीं जाती, न जाने स्वयं की इच्छा से यह किस कारण से आया है ?

भेद हमार लेन शठ आवा ※ राखिय बाँधि मोहिं अस भावा।
सखा नीति तुम नीक विचारी ※ मम प्रण शरणागत भय हारी॥

सुग्रीव कहने लगे—यह शठ हमारा भेद लेने आया है, मुझे तो यही ठीक लगता है कि इसे बांधकर रखा जावे। तब श्री राम ने कहा—मित्र !

× ऐसा ज्ञात होता है कि भौतिक विज्ञान की उन्नति में लङ्का राज्य उस समय अग्रसर था। वायुयानों के प्रयोग का वर्णन विशेष रूप से लङ्का में ही मिलता है।

\+ "जाउं खोरि नहिं मोरि" इन शब्दों द्वारा विभीषणने 'भ्रातृ-द्रोह' के आरोप का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पर वह बहुत सबल नहीं है। इस स्थिति में विभीषण यदि तटस्थ रहते तो वहाँ तक ठीक था और उचित भी था।

नीति के अनुसार तुमने ठीक ही विचारा है, पर मेरी प्रतिज्ञा शरण में आये हुए की रक्षा करना और भय निवारण करना है।

भेद लेन पठवा दसशीशा ॐ तबहुँ न कछु भय मान कपीसा।
जो सभीत आवै शरणाई ॐ राखिहौं ताहि प्रान की नाईं॥

हे सुग्रीव ! यदि रावण ने इसको भेद लेने भेजा हैं, तो भी डर न करो। और यदि स्वयं डरा हुआ शरण में आया है, तो प्राणों की भाँति इसे रक्खूंगा।

दो०—उभय भांति तेहि आनहु हँसि कहि कृपा निकेत।
जय कृपालु कहि कपि चले अङ्गद हनू समेत॥

दोनों ही तरह से जैसे भी आया हो, उसे ले आओ— दयालु श्रीराम ने हंसकर कहा। तब अङ्गद और हनुमान सहित सब वानर 'दयालु राम जी की जय हो' कहकर चले।

सादर तेहि आगे करि बानर ॐ चले जहाँ रघुपति करुणाकर।
नयन नीर पुलकित अति गाता ॐ कहत बिभीषण अति मृदु बाता।

आदर सहित सब वानर विभीषण को आगे कर जहाँ दयामय श्रीराम थे, चले। (पास आकर) विभीषण नेत्रों में जल भर पुलकित शरीर बड़े कोमल स्वर में बोले।

नाथ दसानन कर मैं भ्राता ॐ निसिचर वश जन्म सुर त्राता।
अस कहि करत दण्डवत देखा ॐ तुरत उठे प्रभु हरष विशेषा॥

हे देव जनों के रक्षक, स्वामी राम ! मैं रावण का भाई हूँ। मेरा जन्म राक्षस वंश में है। ऐसा कह विभीषण ने ज्यों ही प्रणाम किया, राम उनको देखते ही विशेष प्रसन्न हो उठ खड़े हुए।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी ॐ बोले वचन भक्त भय हारी।
कहु लँकेश सहित परिवारा ॐ कुशल कुठाहर वास तुम्हारा॥

लक्ष्मण सहित भक्त भय हारी राम ने विभीषण को भेट कर पास में बिठाया और बोले—हे लङ्कापति ! परिवार सहित अपनी कुशल कहो, तुम्हारा रहना तो कुठौर (बुरी जगह) है।

बरु भल वास नरक कर ताता ※ दुष्ट सङ्ग जनि देइ विधाता ।
अब पद देखि कुशल रघुराया ※ जो तुम कीन्ह जानि जन दाया ।।

हे तात ! चाहे नरक* में बसना पड़े, वह अच्छा है, पर ईश्वर दुष्ट की सङ्गति न दे । विभीषण ने कहा — हे राम जी ! जब आपने सेवक जान कर दया की तो आपके चरण देख कर (आपकी सेवा में आकर) कुशल ही है ।

यदपि सखा तव इच्छा नाहीं ※ मोर दरस अमोघ जग माहीं ।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा ※ सुमन वृष्टि नभ भई अपारा ।।

श्री राम तब बोले—हे मित्र ! यद्यपि तुमको कुछ भी इच्छा नहीं है तो भी मेरा दर्शन (शरण में आना) व्यर्थ नहीं हो सकता । ऐसा कह कर श्री राम ने उनका तिलक किया, तब उनके ऊपर (शुभ कामना रूप) फूलों की वर्षा की गई ।

दो०—रावण क्रोधानल सरिस श्वास समीर प्रचण्ड ।
जरत विभीषण राखेऊ दीन्हेउ राज अखण्ड ।।

रावण की क्रोधाग्नि में उसकी श्वास रूप पवन से जलते विभीषण की श्री राम ने रक्षा की और उसे अखण्ड राज्य दे दिया ।+

सुन कपीस लंकापति वीरा ※ केहि विधि तरिअ जलधि गंभीरा
संकुल मकर उरग झल जाती ※ अति अगाध दुस्तर सब भांती ।।

पश्चात् श्री राम, सुग्रीव और विभीषण को सम्बोधित कर बोले—हे

---

* यहाँ 'नरक' शब्द का प्रयोग पौराणिक कल्पना के अनुसार स्थान विशेष के लिये हुआ है, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं । नरक-स्वर्ग सब इसी संसार में हैं । सुख और सुख विशेष की अवस्था का नाम 'स्वर्ग' तथा दुःख और दुःख विशेष की अवस्था का नाम 'नरक' है । यह स्थानों के नहीं, अवस्थाओं के नाम हैं।

+ इस प्रसङ्ग में श्री राम की अनुपम, अतुलनीय उदारता और महान राजनीतिमत्ता दोनों के साथ ही दर्शन होते है । श्रेय और प्रेय का यह सुखद समन्वय दर्शनीय है ।

वीरो ! सुनो, इस गहरे समुद्र को किस प्रकार पार किया जावे ? अनेक प्रकार के मगर, सांप और मछलियों से भरा हुआ यह अत्यन्त अथाह समुद्र पार करने में सब प्रकार से कठिन है।

कह लकेस सुनहु रघुनायक ※ कोटि सिन्धु सोषक तव सायक।
जद्यपि तदपि नोंति अस गाई ※ विनय करिअ सागर सन जाई ।।

विभीषण ने कहा—हे रामजी ! सुनिये, यद्यपि आपका एक ही बाण करोड़ों समुद्र सोख लेने में समर्थ है (यह अतिशयोक्ति है)। तथापि नीति अनुसार यह उचित होगा कि पहले (समुद्र तट निवासी) सागर (नामक वृद्ध पुरुष) से उपाय बताने की प्रार्थना की जावे। [वह अन्दर से राम का हितैषी होते हुए भी रावण के भय के कारण बतलाता नहीं था]।

सखा कही तुम्ह नीक उपाई ※ करिअ दैव जो होइ सहाई।
मन्त्र न यह लछिमन मन भावा ※ राम वचन सुनि अति दुख पावा।

श्री राम बोले— मित्र, तुमने ठीक उपाय बताया है। ईश्वर कृपा हुई तो सागर हमारे सत्य+आग्रह (सत्याग्रह) को स्वीकार कर लेगा। यह विचार लक्ष्मण के मन को नहीं भाया, श्री राम के वचनों से उनको बड़ा ही कष्ट हुआ।

कादर मन कहुं एक अधारा ※ दैव दैव आलसी पुकारा।×
सुनत बिहसि बोले रघुबीरा ※ ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा ।।

× ईश्वर को पुकारना या ईश्वर प्रार्थना आलसियों का काम है। यहां ईश्वर भक्ति और पुरुषार्थ का विरोध स्पष्ट हैं। पर सच्ची ईश्वर भक्ति पुरुषार्थ की पूरक है। हाँ, ईश्वर भक्ति या प्रार्थना का जो रूप आज हमारे समाज ने अपनाया हुआ है, वह अवश्य ही हमें आलसी और हरामखोर बनाता है। पर यह विकृत और छोड़ने योग्य है। ज्ञान और कर्म से शून्य उपासना राष्ट्र को तलातल में डुबाने वाली है, जबकि ज्ञान+कर्म+उपासना का यह त्रिक् जन-जीवन और राष्ट्र जीवन के निर्माण की आधार शिला हैं। प्रार्थना तो सङ्कल्प का पर्याय है। किसी पवित्र लक्ष्य की सिद्धि के लिये पूर्ण पुरुषार्थ के साथ ही ईश्वर के साहाय्य की प्रार्थना ही प्रार्थना का सत्य स्वरूप

वे बोले—यह प्रार्थना (सत्याग्रह) आदि तो कायरों के मन का आधार (तसल्ली देने वाला) है। दैव, दैव आलसी लोग ही पुकारा करते हैं यह सुन श्री राम हंसकर बोले—[आवश्यकता होने पर] ऐसे ही करेंगे, मन में धीरज रखो।

दो०—विनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥

श्री राम को अनुनय-विनय करते (समझाते हुए) तीन दिन हो गए, मूर्ख सागर नहीं माना। तब श्री राम क्रोध सहित बोले— [ठीक है, मूर्ख लोग] बिना भय के प्रीति नहीं करते।

विशेष—यहां 'जड़' शब्द का प्रयोग चेतना रहित (जड़) जल रूप समुद्र के लिए नहीं है। जड़ प्रकृति तो चेतना शून्य है, उसे भय दिखाने का भी क्या लाभ?

लछिमन बान सरासन आनू ※ सोखौं बारिधि बिसिख कृसानू।
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती ※ सहज कृपन कहं सुंदर नीती॥

हे लक्ष्मण! धनुष बाण लाओ, मैं अग्नि बाण से इस सागर के प्राण

है। और परम कारुणिक प्रभु ऐसी ही प्रार्थना सुनते हैं।

न तो लक्ष्मण वाला कोरा अभिमान युक्त कर्मवाद और न पुरुषार्थ शून्य कोरा भक्तिवाद ही वरन् ज्ञान, कर्म, उपासना का सङ्गम—यह त्रिवेणी स्नान ही मानव का कल्याण तीर्थ है।

'दैव' का अर्थ भाग्य भी किया है। भाग्य के नाम पर पुरुषार्थ हीन होना पाप है। और सच में कोरे भाग्यवाद की बात करना आलसियों की ही बात है। भाग्य आखिर क्या है? हमारे ही तो संचित कर्म, कर्म फल के रूप में 'भाग्य' बनते हैं। जो बीज अच्छा या बुरा हम पूर्व जन्म में बो चुके हैं, वह हमें काटना ही होगा। इसमें कोई बदल भी सम्भव नहीं। हम आगे के लिए पुरुषार्थ द्वारा नये सत्कर्मों के बीज डालें। यों पुरुषार्थ ही दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदल सकता है और ईश्वर कृपा से पुरुषार्थी को निश्चय ही सफलता प्राप्त होती है।

ही सोख लूंगा। मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीति और कृपण से सुंदर नीति (उदारता का उपदेश)—

ममता रत सन ज्ञान कहानी ※ अति लोभी सन विरति बखानी
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा ※ ऊसर बीज उए फल जथा ॥

ममता में ग्रस्त मनुष्य से ज्ञान की कथा, अत्यन्त लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से शम (शान्ति) की बात और कामी से भगवान की कथा-— इनका वैसा ही फल होता है, जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है (अर्थात् ऊसर में बीज बोने की भाँति यह सब व्यर्थ जाता है)।

यह कहि रघुपति चाप चढ़ावा ※ यह मत× लछिमन के मन भावा
कनक थार भरि मनि गन नाना ※ विप्र रूप आयउ तजि माना।

ऐसा कहकर श्रीराम ने धनुष चढ़ाया। लक्ष्मण मन को यह विचार बहुत अच्छा लगा। (धनुष टङ्कार सुनते ही) सागर महोदय अपना मान (हठ) छोड़कर भेट स्वरूप सोने के थाल में अनेकों प्रकार की मणियां आदि लेकर ब्राह्मण वेश में उपस्थित हुए। और बोले—

विशेष—अबतो सामने ही मृत्यु खड़ी है, अतएव रावण के भय की बात पीछे पड़ गई। इस स्थिति में सागर ने यही उचित समझा।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ह ※ मरजादा पुनि आपनु कीन्हो ॥
ढोल गंवार शूद्र पशु नारी ※ सकल ताड़ना के अधिकारी ॥

हे रामजी ! आपने तो मर्यादा का पालन किया था। विनय या शांति का मार्ग अपना कर ! पर मैंने रावण के भय या लोभ वश ध्यान नहीं दिया)

× यह तो लक्ष्मण जी के न समझ सकने की बात थी। श्री राम ने पहले भी कोरे भाग्यवाद या पुरुषार्थ हीनता की बात कहां कही थी। हाँ, उन्होंने चाहा था कि शाँतिपूर्ण प्रयत्नों [सत्याग्रह की नीति] से उनको सफलता मिल जाये तो उत्तम है। वह भी एक प्रयास या पुरुषार्थ ही था। उस पद्धति से सफलता न मिलते देख कर उन्होंने 'गान्धी मार्ग' को छोड़ कर 'सुभाष-मार्ग' अपना लिया। गान्धी जी को भी काश्मीर में शस्त्र प्रयोग की अनुमति देनी पड़ी थी। सामान्यतया दुष्ट लोग इसी भाषा को समझते हैं।

हे स्वामिन् ! आपने अब अच्छा ही किया जो मुझे शिक्षा दी। ढोल, गंवार (मूर्ख), शूद्र, पशु और नारी—ये सब दण्ड के ही अधिकारी हैं।

विशेष—यहां शूद्र और नारी के प्रति जिस व्यवहार की व्यवस्था है, अनार्योचित एवं राष्ट्र-जीवन के लिए अभिशाप रूप है। यह रामायण काल की या वैदिक युग की व्यवस्था नहीं, यह सनातन व्यवस्था नहीं, सनातन धर्म नहीं। मध्यकालीन पौराणिक विकृति मात्र। पतन काल की व्यवस्था नहीं, अव्यवस्था का चित्रण है। विशेष विचार समीक्षा खन्ड में पढ़ें।

दो०—सुनत विनीत वचन अति कह कृपालु मुसुकाइ।
जेहि विधि उतरें कपि कटकु तात सो करहु उपाय॥

वृद्धमहोदय सागर के यह विनीत वचन सुन कृपालु श्रीराम ने मुस्करा कर कहा—हे तात ! जिस प्रकार वानरों की सेना समुद्र पार हो, वह उपाय बताइये।

नाथ नील नल कपि दोउ भाई ※ लरिकाई ऋषि आसिस पाई।
तिन्ह के परस किये गिरि भारे ※ तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥

हे स्वामिन् ! [आपकी सेना में] नल और नील नामक दो वानर हैं। वे दोनों भाई हैं। ब्रह्मचर्य काल में उन्होंने ऋषि का आशीर्वाद पाया है [अर्थात् ऋषि आश्रम में रहकर ऋषि के आशीर्वाद से प्रयत्न पूर्वक शिल्प-कला की शिक्षा पाई है, वे अत्यधिक कुशल इंजीनियर हैं] उनके स्पर्श से [इस कार्य को हाथ में लेने से] बड़े-बड़े पर्वत खन्डों को [ठीक प्रकार से जमाकर] वे सागर पर तैरा सकेंगे [पुल बनवा सकेंगे]। यह सब आपके पुण्य प्रताप [आपके नेतृत्व] में ही सम्भव होगा।

विशेष—यह अर्थ हमने अपने ढंग से किया है। गोस्वामी जी का विचार भिन्न है। आगे पढ़ें।

मैं पुनि उर धर प्रभु प्रभुताई ※ करिहउं बल अनुमान सहाई।
एहि विधि नाथ पयोधि बंधाएउ ※ जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ छाएउ

हे रामजी ! मैं भी फिर आपकी महिमा [आपके पवित्र कार्य की गरिमा] को ध्यान में रखकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनकी सहायता

करूंगा* । हे स्वामिन् ! इस प्रकार से समुद्र पर पुल तैयार हो सकेगा, जिस से आपका यह उज्वल यश तीनों लोकों में छाया रहेगा ।

दो०—सकल सुमङ्गल दायक रघुनायक गुन गान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलयान ।।

श्री राम के गुणों [पवित्र चरित्र] का गान [अपने जीवन में धारण या अपने आचरण=जीवन व्यवहार द्वारा गायन] सम्पूर्ण उत्तम कल्याणों को देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनते हैं [तथा तद्वत् आचरण करते हैं] । वे बिना किसी जहाज [अन्य साधन] के ही भव सागर तर जाते हैं ।×

---

* सागर ने 'गाध' बताने के रूपमें यह सहायता की थी । 'गाध' के अर्थ पौराणिक तो यह लेते हैं कि जल-सागर ने अपने अपरिमित तल को घटा कर क्षुद्र परिमाण वाला कर लिया । परन्तु ऐसा होना असम्भव है । सागर में न ज्ञान है, न इच्छा पूर्वक स्वयं को न्यूनाधिक करने की शक्ति है । यहाँ युक्त यही प्रतीत होता है कि उस सागर में या सागर के तट पर रहने के कारण 'सागर पुरुष' ने 'गाध' अर्थात समुद्र का वह मार्ग, जहाँ जल कम और पर्वत अधिक हों, बता दिया और पुल बाँधने में कुशल नल का काम बहुत ही आसान हो गया । बिना इस 'गाध' की जानकारी के नल-नील सफल न हो पाते । इसी से सागर का सहयोग, मार्ग दर्शन आवश्यक था । श्रीराम ने यही उपाय बताने की 'प्रार्थना' की थी । और सागर (पुरुष) ने पहले तो रावण के भय से नहीं बताया पर अन्त में राम-वाण से डर कर यही उपाय या रहस्य बताया था ।

× यह अर्थ हमने अपने ढंग से किया है । गोस्वामी जी ने तो यहाँ भी इतना ही माना है कि रामचरित सुनने मात्र से बिना अन्य किसी साधन (प्रयत्न या पुरुषार्थ) के मनुष्य भव सागर तर जायेगा । सत्य यह है कि कर्मफलवाद के अटल वैदिक सिद्धान्त पर चौका फेरने वाली इस विचित्र मान्यता ने हमारे राष्ट्र के बल-पौरुष, विद्या, धन-वैभव सभी पर चौका फेरकर (भव सागर से तो क्या तारना था) हजारों वर्षों तक गरीबी, गुलामी और

विशेष—सागर पर सेतु बाँधने के रूप में हम प्राचीन भारत या महान् आर्य जातिकी अपूर्व वैज्ञानिक प्रगतिके दर्शन कर सकते हैं। दुर्भाग्य से हमने अपनी ऐसी महान् ऐतिहासिक उपलब्धियों को भी चमत्कार या मात्र 'रामकृपा' का रूप देकर जाने या अनजाने में अपने महान् इतिहास को मिटाने का घोरतम पाप ही किया है।

तुलसी-रामायण के इस प्रसङ्ग की चौपाइयों का हमने जो अर्थ किया है, वह वाल्मीकि रामायण के अनुरूप तथा वास्तविक है। (१) जड़ सागर की रामने प्रार्थना की (२) जड़ सागर राम को बाण-संधान के लिए उद्यत देख भेट लेकर सेवा म उपस्थित हो गया (३) नल और नील के स्पर्श मात्र से बड़े-बड़े पर्वत जल में तैरने लगे (४) राम का नाम लिखने मात्र से पत्थर तैरने लगे—गोस्वामी जी की यह सब मान्यतायें विज्ञान और बुद्धि विरुद्ध, सृष्टिक्रम विरुद्ध अनैतिहासिक और असत्य होने से राष्ट्रघाती हैं। तथ्य वही अथवा उसके निकट है, जो हमने अपनी व्याख्या में उपस्थित किया है। निस्सन्देह ऐसा करने में हमने शब्दों के बाहरी अर्थ न लेकर उनकी आत्मा को छूने का प्रयास किया है

वाल्मीकि रामायण के अनुसार नल और नील अद्वितीय शिल्पकार थे, तथा बड़े-बड़े वैज्ञानिक यन्त्रों और उपकरणों से बहुत से अन्य कुशल और वीर बानरों की सहायता से उन्होंने इस आश्चर्यकारक विशाल पुल का निर्माण किया था। इस तथ्य की पुष्टि में यह श्लोक देखें—

हस्ति मात्रान्महाकाया: पाषाणांश्च महाबला:।
पर्वतांश्च समुत्पाद्य यन्त्रै: परिवहन्ति च ॥ सु० २२।६०॥

हस्ति (हाथी) प्रमाण आकार के पर्वतों को यंत्रों से काट-काटकर वे महाबली उपयुक्त स्थानों पर लगाते थे। स्पष्ट है कि वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से पुल निर्मित हुआ न कि 'राम-नाम' लिखने मात्र से पत्थर तैरने लगे। वैज्ञानिक सत्य सदैव सर्वत्र समान रूप से सत्य होते हैं। यदि यह सत्य है तो आज भी सत्य होना चाहिए। पर सभी जानते हैं कि वैसा नहीं है। हाँ, यह सम्भव है कि पुल बनने पर किसी बड़े पत्थर पर श्री राम का नाम निर्माण कराने वाले के रूप में अङ्कित हुआ हो।

+

अविद्या के गहरे सागर में इस महान् भारत को डुबा दिया। ईश्वर कृपा करे इस पाप बढ़ाने वाली मान्यता को हम साहस पूर्वक त्याग दें।

सत्यप्रकाशन के कुछ अनमोल प्रकाशन !

पुस्तक	मूल्य
शुद्ध महाभारत [सजिल्द]	६)
शुद्ध कृष्णायन	२)
शुद्ध गीता	१)५०
शुद्ध मनुस्मृति [सजिल्द]	६)५०
शुद्ध तुलसी रामायण	४)
रामायण:एक सरल अध्ययन	३)
मनुस्मृति "	)४०
ईशोपनिषद्	)२०
छान्दोग्योपनिषद्	४)
पुराणों के कृष्ण	)२०
संस्कार चन्द्रिका [१]	४)
सँस्कार चन्द्रिका [२]	४।
ईश्वर भक्ति	)८०
सन्ध्या रहस्य [द्वि० सं०]	)६०
मन्दिर प्रवेश	)१६
नित्य कर्म विधिः [अष्टम सं०]	)८०
मानव तू मानव बन	)१०
दोबहिनों की बातें	)७०
मित्रों की बातें	)७०
दादा पोते की बातें	१)
ओंकार उपासना	)२५
महाभारत : एक अध्ययन	)८०
सुमङ्गली	१)
घर का वैद्य	३)
भारतीय संस्कृति क तीन प्रतीक	)५०
दयानन्द और विवेकानन्द	)५०
नैतिक शिक्षा	,५०

पुस्तक	मूल्य
आर्य समाज क्या है ? [द्वि०सं]	)६०
मृतक श्राद्ध समीक्षा	)०५
उपनिषद् प्रकाश	५)२५
गृहस्थ जीवन रहस्य	)५०
ब्रह्मवैवर्त्त पुराण	)७५
बतायें दयानन्द क्या थे ?	)१०
मानवता अमर है [द्वि०सं]	)४०
मानव धर्मसार	)४०
महिला गीताञ्जलि [तृ०सं०]	)३०
वैदिक सन्ध्या	)१२
सांख्य दर्शन [सपरिशिष्ट]	१)५०
योग दर्शन	२)५०
" सजिल्द	३)
दादी पोती की बातें	)२५
शिखा सूत्र	)२०
धूम्रपान या सर्वनाश	)१०
ब्रह्मचर्य विवेक	)१०
गायत्री गौरव	)२०
विषपान अमृतदान	)१०
सनातन धर्म पौराणिक दम्भ पर	२)७५
वैदिक बम्ब	)३०
ज्योतिष विवेक	)८०
गणित ज्योतिष गौरवम्	)४०
फलित ज्योतिष समीक्षा	)४०
क्या भूत होते है ?	)३०
वृक्षों में जीव विचार	)४५

ओ३म्

लङ्का काण्ड

—卐—

सों०—सिन्धु वचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।
अब विलम्ब केहि काम, करहु सेतु उतरै कटुक ।।

महानुभाव सागर का वचन (सुझाव) सुनकर श्रीराम ने मन्त्रियों को बुलाकर कहा— अब विलम्ब न कीजिये (सागर महोदय के मार्ग दर्शन में, नल नील द्वारा) पुल तैयार कराइये जिससे सेना पार हो ।

जामवन्त बोले दोउ भाई ※ नल नीलहि सब कथा सुनाई ।
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं ※ करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ।।

[मन्त्रिवर] जाम्बवान् ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनाई [श्रीराम और सागर का संवाद सुनाया । और जब नल-नील ने पुल निर्माण विद्या विषयक् अपनी कुशलता को स्वीकार कर लिया तब जाम्बवान् बोले–] श्रीराम के गौरव को ध्यान में रखकर [उसी के अनुरूप सुन्दर] पुल तैयार करो । [सभी वानर तुम्हारी सहायता करेंगे इससे] तुम्हें कुछ विशेष श्रम नहीं होगा ।

बोलि लिए कपि निकट बहोरी ※ सकल सुनहु विनती कछु मोरी ।
रामचरन पङ्कज उर धरहू ※ कौतुक एक सकल मिलि करहू ।।

फिर वानर समूह को बुलाकर कहा— आप सब लोग मेरी कुछ विनय सुनिये श्रीराम के चरण-कमल हृदय में धारण कर [श्रीराम की सेवा के रूप में] सभी वानर मिलकर एक खेल [आनन्द दायक या मनोरंजनप्रद कार्य] करें ।

धावहु मर्कट बिकट बरूथा ॐ आनहु विटप गिरिन्ह के जूथा।
सुनि कपि वृन्द चले करि हूहा ॐ जय रघुवीर प्रताप समूहा ॥

आप लोग—विकट वानर समूह—दौड़ जाइये और वृक्षों तथा पर्वतों के खण्ड को ले आइये [नल-नील इनसे पुल बनायेंगे] यह सुन वानरगण हुकार करते तथा श्रीराम की महिमा का जयघोष करते हुए चले।

दो०— अति उतंगगिरि पादप, लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहिं, रचहिं ते सेतु बनाइ॥

अर्थात् उत्साह पूर्वक [वानरगण मिल जुल कर यन्त्रों द्वारा] वड़े ऊँचे-ऊँचे पर्वत खडों और वृक्षों को खेल-खेल में उखाड़ कर उठा-उठा कर ला रहे हैं और ला-लाकर नल-नील को देते हैं। वे अच्छी तरह गढ़कर [यन्त्रों द्वारा] सुन्दर सेतु बनाते हैं।

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा ॐ देखि कृपानिधि के मनभावा।
सेन सहित उतरे रघुवीरा ॐ कहि न जाइ कपि जूथप भीरा॥

नल नील ने [अपने अपूर्व वैज्ञानिक कौशल से] पुल को सुदृढ़ बनाया, श्रीराम उसे देखकर मन में वहुत प्रसन्न हुए। तब श्रीराम सेना सहित समुद्र के पार हो गये। वानरों और उनके सेनापतियों की भीड़ कही नहीं जा सकती।

सिन्धु पार प्रभु डेरा कीन्हा ॐ सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा।
खाहु जाइ फल मूल सुहाए ॐ सुनत सुभट कपि जहँ तहँ धाए॥

श्रीराम ने समुद्र पार जाकर डेरा डाला और सब वानरों को आज्ञा दी—आप लोग [इच्छानुसार] फल-मूल जाकर खायें। यह सुनते ही वानर वीर इधर-उधर दौड़ पड़े।

खाहिं मधुर फल विटप हिलावहिं ॐ लंका सम्मुख सिखर चलावहिं।
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना ॐ दसमुख बोलि उठा अकुलाना॥

वानर मीठे-मीठे फल खाते और मौज में आकर मिलकर वृक्षों को हिलाते हैं। [कोई-कोई अपने मन का उत्साह या भाव व्यक्त करने को]

लंका की ओर पत्थर भी चलाकर फेंकते हैं। समुद्र पर सेतु का बाँधा जाना कानों से सुनते ही रावण [स्तब्ध हो] घबड़ा कर बोल उठा—

दो०— बाँध्यो बन निधि नीरनिधि, जलधि सिन्धु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥

वन निधि, नीरनिधि, जलधि, सिन्धु वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश को क्या सचमुच ही बाँध लिया ?+

इहाँ प्रात जागे रघुराई ※ पूंछा मत सब सचिव बुलाई।
कहहु वेगि का करिअ उपाई ※ जाम्बवन्त कह पद शिरनाई॥

इधर श्रीराम ने प्रातःकाल उठकर [नित्य कर्म से निवृत्त होकर] सब मन्त्रियों को बुलाकर सलाह ली कि आप सब शीघ्र बतायें अब क्या करना है ? जाम्बवान् ने चरणों में शिर नवाकर कहा—

मन्त्र कहब निज मति अनुसारा ※ दूत पठाइअ बालिकुमारा।
बन्दि चरण उर धरि प्रभुनाई ※ अंगद चलेउ सबहिं शिर नाई॥

मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देता हूँ कि अङ्गद को दूत बनाकर [युद्ध सन्देश के साथ] भेजिये। श्री राम का आदेश मिलते ही अङ्गद ने सभी को अभिवादन कर प्रस्थान किया।

पुर पठत रावण कर बेटा ※ खेलत रहा सो होइ गइ भेंटा।
बातहिं बात कर्ष बढ़ि आई ※ जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई॥

नगर में पैठते ही रावण का एक पुत्र खेल रहा था, उससे भेंट होगई। बात ही बात में तनाव बढ़ गया—एक तो दोनों बड़े बलवान थे फिर युवावस्था थी!

+ रावण स्वयं एक उत्तम वैज्ञानिक था। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में लङ्का के वैज्ञानिकों ने सारे संसार को आश्चर्य में डालने वाली सफलतायें प्राप्त की थीं। तेज से तेज चाल वाले वायुयानों का आविष्कार कराके रावण ने पवन को वश में कर लिया अथवा 'काल को पाटी से बाँध दिया' था। (आज के वैज्ञानिकों की तरह)। इसी प्रकार जब चाहे तभी वर्षा हो सके,

तेइँ अंगद कहं लात उठाई ※ गहि पद पटकेउ भूमि भ्रमाई।
भयउ कोलाहल नगर मँझारी ※ आवा कपि लंका जेइँ जारी॥

उसने अंगद को लात मारी तो अंगद ने उसके पैर पकड़ घुमाकर भूमि पर दे मारा। (बस फिर क्या था?) सारे नगर में शोर मच गया कि जिस वानर ने लङ्का को जलाया था, वह [फिर] आगया।

दो०—गयो सभा दरबार रिपु, सुमिर राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितै, धीर वीर बल पुंज॥

जब आवश्यकता न हो वर्षा न हो ऐसी सिद्धि प्राप्त करके इन्द्र और 'वरुण' को भी वश में कर लिया था (आज के वैज्ञानिक अभी इस 'यज्ञ-विज्ञान' को नहीं पा सके हैं) रावण की इन्हीं भौतिक सफलताओं ने उसे मदान्ध और अध्यात्म प्रधान वैदिक संस्कृति एवं ऋषि-मुनियों का विरोधी बना दिया था। भौतिकता के 'अतिवाद' का यही परिणाम होता है। और अन्त भी वही होता है, जो रावण का हुआ। आज का अति भौतिकवादी संसार ईश्वरीय अटल व्यवस्था के अनुसार विनाश की ओर तेजी से दौड़ रहा है।

तो वह वैज्ञानिक प्रगति में शीर्ष विन्दु पर पहुँचा हुआ रावण भी समुद्र पर सेतु नहीं बाँध सका था, उसे कल्पना भी न थी कि आध्यात्मिक संस्कृति का उपासक राम इस दिशा में ऐसी अश्रुतपूर्व सफलता पा सकेगा। इसी से रावण को 'सेतु बन्ध' के समाचार से इतना महदाश्चर्य हुआ। पर शायद रावण भूल रहा था कि वैदिक धर्म या संस्कृति न निरी भौतिकवादी है, न कोरी अध्यात्मवादी। वैदिक संस्कृति में अध्यात्म और भौतिकता का सुखद समन्वय है। मेरे राम इसी समन्वित वैदिक आदर्श के पावन प्रतीक हैं, 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का राग अलापने वाले भी वैसे ही राष्ट्र द्रोही और पापी हैं जैसे कि अति भौतिकता के उपासक जो विश्वनियन्ता प्रभु के अस्तित्व, उसकी अनन्त कृपाओं और अनवरत दानों को मदान्ध होने से नहीं देख पाते और समाज या राष्ट्र को घोर पतन की राह पर ले जाते हैं। हम जीव हैं। हम न जगत् को भूल सकते हैं, न जगदीश्वर को। जगत् के साधन या माध्यम से हमें जगदीश्वर को पाना है।]

श्री राम के चरण कमलों का स्मरण कर [राम के आदेश को ध्यान में रख] अंगद शत्रु-सभा के द्वार पर पहुंचे तथा धीर-वीर एवं बलराशि अंगद सिंह की तरह इधर-उधर देखने लगे।

तुरत निशाचर एक पठावा ※ समाचार रावणहिं सुनावा।
सुनत वचन बोलेउ दसशीसा ※ आनहु बोलि कहाँ कर कीसा॥

तुरंत ही अंगद ने एक राक्षस को पकड़ भेजा, जिसने रावण को समाचार दिया। सुनते ही रावण बोला—बुला लाओ कहां का वानर है ?

आयसु पाइ दूत बहु धाये ※ कपि कुंजरहि बोलि लै आये।
उठी सभा सब कपि कहं देखी ※ रावण उर भा क्रोध विशेखी॥

आज्ञा पाकर दूत दौड़ पड़े और वानर श्रेष्ठ अंगद को बुला लाये। अंगद को देख (प्रभाव वश) सब सभा सद उठ खड़े हुए, इससे रावण बड़ा क्रोधित हुआ।

कह दशकन्ध कवन तैं बन्दर ※ मैं रघुवीर दूत दस कन्धर।
मम जनकहिं तोहि रही मिताई ※ तब हित कारण आयउं भाई॥

रावण ने कहा—हे वानर ! तू कौन है ? अङ्गद बोले—हे रावण मैं श्री राम का दूत हूँ। मेरे पिता (वालि) और तुम्हारी मित्रता थी, इससे हे भाई ! मै तुम्हारी भलाई के विचार से आया हूं।

नृप अभिमान मोहवश किंवा ※ हरि आनेहु सीता जगदम्बा।
अब शुभ कहा करहु तुम मोरा ※ सब अपराध छमहिं प्रभु तोरा॥

हे राजन् ! अहङ्कार या अज्ञान से जो तुम सम्पूर्ण मातृशक्ति या नारी जगत् की प्रतिनिधि रूपा माता जानकी जी को हर लाये हो, यह तुमने अच्छा नहीं किया। अब यदि तुम अपना शुभ (कल्याण) चाहते हो तो मेरा कहा करो। श्रीराम अब भी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे।

दशन गहहु तृण कंठ कुठारी ※ पुरजन सङ्ग सहित निज नारी।
सादर जनक सुता करि आगे ※ इह विधि चलहु सकलभय त्यागे॥

दाँतों में तिनका दावकर, गले में कुल्हाड़ी बाँध कर, अपनी स्त्रियों

तेइँ अंगद कहं लात उठाई ❋ गहि पद पटकेउ भूमि भ्रमाई।
भयउ कोलाहल नगर मँझारी ❋ आवा कपि लंका जेइँ जारी ।।

उसने अंगद को लात मारी तो अंगद ने उसके पैर पकड़ घुमाकर भूमि पर दे मारा। (बस फिर क्या था?) सारे नगर में शोर मच गया कि जिस वानर ने लङ्का को जलाया था, वह [फिर] आगया।

दो०—गयो सभा दरबार रिपु, सुमिर राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितै, धीर वीर बल पुंज ।।

जब आवश्यकता न हो वर्षा न हो ऐसी सिद्धि प्राप्त करके इन्द्र और 'वरुण' को भी वश में कर लिया था (आज के वैज्ञानिक अभी इस 'यज्ञ-विज्ञान' को नहीं पा सके हैं) रावण की इन्हीं भौतिक सफलताओं ने उसे मदान्ध और अध्यात्म प्रधान वैदिक संस्कृति एवं ऋषि-मुनियों का विरोधी बना दिया था। भौतिकता के 'अतिवाद' का यही परिणाम होता है। और अन्त भी वही होता है, जो रावण का हुआ। आज का अति भौतिकवादी संसार ईश्वरीय अटल व्यवस्था के अनुसार विनाश की ओर तेजी से दौड़ रहा है।

तो वह वैज्ञानिक प्रगति में शीर्ष विन्दु पर पहुँचा हुआ रावण भी समुद्र पर सेतु नहीं बाँध सका था, उसे कल्पना भी न थी कि आध्यात्मिक संस्कृति का उपासक राम इस दिशा में ऐसी अश्रुतपूर्व सफलता पा सकेगा। इसी से रावण को 'सेतु बन्ध' के समाचार से इतना महदाश्चर्य हुआ। पर शायद रावण भूल रहा था कि वैदिक धर्म या संस्कृति न निरी भौतिकवादी है, न कोरी अध्यात्मवादी। वैदिक संस्कृति में अध्यात्म और भौतिकता का सुखद समन्वय है। मेरे राम इसी समन्वित वैदिक आदर्श के पावन प्रतीक हैं, 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का राग अलापने वाले भी वैसे ही राष्ट्र द्रोही और पापी हैं जैसे कि अति भौतिकता के उपासक जो विश्वनियन्ता प्रभु के अस्तित्व, उसकी अनन्त कृपाओं और अनवरत दानों को मदान्ध होने से नहीं देख पाते और समाज या राष्ट्र को घोर पतन की राह पर ले जाते हैं। हम जीव हैं। हम न जगत् को भूल सकते हैं, न जगदीश्वर को। जगत् के साधन या माध्यम से हमें जगदीश्वर को पाना है।]

श्री राम के चरण कमलों का स्मरण कर [राम के आदेश को ध्यान में रख] अंगद शत्रु-सभा के द्वार पर पहुंचे तथा धीर-वीर एवं बलराशि अंगद सिंह की तरह इधर-उधर देखने लगे ।

तुरत निशाचर एक पठावा ※ समाचार रावणहिं सुनावा ।
सुनत वचन बोलेउ दसशीसा ※ आनहु बोलि कहाँ कर कीसा ॥

तुरंत ही अंगद ने एक राक्षस को पकड़ भेजा, जिसने रावण को समाचार दिया । सुनते ही रावण बोला—बुला लाओ कहां का वानर है ?

आयसु पाइ दूत बहु धाये ※ कपि कुंजरहि बोलि लै आये ।
उठी सभा सब कपि कहं देखी ※ रावण उर भा क्रोध विशेखी ॥

आज्ञा पाकर दूत दौड़ पड़े और बानर श्रेष्ठ अंगद को बुला लाये । अंगद को देख (प्रभाव वश) सब सभा सद उठ खड़े हुए, इससे रावण बड़ा क्रोधित हुआ ।

कह दशकन्ध कवन तैं बन्दर ※ मैं रघुवीर दूत दस कन्धर ।
मम जनकहि तोहि रही मिताई ※ तब हित कारण आयउं भाई ॥

रावण ने कहा—हे वानर ! तू कौन है ? अङ्गद बोले—हे रावण मैं श्री राम का दूत हूँ । मेरे पिता (बालि) और तुम्हारी मित्रता थी, इससे हे भाई ! मै तुम्हारी भलाई के विचार से आया हूं ।

नृप अभिमान मोहवश किंवा ※ हरि आनेहु सीता जगदम्बा ।
अब शुभ कहा करहु तुम मोरा ※ सब अपराध छमहिं प्रभु तोरा ॥

हे राजन् ! अहङ्कार या अज्ञान से जो तुम सम्पूर्ण मातृशक्ति या नारी जगत् की प्रतिनिधि रूपा माता जानकी जी को हर लाये हो, यह तुमने अच्छा नहीं किया । अब यदि तुम अपना शुभ (कल्याण) चाहते हो तो मेरा कहा करो । श्रीराम अब भी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे ।

दशन गहहु तृण कंठ कुठारी ※ पुरजन सङ्ग सहित निज नारी ।
सादर जनक सुता करि आगे ※ इह विधि चलहु सकलभय त्यागे ॥

दाँतों में तिनका दावकर, गले में कुल्हाड़ी बाँध कर, अपनी स्त्रियों

और नगर निवासियों (सभी नागरिकों) सहित माता सीता को सबके आगे करके तुम सब डर छोड़कर चलो और कहो—

दो०–प्रणतपाल रघुवंश मणि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
सुनतहिं आरत वचन प्रभु, अभय करिहिगे तोहि॥

हे शरणागत रक्षक, रघुवंश मणि ! अब मेरी रक्षा कीजिए ! यह आर्त्त वाणी सुन श्री राम तुझे अभय कर देंगे।

रे कपि पोच न बोलु संभारी ※ मूढ़ न जानसि मोहिं सुरारी।
कहु निज नाम जनक कर भाई ※ केहि नाते मानिये मिताई॥

रावण बोला—रे नीच बानर ! तू होश में नहीं बोल रहा, मूर्ख ! क्या तू देवताओं के शत्रु मुझको नहीं जानता ? भाई ! अपना और अपने पिता का नाम कहो, बताओ कि मुझसे किस नाते मित्रता है ?

अङ्गद नाम बालिकर बेटा ※ तो सों कबहुँ भई होइ भेटा।
अङ्गद वचन सुनत सकुचाना ※ रहा वालि वानर मैं जाना॥

(अङ्गद बोले—) मेरा नाम अङ्गद है, मैं श्री बालि का पुत्र हूं (शायद) उनसे कभी तुम्हारी भेट हुई होगी ? अङ्गद के वचन सुनते ही रावण सकुचा गया और बोला—बालि एक बानर था, मैं उसे जानता हूं।

अङ्गद तुहीं बालिकर बालक ※ उपजेउ वंश अनल कुल घालक।
गर्भ न खसेइ वृथा तुम जाये ※ निज मुख तापस दूत कहाये॥

अङ्गद ! क्या तूही बालि का पुत्र है, जो वंश-नाश के लिए बाँस में अग्नि के समान उपजा है। तुम व्यर्थ ही पैदा हुए, गर्भ में ही क्यों न नष्ट हो गये जो अपने मुंह से अपने को तपस्वियों का दूत कहते हो।

अब कहु कुशल बालि कह अहई ※ बिहंसि वचन अङ्गद अस कहई।
दिन दस गये बालि पह जाई ※ पूछेहु कुशल सखा उर लाई॥

अब वालि का कुशल कहो, वह कहाँ है ? यह सुन अंगद ने हंसकर कहा दस दिन (थोड़े दिन) और ठहरो तुम स्वयं बालि के पास जाकर, मित्र को गले लगाकर कुशलता पूछ लेना।

राम बिरोध कुशल जस होई ॐ सो सब तुमहिं सुनाइहि सोई ॥
सुनि कठोर वाणी कपि केरी ॐ कहत दशानन नयन तरेरी ॥

राम के विरोध से जैसी कुशल होती है, वह सब श्री वालि तुम्हें सुना देंगे । अंगद की कठोर वाणी सुन रावण नेत्रों को तरेर कर बोला—

खल तब वचन कठिन कै सहऊं ॐ नीति धर्म सब जानत अहऊं ।
कह कपि धर्म शीलता तोरी ॐ हमहुँ सुनी कृत परतिय चोरी ॥

(रावण बोला—) रे दुष्ट ! मैं तेरा कठोर वचन इसलिए सहता हूँ । कि मैं नीति धर्म को जानता हूँ अङ्गद बोले—तुम्हारा धर्म-प्रेम तो मैंने भी सुनाहै कि तुम पराई स्त्रियाँ चुराते हो ।

देखउं नयन दूत रखवारी ॐ बूड़ि न मरेउ धर्म-व्रतधारी ।
नाक कान बिन भगिनि निहारी ॐ क्षमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी ।।

तुम्हारे द्वारा दूत-रक्षा तो आंखों से देखली, ('धर्म' शब्द को कलङ्कित करने वाले) तुम्हारे जैसे धर्मध्वजी डूबकर क्यों नहीं मर जाते ? अपनी बहिन शूर्पणखा को नाक-कान विहीन देखकर भी तुमने क्षमा धर्म * का पालन किया होगा ?

दो० जनि जल्पसि जड़ जन्तु कपि, शठ बिलोकि मम बाहु ।
लोकपाल बल विपुल शशि, ग्रसन हेतु जिमि राहु ॥

रे जड़ मूर्ख ! बक बक मत कर, लोक पाल (राजाओं) के बलरूप चन्द्रमा की ग्रसने वाली राहु रूप मेरी भुजायें देख । ×

---

* धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौच मिन्द्रिम निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यम क्रोधौ दशमं धर्म लक्षणम् ॥

—महर्षि मनु प्रोक्त धर्म के इन प्रसिद्ध दश लक्षणों में क्षमा भी एक लक्षण है । यहाँ अङ्गद का कथन व्यङ्ग रूप में है ।

× प्रत्येक प्राकृतिक घटना के साथ कोई न कोई कथानक जोड़ देने या ईश्वरीय नियम के अन्तर्गतघटित घटनाओं को चमत्कार बताने के अभ्यस्त लोगों ने ज्योतिष् विज्ञान के एक अनिवार्य अङ्ग 'चन्द्रग्रहण' एवं 'सूर्य ग्रहण' के

मूढ़ मृथा जनि मारसि गाला ※ राम वैर होइहि अस हाला।
तब शिर निकर कपिन के आगे ※ परि हैं धरणि राम सर लागे॥

(अङ्गद ने कहा—) हे मूढ़ ! झूठ ही गाल मत बजा, (याद रख) रामजी के साथ वैर से ऐसा हाल होगा कि तेरे शिर श्रीराम के बाणों से वानरों के आगे गिरेंगे। विशेष—हमें ध्यान रहे कि रावण के अनेक शिर नहीं एक ही शिर था।

ते तब शिर कन्दुक इव नाना ※ खेलहिं कीश वृद चौगाना।
सुनत वचन रावण पर जरा ※ बरत अनल महं जनु घृत परा।

तेरे उन शिरों को बानर समूह गेंद की नाईं चौगान एक खेल) में खेलेंगे। यह वचन सुन रावण जल उठा, मानो जलती अग्नि में घी पड़ गया हो।

शठ शाखामृग जोरि सहाई ※ बांधेउ सिन्धु इहै प्रभुताई।
नांघहिं खग अनेक वारीशा ※ शूर न होंहि सुनहु जड़ कीशा॥

रावण बोला—हे शठ ! वानरों की सहायता जोड़कर समुद्र बाँध लेना क्या यही प्रभुता है ? हे जड़ वानर ! बहुत से पक्षी समुद्र लाँघ जाते हैं, परन्तु वे शूर नहीं होते ?

मम भुज सागर बल जल पूरा ※ जहं बूड़े सुर नर वर शूरा।
बीस पयोधि अगाध अपारा ※ को अस वीर जो पावहिं पारा॥

※ मेरी भुजाओं का समुद्र बल रूप जल से भरा है, जिसमें बड़े-बड़े शूर-वीर देव और मनुष्य डूब गये। ऐसा कौन वीर है जो इन अथाह गहरे बीसों समुद्रों का पार पावे ?

साथ भी राहु-केतुका बिचित्र और हास्यास्पद, कथानक जोड़कर धर्म का ज्ञान-विज्ञान का शत्रु घोषित करने का पाप ही किया है।

※ रावण न दश सिर वाला था, न बीस भुजा वाला। एक विचित्र बात यह है कि नाटकों, लीलाओं और चित्रों आदि में रावण को दश सिर वाला दिखाने वाले भी रावण के बीस भुजायें नहीं दिखाते। क्यों ? इसका इन भोले लोगों के पास क्या समाधान है ?

जो पै समर सुभट तव नाथा * पुनि पुनि कहसि जासु गुण गाथा।
तौ बसीठ पठवा केहि काजा * रिपु सन प्रीति करत नहीं लाजा ॥

यदि तेरे स्वामी, जिनके तू बार-बार गुण गान करता है, युद्ध वीर हैं तो दूत किसलिए भेजा ? क्या शत्रु से प्रीति करते उन्हें लज्जा नहीं आती ?

दशमुख मैं न बसीठी आयउ * अस विचारि रघुवीर पठायउ।
बार बार इमि कहहिं कृपाला * नहिं गजारि यश बधे शृगाला ॥

हे रावण ! मैं दूत कर्म के लिये नहीं आया। श्री राम ने तो अन्य विचार से ही भेजा है। दयालु श्रीराम ने तो बार-बार इस प्रकार कहा है कि सियार को मारने से सिंह को यश नहीं मिलता।

मन महँ समुझि वचन प्रभु केरे * सहेउँ कठोर वचन शठ तोरे।
नहिं तौ करि भंजन मुख तोरा * लै जातेउँ सीतहिं बरजोरा ॥

रे शठ ! श्रीराम जी के वचनों का भाव समझ कर ही मैंने तेरे ये कठोर वचन सहे हैं, नहीं तो तुम्हारा मुख तोड़ कर मैं बलात् सीताजी को ले जाता।

दो०—तोहि पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ।
मन्दोदरी समेत शठ, जनक सुतहिं लै जाउँ ॥

और हे शठ ! [यदि श्रीराम की आज्ञा मिले तो] तुझे पृथ्वी में पटक, सेना को मार, तेरा गाँव(लंका) नष्ट कर मन्दोदरी सहित माता सीता को ले जाऊँ।

जो अस करउँ न तदपि बड़ाई * मुएहिं बधे कछु नहिं मनुसाई।
कौल कामबस कृपण बिमूढ़ा * अति दरिद्र अयशी अति बूढ़ा ॥

यदि ऐसा करूँ तो भी मेरी [कुछ] बड़ाई नहीं, क्योंकि मरे को मारने में कुछ गौरव या पुरुषार्थ नहीं है। प्रतिज्ञा करके न देने वाला, कामी, सूम, मूर्ख, बहुत निर्धन, अयशस्वी, बहुत-बूढ़ा--

सदा रोगवश सन्तत क्रोधी * ईस विमुख श्रुति सन्त विरोधी।
तनु पोषक निन्दक अघखानी * जीवित शव सम चौदह प्रानी ॥

सदा का रोगी, सदैव का क्रोधी, ईश्वर-विरोधी, वेद और सन्तों का विरोधी, अपने ही शरीर का पालक, निन्दक और पापों की खान— ये चौदह प्राणी जीते भी मुर्दे हैं।

अस विचारि खल बधौं न तोही ❋ अब जनि रिस उपजावति मोही।
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा ❋ अधर दशन गहि मींजत हाथा॥

हे दुष्ट ! ऐसा विचार कर मैं तुझे नहीं मारता. अब मुझे और क्रोध मत पैदा कर, यह सुन रावण क्रोध सहित होठों को दाँतों से पकड़ कर हाथ मींजता बोला —

रे कपि पोच मरण भा चहसी ❋ छोटे बदन बात बड़ि कहसी।
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाके ❋ बुधि बल तेज प्रताप न ताके॥

हे नीच वानर ! अब तू मरना चाहता है, तभी तो छोटे मुँह से बड़ी बात कहता है। हे जड़ वानर ! जिसके बल से तू यों कड़ुए वचन कहता है उसके बुद्धि, बल, तेज और प्रताप कुछ नहीं है।

दो०—अगुन अमान विचारि तेहि, दीन्ह पिता बनवास।
सो दुख अरु जुवती विरह पुनि निसि दिन मम त्रास॥

गुण-शून्य और प्रतिष्ठा रहित विचार कर ही उसे उसके पिता ने वनवास दे दिया था, उस दुख में युवा पत्नी का वियोग आ मिला फिर रात्रि दिन उसे मेरा डर बना रहता है।

कटकटाइ कपि कुंजर भारी ❋ दोउ भुज दण्ड तमकि महि मारी।
गिरत दसानन उठा संभारी ❋ भूतल परे मुकुट षट चारी॥

[श्री राम की निन्दा को असह्य अनुभव कर] वानर श्रेष्ठ अङ्गद ने कटकटाकर अपने दोनों विशाल भुजदण्डों को पृथ्वी पर दे मारा, जिससे रावण गिरता-गिरता सँभलकर उठा परन्तु उसके दशों मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े।❋

❋ यहाँ अङ्गद के 'दो भुजदण्डों' का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया है। इससे प्रकट है कि वानर से अभिप्राय पशु-बन्दर से नहीं, वरन् मनुष्य जाति का ही एक अङ्ग वानर जाति थी।

कछु निज कर लै शिरन संभारे ※ कछु अङ्गद प्रभु पास पँधारे।
आवत मुकुट देखि कपि भागे ※ दिनहीं लूक परन विधि लागे ॥

कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरों पर सुधार कर रख लिये और कुछ अङ्गद ने उठाकर राम दल में फेंक दिये। मुकुटों को आते देखकर वानर भागे [और सोचने लगे] विधाता ! क्या दिन में ही उल्कापात होने लगा (तारे टूटने लगे) ?

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू ※ लूक न असनि केतु नहिं राहू।
ए किरीट दसकधर केरे ※ आवत बालि तनय के प्रेरे ॥

श्रीराम ने उनसे हँसकर कहा— मन में डरो नहीं। यह न उल्का है, न वज्र है, और न केतु या राहू ही है। अरे भाई ! ये तो रावण के मुकुट हैं, जो बालिपुत्र अङ्गद के फेंके हुए आरहे हैं।

दो०—उहाँ सकोपि दसानन, सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु, सुनि अङ्गद मुसुकाइ ॥

वहाँ (सभा में) क्रोध युक्त रावण सब पर क्रोध करता हुआ कहने लगा—इस वानर को पकड़ कर मार डालो। अङ्गद यह सुन मुस्कराने लगे।

मर्कट हीन करहु कपि जाई ※ जिअत धरहु तापस दोउ भाई।
पुनि सकोप बोलेउ जुवराजा ※ गाल बजावत तोहि न लाजा ॥

[रावण फिर बोला—] पृथ्वी को वानरों से रहित करदो और दोनों तपस्वी भाइयों (राम-लक्ष्मण) को जीते जी पकड़ लो। तब युवराज अङ्गद पुनः क्रोधित हो बोले—तुझे गाल बजाते लाज नहीं आती।

राम प्रताप समुझि कपि कोपा ※ सभा माझ पन करि पद रोपा।
जौं मम चरन सकहि सठ टारी ※ फिरहिं राम सीता मैं हारी ॥

और तब [रावण की इस गर्वोक्ति को] श्रीराम के प्रताप गौरव) के प्रतिकूल समझकर अङ्गद क्रोधित हो उठे और उन्होंने रावण की सभा में प्रण करके (दृढ़ता के साथ) पैर रोप दिया। और कहा— अरे मूर्ख ! यदि

तू मेरा चरण हटा सके, तो श्रीरामजी लौट जायेंगे और मैं मान लूँगा कि मैं सीताजी को हार गया।

सुनहु सुभट सब कह दससीसा ※ पद गहि धरनि पछारहु कीसा।
इन्द्रजीत आदिक बलवाना ※ हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥

रावण ने कहा—हे वीरो ! सुनो, पैर पकड़कर वानर को पृथ्वी पर पछाड़ दो। तब इन्द्रजीत आदि अनेकों बलवान जहाँ-तहाँ से हर्षित होकर उठे।

दो०—भूमि न छाँडत कपि चरन देखत रिपु मदभाग।
कोटि विघ्न ते सन्त कर मन जिमि नीति न त्याग॥

जैसे करोड़ों विघ्न आने पर भी सन्त का मन नीति को नहीं छोड़ता वैसे ही अङ्गद का चरण पृथ्वी को नहीं छोड़ता। यह देखकर शत्रु (रावण) का मद दूर हो गया।

कपि बल देखि सकल हिय हारे ※ उठा आपु कपि कैं परचारे।
गहत चरन कह बालि कुमारा ※ मम पद गहें न तोर उबारा॥

अङ्गद का बल देखकर सब हृदय में हार गये। तब अङ्गद के ललकारने पर रावण स्वयं उठा। जब वह अङ्गद का चरण पकड़ने लगा तब बालिकुमार अङ्गद ने कहा—मेरे चरण पकड़ने से तेरा उद्धार नहीं होगा।

गहसि न रामचरन सठ जाई ※ सुनत फिरा मन अति सकुचाई।
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो ※ प्रभु पहिं चल्यो बालि नृप जायो॥

अरे मूर्ख ! तू जाकर श्री रामजी के चरण क्यों नही पकड़ता ? यह सुन कर रावण मन में बहुत ही सकुचाकर लौट गया। [इस प्रकार] शत्रु के गर्व को चूर करके अङ्गद ने उसको श्रीराम का यश सुनाया और फिर वह राजा वालि का पुत्र लौट कर श्रीराम के पास आया।

विशेष—यहाँ वालि को नृप (नृ+प=मनुष्यों को पालने वाला) कहा है। प्रकट है कि वानर मनुष्य जाति के ही अंग थे।

इहाँ राम अंगदहिं बुलावा ※ आइ चरन पङ्कज सिरु नावा।
अति आदर समीप बैठारी ※ बोले बिहँसि कृपालु खरारी॥

[अंगद के राम दल में पहुँचते ही] श्रीराम ने उन्हें बुलाया। अंगद ने चरण कमलों में शिर नवाया। श्रीराम ने उन्हें सादर बिठाया और मुस्कराते हुए पूछा—

बालि तनय कौतुक अति मोही ※ तात सत्य कहु पूछउँ तोही।
रावन जातुधान कुल टीका ※ भुज बल अतुल जासु जग लीका॥

हे वालि पुत्र ! मुझे बड़ा आश्चर्य है। हे तात ! इसी से मैं तुमसे पूछता हूँ, सत्य कहना। जो रावण राक्षसों के कुल का तिलक (राक्षस-शिरोमणि) है और जिसके अतुलनीय बाहुबल की जगत् भर में धाक है।

तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाये ※ कहहु तात कवनौं विधि पाये।
सुनु प्रभु शरणागत सुखकारी ※ मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥

उसके चार मुकट तुमने फेंके। हे तात ! बताओ, तुमने उनको किस प्रकार से पाया ? (अंगद ने कहा—) हे शरणागत को सुख देने वाले स्वामी ! सुनिये, वे मुकट नहीं हैं। वे तो राजा के चार गुण हैं।[1]

साम दान अरु दण्ड विभेदा ※ नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा।
नीति धर्म के चरन सुहाए ※ अस जिय जानि नाथ पहिं आए॥

हे नाथ वेद[2] (वेदानुसार स्मृतियाँ एवं शास्त्र) कहते हैं कि

---

[1] यहाँ श्री राम अंगद से जिज्ञासा करते हैं और अंगद उसका समाधान करते हैं। प्रकट है कि राम 'सर्वज्ञ' परमात्मा नहीं, अल्पज्ञ जीवात्मा हैं। हां, वे महा मानव हैं।

रावण के चार मुकुटों को यहाँ स्वयं ही गोस्वामी जी ने राजनीति के चार गुण बताया है। अन्य छः मुकुट भी षट् सम्पत्ति अथवा इसी प्रकार के अन्य छः विशिष्ट गुणों के द्योतक रहे होंगे। इन दश गुणों को धारण करने से ही रावण को दशशीश कहा जाता होगा। चार वेद और छः शास्त्रों का पण्डित होने से भी रावण को दशशीश कहा जा सकता है। विस्तृत विचार समीक्षा खण्ड में पढ़ें।

[2] गोस्वामी जी ने स्थान-स्थान पर वेद की साक्षी दी है। ऐसा उन्होने यों ही सहज स्वभाव लिख दिया है। सच तो यह है कि शायद चारों

साम, दान, दण्ड और भेद—ये चारों राजा के हृदय में वसते हैं । ये चारों प्रकार की नीतियां धर्म के चार सुन्दर चरण हैं । (किन्तु अब रावण में धर्म का अभाव जान) हे स्वामी ! ये आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं ।

दो०—परम चतुरता श्रवन सुनि बिहंसे राम उदार ।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के राजकुमार ।।

अङ्गद की अत्यधिक चतुराई पूर्ण उक्ति को कानों से सुनकर उदार श्री राम मुस्कराने लगे । फिर बालि पुत्र ने लङ्का के सब समाचार कहे ।

रिपु के समाचार जब पाए ॐ राम सचिव सब निकट बुलाए ।
लङ्का बांके चारि दुआरा ॐ केहि विधि लागिअ करहु विचारा ।।

जब शत्रु के समाचार मिल गये, तब श्रीराम ने सब मन्त्रियों को पास बुलाया (और कहा—) लङ्का के चार बड़े विकट दरवाजे हैं, उन पर किस तरह आक्रमण किया जाय, इस पर विचार करो ।

वेदों के उन्होंने अपने जीवन में दर्शन भी नहीं किये हों । इसलिए कई स्थलों पर तो उन्होंने वेद विरोधी मान्यताओं पर भी वेद की मोहर लगाने का प्रयास किया है । हाँ, कई स्थलों पर उन्होंने उत्तम मान्यताओं और विचारों के समर्थन के लिये भी वेद की दुहाई दी है । यहाँ हमें इतना ही ध्यान रखना है कि सम्भव है वेदों में (गोस्वामीजी द्वारा वर्णित , उन उत्तम मान्यताओं का सीधा वर्णन न हो किन्तु "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक" होने से प्रकारान्तर से बीज रूप में उन उत्तम विचारों का समर्थन या उल्लेख वेद में अवश्य ही मिलता है । और उनका सीधा-सीधा स्पष्ट उल्लेख वेदानुकूल स्मृतियों और शास्त्रों में आने से भी उन्हें "वैदिक" ही माना जायेगा जैसे वैदिक दर्शन, वैदिक संस्कृति, वैदिक संध्या, आदि । संध्या में यदि कोई मन्त्र वेद मन्त्र नहीं है किन्तु वेदानुकूल है तो उन्हें "वैदिक" ही कहा जायेगा । गोस्वामी जी ने अनेक स्थलों पर वेद की मोहर इसी रूप में लगाई है, वहाँ तक ठीक ही है । पर जहां कहीं उन्होंने सर्वथा वेद विरोधी मान्यताओं पर भी वेद की छाप ठोकने का प्रयास किया है, उस विषय में हमें स्वयं सजग रहकर जनता को भी सजग रखना होगा ।

करि विचार तिन्ह मन्त्र दृढ़ावा ※ चारि अनी कपि कटुक बनावा।
जथा जोग सेनापति कीन्हे ※ जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
प्रभु प्रताप कहि सब समझाए ※ सुनि कपि सिंहनाद करि धाये॥

उन्होंने [परस्पर] विचार कर सुनिश्चित योजना बनाई। [उसके अनुसार] वानर सेना के चार दल किये। और उनके लिये यथा योग्य सुदक्ष सेनापति नियुक्त किए। फिर सब नायकों को बुला लिया और श्री राम-महिमा कहकर सबका आत्म-विश्वास एवं उत्साह बढ़ाया। जिससे वानर सिंह समान गर्जना करके दौड़े।

लङ्का भयउ कोलाहल भारी ※ सुना दशानन अति अहंकारी।
सुभट सकल चारिहुँ दिशि जाहू ※ धरि धरि कीस बृन्द सब खाहू॥

लंका में बड़ा भारी कोलाहल [कोहराम] मच गया। अत्यन्त अहंकारी रावण ने उसे सुनकर कहा—हे वीरो! तुम सब चारों दिशाओं में जाओ और वानर समूह को पकड़ २ कर खा जाओ [अर्थात् मार डालो]।+

चले निसाचर आयुप माँगी ※ गहि कर भिंडपाल वर साँगी।
तोमर मुद्गर परसु प्रचण्डा ※ सूल कृपाण परिघ गिरिखण्डा॥

आज्ञा माँगकर और हाथों में उत्तम भिंदिपाल, सांगी [बरछी], तोमर, मुद्गर, प्रचण्ड फरसे, शूल, दुधारी तलवार, परिघ और पहाड़ों के टुकड़े लेकर राक्षस चले।

उत रावन इत राम दोहाई ※ जयति जयति जय परी लराई।
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं ※ कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं॥

उधर रावण की और इधर श्री राम की दुहाई बोली जारही हैं। "जय, जय, जय, !" की ध्वनि होते ही लड़ाई छिड़ गई। राक्षस पहाड़ों के ढेर के ढेर शिखर [खण्डों] को फैंकते हैं, और वानर बीच में ही उछल कर उन्हें पकड़ लेते हैं और वापिस उन्हीं पर चलाते हैं।

छं०—धरि कुधर खण्ड प्रचण्ड मर्कट सुभट गढ़ पर डारहीं।

+ 'पकड़ कर खा जाओ' यह एक मुहाविरा है। आमतौर से क्रोध में मनुष्य इसका प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ है मारो या मार डालो।

झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि प्रचारहीं ।।
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए ।
कपि वृन्द चढ़ि मंदिरन्ह जहं तहं राम जसु गावत भए ।।

प्रचण्ड वानर वीर पर्वतों के टुकड़े ले-लेकर किले पर डालते हैं। वे झपटते हैं और राक्षसों के पैर पकड़ कर उन्हें पृथ्वी पर पटककर भाग चलते हैं और फिर ललकारते हैं। बहुत ही चञ्चल और तेजस्वी वानरगण बड़ी फुर्ती से उछले किले पर चढ़ गये और जहाँ-तहाँ महलों में घुसकर श्री राम का यश गाने लगे।

चले निसाचर निकरि पराई ※ प्रबल पवन जिमि घन समुदाई ।
सब मिल देहिं रावनहिं गारी ※ राज करत एहिं ·त्यु हंकारी ।।

राक्षसों के झुण्ड वैसे ही भाग चले जैसे जोर की हवा चलने पर बादलों के समूह तितर-वितर हो जाते हैं। राक्षस सब मिलकर रावण को गाली देने लगे कि राज्य करते करते इसने [स्वयं] मृत्यु को बुला लिया।

नारि वृन्द कर पीटहिं छाती ※ अब दुइ कपि आये उतपाती ।
गर्जि परे रिपु कटक मझारी ※ लागे मर्दै भुजबल भारी ।।

[हनुमान और अंगद के गढ़ में प्रवेश करते ही] राक्षसों की स्त्रियां हाथों से छाती पीटने लगीं [और कहने लगीं] इस वार दोनों उत्पाती वानर [एक साथ] आये हैं। वे दोनों गर्ज कर शत्रु की सेना के बीच कूद पड़े और अपने भुजवल से उसका मर्दन करने लगे।

दो०—भुजबल रिपु दल मलि, देखि दिवस कर अन्त ।
कूदे जुगल विगत श्रम, आए जहं भगवन्त ।।

भुजाओं के वल से शत्रु की सेना को मसल और दिन का अन्त होता देख हनुमान और अंगद गढ़ से कूद गये और श्रम [थकावट] मिटाकर वहाँ आ गये जहाँ ऐश्वर्यशाली राम थे।

गए जानि अंगद हनुमाना ※ फिरे सकल मर्कट भट नाना ।
जातुधान प्रदोष बल पाई ※ धाए करि दशसीस दुहाई ।।

अङ्गद और हनुमान को गये जानकर सभी वीर वानर भी लौट पड़े। राक्षसों ने प्रदोष (सायं) काल का वल पाकर (लाभ उठाकर) रावण की दुहाई देते हुए वानरों पर धावा वोल दिया।

प्राविट सरद पयोद घनेरे ※ लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे।
भयउँ निमिष महँ अति अँधियारा ※ वृष्टि होइ रुधिरोपल छारा॥

[राक्षस और वानर युद्ध करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं] मानो क्रमश; वर्षा और शरद ऋतु के वहुत से वादल पवन से प्रेरित होकर लड़ रहे हों। [तभी राक्षसों के वैज्ञानिक प्रयोग से] क्षण भर में ही घोर अन्धकार छा गया और फिर रक्त और राख की वर्षा होने लगी।

दो०- देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपि दल भयउ खभार।
एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार॥

उस अत्यन्त घने अन्धकार को दशों दिशाओं में [सभी ओर] देखकर वानरों की सेना में खलवली पड़ गई। एक को दूसरा नहीं देख पा रहा और सब जहाँ-तहाँ पुकार कर रहे हैं।

सकल मरमु रघुनायक जाना ※ लिए बोलि अङ्गद हनुमाना।
समाचार सब कहि समुझाए ※ सुनत कोपि कपि कुञ्जर धाए॥

श्रीराम ने सव रहस्य जानकर अङ्गद, हनुमान आदि सब वीरों को बुलाया और सब स्थिति समझाकर उन्हें आश्वस्त किया। उत्साहित होकर वे वानर श्रेष्ठ क्रोध करके (युद्धार्थ) दौड़े।

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा ※ पावक सायक सपदि चढ़ावा।
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं ※ ज्ञान उदय जिमि संसय नाहीं॥

फिर श्रीराम ने हँसकर धनुष चढ़ाया (यन्त्र-प्रयोग किया) और तुरन्त ही अग्नि वाण चलाया, जिससे प्रकाश हो गया, कहीं अँधेरा नहीं रह गया। जैसे ज्ञानोदय होने पर सन्देह दूर हो जाते हैं।

हनूमान अङ्गद रन गाजे ※ हाँक सुनत रजनीचर भाजे।
गहि पद डारहिं सागर माहीं ※ मकर उरग झष धरि-धरि खाहीं॥

अब हनुमान और अङ्गद ने प्रवल गर्जना की, जिसे सुन राक्षस भाग छूटे। वानर उन्हें पैर पकड़ समुद्र में डाल रहे हैं। वहाँ मगर, साँप और मच्छ उन्हें पकड़-पकड़ कर खा रहे हैं।

निसा जानि कपि चारिहु अनी * आए जहाँ को लाधनी।
राम कृपा कर चितवा सबही * भए विगत श्रम वानर तबही॥

रात हुई जानकर चारों सेनायें वहाँ आईं जहाँ श्रीराम थे। श्रीराम ने ज्योंही एक कृपा पूर्ण चितवन सब पर डाली, वानरों की सब थकावट दूर होगई। [मनोविज्ञान के अनुसार यह स्वाभाविक ही है]

उहाँ दसानन सचिव हँकारे * सब सन कहेसि सुभट जे मारे।
आधा कटकु कपिन्ह संघारा * करहु वेगि का करिइ विचारा॥

वहाँ [लंका में] रावण ने मन्त्रियों को बुलाया और जो योद्धा मारे गये थे उन सबको सबसे बताया। उसने कहा— वानरों ने आधी सेना मार दी है। शीघ्र बताओ अब क्या विचार (उपाय) किया जावे—

माल्यवन्त अति जरठ निसाचर * रावन मातु पिता मन्त्रीवर।
बोला वचन नीति अति पावन * सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥

माल्यवन्त नामक एक अत्यन्त बूढ़ा राक्षस था। वह रावण की माता का पिता [रावण का नाना] और श्रेष्ठ मन्त्री था। वह बड़े पवित्र नीति-वचन बोला— हे तात ! कुछ मेरी सीख भी सुनो—

परिहरि बयरु देहु वैदेही * भजहु कृपानिधि परम सनेही।
ताके वचन बान सम लागे * करिआ मुह करि जाहि अभागे॥

वैर छोड़कर श्रीराम को जानकी जी दे दो और कृपानिधान परम स्नेही श्रीराम की शरण लो। रावण को उसके वचन वाण के समान लगे। वह बोला— अरे अभागे ! मुँह काला करके चलाजा।

सो उठि गयउ कहत दुर्बादा * तब सकोप बोलेउ घन नादा।
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा * करिहउँ बहुत कहौं का थोरा॥

वह रावण को दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद

क्रोध पूर्वक बोला— सवेरे मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा, उसे जितना अब कहूँ वह कम ही होगा।

दो०—मेघनाद सुनि श्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतर्‌यो बीर सुदुर्ग तें, सन्मुख चल्यो बजाइ॥

[सवेरे] मेघनाद कानों से ऐसा सुनकर कि वानरों ने आकर फिर किले को घेर लिया है, किले से उतरा (बाहर निकला) और डंका बजाकर उनके सामने चला।

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता ※ धन्वी सकल लोक विख्याता।
कहँ नल नील दुविद सुग्रीवा ※ अङ्गद हनूमन्त बलसींवा॥

[मेघनाद ने ललकार कर कहा—] समस्त लोकों में प्रसिद्ध धनुर्धर कोशलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बलकी सीमा रूप अङ्गद और हनुमान कहां हैं?

कहाँ विभीषनु भ्राता द्रोही ※ आजु सबहि हठि मारउँ ओही।
अस कहि कठिन बान सन्धाने ※ अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥

भाई से द्रोह करने वाला विभीषण कहाँ है? आज मैं सबको और उस दुष्ट को तो ह पूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा। ऐसा कह उसने धनुष पर कठिन बाणों का सन्धान किया और अत्यन्त क्रोध करके उसे कानों तक खींचा।

सर समूह सो छाँड़ै लागा ※ जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा।
जहँ तहँ परत देखि अहिं बानर ※ सम्मुख होइन सके तेहि औसर॥

वह बाणों के समूह छोड़ने लगा, मानो बहुत से पङ्ख वाले साँप दौड़े जा रहे हों। जहाँ-तहाँ वानर गिरते दिखाई पड़ने लगे, उस समय कोई भी उसके सामने न हो सके [आने का साहस न कर सके]

रघुपति निकट गयउ घननादा ※ नाना भाँति करेसि दुर्बादा।
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे ※ कौतुकही प्रभु काटि निवारे॥

तब मेघनाद श्रीराम के पास गया। उसने [उनके प्रति] अनेक प्रकार

के दुर्वचन कहे तथा उन पर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाये। श्रीराम ने उन्हें सहज ही काट फेंका।

नभ चढ़ि वरष विपुल अङ्गारा ॐ महि ते प्रगट होहिं जलधारा।
बरिषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा ॐ सूझ न आपन हाथ पसारा ॥

[पश्चात्] मेघनाद आकाश में [वायुयान द्वारा ऊँचे] चढ़ कर वहुत से अङ्गारे बरसाने लगा। पृथ्वी से जल की धारायें प्रकट होने लगीं। फिर उसने धूल बरसा कर ऐसा अँधेरा कर दिया कि अपना ही फैलाया हाथ नहीं सूझता था।

एक बान काटी सब माया ॐ जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया।
कृपा दृष्टि कपि वृन्द विलोके ॐ भए प्रबल रन रहहिं न रोके ॥

श्रीराम ने इस सब माया (वैज्ञानिक प्रयोगों) को एक ही क्षण में वाण से काट डाला, जैसे सूर्य अन्धकार के समूह को हर लेता है। फिर श्रीराम ने वानर समूह को स्नेह पूर्ण दृष्टि से देखा जिससे वे ऐसे प्रवल होगये कि युद्ध में रोकने से भी न रुकते थे।+

+ 'माया' शब्द का प्रयोग राक्षसों द्वारा प्रयोग में लाये गये गर्हित वैज्ञानिक उपकरणों और प्रयोगों के लिये हुआ है। जिस प्रकार आज रूस और अमेरिका ने भौतिक विज्ञान में सर्वाधिक प्रगति की हुई है और अणुवम उद्-जन वम जैसे वैज्ञानिक आविष्कार किये हुए हैं, रामायण काल में लंका राज्य या राक्षस लोगों ने भौतिक विकास की चरम सीमा को प्राप्त किया हुआ था, उन्होंने अनेक प्रकार की माया [वैज्ञानिक उपलब्धियाँ] प्राप्त की थीं। अति भौतिकता ने इन्हें मदान्ध और आध्यात्मिकता का विरोधी वना दिया था। इन्हीं गर्हित वैज्ञानिक आविष्कारों के वल लंका राज्य के स्वामी रावण की सर्वत्र तूती वोलती थी। सब उससे काँपते थे। ऋषियों ने इसके प्रतिकार के लिये मिलकर जो योजना वनाई थी उसी का परिणाम ऋषि शृङ्ग द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ (राम जन्म) विश्वामित्र द्वारा राम को विविध शस्त्रास्त्रों का शिक्षण और अन्ततः महर्षि अगस्त्य के वैज्ञानिक गुरुकुल में राम का शिक्षण था। विश्वामित्र तथा ऋषि अगस्त्य के आश्रम से श्रीराम ने अनेक शस्त्रास्त्र प्राप्त

दो०—आयसु मांगि राम पहिं अंगदादि कपि साथ ।
लछिमन चले सकोप तब बान सरासन हाथ ॥

तब (तदनन्तर) लक्ष्मण श्री राम से आज्ञा माँगकर, अङ्गद आदि वानरों के साथ हाथ में धनुष-वाण लिये क्रुद्ध होकर चले ।

लछिमन मेघनाद दोउ जोधा ※ भिरहिं परस्पर करि अति क्रोधा ।
एकहि एक सकइ नहिं जीती ※ निसिचर छल बल करइ अनीती ।

लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यन्त क्रोध करके एक दूसरे से भिड़ गये, एक दूसरे को (कोई किसी को) जीत नहीं पारहा । राक्षस छल-बल और अनीति का प्रयोग करता है ।

नाना बिधि प्रहार कर सेषा ※ ×राच्छस भयउ प्राण अवसेषा ।
रावण सुत निज मन अनुमाना ※ संकट भयउ हरिहि मम प्राना ॥

[उत्तर में] श्री लक्ष्मण न उस पर अनेक प्रकार से प्रहार किये जिससे राक्षस के प्राण मात्र शेष रह गये । तब मेघनाद ने मन में सोचा कि अब तो प्राण-संकट आ बना, ये मेरे प्राण हर लेंगे ।

वीरघातिनी छाँड़िसि साँगी ※ तेज पुंज लछिमन उर लागी ।
मुरुछा भई सक्ति के लागे ※ तब चलि गयउ निकट भय त्यागे ॥

किये थे । ऋषि अगस्त्य इस राक्षसी 'माया' का प्रतिकार खोज पाने में सफल हो सके थे । श्रीराम ने उन्हीं से यह विद्या सीखी थी । हाँ, ऐसी 'माया' का स्वयं प्रयोग करना ऋषियों द्वारा वर्जित था । इसलिये श्रीराम ने स्वयं कभी प्रयोग न कर केवल प्रतिकार ही किया ।

× यहाँ लक्ष्मण जी को शेष (शेषावतार) कहकर सम्बोधित किया गया है । यह भी पौराणिक अवतारवाद की एक विचित्र कल्पना की देन है । प्रलय के पश्चात् भी शेष रहने से उस परम पिता परमात्मा का नाम ही 'शेष' है । वही 'शेष' सर्वाधार है । पर इस वैदिक सत्य को भुलाकर पौराणिक मण्डल में एक सर्वथा अवैज्ञानिक मूढ़ कल्पना प्रचलित है कि शेष नाग के फन पर पृथ्वी टिकी है ।

तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलाई। वह तेज पूर्ण शक्ति लक्ष्मण जी की छाती में लगी। शक्ति के लगनेसे लक्ष्मण को) मूर्छा आ गई। तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया।

सन्ध्या भई फिरीं दोउ ऐनी ※ लगे सँभारन निज निज सैनी।
तब लगि लै आये हनुमाना ※ अनुज देखि प्रभु अति दुख माना।

सन्ध्या होने पर दोनों सेनायें लौट दी, सेनापति अपनी २ सेनायें संभालने लगे। इसी बीच हनुमान लक्ष्मण जी को लेकर पहुँचे। छोटे भाई को [इस दशा में] देख श्रीराम बहुत दुखी हुए।

जामवन्त कह वैद सुषेना ※ लंका रहि पठि अइ कोउ लेना।
धरि लघु रूप गयउ हनुमन्ता ※ आनेउ आदर सहित तुरन्ता॥

जाम्बवान् ने कहा—लंका में सुषेण वैद्य रहता है, उसे ले आने के लिए किसी को भेजियेगा। तब हनुमान सामान्य वेश में (सैनिक वेश उतारकर) गये और सुषेण को आदर सहित ले आये।

दो०—राम पदारबिंद सिरु नायउ आइ सुषेन।
कहा नाथ गिरि औषधी जाहु पवन सुत लेन॥ +

+ वाल्मीक रामायण के अनुसार वैद्य सुषेण ने कहा:—

विद्याभिर्मन्त्र युक्ताभि रोषधीभिश्चिकित्सति ॥ ५० । २८ ॥
तान्यौषध न्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम्।
जवेन वानरा शीघ्रं सम्पाति पनसादय: ॥ ५० । २९ ॥
हरयस्तु विजानति पार्वती ते महौषधी।
संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देव निर्मिताम् ॥ ५० । ३० ॥
चन्द्रैश्च नाम द्रोणश्च क्षीरीदे सागरोत्तमे।
अयं वायुसुतो राजन् ! हनूमाँस्तत्र गच्छतु ॥ ५० । ३१ ॥

अर्थात् "तुम इनको सचेत करने के लिए विद्वानों से निर्मित सञ्जीवनी और विशल्या औषधि लगाकर विचार तथा युक्ति से चिकित्सा करो। वह औषधि सागर में है जहाँ कि चन्द्र और द्रोण नामक पर्वत हैं। वह औषधि

सुषेण ने आकर श्रीराय के चरण-कमलों में सिर नवाया। उसने पर्वत और औषधि का नाम बताया, [और कहा कि—] हे पवनसुत ! आप इस औषधि को लायें।

राम चरन सरसिज उर राखी * चलेउ प्रभञ्जन सुत बल भाखी।

श्रीराम के चरण कमल हृदय में धर श्री हनुमान् अपना बल कहकर [अर्थात् यह कह कर कि मैं अभी आता हूँ) चल दिये।

× × ×

उहाँ राम लछिमनहिं निहारी * बोले वचन मनुज अनुहारी।
अर्ध रात्रि गइ कपि नहीं आवा * राम उठाइ अनुज उर लावा॥

उधर आधी रात्रि बीतने तक भी हनुमान् के न लौटने पर श्री राम

देवासुर युद्ध में भी वृहस्पति आचार्य ने सेवन कराई थी) इस औषधि को लेने के लिये सम्पाति और पनस आदि वानर भेजो तथा वायुसुत हनुमान् को भी भेजो (क्योंकि वानर लोग इन औषधियों को अच्छी प्रकार जानते हैं)

इस वृत्त से तुलसी रामायण में वर्णित इस प्रसङ्ग की सम्पूर्ण चमत्कारिक कल्पनायें निरस्त होकर एक गौरव पूर्ण एतिहासिक वृत्त हमारे सामने आ जाता है कि रामायण काल में चिकित्सा शास्त्र भी कितना समुन्नत और परिष्कृत था। सञ्जीवनी हिमालय पर्वत में थ, हनुमान् पर्वत ही उठाकर ले आए तथा मार्ग में उन्हें भरतजी मिले आदि सम्पूर्ण वृत्त अनैतिहासिक और कल्पित होने से हमने छोड़ दिया है। इस सन्दर्भ में एक अत्यधिक विचारणीय बात यह है कि हनुमान् द्वारा भरत को समस्त वृत्त ज्ञात होने पर भी भरत "अहह दैव मैं कत जग जायउं, प्रभु के एकौ काज न आयउ" कह कर सर्वथा मौन रह जाते हैं ! यह असम्भव था कि भरत का सब समाचार मिलने पर वे और सभी अयोध्यावासी मौन रह जाते अपना कुछ भी कर्तव्य कार्य न विचारते। स्पष्ट है यह सम्पूर्ण वृत्त काल्पनिक है। हनुमान् उधर हिमालय की ओर गये ही नहीं, जैसा कि वाल्मीक रामायण से प्रकट है, द्रोण पर्वत-खण्ड समुद्र में ही था।

ने लक्ष्मण की दशा देखकर उन्हें हृदय से लगा लिया और [महापुरुष होते हुए भी अधीर होकर] एक सामान्य मनुष्य की भाँति बोले—(विलाप करने लगे—)

सकहु न दुखित देखि मोहिं काऊ ※ बन्धु सदा तव मृदुल स्वभाऊ।
मम हित लागि तजेउ पितु माता ※ सहेउ विपिन हिम आतप वाता ॥

हे भाई तुम तो मुझे कभी भी दुखित नहीं देख सकते थे, तुम्हारा ऐसा कोमल स्वभाव था। मेरे [सुख के] लिये तुमने माता-पिता को छोड़ दिया और वन में शीत, घाम और तेज वायु के झोंकों को सहा।

सो अनुराग कहाँ अब भाई ※ उठहु न सुनि मम वच विकलाई।
जो जनतेउँ वन बन्धु बिछोहू ※ पिता वचन नहिं मनतेउँ वोहू ॥

हे भाई! तुम्हारा वह प्रेम अब कहाँ है जो मेरे वचनों की व्याकुलता [शब्दों में व्याप्त करुणा] को सुनकर भी उठते नहीं हो? यदि मैं जानता कि वन में [मेरे प्यारे] भाई का वियोग होगा तो मैं पिता की आज्ञा नहीं मानता [वन नहीं आता]। ×

सुत, वित नारि भवन परिवारा ※ होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।
अस विचारि जिय जागहु ताता ※ मिलहि न जगत सहोदर भ्राता ॥

पुत्र, धन, स्त्री, कुटुम्ब—सब बार बार पैदा और नाश होते हैं. पर हे तात! मन में ऐसा विचार कर जागो कि संसार में सगा भाई नहीं मिलता [कठिनता से मिलता है]।

विशेष—यद्यपि पुत्र, पत्नी आदि सभी का अपने २ स्थान पर महत्व है। पर तुलना में स्नेहशील एवं कर्त्तव्य-परायण सगे भाई का महत्व अधिक बताया है, यही आशय कवि का है। पुत्र,धन, पत्नी आदि की अवमानना नहीं।

× यहाँ कवि ने करुणा रस का जो सजीव चित्रण किया है, वह देखते ही बनता है, मात्र अनुभव का विषय है वह। श्रीराम का भ्रातृ प्रेम यहाँ चरम बिन्दु पर पहुँचा हुआ है, तभी वे मानव-सुलभ दुर्बलतावश पिता की आज्ञा न मानने की बात भी कह बैठे हैं।

जथा पंख बिनु खगपति दीना ※ मणि बिनु फणि करिवर कर हीना।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही ※ जो जड़ दैव जिआवै मोही ॥

जैसे बिना पंखों के गरुड़, मणि बिना साँप या सूंड बिना हाथी की गति हो सकती है, हे भाई ! यदि दुर्भाग्य से मैं जीवित भी रहा तो मेरा जीवन भी तुम्हारे बिना वैसा ही दुखी होगा।

विशेष—यहाँ जड़ दैव का अर्थ अनेकों ने मूर्ख विधाता किया है, पर वह युक्ति-युक्ति नहीं। जड़ दैव का अर्थ दुष्ट या दुर्भाग्य ही उचित प्रतीत होता है। यद्यपि राम इस समय शोकाकुल हैं। पर शोकावेग में भी श्रीराम जैसे महामानव के मुख से 'मूर्ख विधाता' का प्रयोग उन्हें साधारण मानव से भी नीचे तल पर ला खड़ा करेगा और नास्तिकता का भी द्योतक होगा। श्रीराम कभी भी इस स्थिति को प्राप्त नहीं हो सकते।

जैहों अवध कौन मुंह लाई ※ नारि हेतु प्रिय बन्धु गंवाई।
बरु अपयश सहतेउं जग माहीं ※ नारि हानि विशेष क्षति नाहीं ॥

स्त्री के लिये प्यारे भाई को खोकर मैं किस मुंह से अयोध्या जाऊंगा। [इससे तो अच्छा था मैं युद्ध नहीं करता] चाहे संसार में अपयश ही सहना पड़ता। [फिर] स्त्री की हानि कोई वड़ी हानि नहीं है ! ×

अब अवलोकि शोक यह तोरा ※ सहै कठोर निठुर उर मोरा।
निज जननी के एक कुमारा ※ तात तासु तुम प्राण अधारा ॥

हे भाई ! [अपनी इस भूल के कारण] अब मुझे तुम्हारा यह दुःख

---

(२) 'जो जनतेउं' इन शब्दों द्वारा श्री राम अपनी अल्पज्ञता स्वयं स्वीकार कर रहे हैं।

× नारी जाति के प्रति गोस्वामी जी की हीनता की भावना का परिचय यहाँ फिर मिलता है। यह राम-हृदय का परिचय नहीं कवि की स्वयं की भावनायें ही बोल रही हैं, जो अपने आप में मध्ययुग (अन्धकार युग) की देन थी।

(२) श्रीराम यहाँ एक बार पुनः अपनी अल्पज्ञता को स्वीकार कर सर्वज्ञता को अस्वीकार कर रहे हैं।

हृदय को कठोर और निष्ठुर बनाकर सहना पड़ रहा है । हे तात ! मैं अपनी माता के एक ही पुत्र हूँ, जिसके [मेरे] प्राणों के आधार तुम हो [तुम्हारे बिना मैं और मेरे बिना कौशल्या नहीं जियेगी] ।

सौंपेउ मोहि तुमहि गहि पानी ※ सब विधि सुखद परमहित जानो ।
उतर ताहि दंहों का जाई ※ उठि किन मोहि सिखावहु भाई ।।

जिन सुमित्रा माता ने मुझे सब प्रकार तुम्हारा परम हितैषी और सुखदायक जानकर तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में दिया था, मैं अब उसे जाकर क्या उत्तर दूंगा ? हे भाई ! उठकर मुझे क्यों नहीं सिखाते हो ? ×

सो०—प्रभु विलाप सुनि कान विकल भये बानर निकर
आइ गये हनुमान जिम करुणा महं वीर रस

श्रीराम का वह करुण विलाप कानों से सुन वानर समूह भी विकल हो उठा, तभी हनुमान् आ गये—जैसे करुणा में वीर रस का संचार हुआ हो । [यहांश्री राम आदि सभी करुणा रस के प्रतीक हैं और हनुमान् वीर रस के] ।

हर्षि राम भेटेउ हनुमाना ※ अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना
तुरत वैद्य तब कीन्ह उपाई ※ उठि बैठे लक्ष्मण हर्षाई ।।

परम सुजान श्रीराम प्रसन्न हो हनुमान् से मिले और उनके प्रति बड़ी ही कृतज्ञता प्रकट की । तुरन्त ही वैद्यराज सुषेण ने उपाय किया (औषधि-प्रयोग कराया) जिससे लक्ष्मण सचेत हो प्रसन्न मुद्रा में उठ बैठे ।

हृदय लाइ भेंटेउ प्रभु भ्राता ※ हर्षे सकल देव कपि व्राता ।
पुनि कपि वैद्य तहाँ पहुचावा ※ जेहि विधि तबहिं ताहि लै आवा ।

श्रीराम भाई को खूब हृदय लगाकर मिले ! सभी देवगण एवं वानर-

× यह प्रसङ्ग 'रामचरित मानस' के श्रेष्ठतम प्रसङ्गों में से है । करुणा रस का तो स्रोत ही वहा दिया है, कविश्रेष्ठ तुलसी ने । तुलसी की सिद्धान्त-हीनता को जहाँ हम देश और जाति के सर्वनाश के कारणों में से बहुत बड़ा कारण मानते हैं, वहाँ उनकी इसी काव्य-गरिमा के कारण शत-शत बार उनका पद-वन्दन भी करते हैं ।

वीर प्रसन्नता से भर उठे। फिर हनुमान् जी ने सुषेण वैद्य को उसी प्रकार सादर पहुँचा दिया जैसे वे उन्हें लाये थे।

यह वृत्तान्त दसानन सुनेऊ ※ अति विषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ।
व्याकुल कुम्भकर्ण पहं गयऊ ※ करि बहु जतन जगावत भयऊ॥

यह सम्पूर्ण वृत्त रावण ने सुना तो दुःख भार से अपना सिर पीट लिया। रावण तब व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत प्रकार से उसे जगाने लगा। [अपने पक्ष में लाने के लिये उसे अनेक प्रकार से स्थिति का परिचय कराने लगा]। ×

कथा कही सब तेइं अभिमानी ※ जेहि प्रकार सीता हरिआनी।
तात कपिन निसिचर संहारे ※ महा महा योधा सब मारे॥

अभिमानी रावण ने (जिसने अब तक अभिमानवश कुम्भकर्ण से इस विषय में कोई बातें ही नहीं की थी और कुम्भकर्ण को अपने मौजी स्वभाव के कारण कुछ ज्ञान था ही नहीं, उसे) आदि से अन्त तक सब कथा कही और बताया कि किस प्रकार वह सीता का हरण करके लाया। [इसी प्रसङ्ग में श्रीराम के साथ चल रहे युद्ध की चरचा करते हुए वह बोला] हे भाई वानरों ने राक्षसों का नाश कर दिया और सब बड़े-बड़े योद्धा युद्ध में खेत रहे हैं।

भलन कीन्ह तें निसिचर नाहा ※ अब मोहि आनि जगावहु काहा।
अहह बन्धु तें कीन्ह खुटाई ※ प्रथमहिं मोहिं न जगायहु आई॥

× कुम्भकर्ण रावण का भाई था, बताया जाता है कि वह छः महीने तक सोता था। छः महीने बाद १ दिन के लिये जागता था, १ दिन में ही हजारों पशु और मनुष्यों को खा जाता था, आदि। यह वर्णन अतिशयोक्ति-पूर्ण ही नहीं सर्वथा असत्य भी है। कुम्भकर्ण का 'छः महीने तक सोना' अथवा 'छः महीने बाद जागना' एक अलङ्कारिक प्रयोग तो हो सकता है। आज भी दिल्ली या लखनऊ आदि में कोई अप्रिय घटना हो तो हम प्रायः शासकदल एवं प्रधान मन्त्री या मुख्य मन्त्री को सम्बोधित करके कहते हैं "..................दिन से वे लोग चादर तान सोते रहे?" स्पष्ट है कि यहाँ

हे राक्षसराज ! तूने अच्छा नहीं किया जो मुझे अब आकर जगाया (इस स्थिति का अब ज्ञान कराया) हे भाई ! तूने बुरा किया जो मुझे पहले ही आकर इस विषय में ज्ञान नहीं कराया (नहीं जगाया)।

विशेष—यहाँ जगाने का अभिप्राय सचेत करना या स्थिति से अवगत कराना ही उपयुक्त होगा । सम्पूर्ण वृत्त सुन कुम्भकर्ण ने युद्ध में जाने का निश्चय किया ।

कुम्भकरन दुर्मंद रन रंगा ※ चला दुर्ग तजि सेन न संगा।
देखि विभीषन आगे आयउ ※ परेउ चरन निज नाम सुनायउ ॥

मद से चूर, युद्ध के उत्साह से पूर्ण कुम्भकर्ण किले से निकलकर (अकेला) चल पड़ा, साथ में सेना भी नहीं ली । उसे देख विभीषण आगे आया और उसके चरणों पर गिरकर अपना परिचय दिया ।

तात लात रावन मोहि मारा ※ कहत परम हित मन्त्र विचारा ।
तेहि गलानि रघुपति पहिं आयउँ ※ देखि दीन प्रभु के मन भायउं ॥

[विभीषण ने कहा—] हे तात ! परमहितकारी सलाह एवं मन्त्र (विचार) देने पर भी रावण ने मुझे लात मारी । उसी ग्लानि के कारण मैं श्री राम के पास चला आया । मेरी दीनता देखकर श्रीराम के मन को मैं बहुत प्रिय लगा ।

सुनु सुत भयउ कालबस रावन ※ सो कि मान अब परम सिखावन ॥
धन्य-धन्य हैं धन्य विभीषन ※ भयउ तात कुल निसिचर भूषन ॥

'सोते रहे' शब्द अलङ्कारिक और एक स्थिति विशेष का द्योतक है तथा एक घटना विशेष को अपने अंक में छिपाये है । यहाँ भी वही बात है । सीता-हरण के काण्ड को छः महीने हो चुके थे । । लंका दहन के बाद युद्ध तक की स्थिति आ बनी पर कुम्भकर्ण अपने मौजी या विलासी स्वभाववश उस ओर से सर्वथा अनभिज्ञ बना रहा। रावण ने इस सारे बीच उसे छेड़ना शायद उचित नहीं समझा । यह छः महीने तक ऐसी महत्वपूर्ण घटना के प्रति उपेक्षा-भाव ही कुम्भकर्ण की छः महीने की नींद थी । इस उक्ति विशेष को हम अलङ्कारिक प्रयोग के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, ऐतिहासिक सत्य के रूप में नहीं ।

[कुम्भकर्ण ने कहा—] हे पुत्र ! सुन, रावण तो काल के वश हुआ है, वह उत्तम शिक्षा क्यों मानने लगा ? हे विभीषण ! तू अनेक वार धन्य है, तू राक्षस-कुल का भूषण हो गया। *

बन्धु वचन सुनि चला विभीषन ※ आयउ जहँ त्रैलोक त्रिभूषन।
नाथ भूधराकार सरीरा ※ कुंभकरन आवत रनधीरा ॥

भाई के ये शब्द सुन विभीषण वहाँ गया जहाँ तीनों लोकों के भूषण (महामानव) श्री राम थे। विभीषण ने कहा— हे नाथ ! पर्वत के समान [विशाल] देहवाला रणधीर कुम्भकर्ण आ रहा है।

इतना कपिन्ह सुना जब काना ※ कटकटाइ धाये बलवाना।
मुर्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो※जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो

कानों से इतना सुनते ही, वानर वीरों ने क्रोधित हो धावा बोल दिया। परन्तु इससे न तो उसका मन ही मुड़ा (विचलित हुआ) और न शरीर ही टालने से टला जैसे आक के फलों की मार से हाथी पर कुछ भी असर न हो।

---

* स्पष्ट है कि कुम्भकर्ण रावण-पक्ष की नैतिक दुर्बलता को समझता हुआ भी भाई का साथ दे रहा है, जबकि विभीषण न केवल तटस्थ रहा, वरन् भाई के विरोधी-पक्ष का एक मुख्य अङ्ग वन गया। यहाँ कौन अधिक सही है, यह विचारणीय है, हम विभीषण के भातृ-द्रोह को श्रेयस्कर नहीं समझते। हाँ, रावण की सभा में उसकी अनीति का विरोध करना आवश्यक था, बहुत ठीक था। उसके किसी प्रकार भी न मानने पर विभीषण यदि तटस्थ रहते तो यह भी उनका रावण के प्रति विरोध ही होता, पर यह अधिक शोभनीय होता। घटना-क्रम बताता है कि वह तो स्पष्ट ही राज्य के लोभ में श्रीराम दल में जाकर मिला। हमारा मत यही है, यदि कोई और विद्वान् प्रकाश डालेंगे तो हम आभारी होंगे। हमें लगता है कि सीता-खोज के अवसर पर श्री हनुमान् ने कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में इस भ्रातृद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार की थी और लङ्का में फूट की आग लगाना ही उनका वास्तविक "लका दहन" था।

तब मारुत सुत मुठिका हन्यो ※ पर्यो धरनि व्याकुल सिर धुन्यो ।
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमन्ता ※ घुर्मित भूतल परेउ तुरन्ता ॥

तब हनुमान जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा। फिर उसने उठकर हनुमान जी को मारा। वे चक्कर खाकर तुरन्त ही पृथ्वी पर गिर पड़े।

दो०—अङ्गदादि कपि मुरछित करि समेत सुग्रीव ।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित वलसींव ॥

अङ्गद आदि अन्य वानर वीरों को मूर्छित करके वह बल की सीमा रूप कुम्भकर्ण वानरराज सुग्रीव को काँख में दाबकर चला।

सुग्रीवहु की मुरुछा बीती ※ निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती ।
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे ※ सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे ॥

जव सुग्रीव की मूर्छा दूर हुई तो कुम्भकर्ण के निकट स्वयं को मुर्दे सा अनुभव कराता हुआ, नीचे खिसक गया। [कुम्भकर्ण की भीषण मार से] सब वानर वीर भाग खड़े हुए। वे लौटाये भी नहीं लौटते। आँखों से उन्हें सूझ नहीं पड़ता और पुकारने से सुनते नहीं !

कुंभकरन कपि फौज बिडारी ※ सुनि धाई रजनीचर धारी ।
देखी राम विकल कटकाई ※ रिपु अनीक नाना विधि आई ॥

कुम्भकर्ण ने वानर सेना को तितर-बितर कर दिया। यह सुनकर राक्षस-सेना ने भी [उत्साहित होकर] धावा बोल दिया। श्रीराम ने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रु की नाना प्रकार की सेना आगई है।

दो०—सुनु सुग्रीव विभीषन अनुज सँभारेउ सैन ।
मैं देखउँ खल बल दलहिं बोले राजिव नैन ॥

तब कमल नयन श्री राम बोले— हे सुग्रीव ! हे विभीषण ! और हे लक्ष्मण ! सुनो, तुम लोग सेना को सँभालना। मैं इस दुष्ट के बल और सेना को देखता हूँ।

दो०—छन महुँ प्रभु के सायकन्ह काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुवीर निषंग महुँ प्रविसे सब नाराच॥

श्रीराम के तीव्र वाणों ने थोड़े समय में ही भयानक राक्षसों को काटकर रख दिया। फिर वे वाण लौटकर श्रीराम के तरकस में ही प्रविष्ट होगये। [रामायण कालीन युद्ध विज्ञान की यह अनुपम उपलब्धि मानी जा सकती है]

कुम्भकर्ण मन दीख विचारी ※ क्षण महँ हते निसाचर भारी।
भयो क्रोध दारुण बलवीरा ※ करि मृगनायक नाद गँभीरा॥

कुम्भकर्ण ने जब मन में विचार कर देखा कि क्षण भर में इन्होंने सब राक्षस वीर मार डाले तो उस महाबली को बड़ा भयंकर क्रोध हुआ और उसने गम्भीर सिंहनाद किया।

तब प्रभु कोपि तीव्र शर लीन्हा ※ धड़ से भिन्न तासु शिर कीन्हा।
सो शिर परा दसानन आगे ※ विकल भयउ जिमि फणि मणित्यागे॥

तब श्रीराम ने भी क्रोधित हो तेज बाण लिया और उसका शिर धड़ से अलग कर दिया। वह कटा शिर रावण के आगे जाकर पड़ा, जिसे देखकर वह ऐसा व्याकुल हो उठा जैसे मणि चली जाने से साँप।+

बहु विलाप दसकन्धर करई ※ पुनि-पुनि बन्धु सीस उर धरई।
मेघनाद तेहि अवसर आवा ※कहि बहु कथा पितहिं समुझावा॥

रावण बहुत विलाप करता है और बार-बार भाई का शिर हृदय से लगाता है। उसी समय वहाँ मेघनाद आया। उसने [अपनी वीरता की] अनेक कथायें कहकर पिता को समझाया (आश्वस्त किया)

दो०—मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकइ त्रास॥

+ कुम्भकर्ण के आकार-प्रकार, खान-पान और युद्ध का गोस्वामी जी ने बड़ा ही अतिशयोक्ति पूर्ण और असम्भव प्राय वर्णन किया है जो रामायण की ऐतिहासिकता को संदिग्ध बनाता है।

मेघनाद [अगले दिन प्रातः ही] मायामय=कुशल वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित रथ पर चढ़ कर आकाश में गया और अट्टहास करके गरजा, जिससे वानरों की सेना में भय छा गया।

सक्ति सूल तरवारि कृपाना ※ अस्त्र सस्त्र कुलि ायुध नाना।
डारइ परसु परघि पाषाना ※ लारोउ वृष्टि करै बहु नाना॥

वह शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण आदि अस्त्र-शस्त्र एवं वज्र आदि वहुत से आयुध चलाने तथा फरसे, परिघ, पत्थर आदि डालने और वहुत से वाणों की वर्षा करने लगा।

व्याकुल कीन्ह घन नादा ※ पुनि भी प्रकट कहइ दुर्वादा।
जामवन्त कह खल रहु ठाड़ा ※सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥

मेघनाद ने सम्पूर्ण सेना को व्याकुल कर दिया। फिर वह सामने आकर दुर्वचन कहने लगा। इस पर जाम्ववान् ने (जों अकेला ही मेघनाद की भीषण मार से अप्रभावित वचा था) कहा— अरे दुष्ट ! खड़ा रह, यह सुन मेघनाद को क्रोध बढ़ा।

बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउ तोही ※ लागेसि अधम प्रचारै मोही।
अस कहि तरल त्रिसूल चलायौ ※ जामवन्त कर गहि सोइ धायौ॥

अरे मूर्ख ! मैने बूढ़ा जानकर तुझे छोड़ दिया था। अरे अधम ! अब तू मुझे ही ललकारने लगा है ? ऐसा कह उसने चमकता हुआ त्रिशूल चलाया। जाम्ववान् उसी त्रिशूल को हाथ से पकड़ कर दौड़ा।

मारि सि मेघनाद कै छाती ※ परा भूमि घुर्मित सुरघातो।
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो ※ महि पछारि पुनि फेंकि चलायो॥

और उसे मेघनाद की छाती पर दे मारा। वह देवघाती चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़ा। जाम्ववान् ने फिर उसे पैर पकड़कर घुमाया और फिर पृथ्वी पर पटक कर लङ्का के किले की ओर फेंका चलाया।

मेघनाद कै मुरछा जागी ※पितुहिं बिलोकि लाज अति लागी।
तुरत गयउ गिरिवर कन्दरा ※ करौं अजय मख मम असभरा॥

जब मेघनाद की मूर्च्छा टूटी [तब अपने को पिता के सामने पड़ा

पाया] पिता को देख उसे बड़ी लज्जा का अनुभव हुआ। [अन्त में] वह पर्वत की गुफा में गया और उसके मन में "अजय यज्ञ" करने का विचार आया। [एक ऐसे विचित्र एवं नये वैज्ञानिक आविष्कार करने में वह संलग्न हुआ, जिससे वह 'अजय' हो सके]

इहाँ विभीषन मन्त्र विचारा ※ सुनहु नाथ बल अतुल उदारा।
मेघनाद मख करइ अपावन ※ खल मायावी देव सतावन ॥

इधर विभीषण के मन में यह मन्त्र (मङ्गलमय विचार , आया और उसने श्री राम को कहा—हे अतुलनीय वलवान् एवं उदार स्वामिन् ! सुनिये, देवताओं (सज्जनों) को कष्ट देने वाला, दुष्ट, मायावी [भौतिक विज्ञान वेत्ता] अपवित्र [उद्देश्य से] यज्ञ [विशद् वैज्ञानिक प्रयोग] कर रहा है।

जो प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि ※ नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि।
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना ※ बोले अङ्गदादि कपि नाना ॥

हे प्रभो ! यदि यह सिद्ध हो गया [इस वैज्ञानिक प्रयोग में इसे सफलता मिल गई] तो हे स्वामी ! फिर मेघनाद जल्दी ही जीता न जा सकेगा। इस रहस्य को सुन श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और अङ्गद आदि बहुत से वानरों को बुलाकर कहने लगे—

लछिमन सग जाहु सब भाई ※ करहु विध्वंस जज्ञ कर जाई।
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही ※ देखि सभय सुर दुख अति ओही ॥

हे भाइयो ! तुम सब लक्ष्मण के साथ जाओ और जो वह (एकान्त में वैज्ञानिक प्रयोग) यज्ञ करने लगा है, उगे विध्वंस कर दो। हे लक्ष्मण ! उसे युद्ध-भूमि में लाकर तुम मार डालना। देवताओं (सज्जन पुरुषों) को डरा हुआ देखकर मुझे विशेष दुख हो रहा है।※

※ (१) यज्ञ—लोक संग्रह अर्थात् जनता जनार्दन की निस्वार्थ सेवा-साधना राष्ट्रोन्नति या सामाजिक अभ्युदय और आत्म-विकास सम्बन्धी हर कार्य यज्ञ के अन्तर्गत आता है—'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'। इस प्रकार शिल्प विद्या एवं जन समाज को सुखी बनाने वाले सभी वैज्ञानिक आविष्कार भी यज्ञ हैं।

दो०—रघुपति चरन नाइ सिरु, चलेउ तुरत अनन्त ।
अङ्गद नील मयंद नल संग सुभट हनुमन्त ।।

श्रीराम के चरणों में सिर नवाकर श्रीलक्ष्मण तुरन्त ही चल दिये । उनके साथ अङ्गद, नील मयन्द, नल और हनुमान् आदि उत्तम योद्धा थे ।

कीन्ह कपिन सब जज्ञ विध्वंसा ※ जय न उठइ सब करिहिं प्रसंसा ।
तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई ※ लातन्हि हति हति चले पराई ।।

वानरों ने मेघनाद के वैज्ञानिक शोध रूप यज्ञ अथवा "विजय याग" को विध्वंश करना आरम्भ कर दिया । मेघनाद फिर भी नहीं उठा (उसने अपना प्रयत्न नहीं त्यागा) वे व्यंगपूर्वक उसकी प्रशंसा करने लगे । फिर भी वह नहीं उठा तो वानर उसके बाल पकड़ कर खींचने लगे । तथा लातों से मार-मार कर वे भाग (यज्ञ विध्वंस कर) चले ।

देखि अजय रिपु डरपेउ कीसा ※ परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा ।
सुमिरि कोशलाधीस प्रतापा ※ सर सन्धान कीन्ह भरि दापा ।।

समाज सेवा व्रत में दीक्षित सभी वैज्ञानिक याज्ञिक हैं, पुरोहित है । पर जैसा प्रायः कि हम सभी जानते हैं कि हर उत्तम से उत्तम वस्तु का दुरुपयोग भी हो सकता है ।' आज भी वैज्ञानिक आविष्कारों का अधिकाँश में दुरुपयोग ही हो रहा है । और हम देख रहे हैं कि वैज्ञानिक प्रगति रूप यह महायज्ञ जिसमें हज़ारों याज्ञिक [कुशल वैज्ञानिक] दिन रात जुटे हैं, लोक-मङ्गल का कारण न बनकर सर्वनाश का ही साधन बन गया है ।

रामायण कालीन लङ्काराज्य भौतिक विज्ञान की दिशा में सबसे आगे समझा जाता था । लङ्का के वैज्ञानिकों और वहाँ के शाशकों को इसका बड़ा गर्व था । मदोन्मत्त होकर ही उन्होंने संसार की सुख शान्ति को नष्ठ कर रखा था । और मुख्यतया देवराष्ट्र तथा आर्यराष्ट्र को दुःखी करने एवं सताने को तो "धर्म" ऐसा मान रखा था । ऋषियों ने इसके प्रतिरोध के लिये अन्दर ही अन्दर काफी अच्छी तयारियां कीं । अगस्त्य ऋषि के तत्वावधान में अनेक वैज्ञानिक आविष्कार भी किये । श्रीराम को वे सभी वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्र ऋषि

शत्रु को पराजित न होता देख वानर भयभीत हो उठे। तब लक्ष्मणजी बहुत ही क्रोधित हुए तथा उन्होंने श्री राम की महिमा को स्मरण करके (और उससे उत्साहित होकर) वीरोचित मन्यु भाव को धारण करके तीव्र वाण का सन्धान किया।

छाँड़ा वान माझ उर लागा ※ मरती बार कपटु सब त्यागा।
सुत वध सुना दसानन जबहीं ※ मूर्छित भयेउ परेउ महि तबहीं ।।

वाण छोड़ते ही उसकी छाती के बीच में लगा। (जिससे मेघनाद का शरीर प्राण रहित हो गया) मरते समय मेघनाद ने सब कपट (वैर बुद्धि) को त्याग दिया। रावण ने ज्यों ही पुत्र-मरण का समाचार सुना त्यों ही वह मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा।

विश्वामित्र एव महर्षि अगस्त्य ने प्रदान किये। श्रीराम ने उनका प्रयोग करके राक्षसों की सम्पूर्ण माया को (अब तक के वैज्ञानिक प्रयोगों) को असफल कर दिया। तब मेघनाद ने एकान्त में अपने राष्ट्र के अन्य सभी कुशल वैज्ञानिकों (याज्ञिकों, पुरोहितों) को लेकर किसी "अजेय" बनाने वाले नूतन आविष्कार का उपक्रम किया,यही मेघनाद का 'विजय यज्ञ' था। मानव हित के लिये किये गये सभी वैज्ञानिक आविष्कार 'यज्ञ' हैं। पर यह यज्ञ आयोजन 'अपावन मख' था, अपवित्र उद्देश्य से था। इसलिये विश्वामित्र के यज्ञ के रक्षक आर्योत्तम राम यहाँ स्वयं इस अपवित्र यज्ञ को विध्वंस करने का आदेश लक्ष्मण को कर रहे हैं।

मन्त्रों द्वारा अग्नि, घृत एव साकल्य की आहुति देकर 'अग्नि होत्र' या यज्ञ करने को ही हम लोग आमतौर से 'यज्ञ' समझते हैं। पर ध्यान रहे वह 'भी' यज्ञ है, यह 'ही' यज्ञ नहीं है। यह नित्यकर्म रूप यज्ञ तो (यज्ञ-भावना) का पुण्य प्रतीक है ही, पर राष्ट्रोन्नति के लिये किये जाने वाले विविध प्रकार के आयोजनों से सम्बन्धित वैदिक 'यज्ञ-विज्ञान को हम भूल ही गये हैं। ईश्वर कृपा करे, ऋषियों की इस पावन यज्ञभूमि में फिर वैदिक यज्ञों का विज्ञान हमें प्राप्त हो सके, जिससे हम लौकिक अभ्युदय और आत्म-निश्रेयस् के समन्वय रूप सद्धर्म को प्राप्त कर सकें।

मन्दोदरी रुदन कर भारी ॐ उर ताड़न बहु भांति पुकारी।
नगर लोग सब व्याकुल सोचा ॐ सकल कहहिं दसकंधर पोचा।।

मन्दोदरी छाती पीट-पीट कर चीख-चीख कर अनेक प्रकार से विलाप करने लगी, नगर के सब लोग व्याकुल हो गये। वे सभी इस अनर्थ (विनाश-काण्ड) के लिये रावण को दोष देने लगे।

दो०—तब दसकंठ बिविध विधि, समुझाईं सब नारि।
नश्वर रूप जगत सब, देखिहु हृदय विचारि।।

तब रावण ने सब स्त्रियों को समझाया कि सम्पूर्ण दृश्यमान् जगत् अनित्य और क्षण भङ्गुर है, हृदय में विचार करके देखो ?

क्या वेद, यज्ञ और योग की साधना के लिये ही निर्मित आर्यसमाज आपस की कुर्सियों की लड़ाई को छोड़ इस दिशा में सक्रिय होकर संसार को फिर वेद, यज्ञ और योग के चरणों में झुकाने का सौभाग्य प्राप्त करेगा !

(२) "विजय-याग" अथर्ववेद के पवित्र मन्त्रों की आहुतियों द्वारा भी किया जाता है। इन पवित्र मन्त्रों में अपने राष्ट्रवासियों या सेना में आत्म-हीनता और पराजय वृत्ति को त्याग कर शत्रु सेना के मर्दन के लिए आवश्यक उत्साह की प्रेरणायें हैं। राक्षस शब्द तब पापी या वेद विरोधी के लिये विशेषण रूप में प्रयुक्त नहीं होता था। यह जातिवाचक संज्ञा थी। राक्षस भी तब दैनिक अग्नि होत्र और बड़े बड़े वैदिक यज्ञ करते थे। मेघनाद ने या तो 'विजय याग' के रूप में उपर्युक्त क्रम में वैज्ञानिक 'अजेय' अस्त्र के निर्माण का उपक्रम किया था या पवित्र अथर्व वेद के मन्त्रों से अपनी सेना में नवीन उत्साह और शक्ति लाने के लिये वैदिक 'विजय याग' किया था।

(३) रावण तथा राक्षस जाति के अन्य विद्वान् भी वेदों के पण्डित थे। विविधि यज्ञों क अनुष्ठानकर्त्ता थे, किन्तु "आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः" दुश्चरित्र या आचरण हीन को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। वैदिक यज्ञ करते हुए भी ब्राह्मण संज्ञाधारी रावणादि को आर्य वीर राम को मारना पड़ा। उसी क्रम में अपवित्र उद्देश्य से किये यज्ञ को विध्वंस करना पड़ा। यज्ञ के

तिन्हहि ज्ञान उपदेशा रावन ※ आपनु मंद कथा शुभ पावन।
पर उपदेश कुशल बहुतेरे ※ जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

रावण ने उन्हें ज्ञानोपदेश किया। स्वयं नीच होकर भी वह शुभ कथा (उपदेश) कर रहा था। (सत्य है) दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं पर उपदेशानुसार आचरण करनेवाले नरवीर विरले ही हैं।

निसा सिरानि भयउ भिनुसारा ※ लगे वीर कपि चारिहुँ द्वारा।
सुभट बुलाइ दसानन बोला ※ रन सम्मुख जाकर मन डोला॥

रात बीती, सवेरा हुआ वानरवीर चारों दरवाजों पर जा डटे। रावण ने योद्धाओं को बुलाकर कहा—युद्ध में जिसका मन स्थिर न हो,

सो अब ही बरु जाउ पराई ※ संजुग विमुख भए न भलाई।
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा ※ देइउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥

अच्छा है, वह अभी भाग जाय। युद्ध में जाकर विमुख होने (भागने) में भलाई नहीं है। मैंने अपनी भुजाओं के भरोसे वैर बढ़ाया है। शत्रु के चढ़ आने पर मैं स्वयं ही उत्तर देने में भी समर्थ हूँ।

नाम पर "अपावन मख' को श्री राम ने विनष्ट कराया। उसी प्रकार ब्राह्मणत्व से हीन व्यक्ति को ब्राह्मण पद से च्युत करना कर्त्तव्य है, यज्ञोपवीत धारी का कदाचारी होने पर यज्ञोपवीत छीन लेना चाहिये। इसी प्रकार धर्म के नाम पर अधर्म, पाखण्ड, गुरुडम और अन्धविश्वासों का तीव्रतम खण्डन और प्रतिकार करके राष्ट्र और विश्व मानवता की रक्षा करनी चाहिये। श्री राम ने स्वयं यहाँ अपने व्यवहार से इस सत्य को प्रकाशित किया है।

(४) गोस्वामी जी ने मेघनाद के इस यज्ञ में पशु वध का जो वीभत्स दृश्य उपस्थित किया है, वह मध्यकालीन वाममार्ग के प्रभाव के कारण है। यज्ञ का एक नाम 'अध्वर' है। यज्ञ तो सर्वथा अहिंसक और प्राणिमात्र के कल्याणार्थ किया जानेवाले शुभ कार्य का नाम है। जिसमें ऐसी पैशाचिक हिंसा हों उसकी तो संज्ञा ही 'यज्ञ' नहीं हो सकती। काली आदि पर भैंसा, बकरा शराब आदि चढ़ाना भी इसी दुर्भाग्यपूर्ण वाम मार्ग का ही दुष्प्रभाव है। गोस्वामी जी के शब्दों में यह 'अपावन मख' है। रामभक्तों को इसे ध्वंस करना चाहिए।

अस कहि मरुत बेग रथ साजा * बाजे सकल जुझाऊ बाजा।
चले बीर सब अतुलित बली * जनु कज्जल कै आँधी चली ।।

ऐसा कह उसने वायु की तरह तेज चलने वाला रथ सजाया। तभी सारे लड़ाई के बाजे बजने लगे। सब अतुलनीय वीर ऐसे चले मानो काजल की आँधी।

दो०—दुहु दिसि जय जयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहिं उत रावनहिं बखानि ।।

दोनों ओर के योद्धा अपनी-अपनी जोड़ी चुनकर इधर श्रीराम और उधर रावण का जय-जयकार एवं गुण-गान करके आपस में भिड़ गये।

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा * देखि बिभीषन भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा * बन्दि चरन कह सहित सनेहा ।।

रावण को रथारूढ़ और श्रीराम को रथ विहीन देखकर विभीषण अधीर हो उठे। प्रेम की अधिकता से विभीषण के मन में सन्देह हो गया [कि वे विना रथ के रावण को किस प्रकार जीत सकेंगे ?] वे श्रीराम के चरणों को स्पर्श करके स्नेह पूर्वक कहने लगे—*

---

* यहाँ विभीषण के मन में श्रीराम की विजय में सन्देह की बात स्वयं गोस्वामी जी लिख रहे हैं। प्रश्न यह है कि विभीषण श्रीराम को ईश्वरावतार समझते थे, या नहीं। अनेक स्थलों पर गोस्वामी जी ने बड़े लम्बे-लम्बे प्रकरण लिख डाले हैं जो बताते हैं कि विभीषण श्रीराम को ईश्वर समझते थे। फिर रथ विहीन होने मात्र से राम की विजय में सन्देह क्यों ? तुलसीदास जी के अनुसार राम तो कभी ईश्वर होने और कभी मनुष्य होने का नाटक कर रहे हैं। (यद्यपि नाटक में भी जब कोई पात्र अभिनय करता है तो अन्त तक एक रूप में अपना पार्ट करता रहता है) पर क्या रामायण के सभी पात्र ऐसा ही अनोखा नाटक कर रहे हैं। वे भी कभी राम को ईश्वरावतार और कभी साधारण मनुष्य समझने लगते हैं। एक सत्य को झुठलाने अथवा एक झूठ को सत्य सिद्ध करने के लिये कितनी बार कितने प्रकार के

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना ※ केहि विधि जितब बीर बलवाना।
सुनुहु सखा कह कृपानिधाना ※ जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना ।।

हे नाथ ! आपके पास न रथ है, न शरीर रक्षक कवच और न जूते ही [मुझे सन्देह हो रहा है कि] वह महावीर रावण किस प्रकार जीता जायगा ? पर कृपालु [महामानव] श्रीराम ने उत्तर में कहा - मित्र, सुनो जिस रथ से जय होती है, वह दूसरा ही है।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका ※ सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे ※ क्षमा कृपा समता रजु जोरे ।।

शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं। सत्य और शील (सदाचार) उसकी सुदृढ़ ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, इन्द्रिय-दमन और परोपकार— ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ में जुड़े हुए हैं।

ईस भजनु सारथी सुजाना ※ विरति चर्म सन्तोष कृपना।
दान परसु बुधि शक्ति प्रचंडा ※ वर विज्ञान कठिन कोदंडा ।।

ईश्वर का भजन (ईश्वर भक्ति) ही [उस रथी का] चतुर सारथि है। वैराग्य ढाल है, और सन्तोष तलवार। दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड 'शक्ति' है। श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है।

अमल अचल मन त्रोन समाना ※ सम जम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा ※ एहि सम विजय उपाय न दूजा ।।

निर्मल (पाप रहित) और निश्चल (स्थिर) मन तरकस के समान है। शम) मन का वश में होना)। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—ये पाँच यम तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान ये पाँच नियम— ये सब बहुत से बाण हैं। विद्वान् ब्राह्मण और सत्योपदेष्टा

असत्य बोलने पड़ते हैं। फिर भी सत्य इतना बलशाली है कि असत्य के लाख-लाख पर्दों को चीर कर भी बोल उठता है। वही सत्य का जादू यहाँ विभीषण के सिर पर चढ़कर बोल रहा है।

गुरु का पूजन (यथोचित सत्कार) ही अभेद्य कवच हैं। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं।

दो०—महा अजय संसार रिपु, जीत सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मति धीर॥

हे धीर बुद्धि वाले मित्र ! सुनो, जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु) रूपी महान् दुर्जय शत्रु को भी जीत सकता है [फिर रावण की तो बात क्या है ? अतः तुम भय न करो।] +

+'विजय रथ' का यह मनोहर वर्णन 'रामचरित मानस' के श्रेष्ठतम स्थलों में से है।

(१) श्रीराम ने यहाँ स्वयं अपने को महामानव के रूप में उपस्थित किया है। विभीषण के इस प्रकार सन्देह करने पर वे ये नहीं कहते—विभीषण ! क्या तुम नहीं जानते, क्या तुम भूल गये कि मैं ईश्वरावतार हूँ ? जिस प्रकार ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान के प्रश्नों के उत्तर में वे अपना सत्य, सरल और संक्षिप्त परिचय— "कौशलेश दशरथ के जाये" कहकर देते हैं, यहाँ भी महापुरुषों के पास जो अनेक २ सद्गुण, साधना और ईश्वर भक्ति रूप विशेषताओं के अस्त्र-शस्त्रादि होते हैं, उन्हें अपनी विजय के साधन के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

(२) श्रीराम को आत्म-विश्वास है कि वे एक आर्य हैं। उनका जीवन-पट इन्हीं सद्गुणों के ताने-बाने से निर्मित है। अतः उनकी विजय निश्चित है। मेरे राष्ट्र पुरुष प्यारे राम आप सचमुच धन्य हैं !

(३) श्रीराम यहाँ 'ईश भजन सारथी सुजाना' कहते हैं, 'राम भजन' या 'मोर भजन' नहीं। कथा के मूल प्रवाह में श्रीराम ने जहाँ भी प्रश्नों के उत्तर दिये हैं, गोस्वामी जी को भी बरबस सत्योक्ति कोही प्रस्तुत करना पड़ा है।

(४) आत्म-विजय ही लोक-विजय का सर्वोत्तम साधन है, यही इस सन्दर्भ का शिक्षा-सार है।

राम रावण युद्ध

देवन्ह प्रभुहिं पयादे देखा ※ उपजा उर अति क्षोभ विशेखा।
सुरपति निज रथ तुरत पठावा ※ हरष सहित मातलि लै आवा॥

[विभीषण को तो श्रीराम के उत्तर से सन्तोष हो गया पर जब] देवताओं ने श्रीराम को पैदल देखा तो उनके मन में बड़ा दु;ख हुआ। [फिर क्या था] इन्द्र ने तुरन्त अपना रथ भेज दिया। [उसका सारथि] मातलि हर्ष के साथ रथ ले आया।+

तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा ※ हरषि चले कोशलपुर भूपा।
रथारूढ़ रघुनाथहिं देखी ※ धाये कपि बल पाइ विशेखी।

उस दिव्य, अनुपम और तेजोमय रथ पर श्रीराम हर्षित होकर चढ़ गये। श्रीराम को रथ पर चढ़ा देख वानरों ने विशेष बल पाकर धावा बोल दिया।

तब लंकेस क्रोध उर छावा ※ गर्जत तर्जत सम्मुख धावा।
जीतेहु जे भट संजुग माँहीं ※ सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥

तब रावण को क्रोध आगया और गर्जन तथा ताड़न करता सामने दौड़ा। उसने कहा— अरे तपस्वी ! सुन,तुमने युद्ध में जिन योद्धाओं को जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ।

आज बयरु सब लेउँ निबाही ※ जौ रन भूप भाजि नहिं जाही।
सुनि दुर्वचन कालबस जाना ※ बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥

हे राजा (राजपुत्र !) यदि तुम रण से भाग न गये तो आज मैं अपना सारा वैर निकाल लूँगा। रावण के दुर्वचन सुन, उसे काल-वश जान श्रीराम मुस्कराते हुए बोले—

छं०—जनि जल्पना करि सुजस नासहि नीति सुनहु करहु क्षमा।
संसार महँ पौरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा॥

+यह वर्णन सत्य प्रतीत नहीं होता। इन्द्र देवराष्ट्र के शासक थे। देवों का शासन तिब्बत, हिमालय आदि प्रदेशों में था।

एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं ।।

हे रावण ! व्यर्थ बातें करके तुम अपने सुन्दर यश का नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ। सुनो, संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं— पाटल (गुलाब), रसाल (आम) और पनस (कटहल) के समान। एक (गुलाब) फूल देते हैं। दूसरे (आम) फूल और फल दोनो देते हैं और तीसरे (कटहल) में केवल फल लगते हैं। इसी प्रकार एक वे पुरुष हैं जो कहते हैं [करते नहीं], दूसरे कहते और करते भी हैं और तीसरे केवल करते हैं, वाणी से कहते नहीं।

विशेष—'क्षमा करना' इन शब्दों में श्रीराम का शील और शिष्टाचार देखिये। शत्रु के प्रति और क्रोध के समय भी वे कितने शालीन हैं, कितने विनम्र। इस छन्द में निहित शिक्षा भी अत्यधिक मननीय है।

दो०—राम वचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ज्ञान।
बयरु करत नहिं तब डरे, अब लागे प्रिय प्रान ।।

श्री राम के वचन को सुन रावण खूब हँसा और बोला कि—मुझे ज्ञान सिखाते हो ? उस समय बैर करते तो डरे नहीं, अब प्राण प्यारे लग रहे हैं।

कहि दुर्वचन क्रुद्ध दसकंधर * कुलिस समान लाग छोडै सर।
निफल होहिं रावण सर कैसें * खल के सकल मनोरथ जैसे ।।

[और भी] दुर्वचन कहकर रावण क्रोध में भर वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। [पर श्री राम के प्रतिकार से] वे सभी बाण किस प्रकार निष्फल हो जाते हैं, जैसे दुष्ट मनुष्य के सब मनोरथ।

मरइ न रिपु श्रम भयउ बिशेखा * राम बिभीषन तन तब देखा।
नाभिकुंड पियूष बस याकें * नाथ जिअत रावन बल ताकें ।।

[फिर श्रीराम ने रावण पर अपार बाणों की वर्षा की परन्तु] शत्रु मरने में नहीं आता, श्रीराम ने बहुत श्रम (प्रयत्न) किया। (अन्त में थककर कोई उपाय बताने की आशा से) राम ने तब विभीषण की ओर

देखा। (विभीषण ने श्रीराम का आशय समझकर रहस्योद्घाटन किया कि—) हे नाथ ! इसके नाभिचक्र में अमृत है (नाभि द्वार से इसके प्राण जायेंगे) उसी के बल से यह जीवित है। ×

सायक एक नाभि सर सोषा ※ अपर लगे भुज सिर करि रोषा।
धरनि धसइ धर धाव प्रचण्डा ※ तब सर हति प्रभु कृत दुइ खण्डा।

तब श्री राम ने एक ही बाण से नाभिचक्र को सुखा डाला, दूसरे बाण (जो क्रोध करके छोड़े गये थे) उसके सिर और भुजाओं में लगे तो धड़ प्रचण्ड वेग से दौड़ने लगा, जिससे धरती धँसने लगी तब श्री राम ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये। यह काव्यात्मक वर्णन है।

गरजेउ मरत घोर रव भारी ※ कहाँ राम रन हतौं प्रचारी।
पति सर देखत मन्दोदरी ※ मुर्छित विकल धरनि खसि परी।

मरते समय रावण बड़ी घोर गर्जना करके बोला—राम कहाँ है? मैं ललकार कर उसको युद्ध में मारूँगा। मन्दोदरी पति का सिर (धड़ से अलग) देख, मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ी।

पति गति देख ते करहिं पुकारा ※ छूटे कच नहि वपुष सँभारा।
रुदन करत देखीं सब नारी ※ गयउ बिभीषन मन दुख भारी॥

पति की दशा देखकर वे [सब स्त्रियाँ] पुकार पुकार रोने लगीं। उनके बाल खुल गये हैं, देह की संभाल नहीं रही। अपने घर की सब स्त्रियों को रोती देख विभीषण के मन में बड़ा भारी दुःख हुआ और वह उन स्त्रियों के पास जाने लगा।

× श्रीराम रावण को मार नहीं पा रहे, उन्हें श्रम हुआ है, वे थक गये हैं—यह सब श्रीराम की शक्ति की इयत्ता को बताता है। प्रकट है कि श्रीराम महामानव थे, ईश्वर नहीं। उन्होंने विभीषण की ओर सहायता की इच्छा से देखा। स्पष्ट है कि श्री राम सर्वशक्तिमान् नहीं, अल्पशक्तिमान हैं। श्रीराम को जिस रहस्य का ज्ञान नहीं, उसे विभीषण बताते हैं। जाहिर है कि श्री राम सर्वज्ञ नहीं अल्पज्ञ हैं।

कृपा दृष्टि प्रभु ताहि बिलोका ❋ करहु क्रिया परिहरि सब सोका ।
कीन्ह क्रिया प्रभु आयुस मानी ❋ विधिवत देश-काल जिय जानी ।।

श्रीराम ने उसे स्नेह पूर्ण दृष्टि से देखा (उसे धैर्य प्रदान किया) और कहा—सब शोक त्याग कर रावण का अंत्येष्टि संस्कार करो । श्री राम की आज्ञा मानकर तथा हृदय में देश और काल का विचार करके विभीषण ने वैदिक पद्धति से अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न कराया ।

दो०—मन्दोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि ।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माँहि ।।

मन्दोदरी आदि सब स्त्रियाँ शोक निवृत्त होकर [परमेश्वर से दिवङ्गत आत्मा की सद्गति के लिये प्रार्थना करके] मन में श्रीराम के गुणों का वर्णन करती हुईं भवन को गयीं ।

आइ विभीषन पुनि सिरु नायो ❋ कृपा सिन्धु तब अनुज बुलायो ।
तुम्ह कपीस अङ्गद नल नीला ❋ जामवंत मारुत नयसीला ।।
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा ❋ सारेहु तिलक कहेहु रघुनाथा ।
पिता वचन मैं नगर न आवउं ❋ आपु सरिस कपि अनुज पठावउं ।।

पश्चात् विभीषण ने आकर शिर नवाया । तब कृपा सागर श्रीराम ने लक्ष्मण को बुलाया । और कहा—तुम, वानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जाम्बवान् और हनुमान आदि सब नीति-निपुण मिलकर विभीषण के साथ जाओ और उन्हें राज-तिलक करो । मैं पिताजी की आज्ञा के कारण नगर में नहीं जा सकता, पर अपने ही समान (मुख्य २) वानर बन्धुओं और भाई को भेजता हूँ । (इन शब्दों में श्रीराम की विनम्रता और नीति-कौशल दर्शनीय है ।)

तुरत चले कपि सुनि प्रभु वचना ❋ कीन्हीं जाइ तिलक की रचना ।।
सादर सिंहासन बैठारी ❋ तिलक सारि अस्तुति अनुसारी ।।

श्रीराम का आदेश सुन वानर तुरन्त चले और उन्होंने जाकर राज-तिलक की सारी व्यवस्था की । आदर सहित विभीषण को सिंहासन पर बिठाया तथा राजतिलक करके स्तुति की (यशोगान) किया ।

जोरि पानि सबहीं सिरु नाए ※ सहित विभीषन प्रभु पहिं आये ।
तब रघुवीर बोलि कपि लीन्हे ※ कहि प्रिय वचन सुखी सब कीन्हे ॥

पश्चात् सभी ने उन्हें सिर नवाया और तब विभीषण सहित सभी श्रीराम के पास आये । श्रीराम ने उस समय वानरों को बुलाया और उन सबके प्रति मधुर शब्दों में हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कर सुखी किया ।

विशेष—यह कृतज्ञता प्रकाशन मनुष्यता की सच्ची कसौटी है । मानवता के श्रेष्ठत्तम आदर्श श्रीराम में यह सद्गुण होना ही चाहिये था । श्रीराम चरित से हमें ऐसे ही सद्गुण सीखने चाहिये ।

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना ※ लंका जाय कहेउ ×भगवाना ।
समाचार जानकिहिं सुनावहु ※ तासु कुशल लै तुम चलि आवहु ॥

फिर श्रीराम ने हनुमान को बुलाया । भगवान् (ऐश्वर्य के स्वामी) श्रीराम ने उन्हें कहा—तुम लङ्का जाओ और जानकी को सब समाचार सुना उसका कुशलक्षेम लेकर तुम चले आओ ।

तब हनुमन्त नगर महुं आए ※ सुनि निसिचरी निसाचर धाए ।
बहु प्रकार तिन्ह पूजा + कीन्ही ※ जनक सुता दिखाइ पुनि दीन्हीं ॥

तब हनुमान् नगर में आये । यह सुन राक्षस-राक्षसी (उनके सम्मानार्थ) दौड़ पड़े । उन्होंने अनेक प्रकार से हनुमान् जी की पूजा (यथोचित सत्कार) किया और फिर उन्हें सीताजो के दर्शन कराये ।

× 'भगवान्' शब्द का अर्थ भ्रान्तिवश केवल परमात्मा के लिये समझा जाता है,जबकि इसका अर्थ है–भगवान्=ऐश्वर्यवान् । ईश्वर के अतिरिक्त साधु-सन्त, राजा-महाराजा, और महापुरुषों के लिये भी इसी से इस शब्द का प्रयोग होता है । भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, भगवान् दयानन्द, भगवान् तिलक आदि इसी प्रकार भगवान् वेदव्यास, भगवान् पतञ्जलि आदि ऐसे ही प्रयोग हैं ।

+ 'पूजा' शब्द के सत्यार्थ के विषय में भी भ्रान्ति है । पूजा का अर्थ प्रायः रोली-चावल चढ़ाकर या धूप-दीप नैवेद्य चढ़ाने से लिया जाता है,

दूरिहि ते प्रणाम कपि कीन्हा ※ रघुपति दूत जानकी चीन्हा।
कहहु तात प्रभु कृपा निकेता ※ कुशल अनुज कपि सेन समेता।।

जबकि पूजा का अर्थ है—यथायोग्य सत्कार विद्वान् की पूजा पुष्कल दक्षिणा देकर और दुष्ट की पूजा 'दण्ड' देकर की जाती है। आपने कहते भी सुना होगा—अधिक दुष्टता न दिखा, अन्यथा तेरी पूजा कर दी जायेगी। महापुरुषों की पूजा उनके पवित्र चरित्र का अनुशीलन है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि जड़ पदार्थों की पूजा उनसे यथोचित लाभ लेना है। माता-पिता आचार्य की पूजा उनकी यथोचित सेवा-शुश्रूषा करना है। यहाँ हम लगे हाथों देव पूजा' का अर्थ भी समझ लें। देव का सीधा और सरल अर्थ है देने वाला। देवता दो प्रकार के हैं (१) चैतन्य देवता (२) जड़ देवता। चैतन्य देव हैं – माता, पिता, अतिथि (सन्त, महात्मा, विद्वान्), आचार्य और पत्नी के लिये पति तथा पति के लिये पत्नी, यही पञ्च देव हैं। इनका पूजन है इन्हें सब प्रकार से सुखी और सन्तुष्ट रखना। माता-पिता आदि हमारे रक्षक होने से पितर भी कहलाते हैं। इनकी जीवित अवस्था में श्रद्धा-पूर्वक सेवा करना ही 'श्राद्ध' है और इनको वस्त्र-भोजन एवं आज्ञा पालन द्वारा तृप्त करना ही 'तर्पण' है। यह जीवन काल में ही सम्भव है। मरने के पश्चात् श्राद्ध एवं तर्पण का न कोई अर्थ है, न उपयोग। मृतक श्राद्ध आदि अवैदिक हैं। चैतन्य देवों में इन सभी देवों का अधिदेव=महादेव परम पिता परमात्मा है, उसका पूजन है उनकी आज्ञा–वेदाज्ञा का पालन कर मानव जीवन को सफल बनाना।

जड़ देव हैं—सूर्य, चन्द्र, अग्नि वायु आदि क्योंकि ये हमें प्रकाश, ऊष्मा व जीवन देते हैं। जड़ देवों से यथायोग्य उपयोग लेना, लाभ लेना ही उनका पूजन है। वृक्षादि भी देव हैं क्योंकि ये हमें फल-छाया आदि देते हैं। इनकी देख-रेख रखना यथा समय जल एवं खाद आदि देना ही इनका पूजन है। तुलसी-पीपल आदि वृक्ष हैं, इनसे उचित लाभ लेना चाहिए। जड़ और चेतन देव के इस भेद को समझकर उनसे 'यथायोग्य व्यवहार करना' एवं यथायोग्य लाभ लेना ही 'देव पूजा' है।

हनुमान् ने दूर से ही प्रणाम किया। सीताजी ने पहिचान लिया कि वे राम दूत हैं। वे बोलीं—कहो, दयानिधान श्रीराम, लक्ष्मण जी और वानरी सेना सहित कुशल तो हैं?

सब विधि कुशल कोशलाधीशा ※ मातु समर जीतेउ दशशीशा।
अविचल राज विभीषण पाये ※ सुन कपि वचन हर्ष उर छाये॥

हनुमान् बोले—हे मातः! अयोध्यानाथ सब प्रकार से कुशल हैं, युद्ध में उन्होंने रावण को जीत लिया और विभीषण को निष्कण्टक और सुस्थिर राज्य मिल गया है। हनुमान् के वचन सुन सीता बहुत हर्षित हुईं।

दो०—सुन सुत सद्गुण सकल तव, हृदय बसैं हनुमन्त।
सानुकूल रघुवंशमणि, रहें समेत अनन्त॥

इस सुन्दर समाचार को देने के उपलक्ष में सीता जी ने हनुमान् को आशीर्वाद दिया। हे पुत्र! सुनो तुम्हारे हृदय में सभी उत्तम गुण निवास करें और लक्ष्मण सहित श्रीराम जी सदैव तुम्हारे अनुकूल रहें।

अब सोइ यतन करहु तुम ताता ※ देखौं नयन स्याम मृदु गाता।
तब हनुमान राम पहँ जाई ※ जनक सुता की कुशल सुनाई॥

अब हे तात! वही यत्न करो जिससे श्री राम की मनोहर छवि नेत्रों से देख सकूं। तब हनुमान् श्री राम के पास गये और उन्हें सीताजी का कुशल-क्षेम कहा।

सुनि वाणी पतंग कुल भूषण ※ बोलि लिये युवराज विभीषण।
मारुत सुत के संग सिधावहु ※ सादर जनक सुता लै आवहु॥

ये वचन सुन सूर्यवंश के भूषण श्री राम ने अङ्गद और विभीषण को बुलाकर कहा कि तुम हनुमान् के साथ जाओ और जानकी को आदर सहित ले आओ।

दिव्य वसन भूषण पहिराये ※ शिविका रुचिर साजि पुनि लाये।
तापर हर्षि चढ़ी वैदेही ※ सुमरि राम सुखधाम सनेही॥

(राक्षसियों द्वारा सीताजी को स्नान कराके) उत्तम वस्त्र व भूषण

पहिनाये गये,फिर उत्तम पालकी सजाकर लाई गई। सीताजी सुखधाम श्रीराम का स्मरण करती हुई प्रसन्न मन उस पर चढ़ीं।

कह रघुवीर कहा मम मानहु * सीतहिं सखे पयादे आनहु।
देखहिं कपि जननी की नाईं * विहँसि कहा रघुवीर गौसाईं॥

[पालकी के राम-शिविर में पहुँचने पर] स्वामी श्रीराम ने मुस्कराते हुए कहा—हे मित्रगरा ! आप मेरा कहा मानें सीता को पैदल आने दें ताकि सभी वानरवीर माता के रूप में इनके दर्शन कर सकें। ×

विशेष—(१) इससे आगे सती शिरोमणि प्रातः स्मरणीया देवी सीता को श्रीराम द्वारा कुछ दुर्वचन कहना, लक्ष्मण जी द्वारा भौतिक अग्नि का जलाना और सीता जी का भौतिक अग्नि में प्रवेश करने के बाद जीवित बचे रह कर अपने सतीत्व का परिचय देना, गोस्वामी जी ने लिखा है। +

× इस प्रसङ्ग से पर्दा-प्रथा की नवीनता स्पष्ट ही है। (सम्पूर्ण रामायण में अन्यत्र भी कहीं पर्दा प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता। सीता, अहल्या, अनुसूया आदि सभी देवियाँ पर्दे की कैद से मुक्त हैं।

+ यह सब श्रीराम के सीता जी प्रति अविश्वास,मातृ-शक्ति के अपमान के साथ ही चमत्कारवाद पर आधारित सृष्टि नियम के विरुद्ध विवरण होने से सर्वथा अमान्य है। फिर सत्य क्या है ?

सत्य यह है कि अनेकों काव्यात्मक अलंकारिक प्रयोगों को अज्ञान और अविद्या के कारण सत्य घटनाओं का रूप दे दिया गया। "अग्नि-परीक्षा" इस वाक्यांश का प्रयोग साहित्य में आज भी उस समय होता है जब कोई सत्यवीर या धर्मवीर घोर से घोर संकटों की अग्नि बीच भी अपने धर्म और सत्य पर अडिग रहकर उन सङ्कट की ज्वालाओं में से हंसते-हंसते बाहर निकल आता है और सत्य या धर्म की जय का उद्घोष करता है। तब हम कहते हैं कि ईश्वर ने उसे अग्नि-परीक्षा में डाला था, किन्तु वह वीर उस परीक्षा में सफल रहा, उत्तीर्ण हुआ। सीता को भी भाग्यवश एक ऐसी ही 'अग्नि-परीक्षा' में से गुजरना पड़ा। कितने भय, कितने प्रलोभन और सङ्कटों की अग्नि के बीच भी

दो० -श्री जानकी समेत प्रभु, शोभा अमित अपार।
देखि-देखि कपि हर्षहिं, जय रघुपति सुखसार॥

आज शोभा की खान सीता जी सहित श्री राम विराज रहे हैं। यह दृश्य परम शोभनीय है। उनको देख-देखकर वानर-वीर हर्षित हो रहे हैं और बार-बार सुखसागर 'श्रीराम की जय हो'+ ऐसा घोष कर रहे हैं।

विशेष—यहाँ फिर गोस्वामी जी शिव, इंद्र, ब्रह्मा, राजा दशरथ

उस पूज्या देवी ने अपने धर्म को, अपने सत्य को नहीं त्यागा। यही सीताजी की 'अग्नि परीक्षा' थी। ईश्वर कृपा से आज जब लगभग ८ महीने बाद अपने पूज्य पतिदेव श्री राम के पास वे सानन्द आगईं तो यही उनका 'अग्नि परीक्षा' में सफल होना था।

भौतिक अग्नि में उन्हें जलाया गया और वे जीवित बच गईं इसकी न कोई तुक है, न आवश्यकता और न यह किसी प्रकार सम्भव ही है, ऐसे ही गपोड़ों और चमत्कारों के कारण तो आज अनेकों पश्चिमी विद्वान् और उनके अन्धभक्त कुछ भारतीय भी रामायण और महाभारत—इन हमारे महान् इतिहास ग्रन्थों को इतिहास ही नहीं मानते विचारशील जनता अब इस भ्रान्ति-जाल से निकल रही है

+ 'श्री राम की जय' यह राम सेना का सैनिक घोष था; अंधकार युग में अथवा श्रद्धा के अतिवेग (अंधश्रद्धा) के कारण कालान्तर में इसने आर्य जाति के अभिवादन का स्थान ले लिया, ठीक उसी तरह से जैसे 'जय-हिन्द' आजाद हिन्द सेना का नेताजी सुभाष द्वारा दिया गया सैनिक घोष था, जिसने आज राष्ट्रीय अभिवादन का रूप ले लिया है। तो स्पष्ट है कि 'जय राम जी की', 'राम-राम' आदि आर्य जाति का सनातन अभिवादन नहीं। यह तो हमारा सैनिक घोष था और अपने स्थान पर बहुत ठीक था। आज भी चीनी दरिन्दों और पाकिस्तानी पामरों अथवा किन्हीं भी भारत-शत्रुओं से युद्ध करते समय हम 'श्री राम की जय हो!' का घोष सहर्ष लगा सकते हैं, पर परस्पर मिलते समय हमारा सनातन अभिवादन है 'नमस्ते!'। हर्ष हैं कि विचारशील जनता ने इसे फिर पूरी तरह अपना लिया है।

और अनेकों देवी-देवताओं की सेना खड़ी करके श्री राम की स्तुति कराते हैं। यह सब लम्बा असम्बद्ध और अनैतिहासिक वर्णन निरर्थक है। इसका सार संक्षेप यही हैं कि वैदिक संस्कृति के पावन प्रतीक श्रीराम की आसुरी सभ्यता [जड़वादी या अति भौतिकतावादी सभ्यता] के पुजारी रावण पर यह विजय सम्पूर्ण मानवता के लिए वरदान सिद्ध हुई। और स्वभावतः ही देश के कोने-कोने से प्यारे राम, राष्ट्र पुरुष राम, युगनायक-युगनिर्माता राम का जय-जयकार सुनाई पड़ने लगा।

बहुरि विभीषरण भवन सिधाये ※ पुष्पक मरिण गरग वसन भराये।
लै पुष्पक प्रभु आगे राखेउ ※ हंसि करि कृपासिंधु अस भाखेउ

[हर्षोल्लास के इस वातावरण में [विभीषरण राजमहल में गये और पुष्पक विमान में बहुत सी मरिणयाँ तथा वस्त्र भरवाकर श्रीराम के सामने लाकर (भेट स्वरूप) रखे। तब श्रीराम ने हंसकर कहा—

चढ़ि विमान सुनु सखा विभीषरण ※ गगन जाय वर्षहु पट भूषरण।
नभ पर जाय विभीषरण तबहीं ※ वर्षि दिये पट भूषरण तबहीं॥

हे मित्र विभीषण ! [हर्ष के इस शुभ अवसर पर] तुम विमान पर चढ़ आकाश में जाकर कपड़े और गहनों की वर्षा करो। विभीषण ने आकाश में जाकर तदनुसार ही सब वस्त्र और आभूषण वरसा दिये।

विशेष—यहाँ पुनः श्री राम की उदारता के साथ ही उनकी राजनीतिमत्ता और आदर्श मानवीयता के दर्शन होते हैं। वे अपने लिए लाई गई भेट में अपने सभी सहयोगियों को भागीदार वनाते हैं। राम ! तुम सच में धन्य हो !!

कपिन विविध पट भूषन पाये ※ पहिरि पहिरि रघुपति पहं आये
चितै सबन पर कोन्हीं दाया ※ बोले मृदुल वचन रघुराया॥

वानरों को अनेक प्रकार के वस्त्र और गहने प्राप्त हुए। वे उन्हे पहिन-पहिन कर (अपनी कृतज्ञता प्रकट करने) श्री राम के पास पहुँचे। तब श्रीराम ने [उनके मन के भाव समझ कर] उन सब पर कृपापूर्ण दृष्टि डाली (उनको समुस्कान देखा) और कोमल स्वर में बोले—

तुम्हरे वल मैं रावण मारा ※ तिलक विभीषण कहँ पुनि सारा
निज निज गृह अब तुम सब जाहू ※ सुमिरेहु मोहि डरेहु जनि काहू ।

[प्रिय बन्धुओ ! इसमें मेरी क्या विशेषता है ?] मैं तुम्हारे ही सहयोग-बल से रावण को मार सका और तभी विभीषण को राजतिलक हो सका । (अतः यह सब तो आप लोगों के सहयोग और त्याग का प्रतिफल है । इसके लिए मैं स्वयं आप सबका कृतज्ञ हूँ ।) अब आप सब अपने-अपने घर जावें । मुझे आप लोग भुला न दें, याद रखें । और कभी किसी आततायी से डरें नहीं । [ऐसे किसी भी अवसर पर आप मुझे सेवार्थ याद कर सकते हैं ।]

दो०—प्रभु प्रेरित कपि वृन्द सब, राम रूप उर राखि ।
हर्ष विषाद समेत तब चले विनय बहु भाखि ।।

श्री राम के इन प्रेरणाप्रद और कृतज्ञता पूर्ण शब्दों को सुन समस्त वानर समूह अनेक प्रकार से विनय [राम का कीर्ति-गान] करने लगे और श्री राम के गौरवमय स्वरूप अर्थात् उनके क्षत्रियोचित आदर्शों को हृदय में धारण कर विजयी होकर घर लौटने की प्रसन्नता और श्री राम के वियोग का दुःख मानते हुए चल दिए ।

दो०—जाम्बवन्त कपिराज नल, अङ्गदादि हनुमन्त ।
सहित विभीषण जे अपर, यूथप कपि बलवन्त ।।

जाम्बवान्, सुग्रीव, नल, अङ्गद, हनुमान और विभीषण सहित सभी बलवान् सेनापति—

दो०—कहि न सकें कछु प्रेम बस, भरि भरि लोचन वारि ।
सम्मुख चितवैं राम तनु नयन निमेष निवारि ।।

ये सब प्रेम की अधिकता से कुछ नहीं कह पा रहे । उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर-भर आते हैं और एक टक होकर (निर्निमेष दृष्टि से) श्री राम को देख रहे हैं ।

अतिसय प्रीति देखि रघुराई ※ लीन्हे सकल विमान बिठाई ।
चलत विमान कोलाहल होई ※ जय रघुवीर कहै सब कोई ॥

[अपने इन मित्रों का] अत्यधिक प्रेम देखकर श्रीराम ने उन सबको विमान में विठला लिया । विमान चल दिया । विमान चलते समय चारों ओर बड़ा कोलाहल होने लगा । हर कोई चतुर्दिक् 'श्रीराम की जय हो' का पवित्र घोष कर रहा है ।+ अहा ! कैसा मनोरम दृश्य होगा वह !

राजत राम समेत भामिनी ※ मेरु शृङ्ग जनु घन दामिनी
कह रघुवीर देखु रण सीता ※ लक्ष्मण इहाँ हत्यो इन्द्रजीता ॥

[पुष्पक विमान में] श्री राम के साथ जानकी ऐसे सोहती हैं जैसे सुमेरु (पर्वत) के शिखर पर बादलों के साथ बिजली । श्री राम सीता को बतलाते जाते हैं कि हे सीते ! दखो, यही युद्ध का स्थान है । यहां लक्ष्मण ने इन्द्रजयी मेघनाद को मारा था ।

हनूमान अङ्गद के मारे ※ रण महँ परे निशाचर भारे ।
कुंभकर्ण रावण दोउ भाई ※ इहां हत्यों सुर मुनि दुखदाई ॥

(हे सीते !) युद्ध में हनुमान् और अङ्गद के मारे हुए ये बड़े-बड़े राक्षस पड़े हैं और देवों (सज्जन पुरुषों) और मुनियों (महात्माओं) को दुःख देने वाले कुम्भकर्ण और रावण— दोनों भाइयों को मैंने यहाँ पर ही मारा था ।

+(१) ज्ञात होता है, लङ्का के विमान [पुष्पक आदि] काफी बड़े थे, तभी उसमें श्री राम के ये सभी मित्रगण और सभी प्रमुख सेनापति बैठ सके। यह विमान विद्या अति प्राचीन है । वेदों में इसका स्पष्ट वर्णन है । अंधकार युग में हमारे ब्राह्मणों में प्रमाद आने से हम अपने समस्त ज्ञान और विज्ञान को भूल बैठे । इसलिए ही हमें आज के वैज्ञानिक आविष्कार नये और पश्चिम की देन प्रतीत होते हैं । सत्य यह है कि आध्यात्मिक ज्ञान का तो प्रश्न ही नहीं उठता, भौतिक विज्ञान में भी आज के वैज्ञानिकों ने अभी तक भारत के अतीत काल की प्रगति को नहीं छुआ है ।

(२) 'श्री राम की जय' वैदिक संस्कृति की जय है, वैदिक आदर्शों की दिग्विजय का सिंहनाद है और है आर्य जाति के चरमोत्कर्ष की मधुर स्मृति !

विशेष—इस वर्णन द्वारा भी श्री राम अपने सहयोगियों के प्रति सीता और उनकी उपस्थिति में प्रकारान्तर से (जो कहीं अधिक प्रभावी हैं) कृतज्ञता प्रकाशित कर रहें हैं। अपने मित्रों, सहयोगियों और भाई लक्ष्मण के पौरुष का प्रथम वर्णन करके अन्त में अपनी उपलब्धि की चर्चा की है। यह है राम का शील !

दो०—जहं जहं करुणासिंधु बन कीन्ह वास विश्राम ।
सकल दिखायउ जानकिहिं कहेउ सबन के नाम ॥

वन में जहाँ जहाँ कृपालु श्री राम ने निवास तथा विश्राम किया था वे सभी स्थल, वे सीता जी को दिखाते और उनके नाम बतलाते जाते हैं।

विशेष—इस प्रकार मार्ग में अगस्त आदि ऋषि गण और निषादराज से मिलते हुए श्री राम अयोध्या के निकट आ पहुँचे।

दो०—समर विजय रघुनाथ के चरित जो सुनहिं सुजान।
विजय विवेक विभूति नित तिन्हहि देहि भगवान ॥

श्री राम की इस लङ्का विजय की पुण्य गाथा को जो सज्जन पुरुष (मनोयोग पूर्वक) सुनते हैं, उनको परमात्म देव विजय, विज्ञान और विभूति (विविध ऐश्वर्य) प्रदान करते हैं। ×

पर कैसे खेद का विषय है कि आज राम के मानने वाले नित्यशः ईसाई, मुसलमान और क्या क्या हो रहे हैं ? 'श्री राम की जय' का घोष तो आज भी हो रहा है, पर उसका सत्यार्थ हम भूल गये हैं। राम ने असुरों पर विजय पाने के लिए कोल-भील, वानर जाति, निषाद आदि सबका सहयोग प्राप्त कर एक अजेय शक्ति का निर्माण किया था, पर हम हैं कि सबको धक्के मार-मार कर निकालते रहे और अब भी निकाल रहे हैं। क्या 'श्री राम की जय' का सत्यार्थ हम अब भी समझेंगे। ईश्वर कृपा करें।

× व्यक्ति ही नहीं जो जाति और राष्ट्र राम-विजय के आदर्श को सामने रख अन्याय के प्रतिकार के लिए कर्तव्य-क्षेत्र में आगे बढ़ते हैं, वे निश्चय ही विजय, विवेक और विभूति प्राप्त करते हैं। पर कैसे महद् आश्चर्य और
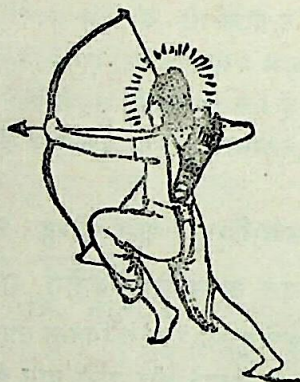
महान् खेद का विषय है कि जिस जाति के पास राम जैसा महनीय आदर्श है, जो जाति सदियों से राम विजय की कहानी सुनती रही है, वह चक्रवती सम्राट् के पद से गिरती-गिरती सदियों विदेशियों के पदाक्राँत रही और आज भीं जो तथाकथित कटी-फटी स्वतन्त्रता मिली है, उसमें भी मानसिक स्वतंत्रता और आत्मिक स्वतंत्रता का सर्वथा अभाव है। नहीं तो क्या हमारे परिवारों में आज पापा, पप्पू, मम्मी, डैडी आदि शब्द सुनने को मिलते? क्या हमारे बच्चे ईसाई कन्वेण्ट्स स्कूलों में पढ़ने जाते? और क्या पुनः इस देश के और भी खण्ड-खण्ड करने के नये-नये षडयन्त्र सफल होते?

फिर कारण क्या? एक ही कारण है इसका— हमने राम के चित्र की पूजा की है, राम के चरित्र की नहीं। जिस दिन हम भगवान राम के चरित्र का अनुशीलन करेंगे और राम के शब्दों में भुजा उठाकर प्रण करेंगे— 'निशिचर हीन करौं महि" उस दिन कवि की यह वाणी निश्चय ही सार्थ कहोगी

आखिर हम क्यों भूल जाते हैं कि एक आर्य ललना— मां सीता के लिये लङ्का का यह सम्पूर्ण काण्ड हुआ, पर आज मेरी जाति की न जाने कितनी ललनायें हमारी ही आंखों के सामने नित्य अपमानित और अपहृत होती हैं। पर हाय, हमारे रक्त में तनिक भी उबाल क्यों नहीं आता?

ईश्वर कृपा करें, श्री राम की लङ्का-विजय हमें अन्याय के प्रतिकार की शक्ति दे सके, जिससे हम पुनः विजय, विवेक और विभूति को प्राप्त हो सकें। यही है रामायण-रहस्य!

***

उत्तर काण्ड

—卐—

दो०—रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ शोचहिं नारि नर, कृस तन राम वियोग॥

[श्रीराम के लौटने की] अवधि का एक ही दिन बाकी रह गया है, अतः अयोध्या नगर निवासी बहुत अधीर हो रहे हैं। राम के वियोग में कृश-काय (दुबले हुए) स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ चिन्ता प्रकट कर रहे हैं [कि क्या बात है, श्रीराम अभी क्यों नहीं आये ?]

दो०—राम बिरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।
विप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत॥

और भरतजी तो श्रीराम के विरह-सागर में डूबने ही लगे थे कि उसी समय ब्राह्मण वेश में हनुमान आ गये, मानो [उन्हें डूबते से बचाने के लिये] नाव आगई हो।

देखत हनूमान अति हरषेउ ❋ पुलक गात लोचन जल बरसेउ।
मन महं बहुत भाँति सुख मानी ❋ बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी॥

भरत जी को [श्रीराम प्रेम में मग्न अवस्था में] देखते ही हनुमान् अत्यंत प्रसन्न हुए, उनका शरीर पुलकित हो उठा। नेत्रों से [प्रेमाश्रुओं का जल बरसने लगा। मन में बहुत प्रकार से सुख मानकर वे कानों के लिये अमृत के समान प्रिय वचन बोले—

जासु विरह शोचहु दिन राती ❋ रटहु निरन्तर गुन गन पांती।
रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता ❋ आयउ कुशल देव मुनि त्राता॥

[हे भरत जी !] आप जिनके वियोग में दिन रात चिन्तित रहते हैं और जिनके दिव्य गुणों का आप निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं, वे सज्जनों को सुख देने वाले, देव और मुनिजनों के रक्षक रघुकुल-भूषण राम सकुशल आ गये हैं।

को तुम्ह तात कहाँ ते आए ※ मोहि परम प्रिय बचन सुनाए।
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना ※ नाम मोर सुनु कृपानिधाना॥

[यह सुन भरतजी ने पूछा—] मुझे परम आनन्द दायक सन्देश सुनाने वाले हे तात ! तुम कौन हो ? कहाँ से आए हो ? [श्री हनुमान् जी ने उत्तर दिया—] मैं वानर कुल में उत्पन्न, पवन पुत्र हनुमान् हूँ।

दीनबन्धु रघुपति कर किंकर ※ सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।
कपि तव दरस सकल दुख बीते ※ मिले आजु मोहि राम पिरीते॥

और मैं दीनों के बन्धु (सहायक] श्रीराम का एक सेवक हूँ। यह सुनते ही भरत उठ बैठे और आदर सहित हनुमान् जी से गले लगाकर मिले और बोले—हे हनुमान् ! तुम्हारे दर्शनों से मेरे समस्त दुःख जाते रहे, मानो तुम्हारे रूप में मुझे प्यारे रामजी ही मिल गये हों।※

सो०—भरत चरन सिरु नाइ, तुरत गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु यान चढ़ि॥

फिर भरत जी के चरणों में सिर नवाकर वीर हनुमान् तुरन्त ही श्रीराम के पास लौट गये। उन्होंने वहाँ पहुँच सबकी कुशलता कही। तब श्रीराम हर्षित हो, विमान पर चढ़कर चले।

हरषि भरत कोसलपुर आए ※ समाचार सब गुरहिं सुनाए।
सुनत सकल जननी उठि धाईं ※ कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं॥

※ भरत और हनुमान् की इस भेंट के सम्पूर्ण प्रसङ्ग से स्पष्ट है कि उन दोनों का परस्पर यह प्रथम परिचय है। पूर्व परिचय की कहीं कोई झलक भी यहाँ नहीं है। प्रकट है कि 'लक्ष्मण शक्ति' के प्रसङ्ग में गोस्वामी जी द्वारा भरत-हनुमान् की भेंट कराना काल्पनिक और प्रक्षिप्त है।

प्रसन्न मन श्री भरत (नन्दिग्राँम से) अयोध्या नगर में आये और गुरु वशिष्ठ को सब समाचार कहे। तीनों मातायें सुनते ही दौड़ पड़ीं। भरत जी ने श्री राम की कुशलता बताकर उनको समझाया।

समाचार पुरवासिन्ह पाए * नर और नारि हरषि सब धाए।
एक एकन्ह कहं बूझहिं भाई * तुम्ह देखे कृपालु रघुराई ॥

नगर वासियों ने यह (सुखद) समाचार सुना तो सभी नर-नारी हर्षित हो दौड़ पड़े। एक दूसरे से पूछ रहे हैं—भाई ! क्या तुमने दयालु राम जी को देखा है ?

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर * कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।
सुनु कपीस अंगद लङ्केसा * पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥

इधर (विमान पर से) सूर्य वंश रूपी कमल को खिलाने वाले सूर्य सम श्री राम वानरों को मनोहर नगर दिखला रहे हैं और कहते हैं—हे सुग्रीव, हे अङ्गद ! हें विभीषण ! सुनो, यह मेरी पवित्र जन्मभूमि— अयोध्यापुरी है, यह प्रदेश बड़ा सुंदर है।

जद्यपि सब वैकुंठ बखाना * वेद पुरान विदित जग जाना।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ * यह प्रसंग जानिइ कोउ कोऊ ॥

यद्यपि वेद, पुराण और लोक में भी वैकुंठ की बड़ी प्रशंसा है। पर मुझे वह भी अयोध्यापुरी के समान प्रिय नहीं है। इस रहस्य को (मातृभूमि के दीवाने) विरले ही लोग जानते हैं।+

+(१) यहां पुनः वैकुंठ या स्वर्ग लोक जैसे किसी स्थान विशेष की सिद्धि के लिये वेद की दुहाई दी गई है, किंतु यह असत्य है। पवित्र वेदों में गृहस्थाश्रम को ही 'स्वर्ग' की संज्ञा दी गई है। आदर्श आर्य परिवार ही 'वैदिक स्वर्ग' है। (हमारा ग्रन्थ—'वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ' पढ़ें)। हम कभी नहीं भूलें कि स्वर्ग स्थान विशेष का नहीं, सुख की स्थिति विशेष का ही नाम है। 'स्वर्ग' का प्रयोग यदि मोक्षावस्था के पर्याय के रूप में हुआ है तो उसे ठीक माना जा सकता है। पर मोक्ष की भी अवस्था विशेष होती है, लोक या स्थान नहीं।

(२) मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर अर्थात सर्वाधिक सुख दायक है

दो०—आवत देखे लोग सब कृपासिन्धु भगवान ।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि विमान ।।

कृपा सागर भगवान् राम ने सब नगरवासियों को आते देखा तो नगर के समीप ही विमान को उतारने की प्रेरणा (आज्ञा) की। तब वह विमान पृथ्वी पर उतरा।

धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह ※ अनुज सहित अति पुलक तनोरुह
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया ※ हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया ।।

(दूर से ही देखकर) लक्ष्मण सहित श्री राम ने गुरु वशिष्ठ के चरण कमल पकड़ लिये। उनका रोम-रोम पुलकित हो रहा है। मुनिराज वशिष्ठ ने उनको गले से लगा लिया, कुशल पूछी। उत्तर में श्री राम ने कहा—आपकी दया ही हमारी कुशलता हैं।

परे भूमि नहिं उठत उठाये ※ बर करि प्रभु भरतहिं उर लाये ।
स्यामल गात रोम भये ठाढे ※ नव राजीव नयन जल बाढे ।।

भरत (श्री राम को अभिवादन करते हुए) पृथ्वी पर ऐसे पड़ गये कि उठाये नहीं उठते। श्री राम ने तब उनको जोर करके उठाया और हृदय से लगा लिया। उनके साँवले शरीर पर रोएं खड़े हो गए। नवीन कमल के समान नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आये।

दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ ।।

फिर श्री राम हर्षित हो शत्रुघ्न को हृदय से लगाकर मिले। पश्चात् भरत और लक्ष्मण दोनों भाई बड़े प्रेम से मिले।

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे ※ दुसह बिरह संभव दुख मेंटे ।
सीता चरण भरत सिर नावा ※ अनुज समेत परम सुख पावा ।।

फिर लक्ष्मण शत्रुघ्न से गले लगाकर मिले और इस प्रकार विरह-

इस सत्य को महर्षि वाल्मीकि ने भी "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" इन शब्दों में श्री राम के द्वारा ही प्रस्तुत किया है।

जन्य असह्य दु;ख का नाश किया। फिर भरत जी ने शत्रुघ्न सहित सीताजी के चरणों में सिर नवाया और परम सुख प्राप्त किया।

कृपासिन्धु जब मंदिर गये * पुर नर नारि सुखी सब भये।
गुरु वशिष्ठ द्विज लिये बुलाई * आजु सुघरी सुदिन समुदाई ॥

कृपा सागर श्री राम के राज भवन में पधारने पर नगर के स्त्री और पुरुष सब सुखी हुए। गुरु वशिष्ठ जी ने तब ब्राह्मणों (विद्वत्-परिषद) को बुलाया और कहा कि — [ईश कृपा से] वह सुन्दर अवसर और शुभ दिन का सुयोग आज उपस्थित है [जिसकी इतने वर्षों से हम सबको प्रतीक्षा थी]*

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन * रामचन्द्र बैठें सिंहासन।
मुनि वशिष्ठ के वचन सुहाए * सुनत सकल विप्रन्ह मन भाए ॥

[मेरा प्रस्ताव है कि] आप सब विद्वानों की यह विद्वत्-परिषद श्री राम को सिंहासन पर बैठने की अनुमति प्रदान करे। मुनि वशिष्ठ का यह प्रस्ताव सम्पूर्ण विद्वत् परिषद को प्रिय [समुचित] लगा। [अर्थात् विद्वत् परिषद ने सहर्ष अनुमति दे दी।]

विशेष—(१) स्पष्ट है कि रामायण काल में यद्यपि राजा वंशानुगत ही होते थे, किन्तु प्रजा द्वारा निर्मित विद्वत् परिषद् की स्वीकृति आवश्यक होती थी। यदि किसी दोष विशेष के कारण विद्वत् परिषद् किसी को अनुमति नहीं देती थी, तो वह राजा नहीं बन सकता था।

(२) विद्वानों [सच्चे ब्राह्मणों] के सर्वोपरि सम्मान को वैदिक

---

* सत्कार्य जब भी सुविधानुसार सम्पन्न हो वही शुभ दिन हैं वही शुभ घड़ी है। फलित ज्योतिष का माया जाल इस विषय में सर्वथा निरर्थक है। यदि फलित ज्योतिष का आधार लेकर ही यहाँ 'सुघड़ी' का अर्थ लिया जाये तो १४ वर्ष पूर्व ही गुरु वशिष्ठ ने पौराणिक मान्यता के अनुसार शुभ लग्न निश्चित की थी, तब महा भयङ्कर विघ्न कैसे उपस्थित हो गया? अतएव स्वार्थी जनों द्वारा फैलाये इस जाल से भोली जनता को बचाना विचारशीलों का नैतिक कर्तव्य है। हमारे महान् राष्ट्र के घोर पतन और पराभव के मुख्य कारणों में से यह फलित ज्योतिष का जाल भी एक है। विशेष जानकारी के लिये हमारे यहाँ से प्रकाशित 'ज्योतिष विवेक' पढ़ें।

धर्म, वैदिक संस्कृति और वैदिक राज्य में कितना महत्व दिया जाता था, यह भी इससे प्रकट है।

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा ॐ तुरत दिव्य सिंहासन मागा।
रवि सम तेज सो बरनि न जाई ॐ बैठे राम सबहि सिरु नाई॥

श्री राम को देख मुनि वशिष्ठ के मन में प्रेम भर आया, उन्होंने तुरंत ही दिव्य सिंहासन मंगवाया, जिसका तेज सूर्य के समान था। उसका सौन्दर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री राम उस पर (सीता जी सहित) सभी को शिर नवाकर विराज गये।

वेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे ॐ नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे।
प्रथम तिलक बशिष्ठ मुनि कीन्हा ॐ पुनि सब विप्रन्ह आयुस दीन्हा।

तव वेदज्ञ ब्राह्मण वेद मन्त्रों का सस्वर उच्चारण करने लगे और उधर आकाश में [विमानारूढ़ हो] देव गण एवं मुनि-मण्डल जय-जयकार करने लगे। (सबसे) पहले मुनि वशिष्ठ ने तिलक किया, फिर उन्होंने अन्य उपस्थित विद्वानों को तिलक करने की आज्ञा दी।

सुत बिलोकि हरषीं महतारी ॐ बार बार आरती उतारी।
बिप्रन्ह दान बिविधि बिधि दीन्हे ॐ जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥

पुत्र [और पुत्र वधू] को सिंहासन पर देखकर सभी मातायें (समान रूप से) हर्षित हुईं और [आशीर्वाद के रूप में] उन्होंने बार-बार आरती उतारी। विद्वानो को दक्षिणा में अनेक प्रकार की वस्तुएं दी गईं और याचकों (भिखारियों) को अयाचक (मालामाल) कर दिया।❀

राम राज बैठे त्रैलोका ॐ हरषित भये गए सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई ॐ राम प्रताप विषमता खोई॥

श्री राम के राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर तीनों लोकों में हर्ष छा गया, उनके सारे शोक जाते रहे। [राम राज्य में] कोई किसी से बैर नहीं करता।

❀भिक्षावृत्ति राम युग में नहीं थी। यह मध्यकालीन सामाजिक पाप है। कवि ने राम युग में भी यहाँ अपनी भावना का आरोपण किया है।

श्री राम के प्रताप [शासन-प्रभाव] से सबकी विषमता [सब प्रकार की भेद भावना] मिट गई ।+

+ लगता है श्री राम का वैदिक चक्रवर्ती साम्राज्य तीनों लोकों में था — (१) भू-लोक में था ही, (२) पाताल लोक—अमेरिका आदि और (३) अंतरिक्ष लोक— में भी श्री राम का शासन था। निषाद राज्य, वानर राज्य, देव राज्य और लङ्का राज्य की भाँति अनेक राज्यों में श्री राम का चक्रवर्ती शासन था, जिसका अभिप्राय है— वैदिक सांस्कृतिक साम्राज्य । श्री राम ने लङ्का आदि को जीतकर अयोध्या के राज्य में नहीं मिलाया और न किसी प्रकार का कर लिया जाता था। दस्यु सभ्यता की जगह वैदिक संस्कृति का साम्राज्य ही इसका उद्देश्य था। श्री राम का यह साँस्कृतिक साम्राज्य तीनों लोकों में था।

(२) जहाँ विषमता होती है, वहाँ वैर बुद्धि स्वभावतः होती है। आज जो सभी ओर वैर बुद्धि का ताण्डव दीख रहा है— छीनो-झपटो, लूटो-मारो, काटो के स्वर गूंज रहे हैं, उसका कारण यह विषमता ही है। इसलिए 'समता' उत्तम शासन की कसौटी है। पवित्र वेदों में—'समानो मंत्रः समिति समानी०' 'समानो प्रपा सहवोऽन्न भागः' 'अज्येष्ठा सो अकनिष्ठा सः सं भ्रातरौ वावृधुः' आदि अनेक वेद मंत्रों द्वारा समता का संदेश दिया गया है।

'वैदिक साम्यवाद' का अर्थ है सबके मनों में समान संतोष। बाहर के व्यवहार में थोड़ी बहुत विषमता शिक्षा, स्वास्थ्य, योग्यता, क्षमता आदि के आधार पर रहेगी ही, वह रह सकती है। पर आँतरिक प्रसन्नता और सँतोष सबको समान हो। यह है 'वैदिक साम्यवाद' जिसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को रखते हुए व्यक्ति में समाज [यज्ञ] के लिये सर्वस्व समर्पण की निष्ठा को 'धर्म भावना' और प्रभु भक्ति (इदं अग्नये स्वाहा—इदं न मम की वृत्ति) द्वारा जगाया जाता है। याद रहे 'इदं न मम' ही अमृत है और 'इदं मम' ही मृत्यु है।

आज के तथाकथित 'साम्यवाद' से यह सर्वथा भिन्न है, जिसमें मानव की आसुरी [हिंसक] वृत्तियों को जगाकर उसे पशु बना दिया जाता है। बाहर की समता का घोष करके भी जहां सभी को आंतरिक असंतोष है. जहाँ

**दो०—बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥**

[राम राज्म में] सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल 'स्वधर्म' में तत्पर हुए सदा वेद पथ पर चलते हैं, इसलिये सुख पाते हैं। (वेद पथ पर चलने के कारण ही) राष्ट्रवासियों को न किसी का भय है न शोक और न कोई रोग ही उनको सताता है।

विशेष—(१) वर्णाश्रम व्यवस्था ही 'वैदिक साम्यवाद' है जिसमें प्रत्येक राष्ट्रवासी को अपनी क्षमता, योग्यता और स्वभाव के साथ ही आयु के अनुसार समान रूप से अपनी उन्नति और विकास का निर्बाध अवसर प्राप्त कर समान सन्तोष लाभ करने की व्यवस्था है।

(२) धर्म का अर्थ है कर्तव्य पालन। यज्ञ का अर्थ है समाज सेवा या राष्ट्र सेवा। यज्ञोपवीत का अभिप्राय है यज्ञ के समीप होना, अर्थात् राष्ट्र सेवा के व्रत में दीक्षित होना। ब्राह्मण के रूप में राष्ट्र के प्रबलतम शत्रु के नाश का व्रत या क्षत्रिय के रूप में राष्ट्र में या राष्ट्र पर होने वाले अन्याय नाश का व्रत, या वैश्य के रूप में राष्ट्र के किसी कोने में भी दीखने वाले अभाव के नाश का व्रत, या फिर शूद्र के रूप में उक्त तीनों का स्वव्रत 'स्वधर्म' पालन में समर्थ करने के लिए शारीरिक सेवा का व्रत ही वर्ण व्यवस्था है। यही यज्ञोपवीत का रहस्य है। हर किसी को अपने गुण कर्म [क्षमता] और स्वभाव के अनुसार किसी भी व्रत को पूर्ण स्वेच्छा से 'वरण' करने [चुनने] का अवसर है। इसीलिए यह 'वर्ण व्यवस्था' है। जन्म का इसमें कोई बन्धन नहीं। यह वर्ण व्यवस्था, आजीविका के चयन की व्यवस्था भी हैं और राष्ट्र एव ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण बुद्धि के स्वधर्म पालन का श्रेष्ठतम साधन भी है। वर्ण व्यवस्था मुख्यतया गृहस्थाश्रम के लिए है।

व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, धर्म भावना एव उदात्त वृत्तियों को समष्टि के नाम पर घोट कर रख दिया गया है। 'वैदिक साम्यवाद' का आदर्श है— 'राम राज्य', जिसमें धर्म भावना के साथ ही सदैव जागता रहने वाला— 'राम-प्रताप' (क्षत्रिय राजा का दण्ड) भी कार्य करता है।

(३) आश्रम व्यवस्था जीवन की सुव्यवस्थित शत-वर्षीय योजना है। जीवन के प्रथम प्रभात से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक स्वयं के प्रति, परिवार के प्रति, राष्ट्र के प्रति और प्राणिमात्र के प्रति कर्तव्य-पालन की श्रेष्ठतम योजना है। इसमें शारीरिक, बौद्धिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति का पूर्ण अवसर है और अंत में प्रियतम प्रभु की पावन गोद में मोक्ष सुख लाभ की सम्यक् व्यवस्था है। ब्रह्मचर्य आश्रम में स्वयं के प्रति, गृहस्थाश्रम में परिवार के प्रति तथा वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम में राष्ट्र और निखिल विश्व के प्रति कर्तव्य पालन की योजना है।

(४) यों वर्ण और आश्रम व्यवस्था दोनों मिलकर 'धर्म' का समग्र रूप हैं। इसमें आश्रम और वर्ण भेद से प्रत्येक व्यक्ति का 'स्वधर्म' भिन्न-भिन्न होकर भी अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति का समान अवसर है। अतएव लक्ष्य की समानता है। यही 'नानात्व में एकत्व' दर्शन वैदिक संस्कृति की विशेषता है।

(५) यों यह वर्णाश्रम व्यवस्था या वर्णाश्रम धर्म ही वैदिक धर्म है। यही वेद पथ है। यह देश, काल की सीमाओं से अप्रभावित—सार्वभौम और सार्वकालिक धर्म है। ईश्वरार्पित बुद्धि से इस धर्म या कर्तव्य का पालन ही वैदिक ईश्वर भक्ति है। जप, तप, यज्ञ आदि इसी विवेक को जागरित रखने अथवा कर्तव्य भावना को दृढ़ करने के लिए हैं।

(६) इस वर्णाश्रम व्यवस्था में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों का सुंदर समन्वय है। यहाँ अर्थ को [अनर्थ को नहीं] और काम (उसके धर्म पूर्वक उपभोग) को ही मोक्ष प्राप्ति का साधन माना है। लोक और परलोक दोनों का सम्यक् समन्वय है, इसमें।

(७) इस वेद पथ या वर्णाश्रम धर्म के पालन का परिणाम है—सुख [सम्पूर्ण समाज के हर घटक का समान सुख] जिसकी व्याख्या है—किसी को किसी से द्वेष या वैर नहीं, किसी को किसी का भय नहीं, कोई शोक नहीं, कोई रोग नहीं। स्वस्थ शरीर, मन और आत्मा। जिस राष्ट्र को ब्राह्मण कर्तव्य बुद्धि से अज्ञान रूप महा शत्रु के भय से, क्षत्रिय अन्याय के भय से और वैश्य अभाव के भय से बचाने में संलग्न हो और इन सबका

आधारभूत शूद्र कर्तव्य बुद्धि से सबको सहयोग देता हो, वहाँ भय कैसा ? और आश्रम व्यवस्था के परिपालन से रोग या शोक कैसा ?

प्रभो ! क्या मेरे महान राष्ट्र में फिर कभी 'राम राज्य' आयेगा । और क्या विश्व मानव फिर वेद पथ (वर्णाश्रम धर्म) का अनुयायी बन प्रभु का अमृत पुत्र कहला सकेगा ?

दैहिक दैविक भौतिक तापा ※ राम राज नहिं काहुहिं व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती ※ चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती

[इस प्रकार के वैदिक] राम राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं व्यापते । सभी मानव परस्पर प्रेम करते हैं और पवित्र वेदों में कही हुई नीति [मर्यादा] में तत्पर रहकर सब अपने अपने धर्म (वर्ण और आश्रम व्यवस्था के अनुसार अपने अपने कर्तव्य) का पालन करते हैं ।

विशेष—यहाँ वेद पथ और वेद नीति को ही राम राज्य का आदर्श बताया है । किसी अन्य पाखण्ड ग्रंथ को मान्यता नहीं दी गई है ।

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ※ सब सुन्दर सब बिरुज शरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना ※ नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना

[राम राज्य में वर्णाश्रम धर्म का पालन करने से] न तो छोटी आयु में मृत्यु होती है और न किसी को कोई अन्य पीड़ा होती है । सभी के शरीर सुन्दर और नीरोग हैं । (वैदिक धर्म के पालन के कारण राम राज्य में) न कोई दरिद्र है, न दीन-दुखी और न मूर्ख, और न कोई शुभ लक्षणों से हीन ही है ।+

+ वर्णाश्रम धर्म का पालन करने से बाल-विवाह, वृद्ध विवाह और अनमेल विवाह जैसी अप्राकृतिक स्थितियाँ नहीं हैं । अतः इनसे होने वाली व्याधियाँ भी नहीं हैं । ऐसी स्थिति में कुछ भाई जो राम को विवाह के समय १८ वर्ष और सीता जी को ६ वर्ष या ८ वर्ष की बताते हैं, सर्वथा झूंठ और निस्सार है । मनुष्य अपने पाप की ओट के लिए किस प्रकार से अपने महान् देव-देवियों [पूर्वजों] के पवित्र जीवन को भी दूषित और कलङ्कित करते हैं इसका एक नमूना है ।

विशेष—(१) वैदिक धर्म की शिक्षा है— "अदीनाः स्याम शरदः शतम्" वैदिक भक्त विनय करता है—'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' 'वय भगवन्तः स्याम,' फिर भला मेरे राम के वैदिक राज्य में कोई दीन-दरिद्र और दुखी क्यों होने लगा? यह संसार मिथ्या है, कर्तव्य कर्म व्यर्थ, जो राम करेगा सो होगा, शरीर बंधन का कारण है, शरीर को सुखा डालो— ये सब अवैदिक विचार हैं। राम राज्य में इनसे उत्पन्न दीनता और दरिद्रता के लिए कोई स्थान नहीं।

(२) राम का वैदिक राज्य ठीक वैसा ही था, जैसा कि महाराज अश्वपति का। कितने आत्म विश्वास के साथ महाराज अश्वपति (वैदिक राष्ट्र के राष्ट्रपति) कहते हैं—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यपः।
ना नाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरणी कुतः॥

अर्थात मेरे सम्पूर्ण जनपद [राष्ट्र] में न कोई चोर है, न कंजूस और न कोई मादक वस्तु [बीड़ी, सिगरेट, भांग, तम्बाकू, शराब, अफीम और गाँजा आदि] का सेवन करने वाला। एक भी परिवार ऐसा नहीं हैं जहां अग्निहोत्र न होता हो। एक भी अविद्वान्=मूर्ख या गो० तुलसीदास के शब्दों में अबुध नहीं। एक भी व्यभिचारी नहीं फिर व्यभिचारिणी कहाँ? यह था वैदिक शासन या राम राज्य का आधार।

सब निर्दम्भ धर्म रत पुनी ॥ नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुणज्ञ पण्डित सब ज्ञानी ॥ सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी॥

[अश्वपति की उसी घोषणा के क्रम में] राम के शासन में सभी दम्भ रहित हैं [कोई ढोंगी नहीं है]। सभी धर्म-परायण और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पन्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ [पराये उपकार को मानने वाले] और कपट पूर्ण चतुराई या धूर्तता से रहित हैं।+

+ राम के अनुयायी क्या दम्भ= पाखण्ड और धूर्तता के जनक अंधविश्वास को छोड़कर गुणी, ज्ञानी और पुण्यात्मा बनने का सत्सङ्कल्प

सब उदार सब पर उपकारी ※ विप्र चरन सेवक नर नारी।
एक नारि ब्रत रत सब झारी ※ ते मन बच क्रम पति हितकारी

[अश्वपति की उसी घोषणा के क्रम में] राम के शासन में सभी नर-नारी उदार हैं [कोई कंजूस नहीं है]। सभी परोपकारी हैं और सभी ब्राह्मणों [सदाचारी विद्वज्जनों] के चरण सेवक हैं। सभी पुरुष एक पत्नी-ब्रती हैं। इसी प्रकार सभी स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करने वाली हैं।

दो०—दण्ड जतिन्ह कर भेद जहं नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ।।

श्री राम के आदर्श वैदिक शासन में 'दण्ड' शब्द केवल संन्यासियों के हाथ के दण्ड के लिए प्रयोग में आता है। 'भेद' शब्द केवल नृत्य समाज में ताल स्वर के भेद के लिये प्रयुक्त होता है। और 'जीतो' शब्द केवअ मन के जीतने के लिये ही सुनाई देता है। (अर्थात् वैदिक राजनीति मैं दण्ड, भेद, साम और दाम आदि— चार उपाय शत्रु को जीतने तथा चोर डाकुओं आदि को दमन करने क लिये किये जाते हैं। पर राम के शासन में न कोई शत्रु है, न अपराधी। अत: 'भेद' 'दंड' 'जीतो' आदि शब्दों का प्रयोग उक्त अर्थों में ही होता है।)

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन ※ रहहिं एक सङ्ग गज पंचानन।
कूजहिं खग मृग नाना वृन्दा ※ अभय चरहिं बन करहिं अनँदा ।।

करेंगे ?

दम्भ का अर्थ है— हम जैसे नहीं, वैसे अपने को प्रकट करें। दुर्भाग्य से इस दम्भ का सर्वाधिक शिकार हुआ है मेरा पण्डित समाज या ब्राह्मण वर्ग। इनके पास जब विद्या बल और तपोबल नहीं रहा तो इन्होंने दम्भ का सहारा लिया। इससे कल्पित मान्यताओं को जन्म मिला। पवित्र वेद पथ छूट गया और यही मेरे महान् भारत और विश्व-मानवता के सर्वनाश का कारण बना।

वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह (वैर को भूलकर) एक साथ रहते हैं। पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं। भांति भाँति के पशु समूह वनों में निर्भय विचरते और आनन्द करते हैं।

लता बिटप मागें मधु चवहीं ※ मन भावतो धेनु पय स्रवहीं।
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी ※ त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥

वेलें और वृक्ष इच्छानुसार मधु (मकरन्द एवं औषधि आदि) देते है, गौयें मन चाहा दूध देती हैं। धरती सदा अन्न से भरी रहती है। त्रेता में ही सतयुग की करनी (स्थिति) हो गई है। +

दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज।
मांगे वारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज॥

श्री राम के राज्य में चन्द्रमा अपनी [अमृतमयी] किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देता है। सूर्य उतना ही तपते हैं जितने की कि आवश्यकता है। मेध माँगने से ही (अर्थात जब जहां जितना चाहिए उतना ही) जल देते हैं।

विशेष—राम राज्य का यह सम्पूर्ण वर्णन पवित्र वेदों में वर्णित आदर्श वैदिक राष्ट्र के चित्र क सर्वथा अनुरूप है।

आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायताम्।
आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनुर्वोढा नड्वानाशुः सप्तिपुरन्धिर्योषा जिष्णूरथेष्ठा।
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नः औषधयः।
पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

+ यहां पुनः मध्यकालीन पौराणिक कल्पना का कवि द्वारा अध्यारोप हुआ है। सच में चारों युग तो काल गणना की सुविधा के लिए काल विभाग मात्र हैं। इनके साथ सत्कर्म एवं दुष्कर्म अथवा अच्छी और बुरी स्थिति का कोई सम्बन्ध नहीं है।

(२) यह राम राज्य की प्राकृत दशा का वर्णन है। प्राकृत दशा तब ठीक रहती है, जब जनता धर्मनिष्ठ होती है।

पवित्र यजुर्वेद के २२वें अध्याय के २२वें मन्त्र में वैदिक राष्ट्र का यह श्रेष्ठतम चित्र क्या केवल कल्पना की वस्तु हैं ? नहीं, हमारा इतिहास बताता है कि श्री राम ने इस वैदिक आदर्श को अपने राज्य में मूर्त रूप दिया था। क्या वैदिक धर्म की उदात्त शिक्षाओं को किसी एक व्यक्ति ने पूर्णतया अपने व्यवहार में, अपने जीवन में उतारा है तो इसका उत्तर है— श्री राम ने। वैदिक धर्म वैदिक संस्कृति, वैदिक शिष्टाचार, वैदिक आचार-व्यवहार, वैदिक राजनीति, वैदिक साम्यवाद और वैदिक राष्ट्र को केवल कल्पना में नहीं व्यवहार में, मूर्त रूप मे यदि देखना हो तो हमें, 'राम चरित' को देखना होगा, यही राम चरित की महत्ता है।

आज राम चरित का पाठ होता है, अखन्ड कीर्तन होते हैं, राम के स्वांग बनाकर निकाले जाते हैं, रामायण की सवारियाँ निकलती हैं— पर आवश्यकता इस बात की है कि जिस प्रकार श्री राम ने वैदिक धर्म को अपने जीवन में उतारा, वैसे ही हम श्री राम के पुनीत चरित्र को अपने जीवन में उतारें, तभी हम सच्चे वैदिक धर्मी होंगे। और तभी सारा संसार फिर एक बार मेरे महान भारत के चरणों में नत मस्तक हो मेरे राम की जय-जयकार करेगा।

द्रष्टव्य—उत्तर काण्ड में वर्णित अन्य सभी प्रसङ्ग असम्बद्ध और असत्य हैं। शम्बूक वध आदि श्री राम के पावन वैदिक आदर्शों के सर्वथा विरुद्ध है। सीता वनवास एवं लव-कुश काण्ड गीता प्रेस गोरखपुर आदि कई प्रेसों से प्रकाशित रामायणों में भी प्रक्षिप्त समझकर छोड़ दिया गया है। हमने इसी कारण इन अनैतिहासिक असत्य वृत्तों को छोड़ दिया है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

[ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः]

ओ३म्

राम चरित मानस

सत्य की कसौटी पर
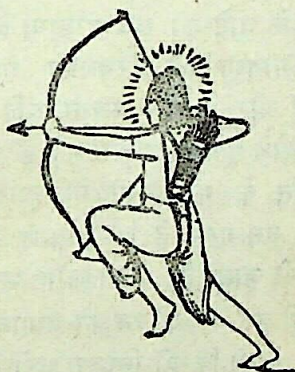
प्रणेता :—

ईश्वरीप्रसाद 'प्रेम'

एम० ए० साहित्य रत्न, सि० शास्त्री

प्रकाशक :

सत्य प्रकाशन

वृन्दावन मार्ग, मथुरा।

प्रथमबार] ❋ [मूल्य १)२५

प्रस्तावना

संस्कृत और हिन्दी के अनेकों कवियोंने राम-चरित को अपनी भाव-नाओं को प्रस्फुटित करने का माध्यम बनाया है। इन त्रिविध रामायणों में विषयवस्तु प्रायः एक होते हुए भी घटना-क्रम में पर्याप्त भिन्नता है। प्रायः हर कवि ने रामचरित के इस विशद क्षेत्र में कल्पना के पख लगाकर अपनी प्रतिभा के घोड़े को खूब दौड़ाया है। कल्पना की इस उड़ान में क्रमशः रामायण की प्रेरणाप्रद ऐतिहासिक सचाइयाँ बहुत पीछे छुटती गई हैं और उनका स्थान रूढ़ि और पाखण्ड पूर्ण मिथ्या कथानकों एवं थोथे पूजा-पाठ लेते गये हैं। आज यह स्थिति है, कि रामायण आर्य जाति के गौरवपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ से गपोडों-युक्त कल्पित धर्मग्रन्थ बन गया है। रामायण की आरती उतारी जाती है, सवारी निकाली जाती है, भक्त लोग झूम-झूम कर गाते हैं 'आरती श्री रामायण जी की' पर जीवन को प्राणवान् बनाने वाली प्रेरणा कुण्ठित हो गई है, मानो किन्हीं निष्ठुर करों ने उसका गला घोंट दिया हो। हम यहाँ अति संक्षेप में केवल सन्त तुलसीकृत 'रामचरित मानस' के सम्बन्ध में विचार करने लगे हैं।

हिन्दी साहित्य का एक विनम्र विद्यार्थी रहने के कारण गोस्वामी तुलसीदास के काव्योदधि के तट पर पर खड़े होकर उसकी एक हल्की सी झांकी लेने का सौभाग्य हमें प्राप्त है। हिन्दी साहित्य में सूर और तुलसी की तुलना में प्रायः दो मत प्रसिद्ध हैं। कुछ के अनुसार—'सूर-सूर, तुलसी-शशि' तो दूसरों के अनुसार सूर-शशि, तुलसी रवि' हैं। हम दूसरी कोटि के विद्यार्थियों में हैं। काव्य दृष्टि से हम तुलसी को हिन्दी साहित्याकाश का सूर्य मानते हैं। निश्चय ही रस और अलंकारों की जो छटा तुलसी के काव्य में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सत्य ही कहा है —कविता करके तुलसी न लसे,

कविता लसी, पा तुलसी की कला।

ऐसी हमारी गहन निष्ठा है, तुलसी के सम्पूर्ण काव्य वाङ्मय में। फिर रामचरित मानस तो तुलसी की रचनाओं में बेजोड़ है। सन्त तुलसीदास की चौपाइयों के सौरस्य को सहृदय जन हो जान सकते हैं। तुलसी की काव्य-प्रतिभा और माधुरी का निखार रामचरित मानस के अनेकों प्रसंगों में देखते ही बनता है। तुलसी के काव्य-कौशल पर फिदा उसका एक अनन्य भक्त उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति को, जब कसौटी पर कसने बैठा है तो क्या यह दुस्साहस मात्र नहीं है? पर हमारे सामने नीति शास्त्र का यह वचन है — 'शत्रोरपि गुणा वाच्या, दोषा वाच्या गुरोरपि' अर्थात् शत्रुओं के भी गुणों की (जो जन-कल्याण में सहायक हों) दाद देनी चाहिये; और अपने गुरुजनों श्रद्धेयजनों के भी दोषों की (जो लोक-मंगल में बाधक हों) समीक्षा करनी चाहिये। एक मात्र इसी भाव से अत्यन्त विनम्रता पूर्वक हो इस दुरूह और कठोर कर्त्तव्य में प्रवृत्त होते हैं।

वेद की कसौटी

हमें कहना यह है कि काव्य की दृष्टि से जो ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में अपनी शानी नहीं रखता वही जब धर्म ग्रन्थ का रूप लेकर हमारे सामने आता है तो हमें लगता है कि धार्मिक और सैद्धान्तिक दृष्टि से रामचरित मानस उतना ही अधिक लचर, आभाहीन और निरर्थक है। यही नहीं काव्य-दृष्टि से जो इतना उत्कृष्ट है, धर्मग्रन्थ के रूप में वह उतना ही निकृष्टतर और कूड़े करकट एवं सड़न से भरा हुआ है। इस सड़न से महान् आर्य जाति का माथा ही सड़ गया है। जब हम ऐसा कहते हैं तो उसके पीछे कुछ ठोस आधार हैं।

बाजार में आजकल रोल्ड गोल्ड, नकली सोना काफी मिलता है। कभी २ असली सोने की चमक भी उसके मुकाबिले में फीकी लगती है। पर हम जानते हैं कि कसौटी के पास ले जाते ही वह अपना खोट बोल देता है। धार्मिक दृष्टि से "प्रमाणम् परमं श्रुतिः' इस मनु-वाक्य के अनुसार एक मात्र वेद ही सम्पूर्ण आर्य जाति के निकट परम

प्रमाण है। धर्म को प्रभुप्रदत्त कसौटी वेद के निकट लाते ही काव्य-सुषुमा से गौरवान्वित इस ग्रन्थ की खोट बोलने लगती है। इस ग्रन्थ को 'निगमागम-सम्मत' कहकर भी गोस्वामी जी के हाथों जब हम सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों की निर्मम हत्या देखते हैं, जब हम देखते हैं कि युग पुरुष, युगद्रष्टा, युगनायक महामानव भगवान् राम की अवतारवाद, एवं अलंकारवाद के पाटों के बीच कैसी दुर्गत 'मानस' में हुई है, तो हमारा मन रो उठता है।

साहित्य समाज का दर्पण है

पर क्या इस सबके लिये हम सन्त तुलसी को दोष दें, प्रश्न हैं। हमारा निवेदन है कि अधिकांश में यह सब दोष पुराणकारों के माया जाल से प्रभावित तत्कालीन जन-समाज और तद् प्रेरित रूढ़ और मूढ़ धारणाओं का है। यद्यपि एक सच्चा साहित्यकार युग निर्माता भी होता है तथापि यह उक्ति भी बड़े अंशों में सत्य है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है'। 'मानस' की रचना अब से लगभग ४०० वर्षों पूर्व यवन राज्य काल में हुई। गुलामी के जुए के नीचे दबे, किसी प्रकार घुट-घुट कर सांस ले रहे जन-समाज की धार्मिक धारणायें और सामाजिक आकांक्षाये जिस निजले दर्जे को हो सकती हैं, वही सब चित्रण हमें 'मानस' में मिलता है। युग-प्रभाव तथा युग की समस्यायों से कवि या साहित्यकार अप्रभावित नहीं रह पाता। राम कथा पर ही लिखे गये ग्रन्थों का यदि पर्यालोचन किया जाय तो यह युगप्रभाव हर ग्रन्थ में स्पष्ट दीख पड़ेगा। उदाहरण के लिये 'मानस' और 'साकेत'(मैथिलीशरण गुप्त कृत) के दृष्टि-अन्तर पर थोड़ा विचार कीजिये। तुलसी नारी को अष्ट अवगुण युक्त, 'सहज अपावन नारि' 'अधम ते अधम अधम अति नारी' 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी' आदि शब्दों में याद करते हैं जब कि 'साकेत' में 'नारी जागरण' एवं 'नारी महिमा' का शङ्खनाद स्पष्ट सुनाई देता है। यह परिवर्तन युग प्रभाव का ही द्योतक है।

'मानस' के हीनता पूर्ण दृष्टिकोण के लिये न तो हम अंशांश में तुलसीदास जी को ही दोषी ठहरा सकते हैं और न 'साकेत' के गौरव-मय दृष्टिकोण का सम्पूर्ण श्रेय गुप्त जी को दिया जा सकता है।

हमारा निवेदन है कि गोस्वामीजी को यदि ईमानदारीसे इसका परिज्ञान होता कि अवतारवाद एवं चमत्कारवाद अवैदिक (वेद विरुद्ध) और अनेकों अनर्थों की जड़ है, तो हमारा विश्वास है कि—

> कलि-मल ग्रसेउ धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रन्थ।
> दम्भिन निज मत कल्पि कर प्रकट कीन्ह बहु पन्थ॥
> श्रुति सम्मत हरिभक्त पथ, संयुत ज्ञान विवेक।
> तेन चलहिं नर मोह वश, कल्पहिं पन्थ अनेक॥
> चलत कुपन्थ वेद-मग छांड़े, कपट कलेवर कलिमल भाँड़े॥
> कल्प-कल्प भरि इक इक नरका, परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका॥

—इन शब्दों में वेद का गौरव-गान और वेद विरुद्ध कल्पित बहुग्रन्थों को 'कुपन्थ' कह उनका घोर खण्डन करने वाले तुलसी अपनी कलम को स्वयं ही वैदिक सत्य सिद्धान्तों का खून करने के लिये कदापि नहीं उठाते। तुलसीदासजी एक ओर वेदों की, भरपेट स्तुति करते हैं दूसरी ओर वे सैंकड़ों बातें वेद-विरुद्ध, प्रत्यक्ष-विरुद्ध, सृष्टि-प्रक्रम-विरुद्ध, शास्त्र-विरुद्ध, असंगत और ऊट पटांग लिखते हैं। प्रश्न है, ऐसा क्यों? क्या उन्होंने ऐसा करने में आत्म-प्रवञ्चना की? हमारा कहना है नहीं। तुलसी एक सन्त थे, उनके निकट कोई निजी स्वार्थ भी नहीं था। अतः वे आत्म-प्रवञ्चना का पाप कर सकते थे, कम से कम हमारा मन तो यह मानने के लिये तैयार नहीं होता। तब फिर वेद की प्रशंसा करके भी तुलसी के 'मानस' में वेद विरुद्ध सैंकड़ों बातें क्यों भरी पड़ी हैं? हमारा निवेदन है कि वेद की प्रशंसा और अवैदिक मान्यतायें दोनों ही चीजें तुलसी को पुराणकारों से विरासत में मिलीं। तुलसी यदि वेद की प्रशंसा करते हैं तो उसका यह अर्थ नहीं कि वे वेद के पण्डित थे या उन्होंने वेदों का विधिवत्

अध्ययन किया था। हो सकता है कि उन्होने अपनी सम्पूर्ण आयु में वेद के दर्शन तक भी नहीं किये हों। पौराणिक मान्यता के अनुसार तो वेदों को शङ्खासुर ले गया था। तब फिर तुलसी द्वारा वेद की प्रशंसा वेदों के अध्ययन या वैदिक सत्य ज्ञान के आधार पर नहीं थी, वेदों का नाम मात्र लेकर मनमाना पापप्रपञ्च फैलाने वाले पुराणों के आधार पर थी। पुराणों की समीक्षा का अवसर यहाँ नहीं है, किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ में ही यह विवेचन सम्भव है। यहाँ तो इतना ही वक्तव्य है कि परम पवित्र वेद का नाम लेकर पुराणों में घोरतम अनर्थों का समर्थन है। पुराण कथाओं में जहाँ कहीं २ कुछ सद्-शिक्षायें हैं वहां देवी-देवताओं के नाम पर ऐसे २ पाप पूर्ण, लज्जा को भी लजाने वाले महा घिनौने चित्र पुराणों में हैं जिन्हें देखकर आत्मा काँप उठता है और तुर्रा यह कि ये सब शास्त्र और धर्म के नाम पर है। पुराणों की कीचड़ में बुरी तरह लिप्त समाज की धारणायें और वातावरण तुलसी को प्राप्त थे। तुलसी ने उसी का चित्रण अपनी कवि-सुलभ प्रतिभा का पुट देकर किया है।

अवतारवाद की काली छाया !

यों हम हृदय से मानते हैं कि तुलसी अपनी आत्मा के निकट ईमानदार थे। और यह भी सत्य है कि मत-मतान्तरों के घटाटोप से ढक जाने एवं पौराणिक पापाचार की अँधियारी छा जाने के कारण उन तक यथार्थ वैदिक भास्कर का प्रकाश पहुँच ही नहीं सका था। किन्तु अज्ञानता भी तो महापाप का ही दूसरा नाम है। यही कारण है कि बहुदेवतावाद, चमत्कारवाद, मूर्ति पूजा, गुरुडम, फलित ज्योतिष, अन्धविश्वास, जन्मगत जात पाँत, नारीनिन्दा, सामाजिक विषमता तथा अन्य अनेक २ पौराणिक पाखण्डों की जड़ों को 'राम चरित मानस' से पानी लगा है। और इस समस्त दुराचार का मूल है—'अवतारवाद'। एक असत्य (अवतारवाद) को सिद्ध करने के लिये गोस्वामीजी को सैकड़ों असत्यों (अवैदिक मान्यताओं) का सहारा लेना पड़ा है। एक सचाई—राम हमारे महान् पूर्वज हैं,

महामानव हैं इस सचाई—को छिपाने के लिये उन्हें सैकड़ों ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा या निर्मम हत्या का दोषभागी बनना पड़ा है।

यह अवतारवाद की काली छाया ही है जिसने हमारे महान् पूर्वज युग निर्माता राष्ट्र पुरुष राम के महान् गौरव और आदर्शों को ग्रसकर विकृत कर दिया है, जिसने रामायण के विविध पात्रों को अति मानवी बनाकर निस्तेज और मानवता-शून्य कर दिया है, जिसने हमारे गौरवपूर्ण प्राचीन इतिहास को मिटाकर राम और रामायण के अन्य महत्वपूर्ण पात्रों को सिर्फ काल्पनिक अभिनयकर्त्ता (बहुरूपिया) के रूप में प्रस्तुत किया है। अवतारवाद का यह दुरित ही है, जिससे आज रामायणको इतिहास ग्रन्थ न मानकर काल्पनिक काव्य कहा जारहा है या रामायण की सत्य ऐतिहासिक घटनाओं के चारों ओर पहले चमत्कारों की दीवालें खड़ी करके अब इस विज्ञान युग में (उन चमत्कारों की सत्यता प्रमाणित करने का कोई आधार न पाकर) उनको अपूर्ण और असंगत आध्यात्मिक व्याख्यायें प्रस्तुत की जा रही हैं। अवतारवाद के इस दुराग्रह ने राम चरित मानस को इतिहास ग्रन्थ तो दूर शुद्ध काव्य ग्रन्थ भी नहीं रहने दिया है। महाकाव्य के स्तर से गिरकर वह एक पुराण काव्य मात्र बनकर रह गया है। यही कारण है अन्य राम कथाओं की तुलना में 'मानस' के नायक राम तथा अन्य पात्रों में पूर्वापर विरोधी कथन, सिद्धान्त भ्रष्टता, आत्म-हीनता, दैन्यता, अमानवीयता, अविवेक युक्त भक्तिवाद तथा न्यायप्रियता, आदर्शवादिता और मर्यादावत्ता का अभाव आदि अनेक दोष अनजाने ही प्रवेश कर गये हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'राम चरित मानस' में जहाँ कहीं भी किसी भी रूप में जो भी दोष हैं उन सबका मूल है अवतारवाद। मानस में अनेक स्थलों पर जो उत्तम शिक्षायें और वैदिक सत्य हैं वे सभी तथा मानस की काव्यगत अप्रतिम विशेषतायें और भी अधिक चमक उठतीं यदि वे अवतारवाद के काले २ बादलों से आवृत न होतीं।

आगे के पृष्ठों में हमने राम कथा धारा में 'मानस' के स्थान,

'मानस' में महाकाव्य के गुणों के अभाव और अवतारवाद विषयक् मानसकार के दुराग्रह की चर्चा करते हुए अवतारवाद की विनाशकारी मान्यता की कुछ विस्तृत चर्चा की है, अवतारवाद के दुष्फल रूप मानस की अन्य विकृतियों, जिनकी ओर हमने ऊपर संकेत किया है, पर भी संक्षेप से विचार करने के साथ ही 'मानस' में पूर्वापर विरोध, मानसकार और नारी, मानस में सैद्धान्तिक भ्रष्टता तथा रामायण सम्बन्धी कतिपय प्रश्नों के उत्तर 'रामायण प्रश्नोत्तरी' शीर्षक के अन्तर्गत देने का प्रयास किया है। हमारा विश्वास है, मां मानवता की सेवा और राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से किया गया हमारा यह विनम्र प्रयास सभी राम और रामायण प्रेमियों को प्रिय एवं रुचिकर होगा। और वे असत्य को छोड़ सत्य वेद पथ को ग्रहण कर इस अनमोल मानव-जीवन को धन्य एवं सार्थक करेंगे।

हाँ, मानवता के शत्रु, भयङ्कर राष्ट्र द्रोही, आर्य जाति के छिपे हुए महा शत्रु जिन्होंने धर्म को यवसाय बना कर धर्म को भी बदनाम कर दिया है, उन्हें हमारे प्रयास से अवश्य अपनी स्वार्थ हानि प्रतीत हो सकती है। उन्हें हम संतोष देने में असमर्थ हैं। हमारा विश्वास है कि यदि ऐसे स्वार्थी तत्वों ने कुछ विरोध भी किया तो भी आर्य (हिन्दू) जनता अब इतनी जाग्रत है कि वह अपने सच्चे मित्रा और मित्र वेष में छिपे हुए घोर शत्रुओं को पहचानने की क्षमता रखती है। विश्वास है कि राम-कृष्ण की सन्तानों का रक्त चूसने वाले इन धर्मध्वजियों से अपना पिण्ड छुड़ाकर आर्य (हिन्दू) जनता अब सत्य सनातन वैदिक सद्धर्म की शरण लेगी, जिससे कम्यूनिज्म के बढ़ते हुए पाँव मेरे राम द्वारा आचरित परम पवित्र वैदिक सद्धर्म, और मेरे महान् राम द्वारा संरक्षित आर्य संस्कृति को धूलिसात् न कर सकें। इन्हीं भावों के साथ अपने राम के प्रति हमारे ये श्रद्धा-पुष्प कोटि-कोटि राम भक्तों के चरणों में सादर समर्पित हैं।

अन्त में परमेश प्रभु के धन्यवाद के साथ उन सभी विद्वानों, कवियों और साहित्यकारों के हम आभारी हैं जिनके ग्रन्थों से हमने इस ग्रन्थ के प्रणयन में सहायता ली है। शमित्योम् !

मानवता का विनम्र सेवक—ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम'

राम कथा-धारा

राम कथा भारतवर्ष के आदि-काव्य की कथा है। महर्षि वाल्मीक से लेकर आज तक भारतीय साहित्य में इस कथा को जो सम्मान मिला है, वह सम्मान और किसी भी कथा को नहीं मिल सका। इतिहास में रामायण का सर्वोच्च और सर्व प्रथम स्थान है। प्रामाणिक इतिहास में केवल रामायण और महाभारत की गणना है, जिनमें भी रामायण प्रथम है। +

महर्षि वाल्मीकि ने राम को जो अपना चरित्र-नायक बनाया था, उसका एकमात्र कारण यही था कि महान् पुरुषों में जिन गुणों का विशेष आदर है, वे सभी देव-दुर्लभ गुण राम में और केवल राम में ही पाए जाते हैं। राम से पहले और उनके समय में भी कितने ही महापराक्रमी राजा और चक्रवर्ती सम्राट्, सत्यवादी और धर्मात्मा, दानी और त्यागी महापुरुष थे और हो चुके थे। नहुष और ययाति, भरत और रघु जैसे त्रैलोक्यविजयी सम्राट्, कीर्तवीर्य अर्जुन और परशुराम जैसे असाधारण योद्धा, राजा हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी, दैत्य-राज बलि और दधीच जैसे दानवीर और त्यागी उस समय तक कीर्ति प्राप्त कर चुके थे, फिर भी शक्ति, शील, सौन्दर्य और पवित्रता में राम इन सभी महापुरुषों से कहीं अधिक महान् थे। उनके अनेक गुणों का वर्णन करके देवर्षि नारद ने अन्त में बतलाया था कि वे राम

+ मूल रामायण में एक से लेकर ९० श्लोकों तक तो भूतकाल लिखा गया है जिससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि जब रामचन्द्र जी ने रावण को मार, विभीषण को लंका का राज्य दे नन्दिग्राम में आ, जटा उतार, अयोध्या का राज्य पुनः प्राप्त कर लिया उसके अनन्तर रामायण की रचना हुई और तदन्तर जो कृत्य किये उनका भविष्यत् काल में 'ऐसा करेंगे', इस प्रकार वर्णन है, जिससे उन कृत्यों के पूर्व रामायण की रचना की गयी ऐसा सिद्ध होता है। अतः वा० रामायण की रचना श्री राम के जीवनकाल में हुई।

गाम्भीर्य में समुद्र के समान, धैर्य में गिरिराज हिमालय के तुल्य, बल-वीर्य (तेजस्विता) में विष्णु (सूर्य) के सदृश, चन्द्र के समान प्रियदर्शन, कालानल तुल्य क्रोधी और पृथ्वी के समान क्षमावान् हैं। ※

वाल्मीक के राम सम्पूर्णतः मानव हैं, वे राष्ट्र पुरुष हैं, क्षात्र धर्म के पुण्य प्रतीक हैं। युगपुरुष-युगनायक और युगनिर्माता हैं, और हैं आदर्श महामानव। अवतारवाद से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। शत-शत शताब्दियों के पश्चात् कविकुल-गुरु कालीदास ने रघुवंश में उन्हीं राम को विष्णु भगवान् (सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त और पालन कर्त्ता पर-मेश्वर) का अवतार बनाकर अपनी कवि-कल्पना ! का कौशल प्रकट किया। परन्तु कालिदास के विष्णु-अवतारी राम का चरित्र भी पूर्णतः मानव-चरित्र है, उसमें अतिमानवता का लेश भी नहीं है।

कालिदास से भी पहले महाभारत और बौद्ध-साहित्य को जातक कथाओं + में राम-कथा को स्थान मिल चुका था। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से राम-कथा का सबसे उत्कृष्ट स्वरूप भवभूति-विरचित दो नाटकों — महावीर चरित्र और उत्तरराम चरित — में मिलता है। 'महावीर चरित' के राम वास्तव में महावीर हैं। इस नाटक के पंचम अंक में शबरी के मुख से बलि की अलौकिक वीरता की प्रशंसा सुन-कर राम ने कहा था कि 'संसार में एक से एक बढ़कर हुआ ही करते हैं, यह तो संसार की लीला है।' ऐसे लीलामय संसार में भी जिससे बढ़कर और कोई नहीं, ऐसे वे राम थे। अपनी अद्भुत शक्ति और अलौकिक वीरत्व से उन्होंने दशमुख-विजय के गर्व से फूले हुए हैहयराज सहस्राजुंन का बध करने वाले भृगुनन्दन परशुराम का मदरोग दूर किया, त्रिभवन-विजयी रावण को काँख में दबाकर (अपने आधीन करके आश्रय में लेकर) सप्त सिन्धु में संध्या कम करने वाले अद्वितीय

※—समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवान् इव।
विष्णुना सदृशो वीर्ये, सोमवत् प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे, क्षमया पृथिवी समः॥

+ महाभारते के वनपर्व में। जातक कथा-माला के दशरथ जातक में।

वीर बालि को सम्मुख समर में मारकर और राक्षसराज रावण का बध कर देवताओं को अभय दिया। शील और सौन्दर्य में उनका कोई समकक्ष न था। ऐसे शक्ति, शील और सौन्दर्य के चरम आदश राम 'महावीर चरित' के नायक हैं।

'उत्तर रामचरित' में तो वे और भी ऊंचे उठकर 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' के रूप में अपनी लोकोत्तर गरिमा और दिव्य पवित्रता प्रदर्शित करते हैं। भवभूति के पश्चात् 'हनुमन्नाटक' 'अनर्घ राघव' 'बाल रामायण' और 'प्रसन्न राघव' में राम-कथा की विविध कलाएं विकसित की गई हैं। वाल्मीकि और व्यास, कालिदास और भवभूति की अद्भुत प्रतिभा ने राम के जिस चरित्र को लोकोत्तर गरिमा प्रदान की राजशेखर और जयदेव आदि कवियों ने जिस कथा को अलंकृत किया, उसी महत् चरित्र और कथा को लेकर तुलसीदास ने रामचरित-मानस का "स्वान्त: सुखाय" (अपनी प्रसन्नता के लिये मनमाने ढंग पर) नव निर्माण किया।

यह तो संस्कृत काव्य और नाटकों की परम्परा में राम-कथा (राम चरित) का निरूपण हुआ। पौराणिक परम्परा में राम कथा और राम-चरित्र का और भी अधिक प्रणयन हुआ है। स्वर्गीय रामदास गौड़ द्वारा सम्पादित 'हिन्दुत्व' में कितने ही रामायणों का उल्लेख किया गया है। जिनमें क्षीरसागर शायी भगवान् विष्णु के अवतार राम की विविध लीलाओं का पौराणिक वर्णन मिलता है। परम्परा के अनुसार इन रामायणों में अध्यात्म रामायण का महत्व सर्वोपरि है जो स्वयं शिवजी की रचना कही जाती है। इसमें महादेव जी पार्वती उमा को सम्पूर्ण राम-कथा विस्तारपूर्वक सुनाते हैं।

इन रामायणों में अत्रिमुनि का 'सोपश्च रामायण,' सूर्य और हनुमान के संवाद-रूप में वर्णित 'सौर्य रामायण,' हनुमान और चन्द्रदेव के संवाद रूप में वर्णित 'चांद्र रामायण,' इन्द्र-जनक-संवाद रूप में 'श्रवण रामायण,' सुग्रीव और तारा संवाद-रूप में 'सुवर्चस रामायण' 'मैन्द रामायण,' 'सुब्रह्म रामायण,' अद्भुत रामायण और

'आनन्द रामायण' आदि कितने ही रामायण हैं जिनका किसी न किसी रूप में रामचरित-मानस पर प्रभाव पड़ा है।

उपर्युक्त विविध रामायणों के रचना-काल के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं है। इनमें सबसे अधिक प्रचलित और सुलभ 'अध्यात्म रामायण' है जो ब्रह्माण्ड पुराण का परिशिष्ट कहा जाता है, परन्तु इसकी रचना उस पुराण के साथ ही हुई अथवा बाद में किसी समय, यह निश्चित नहीं है। ब्रह्मांड पुराण का रचना-काल विक्रम की आठवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। इस प्रकार 'अध्यात्म रामायण' की रचना आठवीं शताब्दी से पहले की नहीं है। अनुमानतः इन सभी रामायणों की रचना पौराणिक काल में लगभग एक सहस्र विक्रमी के आस पास किसी समय हुई होगी। विक्रम की सातवीं शताब्दी से बारह वीं शताब्दी के बीच दक्षिण भारत में पौराणिक भक्ति धर्म का प्रचार और प्रसार हुआ था। सम्भवतः उसी समय इन रामायणों की भी रचना दक्षिण में ही हुई होगी और स्वामी रामानन्द, जिन्होंने द्रविड़ प्रांत की पौराणिक भक्ति-धारा को उत्तर भारत में प्रचारित किया था, अपने साथ इन ग्रन्थों को भी काशी ले आए होंगे। गोसाईं तुलसीदास का इन रामायणों से परिचय अवश्य था और वे उससे पूर्णतः प्रभावित भी हुए थे। 'रामचरित मानस' में इन सब पौराणिक कालीन रामायणों का प्रभाव सुस्पष्ट देखा जाता है। यही कारण है 'मानस' एक पौराणिक गल्प काव्य मात्र बन गया है। उससे भावुक और कल्पनाप्रिय जनों का मनोरंजन तो खूब हो जाता है पर राम-चरित के शुद्ध ऐतिहासिक तत्व की जिन्हें खोज है, उन्हें प्रायः निराश ही होना पड़ता है। गन्दले जल में से जैसे 'फिल्टरेशन' अथवा 'ईवेपोरेशन' की वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा ही शुद्ध जल थोड़ा-सा प्राप्त हो पाता है, मानस की भी यही स्थिति है। राम-कथा धारा का यह स्वरूप निम्न उदाहरण से और अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

कुछ समय पूर्व की बात है। गङ्गाजल की प्रशंसा सुन एक अमेरिकन भारत आया और कलकत्ते के समीप हुगली के गङ्गाजल को लेकर उसने प्रयोगशाला में उसका वैज्ञानिक परीक्षण किया।

प्रयत्न करने पर भी उसे कोई विशेषता उसमें नहीं मिली। वह निराश हो गया। तभी उसकी अपने एक भारतीय मित्र से भेट हुई, जिसकी प्रेरणा पर उसने हरिद्वार से ऊपर गङ्गाजल लिया। उसका परीक्षण किया तो प्रसन्नता से उछल पड़ा और गङ्गा की धारा के साथ २ ऊपर की ओर बढकर उसने जब गङ्गा के उद्‌गम गङ्गोत्री का जल लेकर परीक्षण किया तो उसके हर्ष की सीमा नहीं रही। वह गङ्गाजल की अनेक २ विशेषताओं का साक्षात् करने में सफल हो सका।

प्रक्षेप रहित वाल्मीकि रामायण गङ्गोत्री का शुद्ध जल है। श्रीराम के पवित्र चरित्र (शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त), रामायण के अन्य पात्रों की विशेषतायें, राम-कथा की शुद्धता, महत्ता और भव्यता के दर्शन यदि हमें करने हैं तो वह वाल्मीकि रामायण में अवगाहन करने से ही सम्भव है। भवभूति के 'उत्तर राम चरित' और 'महावीर चरित' को हरिद्वार का जल कहा जा सकता है। पर उसके बाद तो विविध पुराणों की गल्प कथाओं, असम्भव और असम्बद्ध प्रसङ्गों के इतने गन्दे नाले क्रमशः इस पुनीत धारा में मिलते गये हैं जिससे उसका शुद्ध स्वरूप तो मानो विलीन ही हो गया है। "रामचरित मानस" हुगली का जल है। राम-कथा का शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त, राम चरित की महत्ता और विशदता का निर्णय उसी के आधार पर करने वालों को निराशा ही हाथ लगेगी। उसके लिये तो हमें राम-कथा की धारा के साथ-साथ ऊपर की ओर लौटना होगा। हम देखेंगे कि क्रमशः उसमें निखार मिलता जायेगा। इस क्रम में राम-कथा के उद्‌गम (प्रक्षेप रहित) वाल्मीकि रामायण तक पहुँचकर हम प्रसन्नता से भर उठेगे— अपने राष्ट्र पुरुष, युग निर्माता, आर्य जाति के महान् पूर्वज महा-मानव राम को पाकर!

किन्तु गङ्गोत्री यात्रा करने में जो अपने को असमर्थ मान बैठे हों, वे क्या करें? तब वे गंदले जल को फ़िल्टर करके या उस जल के नीचे अग्नि जलाकर 'ईवेपोरेशन' की वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा उसे शोध कर थोड़ा-सा शुद्ध जल प्राप्त कर प्यास बुझा सकते हैं। हमारा

'शुद्ध एवं संक्षिप्त रामचरित मानस' उसी प्रकार का विनम्र प्रयास है। साकेत आदि में भी यही शोध प्रक्रिया देखने को मिलती है।

—०—०—

मानस-एक पुराण-काव्य

प्राचीन काव्य-शास्त्रों के आचार्यों द्वारा पद्यात्मक श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य और मुक्तक ये तीनों मुख्य भेद स्वीकार किए गये थे। जिसमें सर्गों का निबंधन हो, शास्त्रकारों के मत से वही महाकाव्य है। अलंकार परम्परा के प्रथम आचार्य भामह ने 'काव्यालंकार' में महाकाव्य का लक्षण लिखा है कि वह बड़ा होता है, महान् व्यक्तियों का चित्रण करता है और ग्राम्य प्रयोगों से रहित, अलंकारों से युक्त तथा सत् को आश्रय देने वाला होता है। इसमें मन्त्रणा-गृह, दूत, यात्रा, युद्ध और नायक के अभ्युदय का वर्णन होता है। यह नाटक के पंच संधियों से युक्त, सरल और सुखांत होता है।*

महाकाव्य का यह शास्त्रीय लक्षण बहुत कुछ उसके बाह्य रूप को ही प्रकट करता है, अंतः पक्ष को प्रकट करने वाला महाकाव्य का लक्षण शास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं मिलता। बँगला के अप्रतिम महाकाव्य 'मेघनाद बध' की आलोचना करते हुए श्री रवींद्रनाथठाकुर ने महाकाव्य का जो लक्षण लिखा है वह उसके अंतः पक्ष की स्पष्ट विवेचना करता है। वह लक्षण इस प्रकार है :—

---

* सर्गबंधो महाकाव्य महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्॥
मंत्रदूत प्रयाणाजिनाकाभ्युदयैश्चयत्।
पंचभिः संधिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्॥

'मन में जब एक वेगवान अनुभव का उदय होता है, तब कवि उसे गीतकाव्य में प्रकाशित किए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महा-पुरुष कवि के कल्पना-राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य-चरित्र का उदार महत्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके भावों से उद्दीप्त होकर, उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मंदिर निर्माण करते हैं। उस मंदिर की भित्ति पृथिवी के गम्भीर अंतर्देश में रहती है और उसका शिखर मेघों को भेद कर आकाश में उड़ता है। उस मंदिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देवभाव से मुग्ध और उसकी पुण्य किरणों से अभिभूत होकर नाना दिग्देशों से आ आकर लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं— महाकाव्य।"

इससे स्पष्ट है कि नायक का व्यक्तित्व ही महाकाव्य का प्रमुख लक्षण है। सर्गों की संख्या तथा उनका विस्तार, छन्दों का क्रम, आशी-र्वचन तथा नमस्कार, खलों का निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा, प्रकृति, मृगया, विवाह आदि के विस्तृत वर्णन, रसों का अंगीभाव तथा नाटक-संधियाँ इत्यादि लक्षण जो केवल उसके बाह्य पक्ष के ही द्योतक हैं। रामचरित-मानस में ये बाह्य लक्षण तो पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, परन्तु जो मुख्य लक्षण हैं उसका नितांत अभाव है। श्री रवीन्द्रनाथ के अनुसार महाकाव्य का नायक उदार महत्वशील मानव ही हो सकता है, दूसरा नहीं। 'काव्यालंकार' और 'साहित्य-दर्पण' के अनुसार भी महाकाव्य का नायक उदात्त गुणों से समन्वित मानव या महापुरुष ही हो सकता है, दूसरा नहीं। परन्तु मानस का नायक गोस्वामी जी के अनुसार स्वयं परब्रह्म परमेश्वर राम है। यथा:

ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित अपार॥

'साहित्य-दर्पण' के अनुसार धर्म अर्थ, काम, मोक्ष—इस चतु-र्वर्ग में से एक महाकाव्य का फल होता है, परन्तु रामचरित-मानस का

फल, इस चतुर्वंग से परे विश्राम (मृत्यु जैसी शान्ति) की प्राप्ति है। अस्तु, फल की दृष्टि से भी रामचरित-मानस महाकाव्य नहीं ठहरता। बाह्य रूप से महाकाव्य के लक्षणों से युक्त होते हुए भी यह ग्रन्थ वास्तव में महाकाव्य नहीं है।

काव्य-रूप की दृष्टि से रामचरित-मानस महाकाव्य नहीं ठहरता, परन्तु अब देखना यह है कि इसमें पुराण-काव्य की विशेषतायें मिलती हैं अथवा नहीं।

यद्यपि मानस का उद्देश्य और प्रतिपाद्य विषय श्री राम की गाथा को भाषा में निबद्ध करना है, परन्तु मानस में केवल रघुनाथ की ही कथा कही गई हो ऐसी बात नही है। इसमें राम की कथा तो है ही उसके साथ शिव और सती तथा शिव और पार्वती की कथा भी विस्तार के साथ लिखी गई है, नारद-मोह और शाप की कथा का विस्तार भी कुछ कम नहीं है, केकय देश के राजा प्रतापभानु तथा कपटी मुनि की कथा तो अत्यधिक विस्तार में वर्णित है, और अन्त में गरुड़-मोह तथा काकभुशुंडि द्वारा खगपति की शंकाओं के समाधान के अतिरिक्त वायसराज के जन्म-जन्मातरों की कथा का विस्तार भी कुछ कम नहीं है। इन सब अवांतर प्रसङ्गों का राम-कथा से कोई सांधा सम्बन्ध नहीं है। सती-मोह तथा शिव-पार्वती-विवाह, नारद-मोह और शाप तथा प्रतापभानु और कपटी मुनि की कथा का कुछ न कुछ सम्बन्ध (गोस्वामी जी के अनुसार) राम-कथा से जोड़ा भी ज सकता है, परन्तु काकभुशुंडि की जन्म-परम्परा का जो विस्तार मिलता है, उसका राम-कथा से कोई भी सम्बन्ध नहीं, हाँ पौराणिक भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए गरुड़ और काकभुशुंडि का संवाद अत्यधिक महत्व का है। अस्तु, महाकाव्य की दृष्टि से इन अवांतर प्रसंगों का विस्तार अनपेक्षित है। परन्तु मानस में इन प्रसंगों का महत्व स्वयं राम-कथा से किसी प्रकार कम नहीं है। सत्य यह है कि इस ग्रन्थ रचना का उद्देश्य केवल अन्तःकरण को सुख देना नहीं है, साधारण जनता में पौराणिकता अन्ध भक्ति का प्रचार ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

पौराणिक शैली—

मानस की कथा मानसकार ने स्वयं न कहकर संवाद-रूप में उपस्थित की है। यह संवाद भी दो व्यक्तियों का सीधा संवाद नहीं है। बाल्मीकि-रामायण में भी कथा का प्रारम्भ देवर्षि नारद और मुनि-पुंगव बाल्मीकि के संवाद रूप में हुआ है। परन्तु जहाँ रामायण में बिना किसी भूमिका के बाल्मीकि मुनि के एक प्रश्न के उत्तर में नारद ने भी सीधा और स्पष्ट उत्तर दिया था, वहाँ मानस के संवाद इतने सीधे और सरल नहीं हैं।

भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद में सरलता लेश मात्र भी नहीं है। भारद्वाज सब कुछ जानते हुए भी मूढ़ की भाँति प्रश्न करते हैं और याज्ञवल्क्य एक ओर तो भारद्वाज की प्रशंसा करते जाते हैं और दूसरी ओर उनकी परीक्षा भी लेते रहते हैं। इस संवाद से बाल्मीकि-नारद-संवाद की तुलना कीजिए—

कितना स्पष्ट अन्तर है! यह जो परस्पर प्रशंसा करने की प्रवृत्ति, घुमा-फिरा कर बातें कहने का ढंग, अवांतर प्रसंगों की अवतारणा तथा संवाद के भीतर अन्य सवादों का अत्यधिक विस्तार मिलता है, वही मानस की पौराणिक शैली का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

काव्यों के संवाद इस प्रकार के नहीं होते—वे एक महत् भावना से अनुप्राणित होते हैं, उनमें सरलता के साथ गम्भीरता तथा स्पष्टता के साथ एक सहज और स्वाभाविक आवेश होता है। मानस के सभी संवादों में एक प्रकार की कृत्रिमता दिखाई पड़ती है, उसमें लच्छेदार बातें तो प्रचुर मात्रा में हैं परन्तु तर्कसंगत बात का लेश भी नहीं है। अपनी अनाधिकार चेष्टा और मूढ़ता के लिए बार-बार क्षमा-याचना करती हुई, शिवजी की खूब प्रशंसा कर, उमा ने 'छलविहीन' सरल

प्रश्न किया, तब शिवजी ने उसका सीधा उत्तर न देकर पहले अपने इष्टदेव भगवान राम की वन्दना की, फिर पार्वती जी की प्रशंसा की कि:—

तुम्ह रघुवीर चरन अनुरागी। कीन्हहु प्रश्न जगत हित लागी॥
रामकृपा तें पारबति सपनेहु तव मन माहिं।
सो० मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥

फिर जिन्होंने हरि-कथा अथवा राम-कथा नहीं सुनी उनकी भर्त्सना कर, राम-कथा कहने का वचन दिया, परन्तु वह कथा सुनने से पहले ही राम को जो परब्रह्म परमेश्वर नहीं मानते उनकी भर-पेट निन्दा कर वे पार्वती जी से कहते हैं कि:—

अस निज हृदयं विचारि तजु संसय भजु राम पद।

कहाँ तो पार्वती जी को यह संशय है कि राम परब्रह्म परमेश्वर नहीं हैं और इसी संशय को मिटाने के लिए वे शिवजी से प्रश्न करती हैं, परन्तु शिवजी बिना राम का परब्रह्मत्व प्रमाणित किए ही उनको आज्ञा देते हैं कि 'तजु संसय भजु राम पद।' पौराणिक शैली की यही विशेषता है। मानस में इस शैली की पराकाष्ठा है। अस्तु शैली की दृष्टि से भी रामचरित-मानस पुराण काव्य ही ठहरता है, महाकाव्य नहीं।

—※—※—

पौराणिकता बनाम काव्य-कला

प्रतिपाद्य विषय, उद्देश्य और शैली की दृष्टि से मानस यद्यपि पुराण काव्य ही ठहरता है, परन्तु बीचबीचमें कथा-प्रसंगों तथा विविध वर्णनों में मानसकार ने काव्य का कुछ ऐसा चमत्कार प्रदर्शित किया है कि सहसा विस्मय-विमुग्ध हो जाना पड़ता है।

बालकांड में जनक-वाटिका और धनुष-भंग का प्रसंग, अयोध्या-

कांड में कैकेयी और मंथरा तथा कैकेयी और दशरथ का संवाद, राम के बन-गमन के समय अवधपुर-वासियों का विषाद और वन-मार्ग में ग्राम-बन्धुओं के सरल सुन्दर और सहज व्यवहार आदि के वर्णन काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़े हैं। अरण्यकांड में जहाँ आदि से अन्त तक भगवान राम के ईश्वरत्व तथा पौराणिक राम की भक्ति-चर्चा ही प्रधान है, वहाँ भी हमें योद्धा राम और विरही राम के रूप में काव्य का अनुपम चमत्कार मिल जाता है। इसी प्रकार पूरे राम-चरित-मानस में कवि की प्रतिभा जैसे पुराण के बीच से झाँकती हुई अपना दर्शन दे जाती है। मानस के लम्बे-लम्बे संवादों में, विविध शंकाओं के समाधान में, छलहीन प्रश्नों के उत्तर में, ऋषि और मुनि; ब्रह्मा और शंकर, वेद और देवता तथा अन्य भक्तों के स्तव, प्रशंसा, विनय तथा दैन्य-निवेदन में जहाँ उसकी पौराणिकता स्पष्ट है, वहाँ भी स्नेह और प्रेम, विरह और युद्ध, शील और सौन्दर्य आदि के वर्णनों में कवि की प्रतिभा अपना अद्भुत चमत्कार प्रकट करती है। मानस की रूप-रेखा पुराण-काव्य की-सी है, परन्तु बीच-बीच में मानसकार ने काव्यका जो गाढ़ा रंग भर दिया है, वही प्रमुख होकर पाठकोंको अन्तर्दृष्टि को मुग्ध कर देता है।

पर यदि हम तनिक भी गहराई से सोचें तो यह स्पष्ट हो सकेगा कि पौराणिता के इस दुराग्रह से मानस के काव्य-सौन्दर्य का भी ह्रास ही हुआ है।

स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह दिखलाने का अथक प्रयत्न किया है कि मानसकार ने नवों रसों का बड़ा ही मार्मिक और सफल-निरूपण किया है। परन्तु रामचरित-मानस में तो रसों की अपेक्षा रसाभास ही अधिक मिलते हैं। इन रसाभासों को ही कतिपय विद्वानों ने रस मान लिया है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि उन्होंने मानस के स्थल-विशेष की उक्तियों का केवल शब्दार्थ ही ग्रहण किया—भावार्थ नहीं। भावार्थ जानने के लिए किसी ग्रन्थ अथवा उसके स्थल विशेष के उपक्रम-उपसंहार आदि तत्वों का विचार आव-

श्यक हुआ करता है। परन्तु विद्वानों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। शुक्ल जी ने मानसमें करुणा रसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लक्ष्मण-शक्ति के उपरांत राम-विलाप का निर्देश किया है। जहाँ तक उस अंश के शब्दार्थ-ग्रहण की बात है वहाँ निश्चय ही उसमें करुण रस की निष्पत्ति मानी जा सकती है, परन्तु जब हम उसका भावार्थ-ग्रहण करने के लिए उपक्रम और उपसंहार की ओर दृष्टि डालते हैं तो वहाँ करुण रस का आभास भी नहीं मिलता राम-विलाप के आरम्भ से पूर्व ही मानसकार भूमिका-स्वरूप लिखता है कि:—

उहाँ राम लछमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥

अर्थात् राम का विलाप केवल अभिनय मात्र है। परब्रह्म परमेश्वर राम मानव राम का अभिनय करते हुए कहते हैं कि:—

जौं जनतेउ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउं नहिं ओहू॥

इत्यादि, इस प्रकार विलाप-अभिनय के अनंतर उपसंहार रूप में सूत्रधार के समान शिवजी एक बार फिर स्मरण दिला देते हैं कि—

उमा अखण्ड एक रघुराई। नर गति भाव कृपालु दिखाई।

अर्थात् अखण्ड, अद्वैत ब्रह्म रूप भगवान राम तो केवल मानव का अभिनय कर रहे हैं, उनके लिए विलाप कैसा ? इस भूमिका और उपसंहार से युक्त रहने पर भी क्या राम-विलाप करुणरस का उदाहरण माना जा सकता है ? जब तुलसी के राम अविनाशी ब्रह्म हैं, तो उनका मानव-अभिनय-रूप विलाप करुण रस की नहीं करुण रसाभास की ही सृष्टि कर सकता है। इसी प्रकार सीता-हरण के पश्चात् जब राम सद्यःविरही की भाँति विलाप करते हैं कि:—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥ इत्यादि।

तब उनका यह करुण विलाप वास्तव में विप्रलम्भ की निष्पत्ति कर सकता था, परन्तु इसके उपसंहार रूप में जब मानसकार कह उठता है कि :—

पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी॥ ... बिलपत स्वामी। मनहु महा बिरही अति कामी॥

तब यह सम्पूर्ण विलाप का नाटक विप्रलम्भ शृंगार रस न रहकर रसाभास की ही सृष्टि कर पाता है।

इसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वर राम का तथा उनके प्रताप-बल से बली लक्ष्मण, हनुमान, अंगद, जामवंत और सुग्रीव आदि का क्रोध और उत्साह मानवेतर चरित्र-विषयक क्रोध और उत्साह होने के कारण रस की श्रेणी में न आकर रसाभास के ही अन्तर्गत माने जाएंगे। मानसकार की कवित्व शक्ति के सम्बन्ध में संशय के लिए कहीं भी स्थान नहीं है, परन्तु रामचरित-मानस में उन्होंने काव्य का विषय ही कुछ ऐसा चुना था, उनका उद्देश्य ही कुछ ऐसा था कि वे शुद्ध काव्य-रस और काव्यालंकारों के निरूपण में प्रवृत्त न हो सकते थे।

सारांश यह है कि मानसकार की काव्य-कला भी पौराणिकता की परिधि में घिर कर संकीर्ण हो गई है।

—०—०—

मानसकार का दुराग्रह

रामचरित-मानस में तुलसीदास 'अवध-नृपति-सुत' राम को परब्रह्म परमेश्वर कहते नहीं थकते। अगणित बार, अनेक ढंग से, विविध अवसर निकाल कर, नए प्रसगों की अवतारणा कर गोस्वामी जी पग-पग पर राम का ईश्वरत्व प्रदर्शित करते रहते हैं। कवित्व का सहारा लेकर लक्षणा द्वारा और कभी वाच्यार्थ से भी वे पुनरुक्ति का ध्यान छोड़ केवल एक बात अनेक बार दुहराते रहते हैं कि राम साधारण मानव नहीं, स्वयं परब्रह्म परमेश्वर ही हैं जो भक्तों को सुख देने के लिए अवतरित हुए हैं। राम-जन्म से लेकर राम-राज्य तक यही क्रम चलता रहता है। रामचन्द्रजी के जन्म लेते ही कवि के मन की

लाने की आवश्यकता जान पड़ी और कवि ने लक्षणा द्वारा संकेत कर ही दिया कि:

मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होइ॥

यह रहस्य काहू नहिं जाना। + दिनमनि चले करत गुन गाना॥

इसी प्रकार बाल-चरित के बीच-बीच में मानसकार राम के परब्रह्मत्व की ओर संकेत करते रहते हैं:—

मन क्रम बचन अगोचर जोई। दशरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥
निगम नेति शिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥

राम जब गुरु-गृह पढ़ने जाते हैं तब कवि कह उठता है कि:—

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

जब राम मृगया करते हैं तब भी कवि उसी प्रकार का संकेत करता है कि:—

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि परलोक सिधारे॥

इस प्रकार तुलसीदास पाठकों को सर्वदा स्मरण दिलाते रहते हैं कि 'अवध-नृपति-सुत' राम स्वयं-परब्रह्म परमेश्वर हैं। घन की निरन्तर चोट से जिस प्रकार कील पक्की दीवाल में भी दृढ़ता से घुसती जाती है, उसी प्रकार मानसकार इस निरन्तर स्मरण दिलाते रहने से सामान्य पाठकों और भोले श्रोताओं के हृदय में यह मिथ्या विश्वास जमाने का यत्न करता है कि कौशलेश के राजकुमार राम और कोई नहीं स्वयं भक्तिवत्सल भगवान ही हैं।

सीता-हरण के पश्चात् सीता को खोजते हुए जब भगवान राम अत्यन्त कामी और महाविरही की भाँति विलाप करते फिरते हैं, तब सती की भाँति कहीं पाठकों के हृदय में कोई शंका न उत्पन्न हो जाय, इसीलिए कवि आगे कह उठता है कि—

पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अविनासी॥

और लक्ष्मण शक्ति लगने पर जब राम 'मनुज अनुसारी' बचन बोलते हुए विलाप करते हैं, तब उमा के हृदयमें संशयका मार्ग अवरुद्ध

+ देखो आपने बुद्धि और विज्ञान विरुद्ध चमत्कारवाद की तमना।

करने के लिये शीघ्र ही शिवजी बोल उठते हैं कि—

बहु विधि सोचत सोच विमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन ।।
उमा अखण्ड एक रघुराई। नर गति भगति कृपालु दिखाई ।।

तुलसीदास ने स्वयं तो राम के ईश्वरत्व की पुनरुक्ति अगणित बार की, परन्तु यह सोचकर कि सभी बातों के लिए साक्षी की आवश्यकता पड़ती है, उन्होंने मानस के प्राय: सभी पात्रों से राम का परब्रह्मत्व घोषित कराया है। पुत्र-जन्म का समाचार पाते ही महाराज दशरथ विचार करते हैं कि—

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई ।।

अर्थात् बालक राम परब्रह्म परमेश्वर हैं जो पुत्र रूप में उन्हें कृतार्थ करने आए हैं। राम-विवाह के पश्चात् महाराज जनक ने भी भगवान राम का परमेश्वर रूप पहचान कर उनसे प्रार्थना की थी कि:—

राम कहौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा ।।
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी ।।
नयन विषय मो कहुं भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबहिं लाभ जग जीव कहं, भए ईसु × अनुकूल ।।

गुरु वशिष्ठ से भी चित्रकूट में विप्र, महाजन, सचिव आदि सबके सामने ही कहलाया गया है कि—

विधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला ।।
अहिप महिप जहं लगि प्रभुताई। जोगि सिद्धि निगमागम गाई ।।
करि बिचार जियं देखहु नीके। राम रजाइ सीस सबही के ।।

पापी निश्चरों के विनाश की चिन्ता करते हुए महामुनि विश्वामित्र द्वारा भी राम के परब्रह्मत्व की पहिचान कराई गई है। वे अपने मन में विचार करते हैं कि—

प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ।।

× जब परब्रह्म सामने ही खड़े हैं, तब यह 'ईसु अनुकूल' किस ईश्वर के लिये हैं ? आखिर सत्य का गला कहाँ तक दबाया जा सकता है ?

एहूं मिसि देखौं पग जाई। करि विनती आनौं दोउ भाई ।।
ग्यान विराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखव भर नयना ।।

और आर्य श्रेष्ठ बाल्मीकि मुनि द्वारा भी + कहलाया गया है-

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जगु पालित हरति रुख पाइ कृपा निधान की ।।

फिर अत्रि, अगस्त्य, शरभंग, सुतीक्ष्ण आदि ऋषियों द्वारा भी राम को परब्रह्म परमेश्वर के रूप में पूजा कराई है। राम के निर्गुण-सगुण रूप के प्रति सुतीक्ष्ण कहते हैं—

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ।।
अमलमखिलमनवद्यमपारं । नौमि राम भंजन महि भारं ।।

और तो और वेदों ! के द्वारा भी राम को परब्रह्म परमेश्वर मानकर उनकी वंदना करा डाली है। ※

देवताओं के अतिरिक्त राक्षसों द्वारा भी गोस्वामी जी ने राम के ईश्वरत्व की स्पष्ट घोषणा कराई है। राक्षसराज रावण का मत सुनिए वह विचार करता है कि—

खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहिं को मारइ बिन भगवंता ।।
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा ।।
तौं मैं जाइ वैरु हठि करऊं। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊं ।। ×

रावण का मामा मारीच भी उसे समझाता है—

(तेहिं पुनि कहा) सुनहु दसशीसा। ते नर रूप चराचर ईसा ।।
तासों तात बयरु नहिं कीजे। मारें मरिय जिआँए जीजै ।। =

रावण अनुज विभीषण भी उसे समझाने का प्रयत्न करता है—

+ विचारिये कि क्या ये वही आदि कवि महर्षि बाल्मीकि हैं जिन्होंने श्री राम को 'पुरुष रत्न' के रूप में उपस्थित किया है।

※ कैसी दुराग्रहपूर्ण विचित्र कल्पना है तुलसी की !

※ यहाँ मारीच राम से वैर न करने का उपदेश दे रहा है। यही विरोध 'धर्म ग्रन्थ' कहाने वाले इस ग्रन्थ की विशेषता है।

× देखा आपने पाप प्रेरक पौराणिक भक्ति का नमूना। रावण यह

तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेश्वर कालहु कर काला ।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता । व्यापक अजित अनादि अनंता ।।

यह तो राक्षसों की साक्षी हुई। गृद्धराज जटायु, शबरी, निषाद, बालि, हनुमान, अंगद, जामवंत, सम्पाति तथा काकभुशुंडि आदि सभी गोस्वामीजी के हाथों में पड़कर राम को परब्रह्म परमेश्वर घोषित करते हैं। साक्षो से ही यदि कोई बात प्रमाणित की जा सकती है तो मानस के भगवान राम के परब्रह्म परमेश्वर होने की बात को प्रमाणित करने के लिए मानसकार ने सभी प्रकार के द्विज और अद्विज, नर और नारी, ऋषि और मुनि, सुर और असुर, पशु और पक्षी, जड़ और चेतन, शत्रु और मित्र, आर्य और अनार्य की साक्षी उपस्थित कर दी है। इतने पर भी यदि किसी को संदेह रह जावे कि राम केवल 'अवध-नृपति-सुत' हैं, परब्रह्म परमेश्वर नहीं तो बेचारे गोस्वामीजी क्या करें ?

स्वयं अगणित बार राम के ईश्वरत्व की पुनरुक्ति कर, शंका करने वालों की शंका का समाधान करा, अगणित ऋषि-मुनियों की साक्षी दिलाकर भी सम्भवतः मानसकार को पूर्ण संतोष नहीं हुआ* पाठकों के हृदय में संशय का लेश भी न रह जाय इसके लिए तुलसीदास ने स्वयं भगवान राम के श्रीमुख की वाणी से भी उनका परब्रह्मत्व घोषित कराया है। रामचन्द्र जी अपने ईश्वरत्व की घोषणा करने के लिए ही जन्म के समय सायुध-चतुर्भुज रूप में प्रकट हुए थे।

फिर माता कौशल्या को भी उन्होने अपना अद्भुत अखंड रूप दिखलाया :

जानकर भी कि राम ईश्वर है, इसलिये उनसे वैर करता है जिससे वह उनके हाथों मर कर मोक्ष पा सके ! कैसा सस्ता और दुराचार वर्द्धक है यह नुस्खा!!

* यह असंतोष—यह आत्म-संशय ही मानसकार के मन का चोर है। अतः यही अवतार वाद की असत्यता का सर्वोपरि प्रमाण है।

रोम रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड ।

और शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश करते हुए कहा था कि :

मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ।।

इस प्रकार मानसकार विविध प्रकार से एक ही बात की अनेक बार पुनरुक्ति कर हठपूर्वक राम के 'व्यापक विरज अज' ब्रह्म होने की छाप प्रत्येक पाठक के हृदय पर बैठा देना चाहते हैं ।

हितोपदेश की 'सात ठग और ब्राह्मण की बछिया' वाली कहानी में ठग लोग कंधे पर बछिया ले जाते हुए ब्राह्मण को तर्क द्वारा यह प्रमाणित नहीं कर सकते थे कि उसके कंधे पर गाय की बछिया नहीं वरन् एक कुतिया है । अस्तु, उन्होंने दुराग्रहपूर्वक उसके हृदय में यह मिथ्या विश्वास उत्पन्न करा दिया कि वह सचमुच एक कुतिया को कंधे पर लादे जा रहा है । ब्राह्मण कंधे पर बछिया लादे अपने रास्ते पर चला जा रहा था कि एक ठग आकर विस्मय की मुद्रा में बोल उठा 'अरे भाई यह क्या ? तुमने अपने कंधे पर कुतिया क्यों बैठा रक्खी है ?' ब्राह्मण को सम्भवतः अपनी बुद्धि पर विश्वास था; इसीलिए उसने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया । आगे चलने पर दूसरे ठग ने आकर जब ठीक उसी मुद्रा में ठीक वही बात कही तब उसके हृदय में संदेह की एक रेखा अवश्य खिच गई, परन्तु फिर भी उसने उसकी बात का विश्वास नहीं किया, परन्तु जब तीसरे ठग ने भी ठीक उसी प्रकार की बात कही तब उसे एक बार बछिया को अपने कंधे पर से उतार कर भली भाँति देख लेना पड़ा कि कहीं उसने सचमुच ही भूल से बछिया के बदले किसी कुतिया को तो अपने कंधे पर नहीं बैठा लिया । फिर भली भाँति देख-भाल कर उसने बछिया को कंधे पर डाला और अपने रास्ते पर चल पड़ा । इतने में चौथे ठग ने हँसकर व्यंग की मुद्रा में कहा कि 'अरे तुम कैसे बुद्धू ब्राह्मण हो जो कंधे पर कुतिया लादे लिए जा रहे हो ।' ब्राह्मण ने उसकी बात तो अनसुनी कर दी, परन्तु जब पांचवें और

छठे ठग ने भी वही बात दुहराई, तब तो उसे अपनी बुद्धि और आँखों पर अविश्वास-सा होने लगा और अन्त में जब सातवें ठग ने कहा कि 'छी ! छी ! तुम ब्राह्मण होकर एक कुतिया कन्धे पर बैठाए लिए जा रहे हो' तब तो उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि जिसे उसने कन्धे पर बैठा रखा है, वह कुतिया छोड़ बछिया हो ही नहीं सकती और उसने बछिया को कन्धे पर से उतार कर जंगल में छोड़ दिया जिसे सातों ठगों ने मिलकर पकड़ लिया। अस्तु, जहाँ सत्य न होने से तर्क के लिये अवकाश नहीं वहाँ एक ही बात को कई तरह से कितनी बार दुहरा कर मिथ्या विश्वास उत्पन्न कराना पड़ता है। तुलसीदास ने रामचरित मानस में इसी दूसरे मार्ग का सहारा लिया है। उन्होंने अपने कवि को, रामायण के विभिन्न पात्रों को और स्वयं श्रीराम को ठगों के रूप में प्रस्तुत करके श्रीराम के ईश्वरत्व में मिथ्या विश्वास कराने का यत्न किया है। और इस प्रकार सच्ची प्रभु भक्ति रूप बछिया को अपनी वाक् चातुरी से छीनकर ब्राह्मण रूप भारतीय प्रजा को श्री-हीन बना दिया है। स्पष्ट है कि अवतार-वाद का यह पाप एकमेव गोस्वामीजी के दुराग्रह और मनस्तोष की देन है, जिसका मूल है तत्कालीन पौराणिकता का बोलबाला।

—०—

अवतारवाद समीक्षा

अवतार शब्द 'अव' उपसर्ग पूर्वक 'तृ' धातु से निष्पन्न होता है, अवतार का अर्थ होता है उतरना। अवतार शब्द का प्रयोग सर्व-व्यापक परमात्मा में नहीं घट सकता। उतर तो वह सकता है जो एकदेशी हो, कहीं स्थान विशेष पर, सिंहासन पर बैठा हो। उतर वही सकता है जो ऊपर हो, नीचे न हो। जो सर्वत्र व्यापक है अणु-अणु और कण-कण में विद्यमान है वह किस स्थान से किस स्थान पर उतरेगा ? अतः उसका अवतार कैसा ?

वेद, उपनिषद, दर्शन तथा अन्यान्य ग्रन्थों से अवतारवाद की अमूलक कल्पना के खण्डन में अनेक २ प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।(प्रक्षेप रहित) वाल्मीकि रामायण में तो शत-सहस्र स्थानों पर श्रीराम को 'महा मानव' एवं पुरुष रत्न के रूप में मानव सुलभ दुर्बलताओं और विशेषताओं के साथ चित्रित किया गया है।* परन्तु यहाँ हमने केवल 'राम चरित मानस' के आधार पर ही अवतारवाद के शव की परीक्षा करने का निश्चय किया है।

पवित्र ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के २३ वें सूक्त के मन्त्र ८ में बताया है:—

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः,
ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द ।
कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥

शब्दार्थ—(ऋतस्य) सत्य की (शुरुधः) शक्तियाँ, पाप निवारक शक्तियाँ (हि) निश्चय से (पूर्वीः) सनातन और पूर्ण (सन्ति) हैं।

---

* देखिये हमारे द्वारा प्रणीत 'रामायण : एक सरल अध्ययन'।

(ऋतस्य) सत्य की (धीतिः) धारणा=धारण-क्रिया (वृजनानि) वर्जित कर्मों को, पापों को (हन्ति) मारती है, हटाती है। (ऋतस्य) सत्य का (श्लोकः) श्लोक या वाक्य (शुचमानः) पवित्रता का प्रसार करने वाला (बुधानः) बोध प्रदान करने वाला [होता है, और वह] (बधिराः) बहरे कानों को भी (ततर्द) खोल देता है।

अर्थात् सत्य की सनातन और अमोघ शक्तियाँ संसार में चुपचाप अपना काम कर रही हैं। सच्चाई की आवाज को न तो अधिक समय तक दबाया जा सकता है, ओर नाही अनसुना किया जा सकता है। धोखाधड़ी, और दम्भ तथा पाखण्ड की दुकान अधिक नहीं चला करती। सचाई आखिर सचाई है। यह हजार फर्दे फाड़कर भी प्रगट हो हो जाती है।

और हम देखते हैं कि राम ईश्वर नहीं, महामानव हैं—यह सचाई गोस्वामीजी के लाख प्रयत्नों के बाद भी 'मानस' के ही त्रिविध पात्रों द्वारा अथवा विविध घटनाओं और प्रसङ्गों में जादू बन कर बोल उठा है।

हम पीछे देख चुके हैं कि गोस्वामीजी ने 'अवतारवाद' विषयक अपने दुराग्रह का रक्षा के लिये किस प्रकार कभी श्रीराम द्वारा, कभी स्वयं ही तो कभी रामायण के विविध पात्रों को साक्षी बनाकर अपनी बात कहलवाई है। पर आगे के पृष्ठों में हम देखेंगे कि स्वयं इन्हीं पात्रों द्वारा अनेक-अनेक प्रसङ्गों में श्रीराम को ईश्वरावतार न मानकर मनुष्य माना गया है और तद्वत् ही उनसे व्यवहार और आचरण किया गया है।

—:०:—

श्रीराम स्वयं को मनुष्य मानते हैं।

१–श्रीराम का शिष्टाचार–अभिवादन
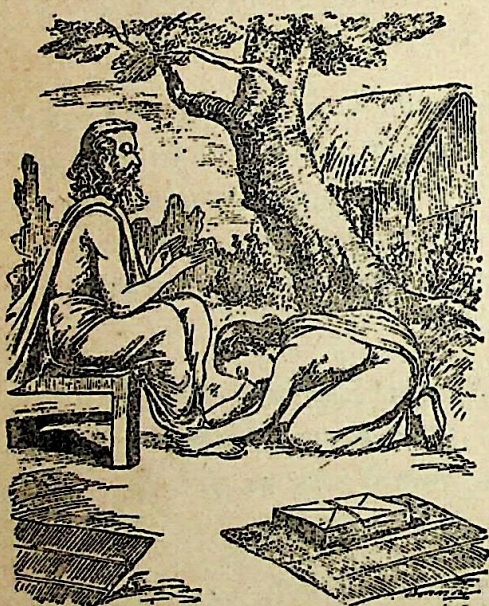
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

प्रश्न है कि यदि राम यह जानते हैं कि वे स्वयं जगदीश्वर हैं, सारे संसार के माता-पिता हैं–[त्वमेव माता च पिता त्वमेव' अथवा 'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूव' के अनुसार] और 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानऽवच्छेदात्'' इस दार्शनिक सत्य के अनुसार वे स्वयं संसार के आदि गुरु हैं तब वे दशरथ, कौशल्या और मुनिवर वशिष्ठ का पद-वन्दन क्योंकर करते हैं? आप कहेंगे कि यह सब तो श्रीराम 'मानव-लीला' कर रहे थे। पर जव तुलसीदास जी के शब्दों में श्रीराम स्वयं स्थान-स्थान पर अपने ईश्वरत्व का ढिंढोरा पीटते जाते हैं तब क्या उन्हीं के द्वारा (यह मिथ्या अभिनय उपहासास्पद ही नहीं है? अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि जब दशरथ, कौश-

ल्यादि मातायें और वशिष्ठ आदि स्वयं भी यह जानते हैं कि श्रीराम तो साक्षात् परमेश्वर हैं तब श्रीराम द्वारा अपने चरणस्पर्श कराने का दुस्साहस उन्हें क्योंकर हो जाता है ?

२–राम की सत्यनिष्ठा—

वाल्मीकि रामायण में तो 'धर्मज्ञः सत्य सन्धश्च०' तथा 'रामोद्विर्नाभिभाषते' आदि विशेषणों का प्रयोग श्रीराम के लिये अनेक प्रसङ्गों में हुआ ही है, पर गोस्वामीजी के अनुसार भी श्रीराम की मान्यता है—"धर्म न दूसर सत्य समाना" कैकेई का राम के प्रति विश्वास देखिये—

'राम सत्य तुम जो कछु कहहू'

वे नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्य सिन्धु दृढ़ व्रत रघुराई ॥

ऐसे सत्यभाषी' सत्यवादी राम गोस्वामीजी द्वारा नियोजित 'पुष्पवाटिका' में सीता के प्रथम दर्शन पर मुग्ध हो सर्वथा एकान्त में लक्ष्मण को कहते हैं—

जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥
रघुवंशिनि कर सहज सुभाऊ। मन कुपन्थ पग धरेउ न काऊ ॥

यहाँ श्रीराम ने अपने को रघुवंशी राजकुमार के रूप में ही प्रस्तुत कर गौरव का अनुभव किया है।

सत्य सरल होता है। श्रीराम ने कितनी सरलता को प्रकाशित किया है। क्या इसमें कहीं भी ईश्वरत्व की छाया तक भी है ? तब क्या राम का ऐसा कथन असत्य है ?

३—श्रीराम की ईश्वर निष्ठा—

श्रीराम के जीवन में एक आदर्श आर्य पुरुष की भाँति हम सन्ध्यादि नित्य कर्म और ईश्वर चिन्तन का अनवरत (अविच्छिन्न) क्रम पाते हैं।

निशि प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं सन्ध्या वन्दन कीन्हा ॥
विगत दिवस गुरु आयसु पाई। सन्ध्या करन चले दोउ भाई ॥

ये दोनों उद्धरण ऋषि विश्वामित्र के साथ जनकपुर निवास-काल के हैं। अयोध्या निवास की तो बात ही क्या, अपने १४ वर्ष के वनवास काल में भी वे विश्वनियन्ता परमेश प्रभु की उपासना के नित्य कर्म को पूरी-पूरी निष्ठा से निभाते हैं। निषाद राज से भेंट के पश्चात् की यह चौपाई अवलोकनीय है :—

पुरजन करि जुहार गृह आये * रघुपति सन्ध्या करन पठाये।

अपां समीपे नियतं नैत्यिके विधिमास्थितः।
सावित्री मप्य धीयते गत्वारण्यं समाहितः ॥

—महर्षि मनु की इस व्यवस्था के अनुसार वे 'सन्ध्योपासना' एकान्त शान्त प्रदेश में पूर्ण विधिवत् ही करते थे। प्रश्न है कि जब वे स्वयं परब्रह्म परमेश्वर हैं तब एकान्त देश में * ध्यानावस्थित हो ध्यान, चिन्तन और सन्ध्योपासना किसकी ? तथा किसलिये ?

फिर "सबहीं सन्ध्या वन्दन कीन्हा" इस शब्द योजना का क्या तात्पर्य ? जब विश्वामित्र आदि सभी ऋषि-मुनि जानते ही थे (जैसा कि गोस्वामीजी मानते हैं) कि श्रीराम स्वयं साक्षात् परमेश्वर हैं, तब राम से भिन्न उन्होंने किसके प्रति सन्ध्या-वन्दन किया ?

इसी प्रसङ्ग में मानस का एक उद्धरण और लीजिये—

अरुधन्ती अरु अग्नि समाजू * रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराजू।

भरत जब राम-मिलन के लिये अयोध्या से प्रस्थान करने लगे तब सर्व प्रथम मुनिवर वशिष्ठ अपनी धर्म-पत्नी अरुधन्ती और अग्निहोत्र का सामान लेकर रथ पर चढ़ कर चले। यहां स्पष्ट है कि मुनिवर वशिष्ठ आदि दैनिक अग्निहोत्र करते थे। पर प्रश्न यह है कि आज जब हमारे अनेकों मित्र श्रीराम के कल्पित चित्रों और मूर्तियों का पूजा-पुजापा कर अपनी प्रभु-भक्ति की भूख को शान्त कर लेते हैं—

---

* सबके सामने तो शायद 'नर-लीला' वालों के अनुसार यह नाटक करने की उन्हें आवश्यकता होती, पर एकान्त में उन 'ईश्वर' राम को सन्ध्या का नाटक करने की क्या आवश्यकता थी ?

उससे आगे न वे सन्ध्योपासना की आवश्यकता समझते हैं, न अग्नि-होत्र आदि पञ्च महायज्ञों की। तब उस काल में जब राम साक्षात् ही विराजमान थे ये ऋषि मुनि महात्मा, महाराज दशरथ, जनक, माता कौशल्या, सीता आदि राम के चित्र या राम का मन्दिर बनाकर उसमें राम-मूर्ति स्थापित कर पूजा क्यों नहीं करते थे ?*

यज्ञ-याग या एकान्त सन्ध्योपासना की आवश्यकता उन्हें क्यों अनुभव होती थी ? और जब सच में ही वे राम को ईश्वरावतार समझते थे तब उन्हीं की आरती, दर्शन और पूजा-पुजापे से उन्हें एक क्षण के लिये भी विरत होने का अवकाश ही क्योंकर मिल पाता था ?

राम जब चित्रकूट पर माताओं से मिलते हैं तो उन्हें शोकाकुल देखकर समझाते हुए कहते हैं—

"अम्ब ईश आधीन जग, काहु न देइय दोष।

हे मातः ! सम्पूर्ण संसार (जिसमें हम तुम सभी हैं) ईश्वर को अटल कर्म फल व्यवस्था के आधीन है, अतः किसी को दोष नहीं दीजिये। यहां राम का संकेत किस ईश्वर के लिये है ?

(५) इसी अवसर पर श्रीराम पिताजी का मृत्युसमाचार सुनकर अपने प्रेम को मृत्यु का कारण समझ अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं उस समय "मुनिवर बहुरि राम समुझाये" गुरु वशिष्ठ राम को समझाते हैं। यहां गुरु वशिष्ठ द्वारा बताये जाने पर ही पिता की मृत्यु से परि-चित होना (पहले नहीं) उससे दुःखी होना, गुरु वशिष्ठ का राम को ढाढस देना क्या बताता है ?

श्रीराम अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान्

भरत सुभाउ समुझि मन मांहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥
लषण लखेउ प्रभु हृदय खभारी। कहत समय सम नीति विचारी॥

चित्रकूट पर सीताजी का स्वप्न सुनकर राम बेचैन हो उठे। इधर भरत के शीतल और स्नेहिल स्वभाव का मन में विचार करके

---

* फिर „श्रीराम के उत्पन्न होने से पूर्व किसकी उपासना की जाती थी ?

वे और भी अस्थिर चित्त हो गये। उनका चित्त कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रहा। ऐसे समय में लक्ष्मण श्रीराम के हृदय की व्यथा को अनुभव कर समयानुकूल नीति वचन कहते हैं।

अब विचारिये कि क्या यह उदाहरण श्रीराम की अल्पज्ञता, अल्पशक्तिमत्ता और चित्त की अस्थिरता का परिचायक नहीं है ? क्या ऐसे राम को सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी ब्रह्म कहना स्वयं को धोखा देना और आत्म-छलना ही नहीं है ? आप शायद फिर कहें कि श्रीराम तो नाटक कर रहे थे। पर जो लक्ष्मण श्रीराम के हृदय के "खंभार" को देख पाते हैं तथा उन्हें स्वयं विचारपूर्वक समयानुकूल नीति कहते हैं, क्या वे लक्ष्मण भीं यही आत्म-प्रवञ्चना का नाटक कर रहे हैं, जब कि गोस्वामीजी के अनुसार वे श्रीराम को परब्रह्म मानते हैं ? परब्रह्म परमात्मा को लक्ष्मण नीति-उपदेश करें क्या यह बात गले उतरने वाली है ? श्रीराम की अल्पज्ञता और अल्पशक्तिमत्ता की और भी कुछ झांकियाँ देखिये:—

(६) अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर पहुँच राम ऋषि की वन्दना करके कहते हैं:—

"अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही ॥

यहां राम मुनि अगस्त्य से राक्षसों के वध के लिये मन्त्र या वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्र प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं। श्रीराम की अल्पशक्तिमत्ता इससे स्पष्ट है।

(७) श्रीराम सुग्रीव से पूछते हैं—

"कारण कवन बसहु वन, मोहि सन कहु सुग्रीव !

प्रकट है कि राम अपने को ईश्वर नहीं मानते। सुग्रीव के जनाने पर ही वे जान पाते हैं। क्या अब भी तुलसी के श्रीराम सर्वज्ञ ब्रह्म बने रहते हैं ? आप शायद फिर 'नर-लीला' का आश्रय लें ! पर यह नाटक किसके सामने ? यहां तो श्रीराम अनेक प्रसङ्गों में सभी के सामने अपने ईश्वरत्व की घोषणा कर चुके हैं, और सुग्रीव भी

उनके ईश्वरत्व से परिचित हैं, तब यह नाटक है या आत्म-प्रवञ्चना !

(८) बालि-वध का सम्पूर्ण प्रसंग ही यों तो राम की अल्पशक्ति-मत्ता का उद्‌घोष कर रहा है। पर जब राम पिटकर भागे हुए सुग्रीव को कहते हैं—

एक रूप भ्राता तुम्ह दोऊ। तेहि भ्रम ते मारेउ नहि सोऊ ॥

तब तो वे स्वयं खुले शब्दों में अपने भ्रमयुक्त और अल्पज्ञ होने की बात चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं। अवतारवादी मित्रों के पास क्या समाधान है, इसका ? क्या वही नाटक वाला, या और कोई ?

(९) बालि-पुत्र अंगद के समक्ष भी श्रीराम उस समय अपनी अल्पज्ञता को स्वयं स्वीकारते हैं जब वे अंगद से पूछते हैं —

तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाये। कहहु तात कवनीं विधि पाये ॥
सुनु प्रभु शरणागत सुख कारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी ॥

यहाँ राम द्वारा अंगद से रावण के चार मुकुटों के विषय में जिज्ञासा करना और अंगद द्वारा जिज्ञासु राम का समाधान करते हुए बताना कि—आपकी जानकारी या अनुमान ठीक नहीं है। वे मुकुट नहीं राजा के चार गुण हैं। यह सम्पूर्ण प्रकरण क्या बताता है ? क्या अब भी राम सर्वज्ञ परमेश्वर बने रहे ?

(१०) इसी प्रकार एक दो तो नहीं तुलसीकृत रामचरित मानस में ही ऋषियों द्वारा वनमार्ग और निवास-स्थान के विषय में पूछना, सागर के प्रति विनय एवं याचना, सेतु निर्माण में नल-नील का साहाय्य आदि शताधिक प्रसग ऐसे हैं जिनमें राम अपनी अल्पज्ञता और अल्पशक्ति मत्ता को स्वयं स्वीकारते हैं। राजतिलक की पहली रात्रि को जब राम सर्वथा एकान्त में (यहाँ अन्यों के समक्ष प्रदर्शित करने या नाटक करने की बात भी नहीं है) चिन्तन करते हुए कहते हैं कि—

विमल वंश यह अनुचित एकू। अनुज विहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥

उस समय उन्हें क्या आभास मात्र भी था कि प्रातः ही उन्हें आज्ञा मिलेगी।

'तापस वेश विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी ॥

अगले दिन के पट परिवर्त्तन का यदि उन्हें ज्ञान था तो वे इस प्रकार चिन्तन क्यों करते ? उन्हें तो जब सुमन्त प्रातः बुलाने गये हैं, उस समय तक भी कोई ज्ञान नहीं था। राजा दशरथ की उस दुरवस्था का कारण वे कैकेई से पूछते हैं।

(११) इसी प्रकार सीता-हरण के प्रसङ्गमें मारीच और रावण के षड्यन्त्र को न समझ पाना, स्वर्ण मृग के धोखे में आ जाना, सीता के वियोग में इतना अधिक अधीर हो जाना कि जंगल के पशु-पक्षी और वन-लताओं तक से पूछना—"तुम देखी सीता मृगनैनी" यह सब क्या बताता है ? सीता की खोज का सम्पूर्ण वृत्त क्या श्रीराम की अल्पज्ञता का परिचायक नहीं है ?

(१२) लक्ष्मण के शक्ति लग जाने पर श्रीराम का करुण विलाप तो उनके ईश्वरत्व पर काला धब्बा है ही, पर जब वे गो० तुलसीदास के ही शब्दों में कहते हैं—

"जो जनतेउ बन बन्धु बिछोहू" यहाँ 'जनतेउ' यह शब्द क्या बोलता है ? यह स्वयं राम की उक्ति है। उस राम की जिसकी निष्ठा है "नहिं असत्य सम पातक पुंजा" और महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में जिसकी घोषणा है "रामो द्विर्नाभिभाषते" अर्थात् राम दो बातें नहीं कहता। राम यहां स्पष्ट रूप से स्वयं को अल्पज्ञ स्वीकार रहे हैं।

इसी प्रपञ्च में "जो जड़ दैव जिआवै मोही" यह भी श्रीराम की उक्ति है, यहां किस दैव से अभिप्राय है ?

श्रीराम सीमित शक्तिमान् थे—

(१३) रावण-वध के प्रसङ्ग में—

मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तनु तब देखा ॥

यहां रावण को मारने के सभी सम्भव प्रयास करके राम जब बहुत थक गये तब महायता की इच्छा से (कुछ रहस्य जानने या मार्ग-दर्शन पाने की भावना से) उन्होंने विभीषण की ओर देखा। और विभीषण ने भी राम का आशय समझ कर उन्हें रहस्य बोध कराया:—

नाभि कुण्ड पियूष बस जाके। नाथ जिअत रावन बल ताके॥

(१४ सीताजी का समाचार लाने पर श्रीराम जब हनुमान को कहते हैं—

"सुनु सुन तोहि उरिन मैं नाहीं" तब क्या उन्हें अपना ईश्वरत्व स्मरण नहीं रहता ? यहां एक अत्यधिक विचारणीय बात यह है कि अवतारवाद की मान्यता की स्थिति में ये सभी प्रसङ्ग जहां राम-चरित्र की दुर्बलता को कहते हैं, वहां ये ही समस्त प्रसङ्ग मानव श्रीराम के चरित्र की अनुकरणीय विशेषतायें हैं। ईश्वर राम के साथ जो दूषण हैं वही मानव श्रीराम के भूषण हैं।

(१५) अब सिर्फ़ एक उद्धरण और। ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान जब स्वयं पूछते हैं कि क्या आप तीनों देवों में से कोई हैं, क्या आप नारायण हैं, क्या आप परमेश्वर का अवतार हैं ? इन अनेक असम्भव और कल्पित सम्भावनाओं का स्वयं सर्वथा निषेध करते हुए गोस्वामीजी के शब्दों में ही श्री राम कहते हैं—

हँसि बोले रघुवंश कुमारा। विधि कर लिखो को मेटनहारा॥
कौशलेश दशरथ के जाये। हम पितु वचन मानि बन आये॥
नाम राम-लक्ष्मण दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहां हरी निसिचर वैदेही। विप्र फिरहिं खोजत हम तेही॥

व्याख्या की आवश्यकता नहीं, श्रीराम ने स्पष्टतः ही अपने को राज-पुत्र—'मानव' स्वीकार किया है। श्रीराम की यह एक ही उक्ति अवतारवाद की मान्यता को 'शव' तुल्य त्याज्य और जलाने योग्य सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

यह ये कतिपय प्रसङ्ग हैं जिनमें राम स्वयं अपनी अल्पज्ञता और अल्पशक्तिमत्ता का मुक्तकण्ठ उद्घोष करते हुए अपनेको राजकुमार मानव

राम मानते हैं, अब कुछ अन्य पात्रों द्वारा भी अवतारवाद के विपक्ष में कुछ साक्षियाँ सुनें।

'रामचरित मानस' के अन्य पात्रों द्वारा अवतारवाद निषेध

(१) महाराज दशरथ—श्रीराम बचपन से ही पिता के आज्ञाकारी हैं।

आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देख चरित हरषहि मन राजा॥

यहाँ दशरथ के हर्ष का कारण ईश्वर राम के चरित्र हैं, या अपने प्राणप्रिय पुत्र राम के चरित्र ?

ऋषि विश्वामित्र जब यज्ञ-रक्षा के लिये राम-लक्ष्मण को माँगते है, तो दशरथ बड़े सन्तप्त हृदय से कहते हैं—

चौथेपन पायेउ सुत चारी। विप्र कहेउ कहिं वचन विचारी।

यहाँ दशरथ के ये शब्द श्रीराम को पुत्र (मानव) मानकर ही हैं। इस प्रसङ्ग में राक्षसों के विरुद्ध युद्ध करके 'यज्ञ-रक्षा' के विचार से ही दशरथ जी काँप उठते हैं, वे शङ्का करते हैं—

कहं निसिचर अति घोर कठोरा। कहं सुन्दर सुत परम किसोरा।

अन्य अनेक प्रसङ्गों में दशरथ का राम के प्रति यह पुत्र-मोह स्पष्ट बोलता है। पुत्र-स्नेह वश राम को मनुष्य मानकर ही वे राजा जनक के दूत से पूछते हैं—

भैया कहेउ कुसल दोउ बारे! तुम नीके निज नयन निहारे॥
जा दिन ते मुनि गयेउ लिवाई। तब ते आज सांच सुधि पाई॥

इस पुत्र स्नेह की चरम अभिव्यक्ति तो तब मिलती है जब—

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवर विरह, राउ गये सुरधाम॥

स्पष्ट है कि दशरथ का प्राण-त्याग भी इसी पुत्र मोह के कारण हुआ है। यदि महाराज दशरथ श्री राम को ईश्वर समझते तो मरने की अपेक्षा वे जीवित रहना अधिक पसन्द करते। आखिर १४ वर्ष बाद ही सही उन्हें फिर ईश्वर राम के सान्निध्य में रहने का अवसर तो मिलता। सत्य यह है कि श्रीराम द्वारा वन कष्ट सहन का

विचार उनके लिये असह्य था, जो बताता है कि वे राम को अपना पुत्र (मनुष्य) ही मानते थे, ईश्वर नहीं। "मोरे गृह आवा प्रभु सोई।" यह तो गोस्वामीजी ने अपने मिथ्या मनस्तोष के लिये महाराज दशरथ से कहलवाया है। अन्यथा राम को ईश्वर मानने वाले दशरथ यों राम के विषय में चिन्तित और परेशान क्यों होते ?

(२) **कौशल्या**—माता कौशल्या को भी श्रीराम का परब्रह्मत्व यदि स्वीकार होता तो वे अन्य माताओं के साथ राम से इस प्रकार कभी न पूछतीं :

मारग जाति भयावन भारी। केहि विधि तात ताड़का मारी ॥
घोर निसाचर विकट भट, समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥

और न स्वयं ही इस प्रकार अपना समाधान कर लेतीं कि :

सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सुधारे।

यहां वे इन अलौकिक कार्यों के सम्पादन का श्रेय श्रीराम के ईश्वरत्व को नहीं, महामुनि विश्वामित्र की कृपा को देरही हैं। (और ठीक भी है उन्होंने ही श्रीराम को विशेष अस्त्र-शस्त्रादि का विशिष्ट शिक्षण दिया था।)

वन जाते समय वे वन के कष्टों का विचार कर व्याकुल हो जाती हैं और "बहुरि बच्छ कहि, लाल कहि" बेसुध हो जाती हैं तथा वन से लौटने पर राम को देखकर विचार करती हैं।

हृदयँ विचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा ॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे ॥

यहां हृदय' में ऐसा विचारना और भी महत्वपूर्ण है। अन्तर्हृदय से वे राम को ईश्वरावतार नहीं, पुत्र मानती हैं। यद्यपि गोस्वामीजी ने राम जन्म के समय सायुध चतुर्भुज रूप दिखाने की कल्पित योजना की है! पर पवित्र वेद के शब्दों में 'सत्य की शक्तियां

अदृश्य हैं।' स्पष्ट है कि यह सायुध चतुर्भुज रूप की योजना गोस्वामीजी की अपनी घड़न्त है, सत्य घटना नहीं। क्या एक बार राम को परमात्मा के रूप में देख पाने पर (यदि वह सम्भव है ?) कौशल्या अपने को ही धोखा दे पातीं ?

(३) कैकेई—कैकेयी को यदि राम का परब्रह्मत्व एक क्षण के लिये भी स्वीकार होता तो क्या वह निष्ठुर हृदय होकर यह कह पातीं :

माँगउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस वेष बिसेष उदासी। चौदह बरसि राम बनवासी ॥

और क्या भरत के ननसाल से लौटने पर वह पूर्ण आत्म-संतोष के साथ ही यह कह सकती कि:

तात बात मैं सकल सँवारी। भै मन्थरा सहाय बिचारी।
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पग धारेउ ॥

गोस्वामीजी के ही पूरे राम चरित मानस में इसका आभास नहीं मिलता कि कैकेयी ने कहीं भी श्रीराम के परब्रह्मत्व को स्वीकार किया है।

सीताजी की माता एवं सीताजी—राम जब धनुष तोड़ने के लिये जाने लगते हैं तो सीताजी की माता श्रीराम के सुकोमल शरीर को देखकर शङ्का (!) करती हैं :

रावन बान छुआ नहिं चापा, हारे सकल भूप करि दापा।
सो धनु बालकुँवर कर देहीं बाल मराल कि मन्दर लेहीं ॥

उसी समय सीताजी भी सामान्य नारी की भांति ही मन ही मन अत्यन्त व्याकुल होकर जिस-तिज देवता से (गोस्वामीजी के अनुसार) प्रार्थना करती हैं कि शंकर चाप की गुरुता कम कर दें:—

तब रामहिं बिलोकि बैदेही, सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही।
मन ही मन मनाव अकुलानी, होहु प्रसन्न महेस भवानी।
करहु सफल आपनि सेवकाई, मम हित हरहु चाप गरुआई ॥

क्या यहाँ सीताजी श्रीराम को ईश्वर समझ रही हैं ? और यह तो मानसिक प्रार्थना है, बाह्य नाटक भी नहीं। विवाह के पश्चात् भी वन-गमन के प्रसंग में वे कहती हैं—

मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू, तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू।

इसी प्रकार अन्य अवसरों पर सर्वदा सीताजी ने एक पतिव्रता भारतीय नारी का आदर्श ही उपस्थित किया है। राम के ईश्वरत्व का आभास भी उनकी पतिभक्ति में नहीं मिलता।

(५) **विश्वामित्र**—यदि विश्वामित्र राम के ईश्वरत्व को अपने हृदय में मानते होते तो क्या यह दृश्य दृष्टिगत हो पाता—

मुनिवर शयन कीन्ह तव जाई, लगे चरण चापन दोउ भाई।

और न वे ऐसा ही कहते—

सीय स्वयम्वर देखिय जाई। ईश काहि धौं देहि बड़ाई॥

यहाँ एक तो राम से भिन्न ईश्वर की अदृश्य सत्ता को विश्वामित्र स्वीकार रहे हैं, द्वितीय वे गोस्वामीजी के ईश्वर राम के साथ होते हुए भी शंकित हृदय हैं कि पता नहीं धनुष तोड़ने का गौरव परमात्मा किसे प्राप्त कराते हैं ?

महाराज जनक को परिचय देते हुए वे कहते हैं—

रघुकुल मणि दशरथ के जाये। मम हित लागि नरेश पठाये॥

क्या ब्रह्म ज्ञानी विश्वामित्र का यह कथन असत्य है ?

(६) **भरतः**—गोस्वामी ने राम के ईश्वरत्व का सबसे गहरा रंग भरत के चरित्र में चित्रित किया है। पर वे भी कहते हैं:—

राम विरोधी हृदय तें, प्रकट कीन्ह विधि मोहि।

यहाँ सृष्टि रचयिता विधाता राम से भिन्न सत्ता है, राम नहीं।

(७) **निषादः**—लक्ष्मण के साथ विचार करते हुए राम-सखा निषाद कहते हैं—

रामचन्द्र पति सो वैदेही। सोवत महि विधि वाम न केही।

सिय रघुवीर कि कानन जोगू। कर्म प्रधान सत्य कह लोगू॥

स्पष्ट है कि विश्वविधाता, विश्व नियामक, अखिल ब्रह्माण्ड-पति राम से भिन्न कोई और महती शक्ति एवं सत्ता है, श्रीराम और जानकीजी भी जिसकी व्यवस्थाके आधीन हैं। युवराज राम और सीता-देवी वन के योग्य नहीं हैं, पर ईश्वर की कर्मफल-व्यवस्था तो अटल है। उसी के अधीन राम-सीता भी हैं। राम का ईश्वरत्व यहाँ सर्वथा लुप्त है। और जब निषाद राम-सीता के इस कष्ट के लिऐ कैकेयी को दोषी ठहराते हैं :—

केकय नन्दिनि मन्दमति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहि रघुनन्दन जानकिहिं, सुख अवसर दुख दीन्ह ॥

(८) लक्ष्मण:—तो लक्ष्मण तुरन्त कहते हैं:—

कोउ न काउ सुख-दुःख कर दाता। निज कृत कर्म भोगु सब भ्राता ॥
अस विचारि कीजिय नहिं रोषू। बादि न काहुहि दीजिय दोषू ॥

लक्ष्मण के शब्दों में श्री राम और सीता का यह वनवास उनके पूर्व जन्मों के कर्मों का प्रतिफल ही है।*

पीछे हम विचार कर चुके हैं कि चित्रकूट पर सीताजी के स्वप्न को सुनकर जब राम के हृदय में 'खँभार' होता है तो लक्ष्मण उन्हें समयानुकूल न ति कहते हैं। इसी प्रकार समुद्र के प्रति राम विनय के प्रसङ्ग में:—

मन्त्र न यह लछिमन मन भावा। राम वचन सुनि अति दुःख पावा ॥

तथा "दैव-दैव आलसी पुकारा।" कह कर तो वे राम की इस सत्याग्रह नीति का स्पष्ट विरोध करते हैं। इन सभी प्रसंगों में राम के ईश्वरत्व की छाया भी लक्ष्मण के हृदय में कहीं दीख पड़ती है ?

९—वशिष्ठ—श्रीराम को विद्या पढ़ाने, अनेक अवसरों पर उप-

---

* पर कैसे आश्चर्य की बात है कि एक ओर ऐसा कहकर यहीं इसी प्रसङ्ग में लक्ष्मण द्वारा राम के परब्रह्मत्व का प्रतिपादन भी गोस्वामी तुलसी-दास ने कराया है ! कैसा बहुरूपिया और कैसी दुरंगी चाल है यह !!

देश करने के तो अनेक प्रसंगोंसे वशिष्ठजी सम्बन्धित हैं ही। चित्रकूटपर वे भरत को कहते हैं:—'सुनहु भरत भावी प्रबल...विधि हाथ'

यहां भावी या कर्मफल की प्रधानता मानते हुए समस्त सृष्टि-क्रम के सञ्चालकके रूप में वे राम से भिन्न 'विधाता' के अस्तित्व और शक्ति को स्वीकारते हैं।

(१०) सुग्रीव—

नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा।।
लोभ पास जेहिं गर न बधावा। सो नर तुम्ह समान रघुराया।।

यहां सुग्रीव स्वीकारता है कि जिसने काम, क्रोध और लोभ पर विजय पाली हैं, हे राम! वह मनुष्य आपके समान है। कितना सत्य कथन है यह! हर व्यक्ति काम क्रोधादि शत्रुओं को जीत कर देवत्व या महापुरुषत्व को पा सकता है, राम के समान बन सकता है। ईश्वर के समान तो कोई बन नहीं सकता, वह तो अद्वितीय है। स्पष्ट है कि सुग्रीव के इन शब्दों में भी राम के ईश्वरत्व का निषेध है।

(११) विभीषण–राम-रावण युद्धके प्रसंग में जब विभीषणने देखा:

रावन रथी विरथ रघुवीरा, देखि विभीषन भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा, वन्दि चरन कहि सहित सनेहा।
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना, केहि विधि जितव बीर बलवाना।

यहाँ विभीषण का अधीर होना, सन्देह युक्त होना और यह प्रश्न करना कि बिना रथ और पदत्राण (जूतों) के वे बलवान् रावण को कैसे जीत सकेंगे, क्या बताता है? क्या यह अवतारवाद की मौत का डिण्डिमघोष नहीं है?

और श्रीराम भी इस प्रश्न के उत्तर में सच्चे 'विजय रथ' का वर्णन करते हुए अपने को ईश्वर न बता कर महामानव के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। विभीषण के इस प्रकार सन्देह व्यक्त करने पर वे यह नहीं कहते—विभीषण! क्या तुम भूल गये कि मैं ईश्वरावतार

हैं ? जिस प्रकार ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान् के प्रश्नों के उत्तर में वे अपना सत्य, सरल और संक्षिप्त परिचय—"कौशलेश दशरथ के जाये" कहकर देते हैं, यहाँ भी महापुरुषों के पास जो अनेक-अनेक सद्‌गुण, साधना और ईश्वर भक्ति रूप विशेषताओं के अस्त्र-शस्त्रादि होते हैं, उन्हें ही अपनी विजय के साधन के रूप में उपस्थित करते हुए कहते हैं—

महा अजय संसार रिपु, जीत सकइ सो वीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर।।

श्रीराम को आत्म-विश्वास है कि वे एक आर्य हैं। ईश्वर के अमृत पुत्र हैं। उनका जीवन-पट इन्हीं सद्‌गुणों के ताने-बाने से निर्मित है। अतः उनकी विजय निश्चित है। मेरे राष्ट्र पुरुष प्यारे राम आप सचमुच धन्य हैं।

श्रीराम यहाँ "ईस भजन सारथी सुजाना" कहते हैं, 'राम भजन या मोर भजन नहीं। गोस्वामीजी द्वारा घड़े गये भावुकतापूर्ण अथवा अति रञ्जित प्रसंगों के अतिरिक्त कथा के मूल प्रवाह में 'राम चरित मानस' में भी हम श्रीराम को एक महामानव के रूप में ही पाते हैं। इस प्रकार उनमें जहाँ अनेक २ महापुरुषोचित विशेषतायें हैं, वहाँ मानव सुलभ कुछ दुर्बलतायें भी है जो उनके सहज मानव स्वरूप का शृंगार ही हैं। कथा के इस मूल प्रवाह में श्रीराम ने इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर जहां भी दिये हैं, गोस्वामीजी को भी बरबस सत्योक्ति को ही प्रस्तुत करना पड़ा है।

(१२) देवगण—श्रीराम के उक्त विजय रथ वर्णन से शायद सन्दिग्ध हृदय विभीषण को तो कुछ समाधान मिल गया पर देवगण सन्तुष्ट नहीं हुए। अतः—

देवन्ह प्रभुहिं पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ विसेखा।।
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा।।

(१३) ऋषि-मुनि—वशिष्ठ और विश्वामित्र के अतिरिक्त भरद्वाज, अत्रि, वाल्मीकि एवं अगस्त्य आदि ऋषियों के आश्रमों में पहुँच कर

श्रीराम उन सबका पद-वन्दन करते हैं। वे राजा राम का आतिथ्य करते हैं, उन्हें वन मार्ग बताते हैं, वहां की स्थिति का परिचय कराते हैं, निवास स्थान बताते हैं, अस्त्र शस्त्रादि का शिक्षण देते हैं और अनेक वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्रादि देते हैं (मन्त्र-दान करते हैं) यह सब क्रिया-कलाप क्या बताता है ?

स्पष्ट है कि 'राम चरित मानस' में गोस्वामीजी द्वारा खड़े किये गये अवतारवाद के नकली पौराणिक किले पर ये सम्पूर्ण उदाहरण वैदिक बम' के तुल्य हैं। अवतारवाद के घोर घटाटोप के बीच भी स्वयं राम तथा अन्य विविध पात्रों द्वारा प्रस्तुत यह उक्तियाँ सूर्य की प्रखर किरणों के समान हैं जो सत्य का सन्दर्शन कराने में समर्थ हैं।

जनता की अदालत में !

हम प्रति दिन देखते हैं कि अदालत में जब किसी केस पर विचार चलता है तो वादी प्रतिवादी अपने-अपने पक्ष को प्रस्तुत करते हैं। पक्ष-विपक्ष में साक्षियाँ भी प्रस्तुत होती हैं। पर हम जानते हैं कि एक साक्षी अन्त तक जिस पक्ष का वह होता है अपने प्रत्येक कथन में उसी पक्ष का समर्थन करता है। जो साक्षी कभी एक पक्ष का समर्थन करे कभी दूसरे का उसका झूठा होना स्वय सिद्ध है। 'राम चरित मानस' के प्राय: सभी पात्र (श्रीराम तथा अन्य भी) गोस्वामीजी के हाथों में पड़कर जहाँ अवतारवाद का समर्थन करते हैं, जैसा कि हम पिछले पृष्ठों में 'मानसकार का दुराग्रह' शीर्षक में देख चुके हैं, वहाँ प्राय: वे ही सब पात्र अपनी स्वतन्त्र स्थिति में—कथा के मूलप्रवाह में अन्तर्हृदय से अवतारवाद का खुला खण्डन कर रहे हैं। तब सत्य निर्णायक जनता में यदि इतना विवेक है कि वह इन्हीं साक्षियों से सत्य सन्दर्शन कर सके तो सर्वोत्तम अन्यथा उसे 'राम चरित मानस' को इन साक्षियों की दो बयानियों के कारण उन्हें असत्य अथवा कम से कम सन्दिग्ध मानकर श्रीराम चरित के आदि काव्य

'वाल्मीकि रामायण' उत्तर राम चरित एवं महावीर चरित आदि की साक्षियों द्वारा सत्य निर्णय कर अवतारवाद के पाप से मुक्त होने का सत्प्रयास करना ही चाहिये।

[एक-युक्ति और उसकी अयुक्तता]

नरलीला—रहस्य

रामचरित मानस से ही उद्धृत इन परस्पर विरोधी उद्धरणों के विषय में अवतारवाद के पोषक बन्धु शायद यह युक्ति देना चाहेंगे कि यह सब तो श्रीरामकी 'मनुज अनुहारी' या 'नर अनुसारी' लीलायें थीं। वे तो परब्रह्म थे पर नर का अभिनय या स्वाँग कर रहे थे। गोस्वामीजी के शब्दों में शायद वे कहेंगः—

जथा अनेकन रूप धरि नृत्य करै नट कोय।
जो-जो भाव दिखावई आपु न हो पुनि सोय ॥

अथवा "नट इव कपट चरित करि नाना"

हमारे मित्रों की इस युक्ति में किसी सीमा तक कुछ दम होता यदि श्रीराम अपने परब्रह्मत्व को अभिनयकर्त्ता या स्वाँग करने वाले की तरह गुप्त रखते (जैसा कि शंकरजी का विचार था) अर्थात् बीच-२ में राम तथा अन्य पात्र उनके परब्रह्मत्व की घोषणा न करके अन्त तक कपट चरित्र ही करते रहते।

अभिनयकर्त्ता आदि से अन्त तक एक ही भूमिका को निभाता है। मान लीजिये मनोहरलाल नामक एक व्यक्ति 'हरिश्चन्द्र' नाटक में राजा हरिश्चन्द्र को भूमिका प्रस्तुत कर रहा है तो नाटक के आदि से अन्त तक वह अपने को हरिश्चन्द्र ही कहेगा, हरिश्चन्द्र ही मानकर चलेगा, नाटक के अन्य पात्र भी उसे हरिश्चन्द्र ही मानकर चलेंगे, तद्वत् ही व्यवहार करेंगे। सम्पूर्ण व्यवहार, कार्यकलाप, वेश-भूषा, रीति-नीति में मनोहरलाल स्वयं को हरिश्चन्द्र ही प्रस्तुत करेगा ऐसा नहीं हो सकता कि मनोहरलाल कभी तो रंगमंच पर राजा हरिश्चन्द्र

की भूमिका प्रस्तुत करने लगे और कभी अपने असली रूप मनोहर-लाल की अमीरी-गरीबी या दुर्गुणों और सद्गुणों की।

दर्शकों को तो इसका भान ही नहीं होता कि किस व्यक्ति ने हरिश्चन्द्र की, किसने शैव्या की, किसने विश्वामित्र और किसने रोहिताश्व की भूमिका प्रस्तुत की। वे तो उन व्यक्तियों को हरिश्चन्द्रादि मानकर ही नाटक का आनन्द और उससे प्रेरणा या सद्शिक्षा लेते हैं।

इस विवेचन के आधार पर, अभिनय-कला की इस कसौटी पर भी मानसकार की मान्यतायें खरी नहीं उतरतीं। राम स्वयं कभी अपने को परब्रह्म के रूप में प्रकट कर देते हैं, कभी नर अनुसारी कार्य करने लगते हैं। और स्वभावतः अन्य पात्र भी विभिन्न अवसरों पर इसी दुरंगी चाल में रत पाये जाते हैं। उसी रंगमंच पर कभी ऋषि मुनियों की पद-वन्दना राम करते हैं, तो कभी ऋषि मुनि राम का पद वन्दन करने लगते हैं। कभी देवता राम को आशीर्वाद देते हैं तो कभी उनकी अर्चना करने लगते हैं, श्रीराम जिस क्षण शबरी को अपनी 'नवधा-भक्ति' का उपदेश कर रहे हैं। उसी क्षण ही तुरन्त अल्पज्ञ मानव की भांति पूछते हैं—"हे गज गामिनि (!) शबरी क्या तुझे जानकी का कुछ पता है। यदि ज्ञात हो तो मुझे बतलादे। एक क्षण में ही अपनी भक्ति के उपदेश कर्त्ता श्रीराम का परब्रह्मत्व कहाँ छिप गया ? फिर गोस्वामीजी के राम ही यह विचित्र 'नरलीला' नहीं करते इस आत्म-प्रवञ्चना और झूठ के व्यापार में गोस्वामीजी ने अपने सहित रामचरित के सभी पात्रों को भागीदार बना लिया है। प्रश्न है कि पौराणिक संस्कार वशात् गोस्वामीजी ने अपने मनस्तोष के लिए श्रीराम और रामायण के अन्य पात्रों का जो यह हास्यापद स्वाँग बनाया है वह कहाँ तक न्याय-संगत है ?

स्पष्ट है कि यह स्वांग या बहुरूपियापन महामानव, पुरुष-रत्न महात्मा राम के साथ घोर अन्याय है ! हम भूलें नहीं:—

निर्विकार नित एक रस, धरैं न रूप अनेक।
अटल अचल जिसके नियम, सज्जन करें विवेक ॥

गोस्वामीजी के शब्दों में ही—"उघरहिं अन्त न होय निबाहू" अब इस प्रकाश युग में अवतारवाद की पोल खुल चुकी है। उसकी अन्त्येष्टि में ही राष्ट्र और मानवता का कल्याण है।

—:०:—

मानस के राम

गोस्वामी तुलसीदास ने पौराणिक संस्कार वशात् अपने मनस्तोष और उससे भी अधिक पौराणिक भक्तिवाद के प्रचार के लिये महर्षि वाल्मीकि के राष्ट्र-पुरुष नर-रत्न राम और महाकवि भवभूति के युग निर्माता महामानव राम पर परब्रह्मत्व लादने का जो दुराग्रह किया है उससे वे स्वयं ही अपने निर्मित जाल में फँस गये हैं। उन्हें मानव राम का चरित्र चित्रण भी करना है, बिना इसके 'राम चरित मानस' यह संज्ञा ही निरर्थक हो जाती है और साथ ही पुराणकारों का श्राद्ध भी करना है। यही कारण है कि राष्ट्र पुरुष राम के तेजस्वी चेहरे पर वे पदे-पदे ईश्वरत्व की नकाब चढ़ाते चलते हैं। परिणाम में हम देख सकते हैं कि मानसकार के राम के चरित्र में मानवीय सद्गुणों की वह सुगन्ध, वह दीप्ति और तेजस्विता नहीं रह पाई है जो वाल्मीकि और भवभूति के राम में मिलती है।

मानस के राम में आदर्शवत्ता और न्याय प्रियताका अभाव!

वाल्मीकि और भवभुति के महापुरुष राम मानवीय गुणों की मर्यादा स्थापित करने वाले नर चन्द्रमा थे, 'पूजिअ विप्र सील गुन हीना' का उपदेश करने वाले गोस्वामीजी के हाथ की कठपुतली

रूप भगवान् नहीं। न वाल्मीकि के राम मानसकार के राम की भांति आदर्शवत्ता और न्यायप्रियता से सर्वथा शून्य ये शब्द ही कह सकते हैं–

भगतिवन्त अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥

और न वे यह कहेंगे—

कोटि बिप्र बध लागहि जाहू। आए सरन तजउँ नहिं ताहू॥

मानसकार जब ग्रन्थ के आरम्भ में ही लिखते हैं कि :

रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सय बार हिये की॥

तो वे स्वयं चीख-चीखकर श्रीराम में आदर्शवादिता, समदर्शिता और न्यायशीलता के अभाव को घोषित करते हैं।

मानस के राम में मानवहृदय और मानवता का अभाव!

अपने नर-वेश के स्वांग की रक्षा के लिए मानस के राम ने लक्ष्मण को शक्ति लगने पर मनुष्यों की भाँति विलाप किया था, सीता-हरण के पश्चात् महाविरही और अत्यंत कामी की भांति विलपते हुए उन्होंने सीता की खोज की थी, परन्तु वह विलाप-कलाप तो बहुरूपिये राम का था। उस मानव-शरीर के भीतर मानव-हृदय नहीं था। मानस के राम तो परब्रह्म थे, मानव नहीं थे, केवल मानव का स्वांग रचा था उन्होंने। अस्तु, वे प्राकृत मनुष्य की भाँति कहते और करते तो अवश्य थे, परन्तु मानव-हृदय नाम की वस्तु उनके पास न थी। उनके समस्त क्रिया-कलाप में बहुरूपियापन था। मानव-हृदय की एक विशेषता करुणा और उदारता है। मानस के भगवान् राम में करुणा और उदारता की कमी हो, सो बात नहीं है, वे तो करुणा-निधान ही ठहरे! परन्तु उनकी करुणा और उदारता मानव हृदय की करुणा और उदारता से नितांत भिन्न है। तुलसीदासजी के राम तो कारणरहित दयालु हैं और सभी पर दया करते हैं, यहाँ तक कि 'खल मनुजाद द्विजामिष भोगी' राक्षसों को भी वे ऋषि-दुर्लभ परमपद देते हैं, परन्तु मानव-हृदय की वह उदारता जो बाल्मीकि-रामायण के राम अथवा बँगला के अपूर्व महाकाव्य 'मेघनाद-बध' के राम में है, वह राम-चरित-मानस के राम में कहां?

बाल्मीकि-रामायण में एक दिन रावण घमासान युद्ध में बिल्कुल श्रीहीन हो गया था। वह लक्ष्मण को मूर्छित कर राम की अगणित सेना को विनष्ट कर अन्त में राम के हाथों परास्त हुआ। उसके मुकुट कट कर पृथ्वी पर गिर पड़े, उसके मस्तक पर लगा हुआ स्वर्णछत्र शीर्ण शलाका के समान टूटकर गिर पड़ा और रामचन्द्र के बाणों से विदग्ध होकर रावण को भागने के लिए मार्ग भी नहीं मिला। उस समय श्रीरामचन्द्रने रावण से कहा था, "हे राक्षस, तुम युद्ध में हमारी बहुत सी सेना को नष्ट कर बिल्कुल थक गए हो। हम परिश्रांत शत्रु से नहीं लड़ना चाहते। तुम आज रात को घर जाकर आराम करो, कल बलवान् होकर हमसे पुनः युद्ध करना।"

मानस में कौतुकप्रिय भगवान राम तो अवश्य हैं परन्तु राम की यह उदार वीर मूर्ति कहाँ है? 'मेघनाद-वध' काव्य में मेघनाद-वध के उपराँत रावण अपने मृत पुत्र का विधिवत् अन्तिम संस्कार करना चाहता है, इसीलिए वह सात दिन तक युद्ध स्थगित रखने की प्रार्थना लेकर दूत भेजता है। उस दूत से सहृदय मानव राम का उत्तर सुनिए :

"मेरा महावैरी है—

सारण, तुम्हारा प्रभु रावण, तथापि मैं दुःखित हूं
दुःख यह देखकर उसका! राहुग्रस्त रवि को निहार
कर किसकी, छाती नहीं फटती है? उसके सुतेज से
जलता जो वृक्ष है, मलीन उस काल में होता वह
भी है! पर अपर बिपत्ति में मेरे लिए एक से हैं!
लौट स्वर्ण लंका में जाओ सुधि सैन्ययुत सात दिन
अस्त्र मैं धारण करूँगा नहीं।"*

यह है उदार मानव-हृदय! रावण महावैरी है तो क्या हुआ, महावैरी का पुत्र-शोक क्या पुत्र-शोक नहीं होता? राम अपने महा-

* मेघनाद वध महाकाव्य ('मानस दर्शन' से साभार)

वैरी के दु:ख से भी दुखित हैं। उन पर स्वयं दु:ख का कितना भार है और उस दु:ख का उत्तरदायित्व भी सब रावण पर ही है, फ़िर भी वे रावण के दु:ख से दुखी हैं। यही तो मानवता है। परन्तु मानस के राम में यह मानव-हृदय कहाँ है? यह सत्य है कि उन्होंने अत्यंत क्रोधी और अधमशिरोमणि रावण को भी परमपद दिया, परन्तु यह तो तुलसी के भगवान राम की करुणा है, मानव राम की मानवता नहीं।

मानस के राम में शील का अभाव !

'हनुमन्नाटक' में बालि को राजनीतिक कारणों से मारने के कारण राम के हृदय में एक ग्लानि उत्पन्न हुई थी, इसीलिए उन्होंने करुणा और विषाद से लक्ष्मण से कहा था कि "तात लक्ष्मण! पर्वत की गुफाओं में अपनी योनि के लिए विहित परम सुख का अनुभव करते हुए महावीर निरपराध बालि को मारकर मैं अभागा किस प्रकार जानकी के सुख को भोग सकूँगा।" और जब प्राण त्यागने की इच्छा करते हुए बालि ने राम से पूछा था कि, "हे राघव आपके जिस कार्य को सुग्रीव कर सकता है उसको क्या मैं नहीं कर सकता था, फिर बिना अपराध मुझे आपने किस कारण मारा।" तब नेत्रों में आँसू भर कर राम ने कहा था कि 'हे इन्द्रनंदन बालि! जब तू मुझ पातकी निरपराधी को सुख की इच्छा से सोते हुए मारेगा, तभी मेरे चित्त की शुद्धि होगी। इस तेरे मारने के अपराध से अब फिर मुझे जानकी का विरह न हो।" परन्तु मानस के राम में तो कहीं ग्लानि का लेश भी नहीं। जब धराशायी बालि ने 'गुसाईं' सम्बोधन कर उनसे व्याध के समान अपनी हत्या करने का कारण पूछा था, तब भी भगवान राम ने 'शठ' और 'मूढ़' कहकर ही उसका उत्तर दिया था। एक तो राम ने स्वयं अधर्म किया कि छिपकर एक दूसरे योद्धा से युद्ध करते हुए बालि को व्याध के समान मारा और उस पर उसे डाँट-फटकार भी दी। उत्तररामचरित के मानव राम से

ऐसा सम्भव न था। उत्तररामचरित और महावीर चरित के राम 'मानव' हैं, इसीलिये वे शीलनिधान हैं, जबकि मानस के राम शील-निधान नहीं, कौतुक प्रिय भगवान हैं। परशुराम संवाद और शूर्पणखा के नाक-कान कटने के प्रसंग में भी मानस के राम द्वारा शील-निर्वाह नहीं हुआ।

मानस के राम शक्तिमान् नहीं हैं !

राक्षसराज रावण को राम ने अवश्य सम्मुख समर में धर्मयुद्ध करके मारा था, परन्तु यह रावण वह अतुलित बलशाली रावण नहीं जान पड़ता जिसका बध करने के लिए ही उनका अवतार बताया है। यह रावण तो हनुमान की एक मुष्टिका से ही मूर्च्छित हो जाता है। रावण द्वारा छोड़ी हुई ब्रह्मदत्त प्रचंड शक्ति लगने से जब लक्ष्मण मूर्च्छित हो धराशायी हो गए और रावण उन्हें उठाने का असफल प्रयत्न कर रहा था, तब :

देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥

यह रावण तो हनुमान की तुलना में भी नहीं ठहर पाता। रावण के मुष्टि-प्रहार से हनुमान मूर्च्छित होना तो दूर रहा, भूमि पर भी नहीं गिरे, परन्तु हनुमान के प्रहार से रावण मूर्च्छित भी हो गया। इतना ही नहीं, जिन मूर्छित लक्ष्मण को रावण प्रयत्न करके भी न उठा सका उन्हें हनुमान अनायास उठाकर राम के पास तक ले आये। ऐसे रावण का वध करके राम ने किसी विशेष वीरत्व का परिचय नहीं दिया। यह सत्य है कि अंगद ने रावण को सजीव कज्जल गिरि जैसा विशालकाय देखा था :

भुजा विटप सिर शृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना।
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कदरा खोह अनुमाना ॥

परन्तु जब उसी पर्वताकार रावण के सामने वह तुच्छ बंदर इस प्रकार उद्दंडता दिखाता है कि :

रे त्रियचोर कुमारग गामी। खल मल रासि मंदमति कामी॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि काल बस खल मनुजादा॥
मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥
अस रिस होत दसउ मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं॥

और ऐसे कटु वचन कहकर दंड पाना तो दूर रहा 'रिपु बल धरषि हरषि कपि' सकुशल राम के पास पहुँच गया, तब ऐसा जान पड़ता है कि रावरण का वह पर्वताकार शरीर केवल देखने भर को था और उसके गिरि-कंदरा-से बीस कान केवल कटु वचन सुनने के लिए ही थे। वह रावरण इतना वीर था कि उसे विभीषरण भी गदा के प्रहार से मूर्छित कर सकता था और हनुमान उसके हृदय में पदाघात कर सकता था। विभीषरण के ऊपर छोड़ी हुई शक्ति को अपने ऊपर झेलकर जब लीलाप्रिय भगवान मूर्छित हो गए तब विभीषरण ही उसे ललकार कर गदा प्रहार से मूर्छित कर देता है। ऐसे रावरण का वध करने में श्रीराम की शक्तिमत्ता के दर्शन कहाँ, फिर इतना सब भी तो वे केवल अपने ईश्वरत्व के बल पर ही कर सके!

मानस के राम में वीरोचित सौन्दर्य का अभाव!

इस प्रकार पग-पग पर परमेश्वरत्व का प्रकाश करने वाले सगुरण रूप-ब्रह्म राम में शील का आदर्श और शक्ति की पराकाष्ठा ढूँढ़ना नितांत व्यर्थ है। मानस के भगवान राम में बाल्मीकि के नर-चन्द्रमा राम की वह वैराग्यमिश्रित वीर मूर्ति नहीं मिलती न भवभूति के लोकोत्तर गरिमा-सम्पन्न राम का दर्शन होता है। मानस के भगवान राममें यदि किसी विभूति की पराकाष्ठा मिलती है तो वह केवल सौन्दर्य की, परन्तु यह सौन्दर्य बाल्मीकि के राम का वह कठोर सौन्दर्य नहीं है जिसके विषय में माता कौशल्या ने कहा था:

महेन्द्रध्वजसंकाशः क्व नु शेते महाभुजः।
भुजं परिघसंकाशमुपाध्याय महाबलः॥*

* इन्द्र की ध्वजा के समान उन्नत देह रामचन्द्र अपने परिघ के तुल्य कठिन बाहु का सहारा लेकर किस प्रकार शयन करेंगे?

और न भवभूति के राम का 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' वाला सौन्दर्य ही है। मानस के राम का सौन्दर्य तो वह नवनीत-कोमल सौन्दर्य है जिसका आदर्श पौराणिक कामदेव और रति हैं। मानस के राम में सर्वत्र वही 'कोटि मनोज लजावनहारा' सौन्दर्य दिखाई पड़ता है जिसे देखकर जीव-मात्र चित्र-लिखे-से खड़े रह जाते हैं, कोई प्रेरणा नहीं ले पाते।

मानस के राम में मर्यादावत्ता का अभाव !

कुछ विद्वानों का मत है कि रामचरित-मानस में राम का आदर्श चरित्र चित्रित किया गया है—वे आदर्श पुत्र हैं, आदर्श बंधु हैं, आदर्श शिष्य हैं, आदर्श पति हैं, आदर्श मित्र और आदर्श शत्रु हैं। परन्तु जो बात प्रायः लोग भूल जाते हैं वह यह है कि तुलसीके राम मानव नहीं स्वयं परब्रह्म परमेश्वर हैं और अपने भक्तों को सुख देने के लिए ही उन्होंने मानव-रूप का स्वांग धारण किया है। चरित्र-चित्रण तो मानव का होता है, जो भगवान हैं उनका चरित्र-चित्रण कैसा, वे तो भक्तों को सुख देने के लिए विविध लीलाएँ किया करते हैं। उनकी लीलाओं का ही वर्णन किया जा सकता है, उनका चरित्र-चित्रण नहीं किया जा सकता। आदर्श पुत्र और बंधु, शत्रु और मित्र के रूप में आदर्श चरित्र का चित्रण महर्षि बाल्मीकि ने अपने मानव राम का किया था, तुलसीदास ने भगवान राम का चरित्र चित्रित नहीं किया केवल उनकी लीलाओं का विस्तार प्रकट किया।

देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप, अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥

यह आदर्श पुत्र का चरित्र नहीं है केवल कौतुकप्रिय भगवान की एक लीला है।

तुलसी के राम न तो किसी के पुत्र हैं न बंधु, न तो किसी के मित्र हैं न शत्रु। जननी कौशल्या ने उन्हें पुत्र समझने की भूल की थी, परन्तु भगवान राम ने उन्हें अपना वास्तविक स्वरूप दिखाकर उनकी भ्रांति मिटा दी। सुग्रीव ने उन्हें अपना मित्र समझा था, परंतु उसे भी जब अपनी भ्रांत धारणा का बोध हुआ तब उसने भगवान राम से प्रार्थना की थी कि :

अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जो दाया ॥

भरत और लक्ष्मण ने तो राम को कभी अपना बंधु समझा ही नहीं बचपन ही से उन्हें परब्रह्म परमेश्वर और अपना साहिब तथा स्वामी मानते रहे।

राम वशिष्ठ के कैसे आदर्श शिष्य थे इसका पता स्वयं वशिष्ठ जी के शब्दों में लीजिए। राम-राज्य के पश्चात् वशिष्ठजी श्रीराम से कहते हैं कि :

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म-जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो तुलसीके राम को आदर्श पुत्र, बंधु और आदर्श मित्र आदि मानते हैं वे बहुत बड़ी भूल करते हैं। मानस के राम तो गुरु, मित्र, बन्धु आदि कोई नाता ही नहीं मानते, वे तो केवल एक ही नाता मानते हैं—वह है भक्ति का नाता।

दशरथ के चरित्र से यह बात अत्यंत स्पष्ट हो जाती है। दशरथ बड़े ही धर्मात्मा और प्रतापी राजा थे और जन्म-जन्मांतर से राम के भक्त रह चुके थे। पर 'खल मनुजाद द्विजामिष भोगी' को भी परमपद देने वाले भगवान राम ने दशरथ को मोक्ष अथवा परमपद नहीं दिया उसका कारण यही है कि उन्होंने सेवक-सेव्य-भाव से भगवान राम की भक्ति नहीं की, सर्वदा उन्हें अपना पुत्र मानकर वात्सल्य का स्नेह ही देते रहे। मरने के बाद भी उनका पुत्र-स्नेह ज्यों का त्यों बना रहा, तभी तो :

सुन सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी । नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी ॥

अस्तु, राम ने दशरथ का यह असाध्य अज्ञान देखकर :

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना । चितइ पितहिं दीन्हेउ दृढ़ ग्याना ॥

अर्थात् उन्हें अपने परब्रह्म स्वरूप का दृढ़ ज्ञान करा दिया— उनके मन में प्रेरणा कर दी कि :

मानहुँ एक भगति कर नाता ।

तब कहीं उन्हें चेत हुआ और

बार बार करि प्रभुहिं प्रनामा । दसरथ हरषि गए सुरधामा ॥

अर्थात् पुत्र को प्रभु स्वीकार किया और आशीर्वाद न देकर प्रणाम किया तब कहीं उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई । क्या यही है राम की मर्यादावत्ता ?

मानस के राम भोली (मूढ़) जनता को अतिशय विस्मय-विमुग्ध करने में भले ही समर्थ हों, परंतु काव्य और लोकहित की दृष्टि से बाल्मीकि की उस ओजस्वी पुरुष-मूर्ति मर्यादा-पुरुषोत्तम राम अथवा भवभूति के महावीर और लोकोत्तर गरिमासम्पन्न महामानव राम से उनकी तुलना नहीं हो सकती ।

(मानस के) राम-जन्म की पृष्ठभूमि

राम जन्म की पृष्ठभूमि जमाने में जो मनघड़न्त चार कथायें गोस्वामीजी ने दी है वे केवल असंगत, बुद्धि-विज्ञान-सृष्टिक्रम विरुद्ध और हास्यास्पद ही नहीं, अन्यायमूलक और पाप-वर्द्धक भी हैं । हम अति संक्षेप में उन पर यहाँ विचार करेंगे ।

(१) नारद मोह की कथा का सारा प्रसङ्ग कितना हास्यास्पद है ! नारद भक्त के अभिमान-नाश के लिये यह सारा ताना-बाना बुना गया । पर नारद जी को तो क्रोध के महान् दुर्गुण ने और आ दबाया । भगवान् को शाप दे डाला उन्होंने । और शाप भी कैसा विचित्र ! वन्दरवेश से नारद जी तो छले गये थे, भगवान् के लिये वह सहायक बन गया ! है कोई सङ्गति !!

(२) मनु-शतरूपा ने कैसा विचित्र वरदान माँगा है ; एक पिता अपने पुत्र के आचरण से प्रसन्न होकर कहे— तुम कोई इनाम खुद माँगो। और पुत्र कहे— आप मेरे पुत्र बन जाओ। वाह ! देखी पुत्र को सूझ बूझ ! ऐसे हैं भक्तराज मनु और शतरूपा ! जगत्पिता को ही बेटा बना डाला ! क्या लाभ हुआ उन्हें इससे ! क्या आध्यात्मिक विकास हुआ उनका, इससे ?

(३) राजा प्रतापभानु की कहानी तो घोर अन्याय और अनर्थ-मूलक है। सर्वथा निर्दोष और निरपराध प्रतापभानु को गोस्वामी जी ने बड़ी निष्ठुरता से दण्डित कराया है—

बोले विप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह विचार ।
जाइ निसाचर होहु तुम, मूढ़ सहित परिवार ॥

प्रश्न है कि ऐसा महान् धर्मात्मा राजा ऐसा प्रचण्ड राक्षस बन कैसे गया, पूर्व जन्म की वृत्तियाँ कैसे बदल गईं ? ऐसा शाप देने वाले विप्र थे या स्वयं महामूढ़ घोर राक्षस ? राक्षस का जन्म उन राक्षसी वृत्ति के तथाकथित 'विप्रों' को मिलना था या धर्मात्मा प्रतापभानु को ? वाह रे अवतारवाद ! और वाह रे जन्मना ब्राह्मणवाद !

(४) इससे भी घोर घृणित अवतार का कारण है—

जन्म कल्प सुर देखि दुखारे * समर जलन्धर सन सब हारे ।
परम सती असुराधिप नारी * तिहि बल ताहिन जीत पुरारी ॥
दोहा— छल कर टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह ।
जब तेहि जानिव मर्म सब शाप कोप कर दीन्ह ॥

तासु शाप हरि कीन्ह प्रमाना * कौतुक निधि कृपालु भगवाना ।
तहां जलन्धर रावण भयऊ * रण हति राम परम पद दयऊ ।
एक जन्म करि कारण एहा * जिहि लगि राम धरी नर देहा ।

देखी आपने कौतुक निधि कृपालु (!) भगवान् की कृपा और उनका कौतुक। वाह रे ! पौराणिकों के परमात्मा !! तभी उनके

भक्तराज गुसाईं आदि अपने शिष्य-शिष्याओं के साथ यह कौतुक पूर्ण कृपा (!) करते रहते हैं।

गोस्वामी जी ने यहाँ यह नहीं बताया कि जलन्धर की सती पत्नी ने शाप क्या दिया ? पुराणकार के अनुसार विष्णु को शाप मिला—तुम गण्डकी नदी का पत्थर बन जाओ। तभी से विष्णु शालिग्राम बन गये और जलन्धर-पत्नी 'तुलसी' बनी। आज भी शालिग्राम महाराज को तुलसी के संसर्ग से बड़ी प्रसन्नता होती है— 'तुलसी शालिग्राम' के विवाह रचाये जाते हैं। मानो विष्णु को शाप क्या वरदान हो मिल गया !

प्रश्न है कि इस शाप का राम-जन्म से क्या सम्बन्ध ? और जलन्धर का रावण बन कर मोक्ष पाने की क्या तुक, क्या संगति ? ऐसे दुराचारी विष्णु को तो रावण का जन्म मिलना था और धर्मात्मा प्रतापभानु को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का। पर पुराणकारों की लीला जो ठहरी ! गोस्वामी जी जैसे महाकवि तो व्यर्थ ही इन पुराण-कार पोपों के चक्कर में फंस गये। जो भी हो इतना तो स्पष्ट ही है कि राम जन्म की पृष्ठभूमि में दी गईं ये चारों घड़न्त कथायें साफ बताती हैं कि नारद के शाप, विप्रों के शाप और जलन्धर पत्नी के शाप को प्रमाण करने या मनु-शतरूपा को दिये गये विचित्र वरदान की पूर्ति के लिये ही राम-जन्म हुआ 'जब-जब होइ धर्म की हानी," अथवा गीतोक्त "यदा यदाहि०" मुख्य कारण न था, वह तो इन्हीं मुख्य घटनाओं में एक सामान्य कारण पीछे से जुड़ गया।

यहाँ हमने देखा है कि किस प्रकार महान् राम का भव्य चित्र गोस्वामी जी की अवतारवादी तूलिका के स्पर्श मात्रसे सर्वथा श्री हीन और निष्प्रभ होगया है। अब हम विचार करेंगे कि इसी अवतारवाद के काले आवरण के पीछे'मानस' के अन्य सभी प्रमुख पात्रों के मानवीय सद्गुणों का भी किस प्रकार ह्रास होकर वे राम 'गुसाईं' के हाथ की कठपुतली मात्र बनकर रह गये हैं।

* * *

मानस के अन्य प्रमुख पात्र

गोस्वामी जी ने मानस के सभी प्रमुख पात्रों को— चाहे वे देव हों या दनुज, आर्य हों या दस्यु अथवा वानर— राम के भक्तों की टोली के रूप में प्रस्तुत किया है। इन भक्तों में भी श्रेणी-भेद है। गोस्वामी जी के अनुसार जिस भक्त के मस्तिष्क पर राम का परब्रह्मत्व जितना अधिक छाया हुआ है अथवा जिसमें जितनी अधिक दास्य-भावना और दैन्यता है, वह उतना ही आदर्श है, पर मानवीय गुणों, और लोक संग्रह अथवा मानवता की कसौटी पर वह उतना ही अधिक मानवता-शून्य, स्वाभिमान शून्य और स्वतन्त्र व्यक्तित्व हीन है।

महाराज दशरथ— के चरित्र में सच्चे वात्सल्य और पुत्र स्नेह आदि सहज मानवीय गुणों का विकास इसीलिये हो सका है चूँकि उन्होंने अन्तर्हृदय से राम को सदैव पुत्र ही माना है। यद्यपि गोस्वामी जी ने 'मेरे गृह आवा प्रभु सोई' इन शब्दों में उनसे राम के परब्रह्मत्व की घोषणा कराई है, पर उनके अन्तर्मन ने इसे कभी स्वीकारा नहीं है। दशरथ के चरित्र की इस विशेषता के लिये गोस्वामी जी ने उन्हें दण्डित भी किया है (जैसा कि हम पीछे विचार कर चुके हैं)

कौशल्या— राम की जननी है। गोस्वामी जी ने राम द्वारा सायुध चतुर्भुज रूप दिखाने की योजना करके और स्वयं राम के द्वारा अपने ईश्वरत्व का स्मरण कराने का अभिनय कराके माता कौशल्या को भी अपनी भक्त-मण्डली में स्थान दिलाने का निरर्थक प्रयास किया है। सत्य यह है कि गोस्वामी जी के प्रयत्नों के बावजूद भी माता कौशल्या ने राम को अन्तर्हृदय से सदैव पुत्र ही माना है। और तभी वे मानवता का यह अनुपम आदर्श प्रस्तुत करने में सफल हो सकी हैं :

जो केवल पितु आयसु ताता ❊ तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जो पितु मातु कहेउ वन जाना ❊ तौ कानन शत अवध समाना ॥

सीता जी— श्री राम को वे परमात्मा नहीं अन्तर्हृदय से अपना

पति ही मानती हैं और तभी वे भी पति-भक्ति का ऐसा अनूठा आदर्श प्रस्तुत कर पाई हैं, परब्रह्म मानकर जिसे प्रस्तुत कर सकना शक्य ही नहीं था। फिर भी गोस्वामी जी ने उनके मस्तिष्क पर भी राम का ईश्वरत्व लादने का यत्न किया है। उसी का परिणाम है कि सीताजी के अन्य मानवीय गुण सिकुड़ कर रह गये हैं।

लङ्का विजय के पश्चात् जब राम ने सीता को ग्रहण करने में असमर्थता प्रकट की थी, तब बाल्मीकि की सीता का उत्तर सुनिए—

'जैसे नीच जाति के या साधारण पुरुष साधारण स्त्री से रूखे वचन कहते हैं, वैसे ये अयोग्य और दारुण वचन क्या आप मुझे सुना रहे हैं? हे महाबाहो! आप मुझे जैसी समझते हैं वैसी मैं नहीं हूँ। आप मेरी बात पर विश्वास कीजिए*।"

सीता के इस वचन में कितनी तेजस्विता है! मानव-मानव के अंतर्मन में जो आत्माभिमान की एक दीप्ति जलती रहती है, यह उसी का प्रकाश है। परंतु मानस की सीतामें यह स्वाभिमान कहाँ? यह तेज कहाँ? तभी तो भगवान राम का दुर्वाद भी उन्होंने सर माथे चढ़ाया और लक्ष्मण से विनती की कि —

लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह वेगी॥

यह निष्प्राण जानकी पूजने की प्रतिमा भले ही हो, मानवी सीता नहीं।

भरत— मानस के भरत राम के परब्रह्मत्व से सबसे अधिक आक्रान्त प्रतीत होते हैं। मानस के राम को वे शायद इसीसे सर्वाधिक प्रिय हैं। गोस्वामी जी के निकट भरत अद्वितीय भक्त भले हों, परन्तु वे सच्चे अर्थ में 'मनुष्य' कहलाने के अधिकारी नहीं।

---

* किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम्।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव॥
न तथास्मि महाबाहो यथामामवगच्छसि।
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे॥

माता को अवाच्य कहना और कौशल्या के निकट अनेक शपथें खाकर अपने को सब प्रकार से निर्दोष और अपनी ही जननी को अप्रत्यक्ष रूप में सर्वविध दोषी प्रमाणित करना कहां तक मानवीय है, यह सदैव विचारणीय रहेगा। पर इतना ही तो नहीं।

लक्ष्मण-शक्ति के पश्चात् पर्वत-समेत संजीवनी बूटी लेकर लौटते हुए हनुमान के मुख से सीता-हरण और लक्ष्मण-शक्ति की कथा सुनकर भरत के मुख से माता-तुल्य जानकी और भाई लक्ष्मण के लिए एक भी सहानुभूति के शब्द नहीं निकले। उस समय भी भरत अपनी ही चिन्ता में घुल जाते हैं कि :

अहह ! दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकौ काम न आयउँ ॥

कहाँ तो उन्हें लक्ष्मण से सहानुभूति होनी चाहिए थी, कहां वे छोटे भाई की प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं कि लक्ष्मण तो प्रभु के काम आ रहा है परन्तु मैं स्वामी के किसी काम न आया। भरत की इस दास्यभाव की भक्ति में मानवता कितनी संकुचित हो उठी है ! क्या यही भ्रातृ प्रेम का आदर्श है ?

इसी प्रकार ननिहाल मे आने पर राम के वन गमन की बात सुनते ही मानस के भरत 'पितु-मरन' भी भूल जाते हैं। क्या वहां पितृभक्ति की अवज्ञा ही भरत द्वारा नहीं हुई है ! मानसकार ने भरत के चरित्र में मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, मातृ-प्रेम, प्रजा-प्रेम सबके ऊपर मातृभक्ति को नहीं, रामभक्ति को प्रतिष्ठित किया है। स्पष्ट है कि तुलसीदास के भरत पौराणिक भक्ति के आदर्श भले हों, मानवता से युक्त सच्चे 'मानव' नहीं हैं।

लक्ष्मण—राम के निकट रहते हुए भी लक्ष्मण का मन और मस्तिष्क भरत की भाँति राम के ईश्वरत्व से आक्रान्त नहीं है। यही कारण है कि कई प्रसङ्गों में लक्ष्मण में मानव तेज की दीप्ति मिलती है। सागर-विनय के सन्दर्भ में वे स्पष्ट कहते हैं—'दैव दैव आलसी पुकारा'। इसी प्रकार सीता की अग्नि परीक्षा के पूर्व वे राम के दुर्वाद

से प्रसन्न नहीं हुए। इन प्रसंगों में उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व और मानव हृदय के दर्शन होते हैं। परन्तु अन्य प्रसंगों में गोस्वामीजी के हाथों में खेल वे, श्रीराम के परब्रह्मत्व का शिकार बने दीखते हैं। राम के वन-गमन के समय वे पितृ प्रेम, मातृ प्रेम, पत्नी प्रेम और अयोध्या की प्रजा के प्रेम की बलि देकर जाल से छूटे हरिण की भाँति राम-चरणों में उपस्थित होते हैं। उनकी मान्यता है—

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
मोरे सबइँ एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तरजामी ॥

इन शब्दों में श्री लक्ष्मण का भ्रातृ-प्रेम नहीं बोल रहा, गोस्वामीजी का 'अवतारवाद' बोल रहा है।

इसी अवतारवाद की काली छाया में वे अपने शोकग्रस्त पिता के लिये सुमन्त को कटुवचन कहते हैं, और इसी प्रभाव में बहकर वे अन्धी भक्ति का परिचय देते हुए भरत और अपने सहोदर शत्रुघ्न के प्रति कहते हैं—'सोवहिं समर सेज दोऊ भाई' क्या इन वचनों की उपस्थिति में लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम की दाद की जा सकेगी ?

हम भूलें नहीं यह सब 'अवतारवाद' की करामात है ! इसी अवतारवाद ने हनुमान्, सुग्रीव, जामवन्त आदि सभी महावीरों के प्रेरणादायक चरित्रों को दैन्यता-ग्रस्त बना दिया है। उनकी सफलताओं का श्रेय भी उन्हें नहीं है, वे एकमेव राम कृपा का परिणाम है। यह दैन्यता पौराणिक भक्ति के क्षेत्र का गुण हो सकता है पर व्यावहारिक लोक जीवन के लिये यह पाप तुल्य है। अभिमान निःसंदेह बहुत बड़ा दोष है, किन्तु अभिमानरहित होना और दैन्यता एक वस्तु नहीं है। स्वात्माभिमान और आत्मतेज निरभिमानी मनुष्य का भूषण हैं। स्वात्माभिमान मानवता का परिचायक है। आत्म-हीनता तो अभिमान से भी बड़ा पाप है।

बालि— मानस का बालि त्रिभुवन-विजयी होकर भी आत्माभिमान से हीन और क्षीणतेज है। राम ने उसे छिपकर मारा था,

पूछने पर उसका समाधान करने के स्थान पर उलटे उसे धर्मोपदेश देकर फटकारा था। उस समय यदि मानस के वालि में कुछ भी आत्माभिमान होता, थोड़ी सी भी मानवता होती तो वह इस प्रकार दैन्यता ग्रस्त होकर न कहता—

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी अन्तकाल गति तोरि॥

बाल्मीकि रामायण में भी बालि-वध का घटना क्रम तो यही है, पर वहाँ बालि और राम के प्रश्नोत्तर पठनीय हैं (शुद्ध रामायण में देखें) वहाँ न तो बालि में यह दैन्यता है, और न राम में यह हृदय-हीनता, कि वे महाबली बालि को 'शठ' कहकरसम्बोधित करें। यह तो तुलसीदास जी के ईश्वर राम का ही भाग है। बाल्मीकि के (मृत्यु शेया पर पड़े) बालि में भी एक दर्शनीय तेजस्विता है और महामानव राम में दर्शनीय औदार्य एवं सहानुभूति !

मंदोदरी—रावण की विराट् मूर्ति को गोस्वामी जी ने कैसा 'बौना' बना दिया है, यह हम पीछे विचार कर चुके हैं। रावण की मृत्यु के पश्चात् उसकी राज-महिषी मंदोदरी जब विलाप करती है कि—

जगत विदित तुम्हार प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम विमुख यह अनुचित नाहीं॥
अहह नाथ रघुनाथ सम कृपा सिंधु नहि आन।
जोगिवृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्ह भगवान॥

—तब यह समझना कठिन हो जाता है कि सद्यःविधवा का यह विलाप है अथवा मृत रावण को और उसी के निमित्त संपूर्ण संसार को राम-भक्ति का उपदेश दिया जा रहा है। रावण की मृत्यु के साथ ही मंदोदरी के हृदय में भगवान राम के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति-भावना इस वेग से उमड़ पड़ी है कि इस अवसर पर वह संसार को रावण के अधर्म और अनाचार तथा भगवान राम की कारण-रहित दयालुता की शान करा देना आवश्यक समझती है। ठीक ही

तो है, रावण को तो परमपद की प्राप्ति हो ही गई फिर वह भगवान राम का गुणगान कर अपना परलोक सुधारने का यह सुअवसर क्यों खो दे ! तुलसीदास का भक्त मंदोदरी की यह भक्ति-भावना धन्य है ! परन्तु उसकी मानवता को शत-कोटि धिक्कार है !!

मानस के पात्र अति मानवी

गोस्वामी जी द्वारा प्रस्तुत रामचरित मानस के प्रायः सभी पात्र अति मानवी हैं । मानस के राम तो परमेश्वर हैं ही, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न भी राम के अंशावतार हैं । हनुमान, सुग्रीव, अङ्गद, जामवन्त और जटायु पशु-पक्षी (बन्दर, भालु और गिद्ध) हैं । रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद और विभीषण आदि राक्षस हैं जो मानसकार के विचार में मनुष्य नहीं हैं । तब क्या रामायण हमारे पूर्वजों का इतिहास नहीं है ? तब क्या रामायण के विविध पात्रों के उच्च जीवनों और पवित्र चरित्रों पर गर्व करने और उनसे प्रेरणा एवं प्रकाश प्राप्ति का कोई अवसर नहीं है ? तब क्या रामायण के अनेक २ प्रेरक प्रसङ्ग केवल हमारे मन बहलाव की कल्पित कहानियाँ मात्र हैं ? कैसी कष्टकर कल्पना है, यह ?

इस प्रकरण की समाप्ति करते हुए विचारणीय यह है कि वह क्या कारण है जिसने मानवता के आदर्श, आदर्शवादिता की प्रतिमूर्ति, शील-शक्ति और वीरोचित सौन्दर्य में बेजोड़ मर्यादा पुरुषोत्तम आर्य शिरोमणि महामानव राम का ऐसा विद्रूप कर दिया है ? वह कौनसा दुरित है जिसने मानस के ऐसे आदर्श पात्रों को अति मानवी बनाकर ऐसा निष्प्रभ और निष्प्राण बना दिया है ? एक ही उत्तर है पौराणिक संस्कार वशात् गोस्वामी जी पर सवार परब्रह्मत्व या अवतारवाद का भूत ! तब आयें इस 'अवतारवाद' के शव की अर्थी जलाकर हम राष्ट्रोद्धार और मानव-कल्याण का पथ प्रशस्त करें ।

मानस में पूर्वापर विरोध !

मानस एक पुराण काव्य होने से उसमें किन्हीं निश्चित सिद्धांतों का सर्वथा अभाव है। पुराणों की भाँति ही रामचरित मानस में भी पूर्वापर विरोध का प्राबल्य है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) 'अवतारवाद' के सन्दर्भ में हम विस्तार से विचार कर चुके हैं कि श्रीराम स्वयं तथा रामायण के अन्य सभी विशिष्ट पात्र भी एक प्रसङ्ग में राम के ईश्वरत्व का ढिंढोरा पीटते हैं, वे ही दूसरे प्रसङ्ग में और कभी २ तो तुरन्त उसी प्रसङ्ग में राम को साधारण मनुष्य के रूप में मानकर व्यवहार करते हैं।

(२) जहाँ गोस्वामीजी के अनुसार मानस के अधिकांश पात्र भगवान राम को शीघ्र ही पहचान लेते हैं, वहां कुछ ऐसे पात्र भी हैं जो उन्हें बिल्कुल पहचान ही नहीं पाते। इन न पहचानने वालों में सती, परशुराम, जयंत, मेघनाद और गरुड़ प्रधान हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि कितने ही व्यक्तियों ने नर-वेश में राम के वास्तविक स्वरूप को कैसे पहचान लिया। आप शायद कहेंगे कि राम का रूप-सौन्दर्य तथा शील-गुण दोनों ही असाधारण था, जिनसे सभी मुग्ध हो जाते थे। जनक, जनकपुर-वासी तथा बन-मार्ग पर जाते हुए सभी पथिक और ग्रामवासी, ऋषि और मुनि राम के रूप और गुण पर मुग्ध हुए थे, परंतु जब उनमें कुछ ने तो उनके वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया और दूसरे लोग नहीं पहचान सके तो स्पष्ट है कि राम के रूप-सौन्दर्य और गुण से ही लोगों ने उन्हें नहीं पहचाना। तब आप शायद कहेंगे भगवान को पहचानना केवल उन्हीं की प्रेरणा से ही सम्भव हुआ जैसा कि वाल्मीकि मुनि ने उनकी वंदना करते हुए निवेदन किया था कि :

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥

ठीक है, तो आपका आशय है महाराज दशरथ और जनक, महामुनि विश्वामित्र और वशिष्ठ, हनुमान और सुग्रीव, अत्रि, अगस्त्य और बाल्मीकि जो भगवान को देखते ही अथवा बिना देखे ही पहचान गए थे उसका एक मात्र कारण यही था कि भगवान ने उन्हें अपना भक्त जानकर उनके हृदय में ऐसी प्रेरणा कर दी थी कि वे भगवान के वास्तविक स्वरूप को पहचान सकें। परन्तु रावण, कुम्भकरण, मारीच और मंदोदरी ने जो राम को बिना देखे ही पहचान लिया था, उसका कारण क्या हो सकता है ? वे राम के भक्त तो थे नहीं। प्रायः उक्त राक्षसों ने तर्क से ही भगवान को पहचाना था, क्योंकि रावण ने विचार करते हुए तर्क किया था कि :

खरदूषन मोहि सम बलबंता। तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवता ।।

पर तर्क-बुद्धि के कारण ही तो सती और गरुड़ ने भगवान को नहीं पहचाना और शंका उपस्थित की। इसोलिये तो शिवजी ने पार्वती से कहा था :

चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ।।
अस विचारि जे तग्य बिरागी। रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी ।।

और भी

'राम अतक्या बुद्धि मन बानी।'

तो वे तभी जाने जा सकते हैं जब राम स्वयं कृपा कर अपने को प्रकट कर दें। परन्तु रावणादि राक्षसों ने भगवान को कैसे पहचान लिया ? क्या उन पर भी भगवान की कृपा हुई थी ? यदि यह भी मान लिया जाय कि भगवान ने कृपा करके उन पर भी अपना स्वरूप प्रकट कर दिया तब बेचारे गरुड़ और परशुराम, सती और सुनैना (सीताजी की माता) ने ही क्या अपराध किया था जो भगवान की उन पर कृपा नहीं हुई ?

सती और परशुराम जो भगवान राम को नहीं पहचान सके उसके लिए कहा जा सकता है कि सती को अपने ज्ञान का और परशुराम को अपने पौरुष का अत्यधिक अभिमान था, इसी कारण

भगवान ने उन पर कृपा नहीं की क्योंकि उन्हें गर्व तनिक भी नहीं भाता, अस्तु, वे भगवान का वास्तविक स्वरूप जानने में असमर्थ रहे। परन्तु रावण क्या कुछ कम अभिमानी था ? बालि को तो स्वयं भगवान राम ने 'अतिशय अभिमानी' कहा था, फिर उसने कैसे भगवान को पहचान लिया कि :

(कह बाली) सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जौं कदापि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ ॥

सच तो यह है कि इस सम्बन्ध में मानसकार ने किसी सिद्धांत का पालन नहीं किया—केवल कथा की गति और अपनी अन्धो भक्ति-भावना के आवेश में उन्होंने जहाँ-तहाँ भगवान को प्रगट हो जाने दिया और कहीं राम का परमब्रह्मत्व प्रमाणित करने के लिए किसी पात्र-विशेष से शंका प्रगट करा कर ज्यों-त्यों समाधान उपस्थित कर अपना पीछा छुड़ाया है।

(३) राम-नाम की महिमा गाते हुए मानसकार ने प्रारम्भ में ही लिख दिया है कि :

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ॥
कहौं कहां लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई ॥

परन्तु दशरथ के प्रसंग में नाम का भी प्रभाव क्षीण हो गया दीखता है। जन्मभर का पापी अजामिल अनजान में भी राम का नाम लेकर भवसागर से पार हो गया, गणिका ने भी सुग्गा पढ़ाते हुए राम का नाम लेकर मुक्ति प्राप्त कर ली, परन्तु परम धार्मिक जन्म-जन्म के भक्त दशरथ, जिन्होंने :

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम ॥

कहकर शरीर त्यागा वे मोक्ष नहीं पा सके। यहाँ राम-नाम की क्षमता भी क्षीण हो गई, क्यों ?

(४) एक प्रसङ्ग में गोस्वामीजी—

कर्म प्रधान बिस्व रचि राखा। जो जस करहिं सो तस फल चाखा ॥

कहकर कर्म और पुरुषार्थको प्रधानता पर बल देते हैं तो तुरन्त ही दूसरे प्रसङ्ग में 'होइ है सोइ जो राम रचि राखा' कहकर पुरुषार्थवाद पर चौका फेर देते हैं।

श्रीराम और सीताजी को पृथ्वी पर सोते हुए देखकर निषाद बड़े दुःखी हृदय से लक्ष्मण से कहते हैं:—

रामचन्द्र पति सो वैदेही। सोवत महिं विधि वाम न केही॥
सिय रघुवीर कि कानन जोगू। कर्म प्रधान सत्य कह लोगू॥

यहाँ कर्म और कर्मफल ही प्रधानता का वर्णन करके भी निषाद जब कैकेयी को दोष देने लगे तो लक्ष्मण कहते हैं :—

कोउ न काउ सुख-दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता॥

यहाँ लक्ष्मण और निषादकी इस वार्त्ता में "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभं" इस वैदिक सिद्धान्त की बड़ी सुन्दरता से पुष्टि हुई है। स्पष्ट है कि श्रीराम जैसे धर्मात्मा और सदाचारी महापुरुष को भी पूर्व कृत कर्म-फल भोगना पड़ा।

तो इस प्रसंग में गोस्वामीजी ने कर्मफल सिद्धान्त की अटलता को स्वीकार किया है, किन्तु दूसरे अनेकों प्रसंगों में जहां राम अपने भक्तों के घोर पापों को क्षमा कर देते हैं, कर्मफल के इस अटल सिद्धान्त की खुली हत्या कर दी गई है। और भी देखिये—

शुभ अरु अशुभ कर्म अनुहारी। ईश देय फल हृदय विचारी॥
करै जो कर्म पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई॥

आश्चर्य अत्यधिक आश्चर्य है कि एक स्थल पर इस 'निगम नीति' (वैदिक सिद्धान्त)को मान्यता देने वाले गोस्वामीजी दूसरे स्थल पर राजा प्रतापभानु के प्रकरण में घोर अवैदिक और अन्याय-मूलक यह व्यवस्था देने का दुस्साहस क्योंकर करते हैं:—

और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग।
अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जाने योग॥

(५) गोस्वामीजी स्वयं ब्रह्म का निरूपण करते हैं:—

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी ॥

पर तुरन्त ही वे ईश्वरीय नियम और ईश्वर के सहज स्वरूप के विरुद्ध उसका अवतार भी घोषित कर देते हैं।※

(६) राम जन्म की पृष्ठभूमि में जो कथायें घड़ी गई हैं, उन सबमें गोस्वामीजी ने राम को विष्णु का अवतार दर्शाया है। (पुराणकारों को भी यही मान्यता है।) परन्तु दूसरे प्रसङ्गों में गोस्वामीजी राम को त्रिदेवों से भिन्न 'विधि हरि संभु–नचावन हारे' अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश को नचाने वाला कहते हैं।

(७) एक प्रसङ्ग में गोस्वामीजी कहते हैं:—

भगतहिं, ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव सम्भव खेदा ॥

यहाँ वे मानते हैं ज्ञान और भक्ति में परस्पर विरोध नहीं है, वरन् दोनों के मिलन या समन्वय से ही संसार के पाप-ताप दूर होंगे परन्तु अन्य अनेक प्रसङ्गों में वे ज्ञान और भक्ति में भेद मानते हुए ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। 'ज्ञान मोच्छप्रद वेद बखाना' कहकर इन्हीं वेदों द्वारा भक्ति की वंदना करवाते हैं, जबकि वेदों में ज्ञान और कर्म (सदाचार) से शून्य भक्ति की कल्पना तक भी नहीं है।

※ इस अवतार के दो मुख्य हेतु गोस्वामीजी ने दिये हैं—(१) 'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानि'० या 'जब-जब होइ धर्मकी हानी।' के अनुसार रावणादि दुष्टों को मारने के लिये (२) दूसरे भक्तों की प्रसन्नता के लिये। पर विचारणीय यह है कि जब ईश्वर बिना कर=अर्थात् बिना शरीर धारण किये नाना कर्म अर्थात् अखिल ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कर सकता है (गोस्वामीजी स्वयं यह मान रहे हैं) तब क्या वह रावण को जन्म लिये (माँ के गर्भ में ९ महीने कष्ट भोगे) बिना नहीं मार सकता ? क्या परमात्मा के जन्म लेने, जंगल-जंगल भटकने, परमात्मा की पत्नी [!] के चुराये जाने, उसके लिये आँसू बहाने और उसकी खोज में हर किसी से

(८) 'नवधा भक्ति' के प्रकरण में राम जिस भक्ति का उपदेश शबरी को कर रहे हैं, उसमें हृदय की निश्छलता और जीवन की पवित्रता को आवश्यक बताया है अर्थात् भक्ति और कर्म का समन्वय मानते हैं। किंतु अन्य प्रसंगों में—

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो याचत जोगी ॥

कहकर अथवा जँभाई लेते हुए भी 'राम' उच्चारण करने पर जन्म-जन्मांतरों के पाप-फल से मुक्ति बताकर जीवन की पवित्रता और सदाचार पर पानी फेर देते हैं। [सत्य यह है कि वेदोक्त ज्ञान, कर्म (सत्याचार) और भक्ति का समन्वय ही कल्याणकारक है।]

(९) मानसकार एक प्रसंगमें 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' कहकर ईश्वर और जीव में अभेद स्वीकार करते हैं 'और ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के शाङ्कर सिद्धांत का प्रतिपादन कर स्वयं को अद्वैतवादी प्रकट करते हैं तो तुरंत ही कह उठते हैं:—

परबस जीव स्ववस भगवन्ता। जीव अनेक एक भगवन्ता ॥

यहाँ स्पष्ट द्वैतवाद है। और 'ब्रह्म जीव बिच माया जैसे' कहकर वे माया या प्रकृति का अस्तित्व स्वीकारते हुए त्रैतवाद' का समर्थन भी करते प्रतीत होते हैं। यह पूर्वापर विरोध अथवा सिद्धांत-भ्रष्टता मानस में आदि से अंत तक पदे-पदे मिलतो है।

पूछते फिरने से परमात्मा की शक्ति बढ़ कर रावणादि को मारने योग्य हो गई? फिर आज तो रावण से सैंकडों गुने, पापी नर पिशाच सर्वत्र हैं, ईश्वर उन्हें मारने को जन्म क्यों नहीं लेता? विना जन्म लिये ही कैसे मार देता है? (२) अब रही भक्तों को लीला दिखाकर प्रसन्न करने की वात! तो क्या भक्त परमात्मा की ऐसी ही लीला से प्रसन्न होते हैं? क्या भक्तों को संसार की प्रत्येक घटना और प्रत्येक दृश्य से प्रकाशित होने वाली, विश्व के कण-कण में व्याप्त भगवद् लीला नहीं दिखाई देती? फिर उसी समय उन्होंने भक्तों की प्रसन्नता के लिये नर-लीला क्यों की, आज के भक्तराज उससे क्यों वंचित हैं?

(१०) एक स्थल पर गोस्वामीजी 'कलियुग' को ही समस्त दोषों और पापों का मूल बताते हैं:—

जे जनमे कलि काल कराला। करतव वायस वेष मराला॥
चलत कुपन्थ वेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलिमल भांड़े॥

परन्तु तुरन्त ही उसकी प्रशंसा करने लगते है।

दो०—गुणहु बहुत कलि काल कर, बिनु प्रयास निस्तार।
कृतयुग त्रेता द्वापर हु, पूजा मख अरु योग।
जो गति होइ सु कलिहि हरि नाम ते पावहिं लोग॥

वेद-विरुद्ध चलने की निन्दा और पुन: वेद विरुद्ध चलकर सब प्रकार के पापाचरण के दुष्फल से 'राम नाम' के नुस्खे से छुट्टी! कैसी आत्म-छलना है, यह !!×

(११) एक स्थल पर वेदोक्त तीर्थं का स्वरूप बताते हैं:—+

× सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये तो काल गणना की दृष्टि से काल विभाग मात्र हैं। हर युग में बड़े से बड़े पुण्यात्मा और बड़े से बड़े पापात्मा होते रहे हैं। अपने घोर से घोर पापों को कलियुग के मत्थे मढ़कर सन्तोष की साँस लेने तथा इस प्रकार पाप करने के लिये खुला अवसर और प्रोत्साहन पाकर अधिकाधिक पाप-लिप्त होने की कला पुराणों ने इस अभागी आर्य (हिन्दू) जाति को सिखाई है। हमारे घोर पतन का यह भी एक मुख्य कारण रहा है।

+ "जना: येनतरंति दुःखात् तानि तीर्थानि" अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्य संसारी दुःखों से तर जायँ, उनका नाम तीर्थ है। वसिष्ठ स्मृति का प्रमाण भी निम्न प्रकार है :—

श्लोक०-मानसा न्यपि तीर्थानि वक्ष्यामि श्रृणु पार्थिव।
एषु सम्यङ् नर स्नात्वा प्रयाति परमांगतिम्॥
"सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थं मिन्द्रिय निग्रहः।
सर्वभूत दया तीर्थं तीर्थं मार्जव मेवच॥"

मुद मंगलमय सन्त समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू ।।

यहाँ विस्तार से सन्त समाज या श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यों) के समाज को तीर्थराज कहा है। किन्तु अन्य स्थानों पर प्रयाग आदि स्थानों को ही तीर्थ एवं तीर्थराज की संज्ञा दी है—

प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराज दीख प्रभु जाई।

सेवहि सुकृति साधु शुधि पावहिं सब मन काम।

वन्दी वेद पुराण गण, कहहिं बिमल गुण ग्राम ।।

यहाँ स्थान विशेष या जल विशेष में 'तीर्थ' बुद्धि करके पौराणिक प्रवाह में अवैदिकता का पोषण किया है।

"दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थं मेवच।

ब्रह्मचर्य्यं परं तीर्थं नियमस्तीर्थं मुच्यते ।।"

"मंत्राणांतु जपस्तीर्थं तीर्थंतु प्रिय वादिता।

ज्ञान तीर्थं धृतिस्तीर्थं महिंसातीर्थं मेवच ।।"

"आत्मतीर्थं ध्यान तीर्थं पुनस्तीर्थं शिव स्मृतिः।

तीर्थानां मुत्तमम् तीर्थं विशुद्धि मेव सः पुनः ।।"

"यो लब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः।

सर्वं तीर्थेष्वपि स्नातः पापामलिन एवसः।"

"जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः।

नचगच्छन्ति ते स्वर्गं अविशुद्ध मनो मलाः ।।"

"ज्ञान पूते ध्यान जले रागद्वेष मलापहे।

यः स्नाति मानसेतीर्थे सयाति परमां गतिम् ।।"

अर्थ—वशिष्ठजी कहते हैं—मानसतीर्थ ही से शुद्धि होती है उनका वर्णन करता हूँ, कि जिनमें भले प्रकार स्नान करने से मनुष्य परम पद को पाता है। सत्य क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, भूत दया, आर्जव, दान, दम, संतोष, ब्रह्मचर्य नियम, गायत्री मन्त्रका जाप, प्रियवादिता, ज्ञान, धीरज, अहिंसा, आत्मचिन्तन, परमात्मा का स्मरण, मन की शुद्धि, ये सब तीर्थ है। जलमें स्नान कर लेने को सच्चा स्नान नहीं कहते, किन्तु मनको शुद्ध करना सच्चा स्नान +

(१२) पवित्र वेदों के अनुसार वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म नहीं मनुष्य के गुण कर्म. स्वभाव हैं। गीताकार ने भी "चातुर्वर्ण्य मया स्रष्टा गुण कर्म विभागशः" में चतुर्वर्ग का आधार गुण कर्म को ही माना है। गोस्वामीजी पौराणिक संस्कारवशात् कुछ स्थलों पर तो लिखते हैं—"पूजिय विप्र शील गुन हीना" आदि

—किन्तु चूँकि वे रामयुग या आर्षयुग (वैदिक युग) का वर्णन भी कर रह हैं। अत जहाँ कहीं घटनाओं को उन्हें प्रस्तुत करना पड़ा है, वहाँ सचाई उभर करके आगे आगई है।

सभी जानते और मानते हैं कि विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे। महामुनि वशिष्ठ के साथ संघर्ष में उन्हें अनुभव हुआ—"धिग्बलं क्षत्रिय बलं, ब्रह्मतेजो बलं बलं" बस उन्होंने वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, तपस्या और साधना द्वारा ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिया और हम देखते हैं कि गोस्वामीजी को भी उन्हें 'विप्र' संज्ञा से सम्बोधित करना पड़ा। महाराज दशरथ कहते हैं:—

चौथेपन पायेउ सुत चारी। विप्र कहेउ नहिं वचन विचारी ॥

यह तो रहा क्षत्रिय से ब्राह्मण बनने का उदाहरण। अब लीजिये—"उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती" ब्राह्मण कुलोत्पन्न रावण को राक्षस की संज्ञा मिली। अर्थात् शूद्र से भी गिरा हुआ, क्योंकि शूद्र तो आर्य ही हैं। गोस्वामीजी ने भी इस जन्मना ब्राह्मण को 'राक्षस' कहा और 'पूजिय विप्र शील गुन हीना' जिस राम से गो-

---

है, जो लोभी चुगलखोर, निर्दयी, पाखंडी विषयी होते हैं वे सब जल तीर्थों में स्थान करने पर भी शुद्ध नहीं होते, मलिन ही रहते हैं। जल में रहने वाले प्राणी मीनादि वहीं पैदा होते और मरते हैं, परन्तु मन की अपवित्रता के कारण वे मुक्त नहीं होते। जो रागद्वेष रूपी मलको नाश करने वाले ज्ञान से पवित्र, दयारूपी जल मानस तीर्थ में स्नान करते हैं वे ही परमपद को प्राप्त होते हैं।"

स्वामीजी ने कहलाया था, उन्हीं राम ने ब्राह्मण कुलोत्पन्न रावण का वध किया !

प्रकरण—सार—यह हैं, बहुत थोड़े से उदाहरण 'रामचरित मानस' में पूर्वापर विरोध के। एक ही लेखक के इन परस्पर विरोधी विचारों का कारण भी स्पष्ट है। गोस्वामीजी की परेशानी भी प्रकट है। रामायण के पवित्र इतिहास ग्रन्थ को धर्म ग्रन्थ या भक्ति ग्रन्थ का रूप देने का जो दुस्साहस एवं अनर्थ उन्होंने किया है, उसी का यह दुष्फल है। उन्हें चरित्र तो वर्णन करना है वैदिक धर्मावलम्बी आर्य श्रेष्ठ मर्यादा पुरुषोत्तम राम का और वे करना चाहते हैं, इसी के माध्यम से पौराणिक मान्यताओं का प्रचार। रामचरित्र की कथा आगे बढ़ ही नहीं सकती जब तक वे इस वैदिक युग की इस कथा के शुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत न करें पर साथ ही वे जहाँ भी अवसर देखते हैं पौराणिकता का रंग दिये बिना भी नहीं मानते। यही कारण है सम्पूर्ण 'रामचरित मानस' में पूर्वापर विरोध के ऐसे अनेक २ प्रकरण मिलते हैं। हमने यहाँ इस सत्य की कसौटी पर भी 'मानस' को परखने के विचार से संकेत भर किया है।

मानस में एकीकरण या सिद्धांत-भ्रष्टता

हम हृदय से मानते हैं कि तुलसी अपनी आत्मा के निकट ईमानदार थे। मत मतान्तरों के घटा-टोप से ढक जाने एवं पौराणिक पापाचार की अँधियारी के कारण उन तक यथार्थ वैदिक भास्कर का प्रकाश पहुँच ही नहीं सका था। फिर भी एक वेद का ही नाम लेने वाले किन्तु पौराणिक बहु देवतावाद के पाप के कारण एक दूसरे की शक्ल देखने में भी नरक मानने वालों को ही तुलसी ने 'कल्प-कल्प भरि इक २ नरका' आदि शब्दों में लताड़ा है। वेद सूर्य का प्रकाश न होने से गोस्वामी यह तो नहीं देख सके कि वेद में 'बहु देवतावाद' है ही नहीं। और कि ईश्वर एक है, अनेक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव

आदि अलग-अलग देवता नहीं एक ही ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार अलग-अलग नाम है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वान माहुः ॥
—ऋ० १। १६४। ४६

—यह पावन वेद ऋचा तुलसी की आँखों के सामने नहीं थी । पर वे उस घोर घटाटोप में भी इतना अनुभव अवश्य कर सके कि एक वेद का ही नाम लेने वाले विविध मतों का आपसी द्रोह मिटना चाहिये । समाज के इस आपसी द्वेष और द्रोह को दूर करने के लिये वे 'बहुदेवतावाद' के पाप को ही परे फेंकने की बात कह सकते ऐसा वेद-ज्ञान उनके पास नहीं था । कवि सुलभ प्रतिभा उनके पास थी । उसी के सहारे उन्होंने वैष्णवों, शैवों और शाक्तों के द्रोह को मिटाना चाहा । इसके लिये उन्होंने सभी के सिद्धान्तों और मान्यताओं को 'मानस' में ला जमाया । यही कारण है कि 'रामचरित मानस' में किसी एक निश्चित दार्शनिक विचार धारा का अथवा किन्हीं निश्चित मान्यताओं का सर्वथा अभाव है । द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और कहीं-कहीं त्रैतवाद भी सबका एक अजीब सा मिक्श्चर है, उसमें ।

ज्ञात होता है कि उस समय पुराणों के प्रचार से, सर्वसाधारण जनताको साम्प्रदायिक भरमार द्वारा यत्र तत्र बिखरी देखकर, गोस्वामी तुलसीदासजी ने (अपने सरल व दयालु स्वभावानुसार) सब साम्प्रदायिकों का एकीकरण करने में ही सबका कल्याण समझ, अपनी रामायण में सब मत मतांतरों के सिद्धान्तों की प्रशंसा रूप गाथायें (वैष्णव, शैव शाक्तआदिक को प्रसन्न करने को) रामायण में लिखीं । इसी कारण तो उस समय के प्रचलित आधुनिक पुराणों की अनेक बातें (कि जिनका यथार्थ रामचरित से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है) लिखी दिखाई देती हैं : यथा, दाशरथि राम द्वारा शिवजी का ईश्वरवत् पूजन और उसी प्रकार शिवजी द्वारा रामचन्द्रजी का पूजन एवं सीता और

पारवती जी उन दोनों की धर्म पत्नियों को पृथक्-पृथक् जगदम्बा (जगत् माता) स्पष्टतया बतलाया है। इसी प्रकार उस समय पुराणों-द्वारा। प्रचलित रीति रिवाजों को (रुढ़वादानुसार) कुल प्रथा वा कुल धर्म के नाम से (अपनी प्रसन्नता ही में सब की प्रसन्नता समझकर) अनेक कथाओं को रोचक और राम-भक्ति के प्रेम-रस से पूरित बना (अपने उस समय के बोधानुकूल) यत्र तत्र वेद और शास्त्र प्रमाणों द्वारा पुटों की पुष्टि दृढ़ता से लगाई है। और जनता को स्वर्गादि का प्रलोभन दे देकर (राम भक्ति को अद्भुत रूप देने के अनन्तर) भगवान् को भी भक्तों के वश में (पुराणानुसार) बतलाया है। इसी से पौराणिक भक्तों के जापों द्वारा (अचल और अटल ईश्वरीय नियम तुड़वा कर) "रमते इति रामः" की आड़ में अवतारवाद सिद्ध करने को "रामावतार" दर्शाया और दुराचारी व राक्षसों तक को सहज ही में मुक्ति प्राप्त करादी है कि जिससे सब संप्रदायों के मत वाले (अपना २ सिद्धान्त देख कर) प्रसन्न बने रहें, राम और शिवजी तथा रामचन्द्रजी मर्यादा पुरुषोत्तम के विवाहों में अप्सराओं का नृत्य और उनमें गालियों के गाने आदि में भी सबकी प्रसन्नता दर्शायी है।

इस प्रसङ्ग में हम इतना ही निवेदन करना चाहेंगे कि एकीकरण के ऐसे सभी ऊपरी प्रयास भले ही देखने-सुनने में भले प्रतीत हों और उनसे कुछ तात्कालिक लाभ भी भले ही हो पर वे बिना सत्य मौलिक आधार के 'सिद्धान्त भ्रष्टता' को ही जन्म देते हैं। पूज्य गान्धी जी के 'ईश्वर अल्ला तेरे नाम' और श्रीमान् 'बिनोवा जी की बहक' की तरह वे कभी स्थायी शान्ति और सुख के कारण नहीं हो सकते। फोड़े में मवाद अन्दर भरा रहे तो ऊपरी लेपन मात्र से काम नहीं चलेगा। यदि फोड़ा बैठ भी जाय तो भी शरीर के अन्दर ही समाया हुआ जहर समय पाकर नई विकृतियों को जन्म देगा। असत्य और सत्य का समन्वय एक धोखा और छलना है।

तो हम मानते हैं कि समाज को मतवाद के द्वेषानल से धधकते

हुए देखकर किसी भी सहृदय व्यक्ति की तरह तुलसी को भी कष्ट हुआ, ऐसा लगता है। क्योंकि बारीकी से देखने पर उनके इस ग्रन्थ में भी पाखण्डों और मतवादों से उत्पन्न द्वेषदम्भ का खण्डन मिलता है। पर सम्भवतया उनकी गति इससे आगे नहीं थी। इसलिये मत-पन्थों का 'घोल' ही उन्होने देश की जनता को पिलाया। मिथ्या भक्ति के इस मीठे घोल ने मीठे जहर का काम किया। कुछों के मतानुसार मुस्लिम आक्रमण से ध्वस्त-त्रस्त भारतीय-प्रजा को इससे बड़ी राहत मिली। पर हमारा कहना है कि यह राहत मौत का पूर्व रूप थी और इस गोरख धन्धे ने अन्ततः राष्ट्र की आत्मा को सर्वथा सुला ही दिया।

—:०:—

मानसकार का भक्तिवाद !

तुलसीदास पौराणिक भक्ति के प्रचारक थे। पौराणिक भक्ति के पाँच महादोष हैं (१) दैन्यता या आत्महीनता (२) पलायनवाद या कर्त्तव्य कर्म की उपेक्षा (३) अन्धविश्वास या विवेक शून्यता (४) व्यक्तिगत कल्याण की चाह (५) पाप के फल से मुक्ति का आश्वासन। हम इन पर क्रमशः विचार करेंगे।

दैन्यता:—अज्ञानतावश निरभिमानता और दैन्यता को एक वस्तु मान लिया गया है, जब कि निरभिमानता (अभिमान शून्यता) जितना बड़ा सद्गुण है दैन्यता (आत्म-गौरव हीनता) उतना ही बड़ा घोर दुर्गुण !

मनुष्य को पाप-पथ पर ले जाने वाले या ईश्वर प्राप्ति की राह से दूर रखने वाले दो बड़े कारण हैं। इनमें पहला है—अभिमान। महात्मा कबीरदासजी ने ठीक ही लिखा है—

जब मैं थी तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहिं ।।

तो अभिमान हमें ईश्वर से दूर रखता है। पर पाप पंक में फँसाने वाला इससे भी बड़ा दूसरा कारण है—अवमान, आत्महीनता, या दैन्यता। जिसे दैन्यता, निराशा और अवसाद ने जकड़ लिया है, वह कभी पाप की कीचड़ से निकल ही नहीं सकता।

एक वैदिक भक्त प्रतिदिन विनय करता है—"अदीना स्याम शरदः शतम्" प्रभो ! हम सौ वर्ष तक—सम्पूर्ण जीवन में अदीन रहें। वैदिक धर्म के सच्चे अनुयायी, आर्य जाति के शीर्ष मुकुट श्रीराम के जो अनेक गुण नारदजी ने गिनाए थे उनमें एक गुण अदीनता भी था।* महाभारत के वीरश्रेष्ठ अर्जुन की तो प्रतिज्ञा ही थी–'न दैन्य न पलायनं'। अज्ञान का करिश्मा देखिये, वैदिक भक्ति में जो सबसे बड़ा दूषण है वही पौराणिक भक्तिवाद का सबसे बड़ा भूषण है। गोस्वामीजी के सबसे प्रिय भक्त भरत कहते हैं :—

जो करनी समुझैं प्रभु मोरी। नहिं विस्तार कलप सत कोरी ।।

यह दैन्यता राष्ट्रीय जीवन का अभिशाप बनकर रह गई है। इस वृहत्तर भारत का नक्शा जो यों विद्रूप हुआ है, दैन्यता उसका बहुत बड़ा कारण है।

पलायनवाद—अर्थात् लौकिक कर्त्तव्य कर्मों की उपेक्षा पौराणिक भक्तिवाद का दूसरा बड़ा दूषण है। पवित्र यजुर्वेद का सन्देश है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरः ।।यजु० ४०।२।।

अर्थात् हम सौ वर्ष तक (जीवन पर्यन्त) कर्त्तव्य कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करें। ईश्वरार्पित बुद्धि (कर्त्तव्य बुद्धि) से किये गये कर्म ही बन्धन-मुक्ति या प्रभु प्राप्ति का एक मात्र साधन हैं ईश्वर प्राप्ति का अन्य मार्ग नहीं है।

---

*सर्वलोक प्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः।

इस प्रकार स्वयं अपने प्रति, परिवार, समाज, राष्ट्र और अखिलविश्व के प्राणिमात्र के प्रति कर्त्तव्य कर्मों का पालन ही वैदिक ईश्वर भक्ति है, 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः' इन शब्दों में गीताकार ने कुरुक्षेत्र—कर्त्तव्यक्षेत्र को ही 'धर्म क्षेत्र' बताया है।

अर्जुन का व्रत था 'न दैन्यं न पलायनम्'। पर जब वह इसे भूलकर पलायनवादी (कर्त्तव्य-विमुख या भगोड़ा) बनने लगा तो योगेश्वर कृष्ण की वाणी गूँज उठी—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टम स्वर्ग्यमकीर्ति कर ऽर्जुन ॥
क्लैव्यं मा स्मगमः पार्थ नैतत्वयुपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥

यह क्लीवता, यह पलायनवाद, कर्त्तव्य कर्मों की यह उपेक्षा 'अनार्यजुष्ट' है। अनार्योचित है। यह आर्योचित न होने से तुझ आर्य के निकट यह त्याज्य है। यह गीतोक्त धर्म या भक्ति वेदानुकूल है। पर मानसकार का मत है—

'सत हरि भजन जगत् सब सपना', अथवा—

अब प्रभु कृपा करहु एहि भांती। सब तजि भजन करौं दिन राती॥

इसलिये गोस्वामीजी ने राम से लौकिक स्नेह और कर्त्तव्य का सम्बन्ध मानने वाले दशरथ को तब तक मुक्ति नहीं दिलाई जब तक वह अपने पितृ स्नेह को त्याग राम का सेवक नहीं बन गये।

लौकिक स्नेह और कर्त्तव्य कर्मों की उपेक्षा पौराणिक प्रभाव के कारण मानसकार को अत्यधिक रुचिकर है, किन्तु यह सर्वथा वेद-विरुद्ध एवं राष्ट्रीय दृष्टि से जघन्य अपराध है।

अन्धविश्वास या विवेक शून्यता—श्रद्धा और विश्वास मानव की सुख-शान्ति की कुञ्जी हैं, किन्तु तभी जब ये सत्य और विवेक से युक्त हों। विवेक शून्य श्रद्धा—अन्धश्रद्धा है, विवेक रहित विश्वास—अन्धविश्वास है, अन्धश्रद्धा और अन्धविश्वास मानवसमाज

की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा हैं पर पौराणिक भक्तिवाद में इन्हीं का बोलबाला है।

वैदिक भक्तिवाद में गायत्री को गुरुमन्त्र माना गया है, क्योंकि इसमें प्रभु से सद्विवेक के जागरण की प्रार्थना की गई है। वैदिक ऋषियों के अनुसार —"यस्तर्केणानुसन्धत्ते सधर्मं वेद नेतरः" सत्य धर्म (वैदिक धर्म) वही है जो तर्क की कसौटी पर खरा उतरे। पर सभी मतपन्थों की भाँति पौराणिक मतवाद को भी तर्क से सबसे बड़ा भय है। पौराणिक संस्कार वशात् ही गोस्वामीजी लिखते हैं:—

चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि मन बानी।
अस विचारि जे तग्य विरागी। रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी॥

इसी कारण मानस में सर्वत्र तर्क और तर्कसंगत बातों का परित्याग कर एकमेव अन्धविश्वास का ही आश्रय लिया गया है। और इसी अन्धविश्वास के आधार पर ह मानस में भाव-कुभाव किसी प्रकार से राम के भजन करने वालों को वीर, धीर, धर्मात्मा और विद्वान् दिखलाया गया है।

व्यक्तिगत कल्याण की चाह—पौराणिक भक्तिवाद का सबसे बड़ा अभिशाप है—'तू अपनी निबड़ तुझे दुनियां से क्या पड़ी?' इसे हम खुला राष्ट्र-द्रोह कह सकते हैं। पवित्र ऋग्वेद का सन्देश है—

भवा अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानाम् प्रति प्रतीची र्दहतात् घरातीः॥

—ईश्वर की समीपता, उसकी सख्यता (मित्रता) और उसका पितृवत् संरक्षण प्राप्त करने का एकमेव साधन यह है कि भक्त मानव समाज के बीच जो परस्पर द्वेष, द्रोह और संकीर्णता है, उसे दूर करे अर्थात् प्रभु का प्यार पाने के लिये प्रभु की प्रजा को प्यार करे। प्राणिमात्र की सेवा-साधना ही प्रभुकी श्रेष्ठतम पूजा है। किन्तु मानसकार के सबसे बड़े भक्तराज भरत भ्रातृ प्रेम, पितृ प्रेम और प्रजा-प्रेम सबकी अवहेलना करके केवल अपनीही चिन्ता में घुलते से दिखाई

देते हैं। उन्हें अपने को पवित्र सिद्ध करने की ही चिन्ता है। सञ्जीवनी लाते हुए हनुमान से लक्ष्मण की मूर्छा का समाचार जानकर भी जब वे संवेदना का एक भी शब्द न कहकर सिर्फ इतना ही कहते हैं—

अहह ! दैव मैं कत जग जायउं। प्रभु के एकौ काज न आयउं॥

—तो अपनी हृदय-हीनता की अभिव्यक्ति के साथ ही मानसकार के पौराणिक भक्तिवाद का नंगा रूप भी वे उपस्थित कर देते हैं।

वैदिक प्रार्थनाओं में सर्वत्र 'नः' शब्द का प्रयोग है। वैदिकभक्त 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' अथवा 'शन्नो देवी रभिष्टय' के रूप में सभी के कल्याण और सुख-शान्ति की कामना करता है। पंचयज्ञ तथा सम्पूर्ण वैदिक कर्मकाण्डों की आत्मा वैदिक भक्तिवाद के इन स्वरों में निहित है—"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" जबकि पौराणिक भक्तिवाद "तू दयालु दीन हौं" अथवा "तुम मेरी राखो लाज हरी" के रूप में केवल वैयक्तिक चिन्ता को लेकर चलता है। गोस्वामी जी ने मानस में इसी पौराणिक भक्तिवाद को प्रस्तुत किया है।

पापों के फल से मुक्ति का आश्वासन—भक्ति का उपयोग तो यह है कि भक्त पाप से, दुरित और दुर्गुणों से बचे। वैदिक भक्त विनय करता है—

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।"

वैदिक भक्त पापों को ललकारता है—

'मनस्पाप परो पेहि' ऐ मेरे मन के पाप, तू परे भग जा! वैयक्तिक सदाचार ही प्रभुभक्ति की आधारशिला है। किसी मनीषी विद्वान् ने ठीक कहा है—

Religion without morality is a tree without fruit, while morality without religion is a tree without root.

यहाँ यदि 'रिलीजियन'का अभिप्राय ईश्वरभक्ति लिया जावे तो स्पष्ट है कि धर्म या ईश्वरभक्ति का फल है सदाचार या पाप-निवृत्ति। सदाचार और ईश्वरभक्ति का आधाराधेय का सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। पर पौराणिक भक्ति पाप से बचने या पाप न करने की प्रेरणा न करके, पाप के फल से बचाने का आश्वासन देती है और इस प्रकार अधिकाधिक पापकरने का प्रोत्साहन देती है। गोस्वामी जो राम द्वारा कहलाते हैं :-

भगतिवन्त अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी।

प्रश्न है नीच और अतिनीच प्रभु भक्त कैसे ? इतना ही नहीं भगवान् का भक्त बनने पर कोई कितना ही पाप करे, भगवान् उस पर ध्यान नहीं देते। तभी तो गोस्वामी जी कहते हैं—

जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि वाली। फिर सुकंठ सोइ कीन्ह कुचाली।।
सोइ करतूति विभीषन केरी। सपनेहु राम न हियं महं हेरी।।

'मानस दर्शन' लेखक के विचार भी इस विषय पर मननीय हैं। वे लिखते हैं—"लंका के युद्ध में जब हनुमान और अंगद राक्षसी सेना का विनाश करते हुए—

महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं।।
कहइ बिभुषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा।।
खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी।।

जिस परमपद की याचना सिद्ध योगी भी करते हैं वह पद भगवान राम ने अपने अत्यन्त प्रिय विप्रों और ऋषि-मुनियों का मांस भक्षण करने वाले खल राक्षसों को बिना माँगे ही दिया। राम के इस अविचार की सराहना करते हुए शिवजी ने उमा से कहा था कि:

उमा राम मृदु चित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर।।
देहिं परम गति सो जिय जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी।।
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी।।

शिवजी भले ही इसे राम की करुणा कहें और वैर-भाव से स्मरण करने वाले घोर पापियों को भी परमपद प्रदान करने वाले

ऐसे भगवान का भजन न करने वालों को चाहे मतिमंद और अभागा समझें, परन्तु बौद्धिक गुणों की इस सीमा तक अवहेलना करने वाले राम की इस दुर्बलता से संसार में पाप और अनाचार को जितना प्रश्रय मिलता है वह वर्णनीय है। जो सत्वगुण-प्रधान भगवान के सच्चे भक्त हैं वे पूर्णतः सदाचारी और बौद्धिक-गुणों से युक्त होते ही हैं, परन्तु अधिकांश जन इस प्रत्याशा में कि :

भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू ॥

—संसार का पाप बटोर कर भी परमपद को प्राप्ति के लिए राम नाम जपते और भक्ति का ढोंग रचते हैं।" ※ 'भगत जगत को ठगत हैं।' तथा 'लम्बे तिलक माधुरी बानी दगाबाज की यही निशानी' की व्यङ्गोक्तियाँ इसी पौराणिक भक्तिवाद की परिचायक हैं। आज जो विभिन्न मत पन्थों के भक्तिवाद की वृद्धि के साथ दुराचार और भ्रष्टाचारभी दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है, उसका यही रहस्य है। स्पष्ट है कि पौराणिक भक्तिवाद और पापाचार हाथ में हाथ मिलाकर चलते हैं। कसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है यह !

※ प्रताप नारायण मिश्र रचित 'कलि-कौतुक' रूपक [कानपुर १८८५ ई०] में पृष्ठ ३१ पर भक्तों के भे। में काकभुशुंडिदास का कहना है :

सच है 'बाना बड़ा दयाल का तिलक माल और छाप'—क्यों न हो ! परलोक में तो जो सुख होंगेसो होंगे, यहाँ हमसे बढ़कर आनन्द ही किसको है। पढ़े-लिखेतो हम राम जी का नाम ही हैं. पर बड़े बड़े पंडित आदर करते हैं। × । हूँ थोड़े से नई उमर के अंगरेजीबाज हमारे चरित्रों पर शंका करते हैं ! अरे हरिदासों के चरित्र ही क्या ? सुग्रीव के चरित्र कैसे थे। बिभीषण के चरित्र कैसे थे ! सीताराम, सीताराम ! ऊः राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं।' फिर हम तो सौ सौ माला फेरते हैं, हमें पाप बना ही रहा ? (मानस-दर्शन से साभार)

—o—

संस्कार और नारी

आर्य धर्म और संस्कृति में नारी का बड़ा ही गौरवपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना में 'पुरन्धिर्योषा' इन शब्दों में नारी को राष्ट्र जीवन का आधार बताया गया है। 'गृहणी गृहं उच्यते' के अनुसार बिना नारी के गृहाश्रम की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

वैदिक जीवन प्रणाली में गृहाश्रम को एक महान् यज्ञ माना गया है। पवित्र वेदों के अनुसार "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ"—स्त्री इस यज्ञ की 'ब्रह्मा' है। हम जानते हैं कि यज्ञ-संस्था में ब्रह्मा का सर्वोच्च पद है। उसके निर्देश और व्यवस्था के अनुसार ही यज्ञ की सम्पूर्ण प्रक्रिया सम्पन्न होती है। वह अत्यधिक शान्त और मौन रहते हुए भी सर्वाधिक प्रभावी होता है तथा यज्ञ की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं पर दृष्टि रखता है।

महर्षि मनु ने भी नारी की इस गौरव-गरिमा को अक्षुण्ण रखा है। वे माता को दश हजार आचार्यों के समान पूज्य मानते हैं। उनकी मान्यता है "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" अर्थात् जिन परिवारों में नारी का सम्मान होता है, वहाँ सब प्रकार की दिव्यतायें और सुख-शान्ति विराजती हैं। इसीसे तो भारतीय संस्कृति में नारी को 'देवी' कहकर सम्मानित किया गया है।

हाँ, यह ठीक है कि धर्म-शास्त्रकार नारी के आधुनिक'लेडी'वाले स्वरूप का समर्थक नहीं है। नारी की उच्छृङ्खलता को निश्चय ही सर्वनाश का कारण समझते हुए ही महर्षि मनु ने "न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति" कहकर उसे मर्यादित किया है। नारी का निर्माण प्रकृति के जिन कोमल तत्वों से हुआ है, यह व्यवस्था उसी दृष्टि से है। इसी से विवाह संस्कार में 'द्यौरहं पृथिवी त्वं' कहकर जहाँ पुरुष की उपमा सूर्य से दी गई है, वहाँ नारी की तुलना पृथ्वी से की गई है। तभी तो लज्जा, क्षमा, शीलता, सहिष्णुता, करुणा, उदारता आदि को नारी-

जीवन के भूषण कहा गया है। पर इस मर्यादावत्ता में कहीं भी नारी को दासी या 'पैर की जूती' करके मानने की पापपूर्ण और घृणित वृत्ति की छाया भी नहीं है। न इसमें नारी को, यज्ञ, यज्ञोपवीत, वैदिक कर्मकाण्ड, वेदाध्ययन और उच्च शैक्षणिक योग्यता से वञ्चित किये जाने की पाप पूर्ण दुरभिसन्धि की गन्ध भी है।

हम जानते हैं कि हमारे यहाँ ऋषियों की भांति ही अपाला और घोषा जैसी मन्त्र दर्शन करने वाली विदुषी देवियां भी थीं। गणित शास्त्र की पण्डिता लीलावती से हम परिचित हैं। महाराज जनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य के साथ विदुषी गार्गी को ब्रह्मचर्चा करते हम पाते हैं। वा० रामायण में माता कौशल्या को यज्ञ करते हुए और अशोक वाटिका में माता सीता को सन्ध्योपासन करते हुए हम देखते हैं। माता कुन्ती की राजनीति मत्ता और महारानी द्रोपदी की कुशल-व्यवस्था सर्व विदित है।इतना ही नहीं मध्ययुग में श्री शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्र के मध्य हुए शास्त्रार्थ में हम मण्डनमिश्र की पत्नी विदुषी भारती को मध्यस्थ के गौरवपूर्ण पद पर सुशोभित पाते हैं।

स्पष्ट है कि जब तक नारी का यह गौरव पूर्ण चित्र हमारे समाज में प्रतिष्ठित रहा, हम विद्या कला-कौशल और बल-विक्रम में संसार में शीर्ष स्थान पर रहे। पता नहीं वे कौनसे दुर्भाग्य पूर्ण क्षण थे जब नारी को स्वयं शङ्कराचार्य जी ने ही "नरक का द्वार" कहकर भारतीय प्रजा को दीन-दुखी-निर्बल, निस्तेज और पराधीन बनाने का द्वार खोलने ऐसा घोर कर्म किया था।

सत्य यह है कि वैदिक त्रैतवाद के स्वर्णिम सिद्धान्त को भुला-जब आद्य शङ्कराचार्य ने नवीन वेदान्त की अवैदिक मान्यता को प्रस्तुत किया और "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का अवैदिक घोष किया तो गृहाश्रम के प्रति उपेक्षा का भाव स्वाभाविक ही था। पवित्र वेदों में गृहस्थाश्रम को ही "स्वर्ग" बताया है (स्वर्ग कोई अन्य स्थान विशेष या आकाशीय वस्तु नहीं है, वेद के अनुसार) महर्षि मनु ने 'ज्येष्ठो गृहस्थाश्रमः' कहकर तथा भारत भाग्य विधाता महर्षि च णक्य

ने 'धन्यो गृहस्थाश्रमः' कहकर गृहाश्रम की अर्चना की है। उसी गृहस्थाश्रम की जब शङ्कर द्वारा उपेक्षा होकर बाल-दीक्षा का क्रम (बौद्धों के अनुसरण में चला) तो गृहस्थाश्रम की आधार नारी के प्रति भी उपेक्षा स्वाभाविक ही थी। नारी-उपेक्षा की यह घृणित वृत्ति समाज में क्रमशः बद्धमूल होती गई। और गो० तुलसीदास तक आते-आते पुराणकारों द्वारा सम्पोषित होती हुई यह विकृति और भी भयावह हो गई। तुलसी को जन समाज में व्याप्त नारी के प्रति अत्यधिक हीन, महा विकृत और राष्ट्र-विघातक दृष्टिकोण ही विरासत में मिला था। यही कारण है कि (कथा प्रसंग वश) माता और पत्नी के वैदिक स्वरूप की रक्षा करते हुए भी सामान्यतः सर्वत्र ही नारी के प्रति यह हीन भावना 'मानस' में झांकती है।

'बिधिहु न नारि हृदय गति जानी' 'अवगुण अष्ट नारि उर रहई' 'सहज अपावन नारि' अधम ते अधम अति नारी' 'सकल कपट अघ अवगुण खानी' तथा 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।' मानस की इन उक्तियों नारीनिन्दा का यही पाप बोल रहा है। लङ्का से वापिसी पर राम के द्वारा माता सीता, को 'दुर्वाद' कहना और सीता द्वारा उसे चुपचाप सहकर अग्नि में प्रवेश करना यह चमत्कार प्रेमियों का मनोरंजन भले ही कर सके पर 'नारी अपमान' का यह दृश्य 'मानस' का एक अमिट कलङ्क है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गोस्वामी जी के पक्ष की निर्दोषता सिद्ध करने के लिये 'नारी अवज्ञा' के इस राष्ट्रिय अपराध के प्रसङ्ग में 'शास्त्रीय मर्यादा' की दुहाई दी है। पता नहीं श्री शुक्ल जी का आशय किस शास्त्र से है? जैसा कि हम ऊपर विचार कर चुके हैं वेदादि सत्शास्त्र, मनुस्मृत्यादि धर्म शास्त्र एवं वाल्मीकि रामायण आदि इतिहास ग्रन्थों में सर्वत्र नारी का मुक्तकण्ठ से गौरव-गान किया गया है। तब 'शास्त्रीय मर्यादा' से शुक्ल जी का अभिप्राय शङ्कराचार्य जी की "नारी किमेकं—नरकस्य द्वारं" अनार्ष उक्ति अथवा

यत्र-तत्र पौराणिक वामाचार-परक कल्पत गाथाओं से ही हो सकता है। पर यह सब तो शास्त्र-मर्यादा नहीं, उसका कलङ्क मात्र हैं।

श्री आचार्य शुक्ल जी ※ ने गोस्वामी जी को वैरागी बताते हुए मनुष्य की वैराग्य वृत्ति को दृढ़ करने के लिये नारी-निन्दा का समर्थन किया है। अजीब दलील है, सफ़ाई का विचित्र तरीका है। उस मिथ्या और दम्भपूर्ण वैराग्य वृत्ति का लोक जीवन (राष्ट्र-जीवन) के लिये क्या उपयोग, जिसके लिये राष्ट्र जीवन की आधारशिला नारी को अपमानित और निन्दित किया जावे ?

इसी प्रकार श्री अरविन्द नारायण जी, सहसम्पादक 'बुन्देला' ने अपने निबन्ध "तुलसी साहित्य में नारी का आदर्श" में गोस्वामी जी की इस नारी-निन्दा का लक्ष्य दुश्चरित्र नारियों को बताया है। पर कैकई मन्थरा आदि के दो एक प्रकरणों को छोड़कर शेष अनेक स्थलों पर की गई नारी-निन्दा से सुस्पष्ट है कि नारी के प्रति गोस्वामी जी को यह वृत्ति या दृष्टिकोण सहज है, जो उस समय के समाज अथवा पौराणिक कुसंस्कारों की ही छाया है।

उक्त लेखक का कथन है कि गोस्वामी जी को नारी-निन्दा अभिप्रेत होती तो वे कौशल्या, सुमित्रा, सीता, तारा और मन्दोदरी आदि के रूप में नारियों के उदात्त चरित्र को क्यों प्रस्तुत करते ? यहाँ वे भूल जाते हैं कि 'राम चरित' एक इतिहास है, और वह भी वैदिक युग का पुण्य इतिहास। अतः गोस्वामी जी को जहाँ कथा-प्रवाह को प्रस्तुत करना पड़ा है, वहाँ असत्य के लाखों पर्दों को फाड़कर भी सत्य तथ्य सामने आये हैं। हाँ जहां उन्हें कथा प्रवाह से भिन्न अपनी भावाभिव्यक्ति का अवसर मिला है, वहाँ उन्होंने सर्वत्र ही नारी के प्रति हीन दृष्टिकोण की अपनी सहज वृत्ति का परिचय दिया है। पर हम मानते हैं कि इस सबका मूल है—पौराणिकता !

※ 'तुलसीदास ग्रन्थावली' की प्रस्तावना में "लोकनीति और मर्यादावाद" के अन्तर्गत। पृ० १२८ से १३०।

देव दयानन्द की दशा से युग ने करवट ली है। नारी जागरण के स्वर सुनाई दे रहे हैं। पर संक्रान्ति के इन क्षणों में ही भारतीय नारी को अत्यधिक सजग रहना है। उक्त अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप पुरुष के प्रति प्रतिद्वन्द्वता और प्रतिस्पर्धा के भाव आना अस्वाभाविक तो नहीं हैं, पर पश्चिम की फैशन, अति स्वतन्त्रता, = उच्छृङ्खलता, लज्जाहीनता, अर्द्धनग्नता और क्लब घरों का 'लेडीवाद' भारतीय देवी के निकट पौराणिकता के पाप से भी भयङ्कर अभिशाप सिद्ध होगा। भारतीय नारी का आदर्श क्लबघरों की पश्चिमी तितलियाँ नहीं, सीता-सावित्री—अनुसूया और गार्गी हैं। इस तथ्य को स्मरण रखकर ही भारतीय देवियाँ ही फिर भारत को 'जगद्गुरु' का आसन दिला सकेंगी।

मानसकार और वर्णव्यवस्था

स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा और भी कुछ साहित्यकारों ने जन्मगत वर्ण व्यवस्था और उससे उत्पन्न सामाजिक विषमता एवं ऊँच नीच की वृत्ति को लोक व्यवहार (राष्ट्र-हित) की दृष्टि से अनुचित अनुभव करते हुए भी गोस्वामी को शास्त्रीय मर्यादा का अनुगामी बताकर, उनकी जमकर वकालत की है। इतना ही नहीं स्व० शुक्लजी ने इस अन्याय मूलक सामाजिक दुराचरण के विरुद्ध स्वर ऊँचा करने वालों की, शास्त्रीय मर्यादा की दुहाई देकर भर्त्सना करने का दुस्साहस भी किया है।

यहाँ प्रश्न यह है कि वे शास्त्र कौन हैं जिन्होंने इस भेद भाव मूलक जन्मगत जाति-पाँत की व्यवस्था दी है। पवित्र वेदों में चतुर्वर्ण विभाग स्पष्टतया जन्म मूलक न होकर गुण कर्म और स्वभाव के आधार पर है प्रभु की कल्याणी वाणी वेदों के पढ़ने और वेदाचरण करने का प्रत्येक को उसी प्रकार से समान अधिकार है जिस प्रकार प्रभु-

प्रदत्त सूर्य, वायु, जल, आकाश और भूमि आदि से उपयोग लेने का। पवित्र वेदों की घोषणा है—

"यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्याम् शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।

यहाँ शूद्र ही नहीं (वह तो आर्य ही है) वरन् चाण्डाल और दस्यु तक को भी वेदाध्ययन एवं वैदिक शिक्षाओं से लाभ लेने का समान अधिकार है। गीताकार ने तो और भी स्पष्ट रूप में कहा है :—

"चातुर्वर्ण्यं मया स्रष्टा गुण कर्म विभागशः"

यहाँ वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म नहीं, गुण-कर्म को माना गया है। धर्मशास्त्र प्रणेता महर्षि मनु ने व्यवस्था दी है—

"शूद्रो ब्राह्मणं तामेति ब्राह्मणश्चै ति शूद्रताम्"

कर्त्तव्य साधना द्वारा शूद्र कुलोत्पन्न क्रमशः वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण तक बन सकता है। और ब्राह्मण के लिये निश्चित कर्तव्य कर्म का अनुष्ठान न करने से ब्राह्मण कुलोत्पन्न व्यक्ति शूद्र तक भी बन सकता है।

इस प्रकार वेद, दर्शन, उपनिषद, गीता और मनुस्मृति आदि किसी भी धर्म शास्त्र में भेदभाव और ऊँच-नीच की घृणित वृत्ति पर आधारित जन्मगत वर्णव्यवस्था का समर्थन नहीं है। फिर जिन कुछ पुराणों में वर्णव्यवस्था का आधार जन्म को मानकर मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव की दीवाल खडी करने का दुष्ट प्रयास हुआ है, वे पुराण तो अन्धकार युग की देन हैं। उनमें तो न जाने कितनी वेद-विरुद्ध, ज्ञान-विज्ञान-विरुद्ध गप्पों को धर्म को संज्ञा दे रखी है। बीच के उस काल-खण्ड (पौराणिक काल) में जहाँ ईश्वर, देवी-देवता, तीर्थ, व्रत, सन्त, गुरु आदि अनेक शब्दों का सत्यार्थ अज्ञानवश या स्वार्थवश हमसे छूट गया वहाँ हम वर्ण-व्यवस्था का सत्यार्थ और सत्य प्रयोजन भी भूल गये।

इस दिशा में सबसे भयङ्कर भूल उस समय हुई जब वर्ण और

जाति को पर्याय मान लिया गया। जाति और वर्ण अलग-अलग चीजें हैं। जाति एक है—मनुष्य। "आकृतिर्जाति लिंगाख्या।" घोड़ा, गाय, गधा, मोर, कबूतर आदि इन सभी की तरह संसार भरके मनुष्यों की जाति एक ही है। किन्तु वर्ण चार हैं। जाति ईश्वर कृत है, वर्ण मनुष्य कृत हैं—मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था का परिणाम हैं। जाति का आधार जन्म है, वह बदली नहीं जा सकती है। वर्णों का आधार गुण, कर्म-स्वभाव हैं, वर्ण बदले जा सकते हैं। महाभारत से पहले जब मनुष्य समाज में वैदिक व्यवस्था चलती थी, वर्ण व्यवस्था का यही सत्य स्वरूप विद्यमान था। इसमें ब्राह्मणादि पर पतन से बचने के लिये अंकुश था और शूद्रादि को उन्नति के लिये प्रोत्साहन था। किन्तु जब पौराणिक प्रवाह में वर्ण और जाति का अन्तर भुला दिया गया वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म मान लिया गया तभी "पूजिय विप्र शील गुन हीना। शूद्र न पूजिय वेद प्रवीना" जैसी राष्ट्र-घाती विचारधारा को बल मिला।

आश्चर्य है कि जो शील आदि सद्गुणों और विद्या से हीन हैं वह ब्राह्मण कैसे, और जो वेदों का विद्वान् तथा सदाचारी है, वह शूद्र, रहा ही कहाँ ? वर्णव्यवस्था का आधार जन्म मान लेने पर न ब्राह्मणादि पर कोई अंकुश रहा, और न शूद्रादिके लिये कोई प्रोत्साहन और विकास का अवसर रहा—परिणाम हुआ सर्वनाश का यह दृश्य—

> ब्राह्मण होगये विद्याहीन, क्षत्रिय होगये विषयाधीन।
> वैश्यों के व्यापार मलीन, या विधि भारत दुखिया दीन॥

—०—०—

मानसकार के अन्य अनर्थ

(मानस—रामायण-या-गप्पायन)

वाल्मीकि रामायण से विरोध—

तुलसी रामायण के सम्बन्ध में हमारी सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इसमें अनेकों प्रसङ्ग वाल्मीकि रामायण के विरुद्ध एवं अतिरञ्जित हैं। यह सभी स्वीकारेंगे कि वाल्मीकि रामायण श्री राम के काल की रचना होने के कारण राम चरित्र के सम्बन्ध में एक मात्र प्रामाणिक ग्रन्थ है। यद्यपि वा० रामायण में भी पर्याप्त प्रक्षिप्त भाग है पर अनेकों बातें तुलसी रामायण में ऐसी हैं जो प्रक्षेप युक्त वा० रामाण में भी नहीं हैं. अनेकों घटनाक्रमों में भी बड़ा अन्तर है। देखिये—

(१) वा० रामायण में महादेव के रामायण बनाने और काकभुशण्डजी को सुनाने की वार्ता नहीं है:—

सोइ शिव काकभुशण्डिहि दीन्हा। रामभक्ति अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन याज्ञवल्क्य पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

—यह महागप्प नहीं तो क्या है? याज्ञवल्क्य वेद के एक बड़े ऋषि थे। क्या इन्हें कोई ऋषि मुनि गुरु न मिले जो इन्होंने एक कौए से रामायण सुनी और तब रामतत्व जाना?

२—गरुड का सन्देह निवारण के लिये काग जी के पास जाना—गरुड़ अपना सन्देह दूर करने के लिये नारद के पास गया नारद ने ब्रह्मा के पास भेजा, ब्रह्मा ने शिव के पास और शिव ने काग जी के पास। और काग जी के आश्रम के दर्शन मात्र से ही गरुड़ का भ्रम जाता रहा। इस महागप्प का क्या कहना? प्रथम तो पशु-पक्षियों की बातें असम्भव, द्वितीय कागजी, नारद, ब्रह्मा, शिव सबके दादा गुरु कैसे बन गये? तीसरे कौए को किञ्चित् सेवा से ही ऐसा दिव्य ज्ञान

रामजी ने दे दिया कि कल्प-कल्पान्त में भी इसको मोह प्राप्त नहीं होता और गरुड़ सदा राम-सेवा में रहता है फिर भी सन्देह का शिकार बन गया ?

(३) शिवजी भी हंस रूप धर कौए से कथा सुनते हैं।

(४) इहां बसत मोहि सुनेउ खगेसा।
बीते कल्प सात अरु बीसा॥

सत्ताईस कल्प बीतने पर भो यह पक्षी ज्यों का त्यों बना रहा। प्रिय मित्रो! कुछ सोचो तो यदि भुशुण्डजी कल्पान्त तक प्रतिदिन चिड़ियों को रामायण सुनाया करता तो कुछ भी चिड़ियां तो वैष्णव बनी हुई दीखतीं! काकजी का एक भी चेला कण्ठा, तिलक, छापा लगाये नहीं दीखता। ऐ मूर्खते, तू धन्य है!

(५) राम के बाल रूप को देखकर यह कौआ भ्रम में पड़ गया। रामजी इसे पकड़ने दौड़े। आखिर पकड़ लिया। राम हँसने लगे तो यह मुँह के अन्दर चला गया वहां शत कल्प बात गये। जब पुनः राम हँसे तो बाहर निकल पड़ा। तुलसी लिखते हैं यह लीला दो घड़ी में ही हुई। विचारशीलो! विचारिये तो कि पेट में कई सहस्रवष बीत गये और बाहर केवल दो घड़ी बीतीं। यह कैसे ?

(६) इसी प्रकार नारद मोह, इन्द्रपुत्र जयन्त तथा ऋषि दुर्वासा की कथा भी असंगत और सृष्टिक्रम विरुद्ध हैं।

मिथ्यात्व का विचार (७) जन्मते ही हनुमान् ने सूर्य को पकड़ लिया (८) सूर्य से इसने विद्या सीखी थी। (९) अगस्त्य ने समुद्र सोख लिया। (१०) त्रिशंकु अभी तक आकाश में लटक रहा है (११) ययाति इसी शरीर से स्वर्ग गया और पुनः वहां से गिर गया। (१२) रावण ने कैलाश पर्वत को उठा लिया। (१३) रावण ने अपने दशों सिर शिव के ऊपर चढ़ा दिये (१४) मैनाक, हिमालय आदि पर्वत उड़ा करते थे (१५) पृथिवी, समुद्र, नदो, वृक्ष आदि (काव्य दृष्टि से नहीं साधारण दृष्टि से भी) परस्पर बातें करते थे।

आदि अनेकों गप्पें तुलसी रामायण में वाल्मीकि रामायण के विरुद्ध हैं। अहल्या उद्धार, परशुराम आगमन, आदि अनेकों कथा प्रसंग भी वाल्मीकि रामायण के विरुद्ध हैं।

मनोबल का ह्रास—(१६) 'मानस' में भूत, प्रेत, डाकिनी-शाकिनी, मन्त्र तन्त्र के वर्णन पढ़कर लोग महा कुसंस्कारी ही बनेंगे [यद्यपि अन्यत्र इनका विरोध भी है] [१७] राष्ट्र की पीढ़ियां—मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि में फँसकर घोर अघोरी बनेंगी। (१८) रुण्ड-मुण्डमाला धारिणी, मांस शोणित-भक्षिणी, योगिनी, कालिका, चामुण्डा आदि के चरित्र पढ़कर महा विरुद्धाचारी [१६] छींक, स्वप्न, शकुन-अशकुन इत्यादि मानकर दुर्बल हृदय एवं मनोबल शून्य—बनती रही और बनेंगी।

खाद्याखाद्य का अविचार—(२०) 'शिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर मोहि सपनेहु नहिं भावा॥' से सिद्ध है कि वैष्णवों का शाक्त और शैव होना प्रथम 'आवश्यक है। शैवमत का ही भेद शाक्त है और चामुण्डा कालिका, काली आदि देवियां मनुष्य मांस तक ग्रहण करती हैं फिर उनके भक्त कैसे बच सकते हैं? और बचते हैं तो पूर्ण शिवभक्त नहीं रहते!

ईश्वर का छल—(२१) 'हम काहू के मरहिं न मारे। वानर मनुज जाति दुइ बारे॥' इस वर में रावण वरदान प्राप्त करता है। ईश्वर मनुष्य का जन्म लेकर वरदान की मूल-भावना को ही नष्ट करके अपने छल का परिचय देता है। सत्यान्वेषी सज्जनो! यहाँ एक बात और स्पष्ट है कि जब "नर के हाथ से रावण मरेगा" यह सत्य है तो राम नर ही थे ईश्वर नहीं और यदि राम ईश्वर थे तो यह सरासर धोखा है। [२२] ऐसे ही धोखे से मधुकैटभ और हिरण्याक्ष मारा गया। क्या 'मानस' के पाठक इससे धोखेबाजी और छलादि ही नहीं सीखेंगे?

व्यभिचार—[२३] मोहिनी रूप से असुरों को धोखा दिया। [२४] 'छल कर टारेहु तासु व्रत०' में जलन्धर की स्त्री वृन्दा का सतीत्व नष्ट किया। [२५] ऐसे ही शंखचूड़ की स्त्री विचारी तुलसी ठगी गई। तुलसी के पातिव्रत को नष्ट करने की कथा से समाज को क्या शिक्षा मिलेगी ? देश की आशा रूप युवकों और छात्रों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ?

घोर अज्ञानता—[२७] 'ग्रसइ राहु निज सन्धिहि पाई।' चन्द्रमा को एक असुर राहु ग्रसता है। [२८] हरिण इसकी गोद में है। [२९] यह घटता और बढ़ता है। [३०] पृथ्वी की छाया से यह श्याम है आदि अज्ञानी बच्चों की सी बात हैं।

विज्ञान-विरोधी—(३१) इस पृथ्वी को नीचे से सांप, कछुआ और सुअर वगैरह पकड़े हुए हैं। [३२] सूर्य के रथ में घोड़े लगे हुए हैं। प्यारे भ्राताओ! इन विज्ञान-विरोधी बातों को त्याग वेद की शरण में आओ।

सृष्टिक्रम-विरुद्ध—[३३] विष्णु के पैर से गंगा (३४) सूर्य से यमुना आदि नदियां निकलती हैं। [३५] हिमालय विन्ध्याचल आदि पर्वतों के भी मनुष्यवत् विवाह सन्तान आदि हुआ करते हैं। इन गप्पों पर भूगोल के छोटे छोटे विद्यार्थी भी हँसेंगे। [३६] मेघनाद के कटे हुए हाथ ने सुलोचना को पत्री लिखकर दो। [३७] उसका आधा सिर हँसने लगा। [३८] अहल्या का पत्थर पुनः स्त्री होना आदि सभी सृष्टिक्रम-विरुद्ध हैं।

लङ्का में राक्षसों की सृष्टि—(३९) कोई त्रिमुख, कोई अ-मुख, त्रिशिरा, कोई बहुशिरा अर्थात् मनुष्य से सब ही विलक्षण थे। ये सब सृष्टिक्रम विरुद्ध कौतुकता की बातें हैं।

चरित्र नाशक—(४०) कलियुग में जप, तप, पूजा-पाठ कुछ न करके केवल नाम ही जपना (४०) घोर पापी का भी रामायण पाठ-

न-श्रवण मात्र से (बिना सदाचार की प्रवृत्ति के) उद्धार होना इन मान्यताओं से पाप-प्रवृत्ति बढ़कर चरित्रनाश होता है। (४२) अजामिल आदि की कथायें चरित्र-निष्ठा को कमजोर करने वाली हैं।

बाल-विवाह—(४३) आदि सामाजिक कुरीतियों का समर्थन ६ वर्ष की निरी बालिका सीता का विवाह करके किया है। यह 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी०' की अनर्गल उक्ति के प्रभाव को प्रकट करता है। (४४) विवाह के समय राम को भी १५ वर्ष का बताया है। शोक!

एक समय में दो ईश्वर—(४५) 'मानस' के परशुराम संवाद के घटनाक्रम में तो वाल्मीकि से अन्तर है ही दोनों 'रामों' को एक समय में ही अवतार बनाकर खड़ा कर दिया गया है। मजा यह है कि दोनों अवतार एक दूसरे को पहिचान भी नहीं पाते। कैसा बुद्धि और विवेक शून्य प्रलाप है, यह सब।

वेद मार्ग का लोप—(४६) राम पार्थिव अर्थात् मिट्टी को पूजा करते थे (४७) राम ने समुद्र सेतु के ऊपर लिंग स्थापना की (वाल्मीकि रामायण में कहीं भी इसकी चर्चा तक नहीं है।) विचारशील सज्जनो! कुछ विचारिये तो कि क्या लिङ्ग पूजा के समान जगत् में कोई घृणित पूजा है? (४८) रामेश्वर महादेव पर गङ्गाजल चढ़ाने से मोक्ष की प्राप्ति (४९) प्रणाम करती हुई सीता को गङ्गा आशीर्वाद देती है, आदि जड़ पूजा के प्रकरण हैं।

मिथ्या नाम महात्म्य—(५०) परम पवित्र प्रणव (ओङ्कार) जाप कि जिसका विधान सभी सत् शास्त्रों में किया है और स्वयं राम भी जिस 'परम जप' को जपते थे उसके स्थान पर 'राम सकल नामन ते अधिका' यह वेद विरुद्ध और मिथ्या कल्पना है।

(५१) वेदादि सत् शास्त्रों के प्रचार में सबसे बड़ी बाधा—

—'राम चरित मानस' है। शुद्ध इतिहास को धर्मग्रन्थ मान कर बड़ा अनर्थ हुआ है। सस्ते मुरसे से मोक्ष कर झब्बू लूटने वाले,

इसके अखण्ड कीर्तन से पापों से नहीं पापों के फल से साफ बच निकलने से प्रलोभित वेदादि सत् शास्त्रों के सुनने-पढ़ने का विचार तक भी मन में नहीं ला पाते । ज्यों-ज्यों तुलसी-रामायण का धर्म ग्रन्थ के रूप में महत्व बढ़ा, त्यों-त्यों वेदादि सत्य शास्त्रों को ताला लगा दिया गया । क्या यह घोर दुर्भाग्य नहीं है कि जिन वेदों को समस्त आर्य जाति अपौरुषेय और ईश्वरीय वाणी मानती है स्वयं तुलसी ने जिनका भूरि-भूरि स्तुति-गान किया है, उनका पठन पाठन तो दूर वेद का नाम तक ६०-६५ फीसदी आर्यों (हिन्दुओं) को पता नहीं, उन्हें यह ज्ञान नहीं कि वेद कितने हैं और उनके नाम क्या हैं । मुसलमान के बच्चे २ को कलमा याद होगा पर ६५ फीसदी आर्यों (हिन्दुओं) को यहाँ तक कि करोड़ों ब्राह्मण नामधारी महानुभावों तक को गायत्री मन्त्र तक नहीं आता ।

ऐसी जाति यदि सदैव लुटती पिटती रहे तो आश्चर्य ही क्या ? पुण्य भूमि भारत को प्यारी भारत माता को, छुआछूत, जाति, पाँति अन्य अनेकों वेद-विरुद्ध आचरणों से खण्ड-खण्ड कराने वाले हमारे अखण्ड कीर्त्तनी बन्धु अब हवन (यज्ञ) भी वेद-मन्त्रों की जगह रामायण की चौपाइयों से ही करने लगे हैं । शोक ! महाशोक ! ! तुलसी रामायण को 'चारिहु वेद, पुराण अष्टदश, छहउ शास्त्र सब ग्रन्थन को रस' बताकर वेद प्रचार में जो बाधा पहुँचाई है वह अवर्ण्य है । जब किसी हीनतर चीज से सब कुछ प्राप्ति की आशा कराके किसी को धोखे से सन्तुष्ट करा दिया जावे तब वह श्रेष्ठतर और तपस्या साध्य वस्तु की प्राप्ति के लिये क्यों प्रयत्न और पुरुषार्थ करेगा ?

—o—

मानसकार का सबसे बड़ा अनर्थ !

रामायण हमारा ऐतिहासिक ग्रन्थ है । यह हमारे पूर्वजों की गौरव गाथा है । महर्षि वाल्मीकि ने श्री राम के जीवन काल में हो

राजगद्दी के पश्चात् इस पवित्र ऐतिहासिक वृत्त को महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया था। गोस्वामी जी ने आर्य जीवन के इस गौरव-शाली इतिहास को—आर्य संस्कृति और सभ्यता के निर्देशक इस शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त पर पौराणिक भक्ति की चाशनी चढ़ाकर—'पुराण-काव्य' बना डाला है। 'राम चरित मानस' को उन्होंने इतिहास ग्रन्थ के रूप में नहीं, भक्ति ग्रन्थ या धर्म ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया है। अपने जातीय इतिहास की ओर दुर्लक्ष्य के भयावाह परिणाम हमारे सामने आये हैं—दासता और दारिद्र्य के रूप में। और भी महाभयङ्कर दुष्परिणाम हुआ है, इस अशुद्ध राष्ट्र-विघातक धारणा के निर्माण के रूप में कि राम तथा राम-कथा कवि-कल्पना मात्र है। अर्वाचीन पद्धति के यूरोपीय विद्वानों और उनसे प्रभावित भारतीय विद्वानों की आज यह मान्यता बन चुकी है कि जिस तरह कोई उपन्यास या कहानी लेखक अनेकों पात्रों की कल्पना कर लेता है, वस्तुतः उनका कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं होता आदि कवि महर्षि बाल्मीकि ने भी उसी प्रकार अपनी प्रखर प्रतिभा से रामादि पात्रों की कल्पना की है। वास्तविक में श्री राम आदि ऐतिहासिक सत्ता नहीं रखते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे राम को हमसे छीन लेने का जिसका अर्थ है हमारे सांस्कृतिक गौरव और शिखरासीन आर्य सभ्यता को मिटा देने को यह दुर्भाग्यपूर्ण दुष्प्रयास आज हो रहा है। पर थोड़ा भी विचार करने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि इसमेंपाश्चिमात्य विद्वानों का अधिक दोष नहीं है।

इसके लिये मूलतः दोषी हैं अवतारवादी। अवतारवाद, चमत्कारवाद और पौराणिक मतवाद के मायाजाल में श्री राम की ऐतिहासिकता को इतना उलझाया गया कि उसका सर्वथा लोप ही हो गया है। पौराणिक गप्पों और बुद्धि-विज्ञान विरुद्ध चमत्कारों की आध्यात्मिक व्याख्याओं का भी यही दुष्परिणाम हुआ है। और तो और इस युग के तथाकथित लोकनायक महात्मा गान्धी की दृष्टि में

राम-रावण युद्ध प्रत्येक मनुष्य के अन्तःक्षेत्र में हर समय चलने वाले दैवी और आसुरी वृत्तियों के संघर्ष का काव्यगत वर्णन मात्र है, सत्य ऐतिहासिक घटना नहीं।

क्या यह अनजाने ही पौराणिक संस्कारों के आधीन महाकवि तुलसीदास के हाथों अपने इतिहास-नाश, सस्कृति-विनाश और राष्ट्र-जीवन के सर्वनाश ऐसा घोरतम अनर्थ नहीं हो गया ?

प्रश्न—तुलसी रामायण से जो इतना महान् अनर्थ हुआ या हो रहा है उसके लिये गोस्वामी तुलसीदास जी कहाँ तक दोषी हैं ?

उत्तर—तुलसी के काव्य-सौष्ठव की बात भिन्न है, जहाँ तक सिद्धान्त, नीति और आचार का प्रश्न है राष्ट्र के घोर पतन के लिये तुलसीदासजी को सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता ! हाँ, यह ठीक है कि इस दुराचार का अधिक दोष अन्ततः पुराणकर्त्ताओं को ही जाता है। पर तुलसीदास जी ने भी अपनी ओर से कम नमक मिर्च नहीं मिलाया। बाल्मीकि रामायण के विरुद्ध तो'मानस'में सैकड़ों प्रसङ्ग हैं ही,अध्यात्म रामायण से भिन्न भी अनेकों मिथ्या और अनर्गल प्रसङ्ग हैं। पुष्प वाटिका में राम-जानकी की भेट, सीताजी द्वारा गौरीपूजन धनुष-भङ्ग के बाद सभा में ही परशुराम का आगमन और लक्ष्मण का उपहास, व्यङ्ग एवं आवेशपूर्ण अशिष्ट सम्वाद, बाल काण्ड में प्रताप-भानु की कथा, नारद मोह, सीता मोह, शङ्कर कृत मदन-दहन, पार्वती विवाह आदि अनेकों महागप्पें स्वयं तुलसी की ही करामात हैं। पर यह तो मानना ही होगा कि यह सब पौराणिक कुसस्कारों या सामाजिक वातावरण के प्रभाव वश ही हुआ उनकी अपनी ओर से मिलावट भी उसी प्रभाव के कारण है। नीयतन वे देश या समाज का अहित चाहते थे, ऐसी बात नहीं।

अन्त में हम गो॰ तुलसीदास की काव्य प्रतिभा के लिये अपना आदर भाव प्रकट करते हुए कहना चाहेंगे कि 'मानस' गप्पों का एक

अद्‌भुत पिटारा है। इसे रामायण के स्थान पर 'गप्पायन' कहना अधिक ~मीचीन है। परम प्रभु हमारे देशवासियों को सुबुद्धि दें जिससे हम 'राम चरित मानस' को सिर्फ काव्य ग्रन्थ के रूप में देख सकें। यह धर्म ग्रन्थ तो है ही नहीं, अपने मूल रूप में शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ भी यह नहीं है। संक्षिप्त 'राम चरित मानस' के रूप में हमने इसे किन्हीं अंशों में ऐतिहासिक ग्रन्थ बनाने का प्रयास किया है।

—:o:—

मानसकार और वेदवाद

मानव धर्म शास्त्र प्रणेता महर्षि मनु की व्यवस्था है:—"वेदोऽखिलो धर्म मूलम्" अर्थात् वेद ही समस्त धर्मों (कर्त्तव्य-कर्मों) के लिये परम प्रमाण है। यही कारण है कि आर्य जाति के सर्वोपरि इतिहास ग्रन्थ—महर्षि वाल्मीकि प्रणीत (प्रक्षेप रहित) रामायण में सर्वत्र 'वेदवाद' अर्थात् वैदिक धर्म, वदिक सस्कृति, वैदिक सभ्यता, वैदिक संस्कार, वैदिक वर्णव्यवस्था, वैदिक राजनीति, वैदिक आचार-व्यवहार, और वैदिक रीति-नीति का बोल बाला है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामायण में श्री राम को स्थान-स्थान पर स्पष्टतः महा मानव (नर-रत्न) स्वीकारते हुए 'आर्य' इस शुभ संज्ञा से सम्बोधित किया गया है तथा रामायण के विभिन्न गरिमामय पात्रों के माध्यम से आर्य-जीवन या वैदिक जीवन की शत-सहस्र प्रेरक और मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत आर्य जीवन के ये चित्र इतने गौरवपूर्ण इतने महनीय और आदर्श है कि उनकी छवि देखते ही बनती है। साढ़े नौ लाख वर्ष पुराने होने पर भी इन चित्रों के रंग नित्य नूतन हैं, उनकी चमक कम होना तो कहाँ इस पतन और परा-

भव के युग में तो वह और भी चमत्कृत करने वाली हो उठी है।*

युगों-युगों के बाद आर्य-जीवन की उसी शौर्य गाथा—पावन राम-चरित को गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने लोक भाषा (हिन्दी) में निबद्ध किया। जैसा कि हम सभी जानते हैं, गोस्वामी जी का यह प्रयास 'स्वान्त:सुखाय' होते हुए भी मुख्यतया पौराणिकताके प्रचार-प्रसार के लिये था। किन्तु उन्हें आर्य जाति के मुकुट, आर्य संस्कृति की कीर्ति पताका, वैदिक धर्म के मूर्तिमान स्वरूप (रामो विग्रहवान् धर्मः) महाभाग श्री राम का आर्य चरित्र भी तो प्रस्तुत करना ही था। इसलिये हम देखते हैं कि पौराणिक मतवाद की काली-काली घटाओं के मध्य भी श्रीराम के वैदिक जीवन की विद्युत्-किरणें यत्र-तत्र सर्वत्र ही 'राम चरित मानस' में झाँक रही हैं। गोस्वामी जी जब अवतारवाद और चमत्कारवाद की पुट देते-देते थक जाते हैं और राम कथा के मूल प्रवाह या प्रसंग को आगे बढ़ाते हैं, वहाँ स्वभावत: (राम चरित्र-वैदिक युग का इतिहास होने से) वैदिक जीवन के शाश्वत सत्यों एवं वैदिक धर्म के सार्वभौम मन्तव्यों को प्रस्तुत करना ही पड़ा है। हम यहाँ संक्षेप से इस सम्बन्ध में विचार करेंगे।

गोस्वामी जी और वेद—वेद अपौरुषेय हैं, वेद ईश्वरीय ज्ञान है, वेद परमेश प्रभु की कल्याणी वाणी है।। भारतीय जन-जीवन में व्याप्त वेदों के प्रति यह निष्ठा गोस्वामी जी को भी परम्परा से प्राप्त थी। यही कारण है कि अपनी ग्रन्थ-रचना के आरम्भ में ही उन्होंने चारों वेदों की वन्दना करते हुए उन्हें संसार-समुद्र से तारने वाला जहाज माना है—

वंदउं चारिहुँ वेद, भव वारिधि बोहित सरिस

---

* यही कारण है कि साधारण बुद्धि वाले या तो उसे आकाशीय वस्तु मानकर मनुष्य की पहुँच से दूर कहने लगे हैं, या कुछ भोले लोग उसे अपार्थिव अर्थात् सत्य ऐतिहासिक वृत्त न बताकर केवल कवि-कल्पना की उपज अथवा उपन्यास मात्र बताने लगे हैं।

परम्परा से प्राप्त गोस्वामी जी की वेदश्रद्धा इस तथ्य से प्रकट है कि उन्होंने राम चरित मानस में शताधिक बार वेदों का सश्रद्ध स्मरण किया है। यह बात भिन्न है कि पौराणिक प्रभाववश उन्होंने स्वयं चारों वेदों द्वारा राम की वन्दना कराई है जबकि वेदों में दाशरथि राम का कहीं कोई उल्लेख नहीं है, क्योंकि वेद तो सार्वभौम धर्मग्रन्थ हैं, उनमें किसी देश-विशेष या जाति विशेष का इतिहास नहीं है।

वेद मार्ग को छोड़कर विभिन्न मत-पन्थों की घड़न्त करने वालों और उन कुपन्थों पर चलने वालों को गोस्वामीजी ने बुरी तरह लताड़ा है। उन्हें सौ-सौ कल्प नरक भोगने की व्यवस्था दी है। परन्तु श्री गोस्वामीजी को यह ज्ञात नहीं है कि वेद का नाम लेकर वेदों की बन्दना करके भी वे सबसे बड़े वेद-विरोधी हैं। जैसा कि हम पीछे विचार कर चुके हैं अपने ग्रन्थ को चारों वदों का सार बताकर उसके पाठ मात्र से (आचरण से नहीं) और भाव-कुभाव किसी प्रकार से राम नाम लेने मात्र से सब प्रकार के पापों के फल से छुटकारा दिलाने की व्यवस्था देकर क्या वे वेदों के पठन-पाठन और सत्याचरण को अनावश्यकता को चीख-चीख कर घोषित नहीं कर रहे ? यह सब तो पृथक् से विस्तारपूर्वक विचारणीय है कि पदे-पदे वेद [श्रुति-निगम-आगम] की दुहाई देकर भी यहाँ तक कि प्रतापभानु की रसोई भी 'वेद विधि' से निर्मित कराके भी गोस्वामीजी के हाथों वेद की गौरव-हानि ही हुई है। किन्तु इतनी अधिक बार 'वेद' का नाम लेने से इतना तो स्पष्ट हीहै कि जिस आर्ष युग का चित्रण गोस्वामीजी द्वारा 'मानस' में किया गया है, उस युग में एकमेव वेद ही धर्मग्रन्थ के रूपमें सर्वोपरि प्रतिष्ठित थे और पवित्र वेदों का यह गौरव आज भी अक्षुण्ण है। इसीलिये महर्षि ने लिखा—"वेदों का पढ़ना-पढ़ाना सब [श्रेष्ठ पुरुषों] का परम धर्म है"।

गोस्वामीजी और आर्य शब्द—हमारा जातीय नाम आर्य

है, हिन्दू नहीं, यह तथ्य वेद, शास्त्र, उपनिषद्, वाल्मीकि रामायण, महाभारत और भगवद्गीता के शत-शत प्रमाणों से तो सम्पुष्ट है ही, किन्तु रामचरित मानस में भी एक भी स्थान पर 'हिन्दू' शब्द का उल्लेख नहीं है। हाँ, आर्य शब्द का स्पष्ट प्रयोग निम्न उद्धरण में मिलता है। मन्त्रिवर सुमन्त जब सीताजो को लौट चलने का आग्रह करते हैं तो वह कहती हैं—

आरति वश सम्मुख भयउँ बिलग न मानहु तात।
आरज सुत पद कमल बिन, वादि जहां लगि नात।।

यहाँ 'आरज' शब्द आर्य का अपभ्रंश है। महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम के लिये सीताजी द्वारा अनेकों बार 'आर्य पुत्र' शब्द का प्रयोग कराया है। गोस्वामी ने यहाँ एक बार ही सही उसका अनुसरण किया है। तो श्रीराम आर्य थे, हमारा जातीय नाम आर्य है, इस तथ्य की सम्पुष्टि मानसकार ने भी की है।

वैदिक कर्म काण्ड—श्रीराम और उनके युग के सभी ऋषि-मुनि महात्मा वदिक कर्मकाण्ड का ही अनुष्ठान करते थे, यह बात वाल्मीकि रामायण में तो सर्वत्र है हो, रामचरित मानस में भी इसो का स्पष्ट उल्लेख है।

(१) राजा दशरथ के जब कोई सन्तान न थी तो उन्होंने ऋषि शृङ्ग द्वारा 'पुत्रेष्टि यज्ञ' किया। किसी देवी की जात करने, किसी जाहरवीर सैयद, या सांई बाबा को पूजने किसो कब्र पर चद्दर चढ़ाने या अन्य किसी प्रकार की मूर्ति पूजा का कोई वर्णन यहाँ नहीं है। पुत्र जन्म पर भी यज्ञ एवं वेद-ध्वनि का हो वर्णन है।

(२) महर्षि विश्वामित्र के 'यज्ञ' की रक्षा के लिये राम लक्ष्मण उनके साथ गये थे। किसो मठ-मन्दिर की रक्षा के लिये नहीं।

(३) 'सन्ध्या करन चले दोउ भाई', 'रघुवर सन्ध्या करन पठाये' आदि से प्रकट है कि श्रीराम—लक्ष्मण स्वयं दैनिक सन्ध्यो-

पासन और नित्य कर्म (पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान) करते थे, किसी भी मूर्ति आदि का पूजन वे नहीं करते थे !

(४) महामुनि भारद्वाज विशद यज्ञों का अनुष्ठान करते थे। इसीलिये वे जहाँ रहते थे उस स्थान का नाम ही प्र+याग=प्रयाग पड़ गया था। (५) वन में जहां भी श्रीराम गये ऋषि मुनि सर्वत्र ही यज्ञ और योग साधना करते थे। किसी राम मन्दिर, कृष्ण मन्दिर हनुमान या शिव मन्दिर आदि का उल्लेख गोस्वामीजी ने भी नहीं किया, यहाँ तक कि भरत के साथ जब महामुनि वशिष्ठ राम को मनाने के लिये चले तो 'अरुन्धती और अग्नि समाजू' अर्थात् माता अरुन्धती के साथ ही वे 'अग्नि समाज'—यज्ञ की समस्त वस्तुयें ले जाना नहीं भूले। किसी शालिग्राम की बटिया या बाँके बिहारी का उल्लेख यहाँ नहीं है। आखिर इन सत्य ऐतिहासिक वृत्तों को तुलसी-दास कहाँ तक छिपाते ? केवल दो स्थानों पर उन्होंने दो नये मन-घड़न्त प्रसङ्गों की अवतारणा करके सीताजी द्वारा गौरी पूजन और श्रीराम द्वारा शिवलिंग स्थापना की व्यवस्था कराई है। ये दोनों ही प्रसङ्ग वाल्मीकि रामायण के तो सर्वथा विरुद्ध है ही अध्यात्म रामा-यण में भी गौरी पूजनका पता नहीं है। कपड़े में लगे पैबन्द की तरह ये दोनों प्रसङ्ग स्वयं चिल्ला २ कर बोलते हैं कि वे सिर्फ गोस्वामीजी पर छाये पौराणिक प्रभाव की करामात हैं।

भूत-प्रेत पूजा निषेध—एक ईश्वर को पूजा छोड़कर अनेक देवी-देवताओं और भूत-प्रेत पूजा का स्पष्ट निषेध 'भरत शपथ' के प्रकरण में गोस्वामीजी ने किया है।

वैदिक संस्कार—पुत्रेष्टि यज्ञ के रूप में गर्भाधान विधि, जात कर्म संस्कार के समय वेद-ध्वनि (राम धुन या रामायण का अखण्ड पाठ नहीं) और यज्ञों में स्वाहा-स्वधा की गूँज का उल्लेख गोस्वामीजी ने किया है। नाम करण भी वैदिक रीत्यनुसार सार्थक किये गये हैं। चूड़ाकर्म किसी गाय के खूँटे पर नहीं किया गया। वेदारम्भ, यज्ञो-पवीत एवं समावर्त्तन में किसी पौराणिक पाखण्ड का चिन्ह नहीं है।

'हमारे कुल में यज्ञोपवीत छीजता नहीं है।' ऐसा महाराज दशरथ ने नहीं कहा। स्वयम्वर रीति से विवाह हुआ। दहेज का सौदा नहीं हुआ। संस्कार में नवग्रह पूजन का पाखण्ड न होकर पवित्र वेदमन्त्रों द्वारा पाणिग्रहण हुआ। महाराज दशरथ, बालि, जटायु. रावण सभी को अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक विधि से ही सम्पन्न हुआ है। किसी भी प्रसंग में गरुड़ पुराण के पाठ या यमुना-गंगा में अस्थि प्रवाह की चर्चा गोस्वामीजी ने नहीं की। 'तिलाञ्जलि' के रूप में पौराणिकता की झलक मात्र कहीं २ है।

पर्दा प्रथा-निषेध—वाल्मीकि रामायण में तो इसकी छाया भी नहीं है। गोस्वामीजी ने कहीं २ संकेत करने का दुस्साहस तो किया है, पर बहुत डरते-डरते। स्वयंवर प्रथा की ऐतिहासिक सचाई को वे कहां ले जाते? विवाह संस्कार में सीताजी आदि घूँघट निकाल कर नहीं बैठीं। वे स्वयं वेद मन्त्रों का पाठ और श्रवण करती थीं (वाल्मीकि रामायण में तो माता कौशल्या को यज्ञ करते और सीताजी को दैनिक सन्ध्योपासना करते वर्णित किया है) सीताजी सुमन्त से निवेदन करती हैं, यद्यपि गोस्वामीजी ने इस आरति-वश या आपद्धर्म कहा है पर लङ्का-विजय के बाद तो राम स्वयं आदेश देते हैं कि सीताजी को शिविका में नहीं, पैदल लाइये ताकि सभी सैना उनका दर्शन कर सके। रामलीलाओं में तो आज भी सीताजी को पर्दा रहित दिखाया जाता है।

वर्ण-व्यवस्था—वर्णाश्रम व्यवस्था वैदिक धर्म का प्राण है। आश्रम-व्यवस्था जहाँ वैदिक जीवन निर्माण या मानव निर्माण की शत वर्षीय योजना है, वहां वर्ण-व्यवस्था सामाजिक या राष्ट्रिय व्यवस्था का आधार है। ब्राह्मण के रूप में, क्षत्रिय के रूप में, वैश्य के रूप में और शूद्र के रूप में अज्ञान-नाश, अन्याय-नाश, अभाव-नाश या इनमें से किसी के सहयोग अथवा सेवा-साधना द्वारा राष्ट्र के प्रति समर्पित जीवन (यज्ञीय जीवन) जीने की दीक्षा ही 'यज्ञोपवीत दीक्षा' है। अपनी

योग्यता (क्षमता) और स्वभाव के अनुसार इनमें से किसी एक का 'वरण' (चयन) ही वर्ण-व्यवस्था है। इसका जन्म से कोई सम्बंध नहीं। विश्वामित्र जन्मसे क्षत्रिय होते हुए भी 'विप्र' संज्ञा प्राप्त करते हैं। और रावण जन्मना महर्षि पुलस्त्य का नाती—ब्राह्मण होते हुए भी शूद्र से भी गिरवर असुर या दस्यु बन जाता है। स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने जो "पूजिय विप्र शील गुण हीना, शूद्र न पूजिय वेद प्रवीना" यह जो राम के मुख से कहलाया उनकी अपनी घड़न्त है, रामायण काल की वैदिक मान्यता नहीं है। उपरोक्त प्रसङ्गों में तथा अन्यत्र भी स्वयं गोस्वामी जी द्वारा ही इस जन्मगत जातपाँत की अन्याय-जनक, भेद भाव मूलक पाप पूर्ण विचारधारा का प्रतिवाद भी मिल जाता है।

आश्रम-व्यवस्था—श्री राम के गुरु गृह में जाकर वेदाध्ययन, गुरु विश्वामित्र के संरक्षण में शस्त्रास्त्र शिक्षण के रूप में ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य कर्त्तव्यों के पालन के रूप में गृहस्थ, महाराज दशरथ द्वारा "श्रवण समीप भयउ सितकेसा' कहकर राम को राज्यश्री सौंपने की योजना के रूप में वानप्रस्थ और अनेक ऋषि मुनियों के लोक कल्याणार्थ कर्त्तव्य रत रहने के रूप में सन्यास आश्रम का उल्लेख 'मानस' में पाया जाता है। राम राज्य के वर्णन-प्रसङ्ग में—

'वर्णाश्रम निज-निज धरम निरत वेद-पथ लोग"

इन शब्दों में भी वर्णाश्रम धर्म का महत्व वर्णित है और रामायण काल में इसी वैदिक आचरण को सभी प्रजा पालन करती थी, इस भावना की गूँज है।

विधवा उद्धार, दलितोद्धार शुद्धि-विधान, अनाथ-रक्षण

तारा और मन्दोदरी के प्रकरण में विधवा उद्धार, निषाद और शबरी के सन्दर्भ में दलितोद्धार और शुद्धि-विधान तथा अंगद को प्रश्रय देने के रूप में अनाथ-रक्षण के आदर्शों को भी 'मानस' में देखा जा सकता है।

वैदिक जीवन चर्या—श्री राम आदि के रूप में एक आर्य की जीवन चर्या का सुन्दरतम निरूपण भी मानसकार ने किया है। प्रातः-काल उठकर माता-पिता और गुरुजनों को अभिवादन करना, विनम्र भाव से शिक्षा प्राप्त करना, मातृ पितृ भक्ति, आदर्श भ्रातृ प्रेम, पति-पत्नी कर्त्तव्य, स्वामि-सेवक कर्त्तव्य, राजा-प्रजा प्रेम और मित्र धर्म के शत्-शत् प्रेरक ऐसे मनोरम चित्र गोस्वामीजी की तूलिका से चित्रित हुए हैं, जिनकी चमक कभी फ़ीकी न हो सकेगी। [पर इन चित्रोंमें तभी तक आकर्षण है जब तक वे मानव राम, मानव भरत, मानव लक्ष्मण, मानवी सीता, मानव हनुमान और मानव सुग्रीव के चित्र हैं। अवतारवाद का पुट देते ही आर्य जीवन चर्या की यह चमक समाप्त हो जाती है।]

अभिनन्दन—वाल्मीकि रामायण में तो अभिवादन के लिये स्पष्ट 'नमस्ते' का प्रयोग मिलता है। [अन्धकार युग में हमारी यह निधि भी हमसे जैसे छिन गई] किन्तु गोस्वामीजी ने भी वन्दना, प्रणाम, जयजीव, जुहार आदि शब्दों का प्रयोग तो किया है, पर राम राम, जै रामजी की, जय सीता राम, जै राधेश्याम, जै श्रीकृष्ण, जै गोपालजी, जै राधे-राधे आदि का प्रयोग कहीं नहीं किया। स्वयं राम के समय में और राम एवं कृष्ण के जन्म से पूर्व अभिवादन के रूप में इन शब्दों का प्रयोग सम्भव भी क्योंकर होता ? 'मानस' में सैनिक घोष के रूप में उत्साहवर्द्धन या प्रसन्नता प्रकाशन के लिये 'जय राम' का प्रयोग अवश्य हुआ है। अभिवादन के रूपमें इसका प्रयोग गोस्वामीजी ने कहीं नहीं किया।

अन्य वैदिक सिद्धान्त—द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि के घटाटोप के मध्य 'ब्रह्म जीव बिच माया जैसे" में वैदिक त्रैतवाद "बिनु पग चले सुनै बिनु काना" में ईश्वर का सत्य स्वरूप, "ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना" में वैदिक भक्ति के एक अंग की सम्पुष्टि तथा "निज कृत कर्म भोगु सब भ्राता" अथवा 'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा" में वैदिक कर्मफल वाद के शाश्वत सिद्धान्तों अथवा 'वेदवाद' का जय घोष यत्र-तत्र सर्वत्र ही 'मानस' में देखने को मिल जाता है।

रामायण प्रश्नोत्तरी

'राम चरित मानस' के भी गहन अध्ययन से यह सुसिद्ध है कि ईश्वरावतार असम्भव है, और कि श्री राम हमारे महान् पूर्वज राष्ट्र-पुरुष, युग निर्माता और आदर्श महामानव थे। अतः प्रकट है कि रामायण कोई भक्ति ग्रन्थ, धर्म ग्रन्थ या पूजा-पाठ मात्र की वस्तु नहीं, वरन् आर्य जाति का प्रेरणा स्रोत शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ है। हम यहाँ इसी आधार पर रामायण सम्बन्धी शङ्काओं अथवा प्रश्नों के समाधान खोजने का यत्न करेंगे।

प्रश्न—रामायण की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—रामायण की कथा का सूक्ष्म रीति से विचार करने पर यह बात स्वयं प्रकट हो जाती है कि इस रामायण की कथा में—(१) देवजाति (२) आर्य जाति (जिसको नर या मानव कहा गया है) (३) वानर जाति (४) राक्षस जाति, इन चार मानववंशों का संबंध आया है अर्थात् इनका राष्ट्रीय संघर्ष इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है।

दशरथ राजा के अश्वमेध में राष्ट्रीय नेताओं की एक बड़ी सार्वभौमिक परिषद् हुई थी। इस परिषद् में रावण के पाशवी शक्ति पर खड़े हुए साम्राज्य का नाश करने का प्रस्ताव सबकी अनुमति से स्वीकृत किया गया था, तथा इस परिषद् में किस जाति ने इस रावण वध के सम्बन्ध में किस कार्य को करना चाहिए, यह भी निश्चित हुआ था। इस परिषद् में (१) देववीर और (२) ऋषि प्रमुख कार्यकर्त्ता थे तथा (३) आर्यराजा और आर्य नेता पीछे-पीछे रहकर अनुमोदन देने वाले थे। आर्यराजा सम्राट् रावण से बहुत डरते थे, इसलिये अश्वमेध के इस अधिवेशन में वे शामिल नहीं हुए थे।

इस सार्वभौमिक परिषद् में वानर तथा राक्षस नहीं आये थे। इसका कारण यह था कि वानरराज बाली का राक्षसराज रावण के

साथ अग्निसमीक्षक सख्य हुआ था, अर्थात् कोई परस्पर आक्रमण करने लगा, तो दोनों मिलकर उसका प्रतिकार करें, यह इस संधि का आशय था। अर्थात् वानर और राक्षस ये परस्पर मित्र राष्ट्र के लोग थे, इस कारण देव और आर्यों की रावण-विरोधी परिषद् में वानर तथा राक्षसों का आना उक्त कारणसे सम्भवन था। इस सार्वभौमिक परिषद् में यह निश्चित हुआ कि, वानरराष्ट्र को राक्षसराष्ट्र से अलग करना और उसको और उसको आर्यराष्ट्र के उद्दिष्ट कार्य में सहभागी बनाना। इसी उद्देश्य से इस परिषद में यह भी निश्चित हुआ कि वानर जाति के तरुण युवकों को विशेष रीति से तैयार किया जावे और यह कार्य ऋषि तथा देव मिलकर करें।

यज्ञ के मिष से देववीरों और आर्यवीरों के सम्मेलन आर्यावर्त में बारम्बार होते थे। पर नासिक प्रान्त में रखे राक्षस सैन्य का नाश करने, वानरों के साथ मित्रता करने और इस तरह अपना बल बढ़ाकर रावणपर चढ़ाई करनेका कार्य श्रीरामचन्द्र तक किसी ने भी किया नहीं था। रावण के भय से देववीर और आर्यवीर काँपते रहते थे। इसलिये प्रारम्भ में श्री रामचन्द्रजी की भी सहायता इनमें से किसी ने नहीं की। पर जब श्रीरामचन्द्र जी को निःसन्देह विजय होगी, ऐसा स्पष्ट दीखने लगा तब इन्द्र ने अपना रथ और सारथि भेजकर उनकी सहायता करने का धर्म दिखाया। इस समय की राजकीय अवस्था की ठीक-ठीक कल्पना होने से यह सब स्पष्ट हो जायगा।

ऋषि लोग प्रारम्भ से ही रामचन्द्र की सहायता जहाँ तक बन सके, वहाँ तक प्रयत्न करके करते थे। इतना ही नहीं, परन्तु रामजन्म के पूर्वकाल से ही रावण वध रूप बड़ा राष्ट्रकार्य करने-करवाने का प्रयत्न उन्होंने चलाया।

ऋष्य शृङ्ग द्वारा पुत्रेष्टियज्ञ, महर्षि विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को लेने आना, महामुनि वशिष्ठ की विशेष प्रेरणा से राम-लक्ष्मण का उनके साथ जाकर शस्त्र-अस्त्रादि का विशेष शिक्षण और राम का

देवराष्ट्र

—:※०※:—

१. देव अलग योनि नहीं है।
२. कैलाश, आकाश में नहीं है।
३. गन्ध, वँ किन्नर, यक्ष अप्सरा देवजाति के ही अङ्ग थे।
४. इन्द्र, विष्णु, शिव आदि हिमालय के ऊपर रहने वाले माण्डलिक राजा थे। ये विभिन्न पदों के भी द्योतक थे।
५. नारद वसिष्ठ आदि विशेष उपाधियाँ थीं।
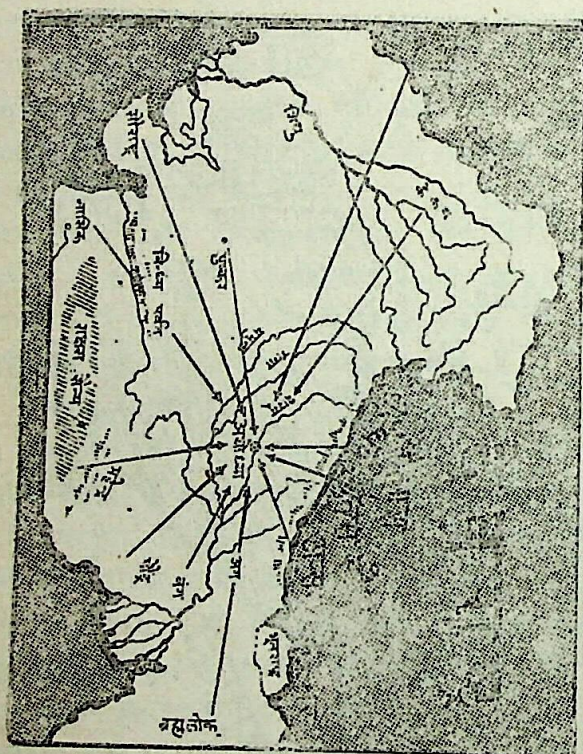
महाराज दशरथ के अश्वमेध में भाग लेने वाले गण-राज्य

वन जाना तथा अगस्त्यऋषि के विज्ञान-केन्द्र से नवीनतम शस्त्र-अस्त्रादि प्राप्त करना उसी पूर्व नियोजित योजना के अङ्ग हैं।

वानर जाति की नई पीढ़ी में आर्यजाति के प्रति आत्मीयता और राक्षसों के प्रति घृणा उत्पन्न करने के विचार से ही अगस्त्य आदि ऋषियों ने दण्डक वन में अपने अनेकों आश्रम और ज्ञान-विज्ञान केन्द्र भी स्थित किये। "वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता:" के रूप में इस वेदादेश के पालनार्थ आर्य राष्ट्र के जागरूक ऋषियों, देव राष्ट्र के देवों (विद्वानों) द्वारा राम-लक्ष्मण, हनुमान आदि के रूप में क्षात्रधर्म के पुनर्जागरण का योजनाबद्ध पुण्य-प्रयास किया गया था।

राम-रावण युद्ध वस्तुत: दो राष्ट्रों का युद्ध था। यह कहना और भी अधिक समीचीन होगा कि यह युद्ध दो संस्कृतियों का युद्ध था। रामायण आर्य संस्कृति की दिग्विजय और आसुरी सभ्यता के पराभव का ऐतिहासिक वृत्त है।

इस प्रकार देवों की योजनानुसार ※ महामानव (आर्य) राम द्वारा वानर जाति के सहयोग से राक्षसों का पराभव करके वर्णाश्रम धर्मयुक्त सांस्कृतिक आर्य साम्राज्य की संस्थापना ही रामायण की पृष्ठभूमि है।

प्रश्न—देव, आर्य, वानर और राक्षस कौन थे?

उत्तर—गोस्वामी जी ने आर्यवीर श्री राम आदि को तो मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है, किन्तु देव, वानर और राक्षसों को मनुष्य नहीं माना है। यह अवतारवाद और चमत्कारवाद की लीला तथा इतिहास को दुलक्ष्य करने के महापाप का ही परिणाम है। सत्य यह है कि देव, वानर और राक्षस भी मनुष्य थे, कोई मानवेतर पदार्थ नहीं थे। जिस प्रकार सम्पूर्ण मानव जाति एक होते हुए भी फ्राँस के निवासी फ्राँसीसी, जर्मनी के निवासी जर्मन जापान के निवासी जापानी, रूस के रूसी कहलाते हैं, उसी प्रकार के ये सम्बोधन दैशिक

※ देवों की इस योजना को ही चमत्कारवादियों तथा अवतारवादियों ने राम जन्म से सम्बन्धित अनेकों काल्पनिक कथाओं के रूप में प्रकट किया है।

अथवा राष्ट्रीय थे। जिस प्रकार से सम्पूर्ण मानव जाति का आकार-प्रकार एक होते हुए भी स्थान और जलवायु भेद से रंग-रूप, आकृति-प्रकृति में और सुन्दरता-असुन्दरता या बलाबल की दृष्टि से थोड़ा-बहुत भेद होता है, वैसा ही इनमें भी रहा होगा। इनके इस नामकरण में उनके जातीय गुणों का भी संकेत मिलता है। हम यहाँ अति संक्षेप में इन पर विचार करेंगे।

देव—देवराष्ट्र के निवासी देव कहलाते थे। पञ्जाबी, बंगाली, गुजराती, बिहारी आदि प्रान्तीय-भेद की तरह ही नाग, किन्नर, गंधव, यक्ष आदि इनके भी कई भेद थे। यों इनमें भी अच्छे-बुरे सभी प्रकार के मनुष्य थे। इनमें भी परस्पर युद्ध आदि होते थे। पर सामान्यतः देववीर गौरवर्ण, उन्नत, ललाट, सौम्य स्वभावी सात्विक वृत्ति के तथा परोपकार-परायण थे। इसलिये इनकी संज्ञा 'देव' थी। इन्होंने ही आर्य राष्ट्र की रक्षा के लिये महाराज दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में रावण-नाश की योजना आर्य ऋषियों (ब्राह्मणों) के सहयोग से निर्मित की थी। गोस्वामी जी ने अवतारवाद के कुचक्र में फँसकर देवों को प्रायः बड़ा स्वार्थी और आत्म-केन्द्रित दर्शाया है। हाँ, किसी शुभ अवसर पर 'पुष्प वर्षा' का एक यह कार्य उन्हें सौंपा हुआ है। लगता है जैसे देवता, सदैव आकाश में पृथ्वी से ऊंचे रहते हैं या विमान पर चढ़े रहते हैं और जब अवसर देखते हैं पुष्प बरसाते रहते हैं। काव्य की दृष्टि से तो यह ठीक हो सकता है कि जो आचार-व्यवहार की दृष्टि से सामान्य जनों से ऊंचे उठे हुए हैं, परहित चिन्तन ही जिनका काम है और जो शुभ कर्म करने वालों को आशीर्वाद देते तथा उनका उत्साह बढ़ाते हैं, वे देव हैं। पर वे कोई मनुष्येतर जीव हैं, लोकान्तर के निवासी हैं, कोई आकाशीय पदार्थ हैं तथा उनके ४-६ मुख या हाथ पैर हैं—यह सब भ्रान्तिपूर्ण है।

—प्रायः देवों के नाम वैदिक थे। इन्द्र वायु, धर्म, अग्नि, शिव आदि नाम परमात्मा के हैं। और ये नाम लोक में देव जाति के महा-

पुरुषों व राजा आदि के भी थे। इसलिये बहुधा भ्रान्ति हो जाती है। इन्द्र कोई एक नहीं था। देव राष्ट्र के शासक का नाम इन्द्र था। सभाध्यक्ष का नाम विष्णु, सेनाध्यक्ष का नाम वायु आदि थे। कोषाध्यक्ष कुवेर और लेखा रखने वाले (Accountant) को चित्रगुप्त कहते थे। इसी प्रकार विभिन्न विभागों के अधिपति विभिन्न नामों से पुकारे जाते थे।

राक्षस—गोस्वामी जी के मत में राक्षस यह कोई भयानक विशालकाय, कुरूप, बीभत्स, घिनौने, धर्मध्वंसक, यज्ञयाग-विध्वंसक, गोब्राह्मण-भक्षक विजातीय (मनुष्येतर) जीव थे, किन्तु ऐसा नहीं है।

१—राक्षसों का विवाह सम्बन्ध देव, दैत्य, असुर गन्धर्व तथा मनुष्यों से हुआ था। एक इसी बातसे सिद्ध है कि राक्षस मनुष्य ही थे क्योंकि वैषयिक प्रेम समान जातियों में होता है। गौ और घोड़े में नहीं हो सकता। पहाड़ जैसा ऊँचा राक्षस और तीन हाथ ऊंची स्त्री में प्रेम होना सम्भव नहीं। रावण के पास जो स्त्रियां थीं उनमें कई तो स्वयं उस पर प्रेम करती हुई आई थीं। २—रावण संन्यासी के वेश में सीता को ले जाने के लिये श्री राम के आश्रम में गया, यह केवल संन्यासी के कपड़े धारण करने से ही संन्यासी जैसा दीखने लगा था। यदि उसका शरीर लोकविलक्षण होता तो,यह संन्यासी कैसे बनता और सीता उसके छलावे में क्योंकर आती ? ३—शूर्पणखां रावण की बहिन थी, राक्षसी थी। उसकी यदि आकृति और यष्टि भिन्न होती तो वह गोस्वामी जी के ही शब्दों में 'तुम सम पुरुष न मो सम नारी' ऐसा कैसे कह सकती थी ? ४—रावण यदि मनुष्येतर जाति का होता तो गोस्वामी जी के शब्दों में—

कह रावनु सुनु सुमुख सयानी। मन्दोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥

—इस प्रकार का अनुरोध सीता जी से करने की स्थिति में क्योंकर होता ? ५—रावण महा पण्डित भूरिश्रवा का पुत्र और महर्षि

पुलस्त्य का नाती था। क्या मनुष्य की सन्तान कोई मनुष्येतर योनि होना सम्भव है ? वाल्मीकि रामायण में जो कुलों का वर्णन मिलता है उससे सिद्ध है कि राम और रावण की कुल-परम्परा एक ही थी। श्री राम का पितृकुल और रावण का मातृकुल एक ही था। कश्यप-पुत्र विवस्वान् के कुल में राम हुए और उसी विवस्वान् की पुत्री मया के कुल में रावण आदि राक्षस हुए। इस प्रकार भी सुस्पष्ट है कि राक्षस मनुष्य ही थे। हाँ, किसी स्थान विशेष अथवा जातीय नस्ल के प्रभाव का सामान्य अन्तर आज भी देखने में आता है। गोरखे और जाट सेना के लिए अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं। बङ्गाली प्रायः शरीर से कमजोर पर बुद्धि में प्रखर होते हैं। मराठी गुजरातियों की अपेक्षा शरीर-बल में तगड़ पड़ते हैं। पञ्जाब और राजस्थान की वीरता प्रसिद्ध है। तो इसी प्रकार का सामान्य भेद नर (आर्य) वानर और राक्षस में भी हो सकता है। 'राक्षस' शब्द दुष्टकर्मा के लिए बाद में रूढ़ हुआ है। उस समय यह जातिवाची ही था। विभीषण के लिए भी राक्षस राक्षसेश्वर आदि शब्दों के प्रयोग से भी यह तथ्य स्पष्ट है।

राक्षस बर्बर नहीं बरन् सभ्य और सुसंस्कृत थे, इसका परिचय वा० रामायण में कई स्थलों पर मिलता है। राक्षस-राज्य की अद्भुत वैज्ञानिक प्रगति, लङ्का का निर्माण, राक्षस-स्त्रियों की शिक्षा, मन्दोदरी आदि के विविध वस्त्राभूषण, युद्ध कौशल, राजसभा और उसके नियमों आदि के वर्णनों में उनकी सभ्यता को देखा जा सकता है। अतः सिद्ध है कि राक्षस न तो बर्बर थे और न मनुष्येतर अन्य जीवधारी।

वानर—गोस्वामी जी ने वानरवीरों को भी मनुष्य नहीं माना है, उन्हें बन्दर (पशु) माना है। किन्तु यहां भी उनकी धारणा उन्हीं के द्वारा खण्डित हो जाती है।

(१) गोस्वामी जी स्वयं मानते हैं कि वानरों का राज्य था, उसकी राजधानी किष्किन्धा थी। उनका राजा बाली था। 'मन्त्रिन्ह

पुर देखा बिनुसाई से प्रकट है कि मन्त्रि-परिषद् थी। क्या यह सब बन्दर (पशु) जाति में संभव है ? (२) क्या बन्दरों में भाई-भाई का सम्बन्ध या पति-पत्नी का मनुष्यवत् श्रौताचार सम्भव है ? (३) क्या श्री राम की यह युक्ति—"अनुज वधू भगिनी सुत नारी।" बन्दर (पशु) जाति के लिये हो सकती है ? (४) क्या मानव श्रीराम की मित्रता "पावक साखी राखि कर कीन्हीं प्रीति दृढ़ाइ" यज्ञाग्नि को करके बन्दर(पशु)सुग्रीव के साथ सम्भव है ?(५) और क्या इस साक्षिक यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करने वाला हनुमान् बन्दर (पशु) था ? (६) "विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ' गोस्वामी जी का यह बचन क्या कहता है ? क्या किसी बन्दर (पशु) के तिलक लगाकर, उत्तरीय डालकर कोई पुस्तक बगल में पकड़ा कर 'ब्राह्मण' बनाया जा सकता है ? और महर्षि बाल्मीकि के अनुसार तो श्री राम के शब्दों में चारों वेदों का पण्डित, जिसके उच्चारण में व्याकरण की एक भी त्रुटि न हो ऐसा ब्राह्मण बन्दर पशु बन सकेगा ? (७) और क्या राम वेश बनाये हुए बन्दर को न पहिचान कर यह कहेंगे—"विप्र कहहु निज कथा बुझाई ?" (८) क्या बन्दरों की पत्नी तारा जैसी विदुषी स्त्री होंगी ? (९) क्या राम का यह उपदेश—"क्षिति जल पावक गगन समीरा" बन्दरिया तारा (पशु) के लिये था ? (१०) क्या "मृतक कर्म विधिवत् सब कीन्हा" बाली की वैदिक विधि से अन्त्येष्टि क्रिया का राम द्वारा सम्पन्न करना यह बताता है कि वाली बन्दर (पशु) था ?

(११) लक्ष्मण तुरत बुलाये, पुरजन विप्र समाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ, अङ्गद कहँ युवराज॥

क्या यह राजतिलक और युवराज पद वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा बन्दरों (पशुओं) को लक्ष्मण जी ने दिलाया था ? (१२) क्या बन्दर (पशुओं) में वालि, सुग्रीव, हनुमान् आदि ऐसे सुन्दर नाम सम्भव हैं ? (१३) क्या बन्दर (पशु) बालि ने रावण जैसे महाबली को परास्त किया था ? (१४) क्या ये पशु बन्दर सीता जी की खोज

करने गये थे ? (१५) क्या पशु वानर विविध शस्त्रास्त्रों का चलाना जानते थे ? (१६) क्या बन्दरों की पत्नी बन्दरी की जगह नारियाँ (मानवी) हो सकती है ।

आदि से अन्त तक के सम्पूर्ण प्रकरण पर तनिक भी गम्भीरता से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वानर भी मनुष्य थे ।

अब बाल्मीकि रामायण के एक उद्धरण पर भी विचार करिये—

राम-रावण-युद्ध के प्रारम्भ में श्री रामचन्द्र की ओर से स्थिर आज्ञा सब सेना को दी गई थी ।

वानर मानवी वेष में न रहें !

न चैव मानुषं रूपं कार्यं कपिभिराहवे ।
एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेऽस्मिन् वानरे बले ।।३३।।
वानरा एव वश्चिन्हं स्वजनेऽस्मिन् भविष्यति ।
वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान् ।।३४।।
अहमेव सहभ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा ।
आत्मना पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः ।।३५।।

[वा० रा० युद्ध० सर्ग ३७]

"इस युद्ध में वानर कभी मानवी वेष न धारण करें । इस हमारे सैन्य का वेष वानर वेष ही सबका रहे । मैं स्वयं, लक्ष्मण और अपने चार मन्त्रियों के साथ विभीषण ये सात ही मनुष्य वेष से युद्ध करेंगे ।"यह स्थिर आज्ञा थी । युद्धान्त तक यह आज्ञा जारी रहनेवाली थी । इससे स्पष्ट है कि, मनुष्य, वानर और राक्षस के वेष ही अलग २ थे, उनके शरीर समान अर्थात् मानवी शरीर ही थे । नहीं तो विभीषण मानव वेष में रहेंगे इसका और क्या अर्थ हो सकता है ? सैनिकों की पहिचान वेष से होती है । इसीलिए कौन किस वेष (Unifrom) में रहे इसकी स्थिर आज्ञा इस तरह दी गयी थी । इससे वानर और राक्षस मानव-शरीर-धारी थे, यह बात सिद्ध होती है ।

(३) प्रश्न – यदि हनुमान् आदि बन्दर न थे तो उनको वानर, कपि, प्लवग आदि क्यों कहा गया है, जो कि प्रायः बन्दरों के नाम हैं ?

उत्तर—हनुमान् आदि के ये सब नाम उनके गुण कर्म के अनुसार हैं। हम इनके अर्थ १. शब्द कल्पद्रुम, २. शब्दार्थ चिन्तामणि, ३. पद्मचन्द्र, ४. शब्दस्तोममहानिधि और ५. वाचस्पत्य वृहद्विधान आदि संस्कृत के प्रतिष्ठित कोषों में से लिख देते हैं। जिन्हें सन्देह हो, वहाँ देखलें।

१. प्लवग—के अर्थ हैं नौका व तुलाओं से तरने वाला, क्योंकि प्लव के अर्थ हैं जलतरण-साधन, देखो मुण्डकोपनिषद् १।२।७। २.वानर के अर्थ हैं,वन के फल-फूल खाने वाला निरामिषभोजी आर्य। यथा—

'बने भवं वानं। वानं राति गृह्णातेति।'

३. कपि के अथ हैं—क जलं पिवतीति।

कात् आत्मानं पाति रक्षतीति पाति। कम्पते पापात् सदा वा "कपि"

मद्यादि त्याग, जल पीने वाला। समुद्र जल में भी अपने आत्मा की रक्षा करने वाला तथा सदा पापों से डरने वाला पुरुष कपि है और ये सब गुण हनुमान् में थे। हनुमान् उसका इसलिए नाम था कि उसकी ठोडी टेढ़ी थी।

कई लोगों के मत में प्लवग के अर्थ लम्बा कूदने वाला है। इस जाति के पुरुष क्योंकि बन्दरों की भाँति बड़ी-बड़ी कूदें लगा सकते थे इसलिए इनका नाम प्लवग था। अब भी बहुत से पुरुषों के वीर और कायर स्वभाव को देखकर प्रायः लोग सिंह और गीदड़ की उपाधियों से बुला ही लिया करते हैं। इसी प्रकार चंचल स्वभाव वालों को आज भी बन्दर कह कर सम्बोधित करते हैं।

वानर उस समय एक जाति (आर्य जाति की उपजाति) थी जिसके पुरुषों में कुछ नियम ढीले पड़ गये थे।

(४) प्रश्न—क्या जिस प्रकार गुण-कर्म को देखकर हनुमान् आदि की वानर संज्ञा हो गई थी, इस समय भी किसी मनुष्य वा मनुष्य समुदाय का पशु-पक्षी संज्ञा हुई है ?

उत्तर—हाँ, आजकल भी बहुत से समाजों वा पुरुषों को उनके कर्म को देखकर ऐसे नामों से ही बोला वा बुलाया जाता है जैसा कि अभी थोड़े दिनों की बात है कि जब रूस और जापानियों का युद्धारम्भ हुआ तो जापानियों की कूद-फाँद देख उनका नाम (यलो मन्की) 'पीले बन्दर' रख दिया था क्योंकि जापानियों का रङ्ग कुछ पीला होता है। और यह शब्द वर्षों तक रूस में जापानियों के लिए प्रचलित रहा। रूसी पुरुषों को आज भी सारे योरुप में 'रूसी रीछ' कहकर पुकारते हैं। इसी प्रकार 'ब्रिटिश सिंह' और 'जान बुल' का शब्द अँग्रेजों के लिए प्रचलित है। जो लोग केवल शब्द को लेते हैं और अर्थ को नहीं सोचते वे सदा भ्रम में पड़े रहते हैं।

स्पष्ट है कि वानर जाति सभ्य और सुसंस्कृत थी। सुग्रीव के श्वसुर सुषेण का आयुर्वेद-ज्ञान विदुषी तारा का राजनीति-ज्ञान, नल और नील का अपूर्व शिल्प-ज्ञान, किष्किन्धा नगरी का वैभव तथा बाली और सुग्रीव की शासन-नीति के प्रसंगों में वानर जाति की उच्च-सभ्यता दर्शनीय है। वेद, दर्शन, व्याकरण के पठन-पाठन और वैदिक संस्कारों के साथ ही वर्ण-व्यवस्था का पालन भी होता था—'पण्या पण्यवती दुर्गा चातुर्वर्ण्य पुरस्कृता' (उ०३७।७) अर्थात् किष्किन्धा दुर्ग (नगरी) प्रशंसनीय क्रय-विक्रय योग्य और चारों वर्णों से सुशोभित थी। इस प्रकार के अन्य अनेकों प्रसंगों में वानर जाति की उच्च-संस्कृति की झाँकी मिलती है।

(५) प्रश्न—क्या गृध्र राज जटायु गिद्ध (पक्षी) था ?

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास ने ऐसा ही माना है, परन्तु यह सत्य नहीं है। राम चरित मानस के आधार पर ही विचार कीजिये—

(१) 'गृध्रराज सों भेंट भई, जोरी प्रीति दृढ़ाइ" क्या

श्री राम ने यह मित्रता गिद्ध (पक्षी) जटायु से की थी ? (२) क्या पक्षियों में जटायु, सम्पाति ऐसा नामकरण होता है ? (३) क्या गिद्ध जटायु 'सीते ! पुत्रि करसि जनि त्रासा' सीता को पुत्री कहकर सम्बोधित करेगा ? (४) क्या पक्षी जटायु महाबली रावण को 'रे रे दुष्ट ठाढ़ किमि हो ही' कहकर ललकारेगा और उसे "तजि जानकिहि कुशल गृह जाहू" कह कर शिक्षा देगा ? (५) क्या पक्षी जटायु में राम के आने तक प्राणों को रोकने और राम को सम्पूर्ण वृत्त बतलाने का ज्ञान और विचार होना और राम द्वारा उसकी अन्त्येष्टि सम्भव है ?

सत्य यह है कि वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, रघुवंश और महाभारत आदि अनेकों प्रमाणों से (जिन्हें हम यहां स्थानाभाव से नहीं दे रहे) स्पष्ट है कि रावण से युद्ध करने वाला और सीता की रक्षा के लिए बन्दा वैरागी की भाँति अपने समाधि-सुख को त्याग शस्त्र धारण करने वाला महात्मा जटायु पक्षी न था, किन्तु महाराज दशरथ का वयस्य (· हवासी समान आयु वा एक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाला) अरुणऋषि का पुत्र कश्प गोत्री सम्पाति का छोटा भाई विमान-विद्या आदि में प्रवीण वानप्रस्थी ब्राह्मण था।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि क्या मनुष्य के पशु-पक्षी सखा नहीं हो सकते जो कि उनके साथ सदा उपकार करते रहते हैं ?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि—

१—यह सच है कि मनुष्य के गौणरूप में उपकार करने वाले पशु-पक्षी भी मित्र कहला सकते हैं, पर उन उपकारी जीवों को कहीं भी 'वयस्य' 'आर्य्य' 'तात' तीर्थभूत, महान्, साधु, पूजनीय, मान्य, महाराज आदि शब्दों से सम्बोधन नहीं किया जाता। (वा० रामायण)

२—और नहीं पशु-पक्षी अग्निहोत्रादि नित्यकर्म करते वा कर सकते हैं, जंसा कि "कृतान्हिक" शब्द से जटायु के वंश में सिद्ध होता है। (वा० रामायण)

३—और नाही किसी पशु-पक्षी का मृतक संस्कार वैदिक विधि

से करना लिखा है। जैसा कि वा० रा० अरण्य काण्ड सर्ग ६८ श्लोक ३० तथा पद्मपुराणादि में पाया जाता है कि श्री रामचन्द्र जी ने उसका वेद-विधि (रीति) से अन्त्येष्टि संस्कार किया। यथा—
"संस्कारमकरोत्तस्य रामो ब्रह्मविधानतः।"

(६) प्रश्न—यदि जटायु मनुष्य था तो इन ग्रन्थों में उसके लिये जटायु, गृध्र, गृध्रराज, पक्षी आदि शब्द क्यों आये हैं ?

उत्तर—ये नाम जो दिये गये हैं उसके गुणों को देख कर यौगिक भाव से दिये गये हैं, जो कि संस्कृत-कवियों ने साहित्य के भूषण माने हैं। इनको न समझना वा अन्यथा समझना हमारा दोष है न कि ऋषियों वा कवियों का। जैसे कि कहा है—"नायं स्थाणोरपराधो यतेनमन्धो न पश्यति।"

जटायु—का अर्थ है बड़ी उमर वाला, देखो शब्द कल्पद्रुम। 'जटं' सहितं (दृढ़ं) आयुः यस्य स जटायुः।

पक्षी—के अर्थ हैं दृढ़ पक्षों—स्कन्धों वाला वा पितृ कार्यादि के ग्रहण (वरण) के योग्य वैदिक विद्वान् आर्यों के सत्पक्ष पालने वाला। सो ये सब गुण जटायु में थे। यही कारण है कि उसने राम राम का जीवनान्त तक पक्ष (सहाय) किया।

पक्ष शब्द स्कन्धादि का वाचक भर्तृहरि के समय में भी माना जाता था इसलिए लिखा है "वरं पक्षच्छेदः' इत्यादि।

गृध्र—के अर्थ हैं वीर योद्धा गृह्णाति अभिकांक्षति युद्धमिति, जो सदा युद्ध को चाहे।

जटायु क्योंकि प्रसिद्ध योद्धा था इसीलिए इसको गृध्रराज भी कहा है। रावण ने इसकी भुजा काटी इसीलिये इसे राम ने लूनपक्ष कहा।

(७) क्या रावण के दशमुख और बीस भुजायें थीं ?

उत्तर—रावण के एक मुख और दो भुजायें थीं। अर्थात् वह मनुष्य ही था और उसकी आकृति अन्य मनुष्यों जैसी ही थी। इसी कारण वह सीता स्वयंवर में गया और तभी—

सून बीच दशकंधर देखा। आवा निकट जती के वेषा ॥

उसका यती का वेश बनाना और सीता का उसे यती ही समझकर उसका आतिथ्य करना सम्भव था ? यदि रावण के दशमुख होते तो यह दोनों मनुष्य के कर्म नहीं कर पाता।

यह दशमुख आदि का प्रयोग केवल काव्यात्मक (अलंकारिक) वर्णन है। एक उदाहरण से हमारी बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी। कविवर सोहनलाल द्विवेदी की एक प्रसिद्ध कविता है—'युगावतार गान्धी" उसकी आरभिक पंक्तियाँ हैं—

चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर।
गड़ गई जिधर भी एक दृष्टि गड़ गये कोटि दृग उसी ओर॥
हे कोटि रूप ! हे कोटि बाहु !! हे कोटि चरण !!! तुमको प्रणाम।

यहाँ अन्तिम पंक्ति में गान्धी जी को 'कोटि बाहु' और 'कोटि चरण' के विशेषण दिये हैं ! पर हम सब जानते हैं कि गान्धी जी हमारी ही तरह के दो हाथ पैर वाले इन्सान थे। कवि ने प्रथम पक्ति में दो डग तथा एक दृष्टि इन शब्दों द्वारा इस सत्यको स्वीकारा भी है। तो पता लगा कि गान्धी अपने निज या वास्तविक रूप में तो दो हाथ पैर वाले ही थे किन्तु गान्धी का राजनैतिक विराट् रूप यह था कि करोड़ों भारतियों के चरण मानो उनके अपने ही चरण थे, इसी प्रकार करोड़ों भारतीयों के हाथ मानो उनके अपने ही हाथ थे। भारतीय प्रजा के साथ उनके इस तादात्म्य को कवि ने अपने शब्दों में चमत्कार लाकर काव्यात्मक या अलंकारिक शैली में वर्णित किया।

यदि हम यह अलंकारिक प्रयोग भुलादें और तीसरी पंक्ति का अर्थ करने लगे—"हे करोड़ों रूपों, करोड़ों भुजाओं और करोड़ों पैरों वाले गान्धी आपको हमारा प्रणाम है !" तो यह अर्थ नहीं,अनर्थ होगा और अनेकों अनर्थों को जन्म देगा। पर यदि हम अलंकार के चमकीले ढक्कन को उठाकर 'सत्य धर्माय दृष्टये' सचाई का दर्शन करें तब हम अन्तिम पंक्ति का अर्थ पहली दो पंक्तियों से सुसंगत करते हुए

करेंगे—"वह गान्धी जिसके दो पैरों का अनुगमन करोड़ों भारतीय प्रजा करती थी, जिसकी दो भुजायें जिस कार्य के लिये उठ जाती थीं, करोड़ों भारतियों की भुजायें उस कार्य में लग जाती थीं, जिसकी एक निगाह जिधर उठ जाती थी, करोड़ों भारतियों की निगाह उसी को अपना लक्ष्य बना लेती थीं। इस प्रकार जो गान्धी कोटि बाहु, कोटि चरण और कोटि रूप था, उस गान्धी को हमारा प्रणाम है,"—तो यह होगा सत्यार्थ ! यह होगा कवि की आत्मा का साक्षात्कार !

जब हम 'राम चरित मानस में पढ़ते हैं—

सहस बाहु भुज छेदन हारा। परशु विलोक महीप कुमारा ॥

यह कल्पना कर बैठते हैं कि सहस्रबाहु कोई ऐसा व्यक्ति था जिसके हजारों भुजायें थीं। पर यह तो शब्द का अर्थ नहीं, अनर्थ है। हजारों शत्रुओं से एक साथ लड़ सकने वाला काव्य की भाषा में 'सहस्रबाहु' है। युद्ध करने के हजारों साधन जिसके पास हैं वह 'सहस्रबाहु' हैं। पुरुष सूक्त (यजुर्वेद के ३१ वे अध्याय) के प्रथम मन्त्र में परमात्मा को 'सहस्र शीर्षा: पुरुषा: सहस्राक्ष: सहस्र पाद' करके वर्णित किया। उसका सत्यार्थ परमात्मा की अनन्त शक्ति, सर्व-व्यापकता और उसका सर्वद्रष्टा होना है। ईश्वर के हजार भौतिक शिर हैं, हजार पैर और हजार भौतिक आखें हैं—यह उसका अर्थ कदापि नहीं है। यदि शिर हजार हैं तो दो हजार पैर और दो हजार आँखें होनी चाहिये। स्पष्ट है कि यह काव्यात्मक वर्णन है। अलंकारों को ऐतिहासिक सत्य मान कर बड़ा भारी अनर्थ हुआ है।

ब्रह्मा चतुर्मुख है का सत्यार्थ है. चारों वेदों के पण्डित को 'ब्रह्मा' कहते हैं। शिवजी त्रिनेत्र है। यह तीसरा नेत्र बुद्धि या विवेक का नेत्र है जिसका यह विवेक नेत्र खुलता है वह 'शिव' बन जाता है। स्वयं अपना कल्याण करता और सभी का कल्याण-साधक बन जाता है।

रावण के 'दशमुख' का प्रयोग भी इसी प्रकार का अलंकारिक

प्रयोग है। वाल्मीकि रामायण में अनेक-अनेक स्थलों पर रावण के निज रूप में उसके एक शिर और दो भुजाओं का स्पष्ट वर्णन है। पर युद्ध आदि के समय जब उसके विराट् या उग्र रूप को प्रस्तुत किया गया है, वहाँ उसे दशशीश कहा गया है। युद्ध के आरम्भ में श्री राम रावण को कहते हैं:—

अद्यते मच्छरैश्छिन्नं शिरो ज्वलित कुण्डलम्।
क्रव्यादा व्यापकर्षन्तु विकीर्णं रणपांसुषु॥

—युद्ध काण्ड सर्ग १०३। श्लोक २०

अर्थात् हे रावण! आज मेरे बाणों से कटा तेरा शिर मासाहारी जीव युद्ध की भूमि में उछालेंगे।" यहां एक शिर का वर्णन है।

और जब रावण मरा तब भी उसके एक मुख (शिर) तथा दो भुजायें ही थीं।

उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद् भूमौ सपरिवर्तते।
हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागत्तम्॥११०।६

यहाँ 'भुजौ' द्विवचन तथा 'वदन' एक वचन है। इन्द्रजित के मारे जाने पर शोक ग्रस्त रावण विलाप करता है। देखो युद्ध काण्ड सर्ग ६१। श्लोक २२।

तस्य कुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुविन्दवः।

यहाँ भी 'नेत्राभ्यां' द्विवचन है। युद्ध काण्ड सर्ग १११। श्लोक ३४,३५,३६,३७ में मन्दोदरी ने रावण को एक मुख(शिर)का ही वर्णन किया है।

हाँ, युद्ध करते हुए उसे (युद्ध का० १०७।५४,५५) में दशग्रीव कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि युद्ध के समय उसकी उग्रता प्रदर्शन के लिये यह अलंकारिक प्रयोग मात्र है। दत्तात्रेय के तीन मुख, शिवजी के पाँच मुख, कार्तिकेय के छः मुख आदि भी विशेष अवसरों पर उनके बलादि के प्रदर्शनार्थ ही हैं। इन अलंकारिक प्रयोगों को

सत्य घटनायें मानकर चमत्कारवाद का आश्रय लेने वालों अपने जातीय इतिहास को ही विनष्ट करने का पाप ही किया है।

(८) प्रश्न—अहल्या-उद्धार का क्या रहस्य है ?

उत्तर—धर्म-शास्त्र में जिस प्रकार ब्राह्मण या ब्राह्मणी को अन्य वर्णस्थ स्त्री-पुरुषों को प्रायश्चित्त करा शुद्ध करने की आज्ञा है, इसी प्रकार ब्राह्मण या ब्राह्मणी से कोई निन्दित कर्म हो जाय तो उसका वैदिकधर्मी राजा को प्रायश्चित करने पर शुद्ध करने का अधिकार है। अहल्या-उद्धार का यही रहस्य है।

अहल्या को शाप—वाल्मीकि रामायण में जो शाप अहल्या को दिया गया, वह उसकी अतःकरण की पवित्रता करने के लिए था। उसमें उसको अन्तःशुद्धि के लिए जो आदेश दिये गये, वे ये हैं—(१) तप कर, (२) उपवास कर, (निरशन के पदार्थ फल, मूल, कन्द खाकर रह), (३) एकान्त सेवन कर, कोई तुझे न देखे, ऐसे स्थान पर रह, घर के बाहर न जा, (४) भस्म पर सो जा, सुन्दर शय्या पर न सोना [वा० रा० बाल०] (५) उत्तम वस्त्र न पहन, आभूषण धारण न कर, (६) विरूप बनकर रह, [वा० रा० उत्तर०] (७) शरीर क्षीण कर, तप से शरीर सुखाकर कृश बन, [पद्मपुराण] (८) आश्रम की शिला पर बैठ, इधर-उधर न जा (९) शिला पर बैठकर गर्मी सर्दी सहन कर, [अध्यात्म०] (१०) ईश्वर-भक्ति कर।

ये सब बातें अन्तःशुद्धि के लिए हैं। जिनसे कामभाव बढ़ता है, वे सब बातें यहाँ दूर की गई हैं और जिससे अन्तःकरण निर्दोष हो, वे बातें यहां करने को कही हैं। व्यभिचार होने पर भी अहल्या का उद्धार होने के उपाय यहाँ कहे और उनके करने पर उसकी शुद्धि होने के बाद उसको समाज में उच्च स्थान भी प्राप्त हुआ। यही समाज धारणा का मार्ग है। [मध्यकाल की भाँति समाज से बहिष्कृत करने की कल्पना भी यहाँ नहीं है।]

कई पुराणों में भी यह कथा है। उनमें इस प्रायश्चित विधान में थोड़ा २ फ़र्क है। अध्यात्म रामायण में कहा गया है—'शिलायाँ तिष्ठ' इसी शिला पर बैठ, इधर-उधर न जा। अलङ्कारिक रूप में इसी का आशय यह भी लिया गया है 'शिला में बैठ।' लगता है कि अन्धश्रद्धावश अपने ईश्वर राम के साथ चमत्कार जोड़ने के विचार से इसी को अपने ढङ्ग से मोड़-तोड़ कर गो० तुलसीदास ने अहल्या को पत्थर ही बना डाला।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सब सफेद झूठ है। गौतम पुत्र शतानन्द और विश्वामित्र सम्वाद से तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है। जिसमें अपनी तपस्वनी माता की कुशलता और उसके प्रायश्चित की पूर्ति के सम्बन्ध में शतानन्द जानकारी प्राप्त करता है।

वैदिक शिष्टाचार का लोप—वा० रामायण के अनुसार राम ने तपस्विनी अहल्या के चरणों को स्पर्श किया था न कि वैदिक मर्यादा और शिष्टाचार के धनो राम ने ऋषिपत्नो अहल्या को अपना पैर लगाया! कोई साधारण पुरुष भी इस प्रकार अभद्र और अशिष्ट व्यवहार नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि यहाँ भी अवतारवाद का विष दंश अपना काम कर रहा है। स्त्री का पत्थर हो जाना और पत्थर का पुनः स्त्री बन जाना चमत्कारवा की लीला है। राम-केवट सम्वाद के प्रसङ्ग में भी "रावरे दोष न पायन को पग भूरि को भूरि प्रभाउ महा है।" कहकर केवट राम को नाव पर नहीं चढ़ने देता। काव्य की दृष्टि से ऐसे प्रसङ्गों को सरस और मनोरम भले ही कहा जा सके पर इन चमत्कारिक वर्णनों से राम के शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त का गला घोंट-कर जो अनर्थ किया गया है उसकी पूरी-पूरी कल्पना कर सकना भी सम्भव कहाँ है? सत्य के प्रति जागरूक आत्माओं के निकट आशा है कि उक्त विवेचन सत्य दर्शन में सहायक सिद्ध होगा।

(९) प्रश्न--सीता का जन्म पृथ्वी से हुआ था, वे 'अयोनिजा' थीं—क्या यह सत्य है ?

उत्तर—यह सर्वथा असत्य, निराधार भ्रामक और मिथ्या कल्पना है।

जिस तरह वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायणादि के विरुद्ध अकारण ही लोपों में अहल्या के पत्थर होने और राजा के पद-रज-स्पर्श से स्वर्ग को चढ़ जाने का सिद्धान्त घड़ा गया है, इसी तरह सीता के जन्म की बाबत भी मिथ्या संस्कार बैठा हुआ है कि वह "अयोनिजा" होने के कारण पृथ्वी से प्रकट हुई थी और उसको जन्म देने वाली माता व साथ जन्म लेने वाले भाई, बहिन कोई नहीं थे। इस मिथ्या सिद्धान्त से न केवल ईश्वरीय नियम, सृष्टि क्रम तथा वैदिक सिद्धान्त को धब्बा लगता है, किन्तु इतिहास की भी जड़ें खोखली हो जाती है और आर्य जाति के अपूर्व आत्म-बलिदान एवं पौरुष से निर्मित रामायण के समान महान् इतिहास भी उपन्यास एवं किस्सा-कहानी जसा प्रतीत होने लगता है।

१. जिस समय अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया ने सीता को पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया, तब सीता ने यह शब्द कहे कि—

पाणिप्रदान काले च यत्पुरा त्वग्नि सन्निधौ ।
अनुशिष्ट जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम् ॥
अयोध्या काण्ड सर्ग ११८ । ८

इस श्लोक में टीकाकार लिखते है कि—

मात्रानुशासनमपि मेहृद्गतेमवास्ति—अर्थात् विवाह समय की मेरी जननी [माता] की शिक्षा मेरे हृदय में ही है। इससे सिद्ध है कि सीता की (जननी-जन्मदात्री) माता एक चेतन स्त्री थी, न कि जड़ पृथिवी क्योंकि पृथिवी में उपदेश करने की शक्ति नहीं होती है।

इसी प्रकार सीता अनुसूया को अपना इतिहास सुनाती हुई कहती है कि मेरी युवावस्था होने पर मेरे जन्म दाता ने प्रतिज्ञा की थी कि—

स्वयम्वरं तनूजया: करिष्यामीति धर्मत: ।। २ । ११८ । ३८

मम चैवानुजा साध्वी उर्मिला शुभ दर्शना । २ । ११८ । ५३

यहाँ सीता की छोटी बहिन उर्मिला थी यह स्पष्ट है। क्या उर्मिला भी अयोनिजा थी ? तथा श्री रामचन्द्रजी ने वनगमन के प्रसङ्ग में अयोध्या काण्ड के २८ वें सर्ग में 'सीते महाकुलीनासि" कह कर उसके ब्रह्मनिष्ठ जनक के कुल में जन्म लेने की प्रशंसा की है।

अब अद्भुत रामायण का प्रमाण लीजिये।

धरणि तनयया यद्भीम कृत्यं धरण्यां कृत मिह मनसातच्चि न्तयन्ते द्विजेन्द्रा: । सर्ग २३ श्लोक ७२।

अर्थात् धरणि राणी की सुता [सीता] ने (धरणि) पृथ्वी पर अद्भुत कर्म किये।

सन्त तुलसी ने भी सीता को जनक-तनया कहा है—

तात जनक तनया यह सोई। धनुष यज्ञ जेहि कारण होई ।।

'तनया' अर्थात् शरीर से उत्पन्न है। स्पष्ट है कि सीता के पिता जनक और माता महारानी धरणी थीं। इन्हीं का दूसरा नाम सुर्षना भी है।

भ्रम का कारण—सीता चूँकि हल की (पृथ्वी पर खिची) लकीर (रेखा) का भी नाम है—उसी को सिया भी कहते हैं। इससे भी प्राय: सीता और सिया यह नाम मान लिया और पृथ्वी से उत्पन्न होने की भ्रान्त धारणा बना ली गई।

सीता एक वैदिक शब्द है। वेद में एक 'सीता सूक्त' है, जिसमें कृषि-विद्या का वर्णन है। बहुत सम्भव है उसी के आधार यह भ्रान्ति पदा की गई हो।

(१०) प्रश्न—सीता जी की 'अग्नि-परीक्षा' से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—वस्तुत: यह सम्पूर्ण प्रकरण सर्वथा असत्य और प्रक्षिप्त है। यह अवतारवादी एवं चमत्कारवादियों की पोप-लीला मात्र है।

इसमें श्री राम जैसे देव पुरुष का मिथ्या भाषण, अनार्योचित व्यवहार, नारी जाति के प्रति घोर अपमान की भावना और चमत्कारवाद की लीला देखने को मिलती है।

सच तो यह है कि सीता का सम्पूर्ण जीवन ही अपने आप में एक 'अग्नि परीक्षा' था। इस प्रसङ्ग में इतना ही सम्भव है कि नीति-कुशल राम ने अग्नि नामक आचार्य के आचार्यत्व में सीता का 'शुद्धि संस्कार' कराके उन्हें ग्रहण किया हो। अथवा लोक-व्यवहार की दृष्टि से राम ने सीता को ग्रहण में अपना असमंजस प्रकट किया हो तभी अग्नि अर्थात् किसी विद्वान् ब्राह्मण या सभा द्वारा सीता को सम्मान-पूर्वक स्वीकार करने की व्यवस्था दे दी गई हो।

अन्य प्रसङ्गों को भाँति अन्धकार युग में इस सहज से प्रसङ्ग को भी खूब रंग दिया गया तथा इसे अलौकिक और चमत्कारिक बनाने की चेष्टा को गई। अग्नि की लपटों में सीता का बच जाना और अग्नि का पुरुष वेश धारण कर राम से प्रार्थना करना यह सब असम्भव और सृष्टिक्रम विरुद्ध है। पर महापुरुष राम को ईश्वर बना डालने पर तुले हुए महानुभावों को यह सब विचारने की गुञ्जाइश थी ? उन्होंने तो इस अलङ्कारिक वर्णन को 'चमत्कार' बना ही डाला। उन विचारों ने इसके दुष्परिणामों की कल्पना भी नहीं की होगी कि इस प्रकार के चमत्कारों से हम राम के ऐतिहासिक अस्तित्व को मिटाने का अक्षम्य अपराध कर रहे हैं।

(११) प्रश्न—रामायण के ऐसे अन्य अलङ्कारिक प्रयोगों पर प्रकाश डालिये, जिन्हें चमत्कार के रूप में उपस्थित किया गया है ?

उत्तर—गोस्वामी जी द्वारा पौराणिक संस्कार के कारण रामायण के अनेकों काव्यगत अलङ्कारिक वर्णनों को व्यक्तित्व देकर उन्हें चमत्कार के रूप में वर्णित करके बड़ा अनर्थ किया गया है। आयें, हम इस प्रकार के कुछ रूपकों, के प्रतीकों और मुहावरों पर विचार करें।

कुम्भकर्ण का छः मास सोना—रावण के सीता-हरण के नीच कर्म के प्रति कुम्भकर्ण की उदासीनता का द्योतक है। छः महीने के सोने की बात या तो निरी गप्प ही है या फिर इसके सम्बन्ध में यही सम्भव है कि रावण ने सीता को चुराकर लाने के समय से छः महीने के समय तक कुम्भकर्ण ने घोर उपेक्षा रखी हो। पश्चात् रावण के बहुत कहने सुनने पर आरम्भ में उसने अपना विरोध और अन्त में अपने सहयोग का आश्वासन दिया हो। जो भी हो एक मनुष्य के छः महीने तक लगातार सोने और उसे जगाने के लिए एक पूरा तमाशा करने वाली बातें अस्वाभाविक, बुद्धि-शून्य और रामायण के शुद्ध इतिहास में सन्देह पैदा करने वाली हैं। साधारणतः लोक-व्यवहार में किसी की उपेक्षा या उदासीनता अथवा असहयोग को उसका 'पैर लम्बे करके सोना' या 'लम्बी तानकर सोना' कहा जाता है। वही आशय यहाँ है।

इन्द्र, वरुण, वायु, काल आदि का रावण की पाटी से बँधा होना—बड़ा सुन्दर अलङ्कारिक वर्णन है। रावण के राज्य में वैज्ञानिक प्रगति का पता इससे लगता है। इन्द्र वर्षा का अधिपति है। वैज्ञानिक प्रयोगों से रावण-राज्य में जब चाहिये कृत्रिम बादल बनाकर वर्षा की जासकती थी। वरुण जल का अधिपति है—नलोंद्वारा यथेच्छ जल-प्राप्ति सम्भव कर दी गई थी। बड़ी से बड़ी ऊँचाई पर जल पहुँचाना तथा उससे विविध उपयोग लेना सम्भव था। बिजली का बटन दबाकर वायु प्राप्त करना भी सम्भव कर दिया था और आज के वैज्ञानिक युग की भाँति ही वायुयानों द्वारा काल (समय) और स्थान पर भी काबू प्राप्त किया गया था। इस प्रकार आज की वैज्ञानिक प्रगति से भी कहीं अधिक प्रगति रावण-राज्य में थी। यही सब भौतिक विकास रावण के अहंकार का कारण बना और इसी से अन्ततः उसका सर्वनाश हुआ। वैज्ञानिक प्रगति से मन्दान्ध आज के संसार को इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

आकाश-वाणी—तुलसी रामायण में इसका प्रयोग है। यों तो स्पष्टतया आज यह शब्द रेडियो स्टेशन के लिये प्रयुक्त होता ही है पर अनेक स्थानों पर यह 'अन्तः प्रेरणा' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। काव्य-चमत्कार को न समझने से ही इस विषय भ्रान्ति है।

समुद्र का हाथ बाँधकर खड़ा होना—भी काव्यगत अलङ्कारिक प्रयोग है। ऐसे मुहाविरे हम प्रायः प्रयोग करते हैं। हाँ, सागर नामक पुरुष ने श्री राम की विनय और बाद में रोष प्रकट करने पर समुद्र में 'गाध' को बताया था जहाँ जल उथला था तथा पर्वत खंड थे, जिन पर से नल नील ने पुल तैयार किया।

बाली का रावण को काँख में लगाना—काँख में लगाना स्पष्ट ही एक मुहाविरा है जिसका अर्थ दबाकर रखना या अधिकार में रखने का है। प्रचलित मुहाविरे को भी चमत्कार का रूप देने को बुद्धि की बलिहारी है।

राम नाम लिख शिला तराई (तुलसी)—यहाँ 'राम राम कह' शिला तराई नहीं है। अतः इसमें कोई चमत्कार नहीं है। नल-नील की प्रतिभा और वैज्ञानिक कौशल से निर्मित सेतु पर उसके मूल निर्माता राम का नाम लिखना स्वाभाविक ही है। पत्थर का पानी में तरना ऐसा साधारण अर्थ युक्तियुक्ति नहीं।

सुरसा-समागम—'सु-रसा' का अर्थ है, बहुत रसीला। भोग रसीले होते हैं। लङ्का की सभ्यता भोगवादी थी। किसी भी युवक के मन पर लङ्का जैसे भोग प्रधान क्षेत्र के आकर्षणों का प्रभाव स्वाभाविक है। लङ्का में प्रवेश करते ही 'सु-रसा' भोगवादी सभ्यता के आकर्षक दृश्य हनुमान के सामने आये। आकर्षण जितने प्रबल रूप धारण करते थे हनुमान की दृढ़ता उससे दूनी होती जाती थी। अन्त में उन्होंने अपने योग-बल (सूक्ष्म रूप) से उस पर विजय प्राप्त की। अलङ्कारिक चमत्कार ही यहाँ युक्तियुक्त और समाधान-कारक हो सकता है। गोस्वामीजी ने इस सुन्दर अलङ्कार को व्यक्तित्व देकर इसकी रस-प्रवणता और सौष्ठव ही नष्ट कर डालाको है। हा हन्त!

शूर्पणखा की नाक कटना—एक विद्वान्ने राम-लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के प्रस्ताव की अस्वीकृति को उसकी 'नाक कटना' लिखा है। 'नाक कटना' अपमान के भाव को प्रकट करने के लिए एक प्रचलित मुहाविरा है। अतः यह विवेचन बहुत कुछ उचित दीखता है। यद्यपि हमारे विचार में शूर्पणखा की 'नाक कटना' ऐतिहासिक घटना ही प्रतीत होती है। इस प्रसङ्ग में गोस्वामीजी ने श्री राम से असत्य भाषण कराया है—'अहै कुमार मोर लघु भ्राता।' यह अवतारवाद की कृपा है। ऋषि वाल्मीकि के अनुसार राम ने कभी असत्य नहीं बोला उन्होंने जानबूझ कर शूर्पणखा के नाक-कान काटकर उसके माध्यम से रावण को चुनौती दी थी।

लंका-दाह—हमारे विचार में 'आग लगाना' 'फूट डालने' के लिए आज भी प्रयुक्त है। हनुमान द्वारा लङ्का-नगरी को अपनी नीतिमत्ता की लपेट में लेकर रावण और विभीषण के बीच फूट की चिनगारी डाली गई और इसी आग में रावण राज्य ही खाक होगया। इस विवेचन में कुछ खींचतान सी प्रतीत हो सकती है, फिर भी यह विचारणीय अवश्य है।

राम-रावण युद्ध—में भी कई अलङ्कारिक वर्णनों को और वैज्ञानिक प्रयोगों को चमत्कार मान लिया गया है। युद्ध में राम सबको देखते थे पर राम को कोई नहीं देखता था, इस कथन में कोई चमत्कार नहीं है, राम का युद्ध कौशल ही काव्यमयी शैलीमें वर्णित है।

अङ्गद का पैर जमाना—पग गाढ़ना या जमाना ध्रुवता-दृढ़ता का द्योतक है। रावण के मित्र बाली का पुत्र होने से रावण ने युवराज अंगद को लोभ आदि देकर अपनीओर करना चाहा होगा, किन्तु अंगद विचलित नहीं हुआ, यही उसका पैर जमाना था। आज भी 'अंगदका पैर' मुहिवरे के रूप में दृढ़ता के लिये प्रयुक्त होता है।

रावण के दश शिरों पर गधे का शिर—अति बलवान् होने या चार वेद छः शास्त्रों का पण्डित होने से रावण 'दशशीश' था किन्तु उसने 'सीता हरण' जैसा मूर्खता का काम किया। गधा भोलेपन या मूर्खता का प्रतीक माना जाता है। अतः रावण की मूर्खता के प्रतीक रूप दश शिरों पर गधे का शिर लगाते हैं।

इसी प्रकार 'वानर' शब्द की भ्रान्ति से वानर नामक वीर जाति को बन्दर बता देना वानरों के आभूषण लांगूल को पूँछ बता देना और 'राक्षस' शब्द की भ्रान्ति से राक्षस जाति को भी मनुष्येतर महा भयानक प्राणी, असभ्य, बर्बर और क्रूर बताना सत्य के विरुद्ध है।

हो सकता है हमारे उक्त विवेचन में कहीं-कहीं आपको कुछ खींचतान सी प्रतीत हो, क्योंकि घटनाओं को इस बुरी तरह बिगाड़ा गया है, जिन्हें सँभालना एक समस्या बन गई है। पर यह सुनिश्चित है कि रामायण के सैकड़ों अलङ्कारिक वर्णनों और काव्यगत विषेशताओं को अवतारवाद और अलौकिकता की सिद्धि के लिये चमत्कारों का रूप दे डाला गया है। इस सबसे जो महान् अनर्थ और जनहित को हानि हुई है, उसकी पूरी-पूरी कल्पना नहीं की जा सकती।

(१२) प्रश्न—बालि-वध के औचित्य पर प्रकाश डालिये ?

उत्तर— बालि-वध जिस प्रकार से किया गया वह सामान्यतया उचित प्रतीत नहीं होता। उसके औचित्य का एकमेव आधार यही है कि असुर राष्ट्र पर विजय पाने के लिये श्रीराम के लिये वानर राष्ट्र को अपना सहयोगी एवं अनुगत बनाना आवश्यक था। उन्हें इस कार्य के लिये यह अवसर अत्यधिक उपयुक्त जान पड़ा, इसलिये एक बड़े उद्देश्य की सिद्धि के लिये (निसिचर हीन करौं महि— इस व्रत की पूर्ति के लिये) श्रीराम ने बालि-वध जैसे प्रत्यक्ष में अनुचित दीखने वाले कार्य को किया। बालि-वध का आधार स्पष्टतः राजनैतिक था।

(१३) प्रश्न— धनुष-यज्ञ का रहस्य समझाइये ?

उत्तर—देवताओं ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ में महाराज जनक के पूर्वज राजा देवरात को यह (शिव) धनुष दिया था। प्रतीत होता है कि यह कोई विशेष प्रकार का वैज्ञानिक यन्त्र(युद्धास्त्र)था जिस प्रकार अर्जु नका'गांडीव'एक विशेषप्रकार का वैज्ञानिक युद्धास्त्र था। इसयन्त्र के सञ्चालन की प्रक्रिया से अनभिज्ञ होने के कारण ही अन्य राजा लोग इसे उठा पाने एवं प्रत्यञ्चा चढ़ाने या चलाने में असफल रहे थे। श्रीराम ने महामुनि विश्वामित्र के आश्रम में अनेक प्रकार के यन्त्र संचालन की विधियाँ सीखी थीं। अपने बल और विद्या (यन्त्र संचालन युक्ति) से ही वे इसे उठा पाने और तोड़ने या यन्त्र संचालित करने में सफल हो सके थे। महामुनि विश्वामित्र की प्रेरणा से ही राम-लक्ष्मण धनुष-यज्ञ में आये थे। बहुत सम्भव है राम-सीता विवाह भी ऋषियों की योजना का अंग रहा हो। या फिर श्री राम ने अपनी प्राणायामकी शक्तिसे धनुष उठाया,तोला और तोड़ दिया। प्राणायाम के करिश्मे हमें आज भी वीर राममूर्ति आदि के उदाहरण में देखने को मिल जाते हैं।

"भूप सहस दस टरहिं न टारा" गोस्वामी जी की यह उक्ति तो केवल महा गपोड़ा ही है, आखिर दस हजार राजा कहां किस प्रकार एक साथ उठाने के लिए यत्न कर सके होंगे ? फिर यदि वे दस हजार राजा तोड़ भी डालते तो राजा जनक की प्रतिज्ञा के अनुसार सीता जी का विवाह किस राजा के साथ होता ? इस प्रकार के गपोड़े सर्वथा त्याज्य हैं।

(१४) प्रश्न—क्या श्री राम मूर्ति पूजक थे ?

उत्तर—नहीं, श्री राम सच्चे वैदिक धर्मी थे। वे एकमात्र सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु अजन्मा आदि विशेषण युक्त ईश्वर के उपासक थे। उन्होंने किसी मूर्ति की पूजा नहीं की। मूर्ति पूजा (जड़पूजा) का महापाप तो हमारे यहाँ महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी के जन्म के बाद में आया।

वाल्मीकि रामायण में स्पष्टतः प्रक्षिप्त भागों के होते हुए भी समस्त रामायण में सर्वत्र केवल वैदिक यज्ञों का वर्णन है, मूर्ति पूजा का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। मनुस्मृति की भाँति वाल्मीकि रामायण में भी मांसाहार एवं यज्ञ में पशुबलि दी जाने की पुष्टि तो कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों द्वारा अवश्य की गई है, जिनमें वाममार्ग का स्पष्ट हाथ दृष्टि-गोचर होता है, किन्तु मूर्तिपूजा विषयक श्लोकों का सर्वथा अभाव, यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि जिस समय में यह प्रक्षिप्त भाग मिलाये गये, उस समय में भी इस देश में मूर्तिपूजा जारी नहीं हुई थी। अतः हमारी यह धारणा कि मूर्तिपूजा का प्रचार देश में बौद्ध-काल से पूर्व नहीं था, निराधार नहीं है।

वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड से निम्न श्लोक मूर्तिपूजा के पक्ष में प्रायः उपस्थित किया जाता है:—

यत्र यत्र स्मयातिस्म रावणो राक्षेश्वरः।
जाम्बूनदमयं लिंग तत्र तत्रस्म नीयते॥

रावण जहाँ-जहाँ जाता था, अपने साथ सुवर्णमय लिङ्ग ले जाता था इसी प्रकार एक दूसरे स्थान पर लिखा है कि 'बालुका, वेदिमध्ये ते तल्लिगं स्थाप्य रावणः' अर्थात् बालू की वेदि पर रावण ने लिंग की स्थापना की इत्यादि। प्रथम तो यह श्लोक उत्तर काण्ड के हैं, जो अनेक प्रमाणों द्वारा प्रक्षिप्त भाग सुसिद्ध है। किन्तु इन्हें यदि ठीक मान भी लिया जाय तो यह कृत्य राक्षसी था। यह भी ठीक ही है कि शिवलिङ्ग पूजा का प्रचार वाममार्ग द्वारा हुआ और रावण भी वाममार्गी ही था। अतः इससे हमारे पक्ष की हानि नहीं होती।

सत्य यही है कि उस समय आर्य लोग प्रातःसायं संध्योपासना, अग्नि होत्र करते थे, इसका वाल्मीकि रामायण में तो बहुलता से वर्णन है ही। तुलसी रामायण के गम्भीर अध्ययन से भी प्रकट है कि रामायण-काल वेद प्रतिपादित यज्ञादि का काल था।

गोस्वामी जी ने कुछ स्थलों पर जो मूर्तिपूजा का वर्णन, किया है, वह उनकी निजी कल्पना एवं पौराणिक कुसंस्कारों की देन है।

वह स्वयं वैष्णव थे, अतः यह स्थल केवल उनके अपने विचारों के ही प्रतिबिम्ब हैं, उनका आधार वाल्मीकि कृत रामायण नहीं। न सीता जी ने स्वयंवर के समय देवी की जाकर पूजा की और न राम ने सेतु-बन्ध के अवसर पर रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना की। वाल्मीकि रामायण में इतना वर्णन है कि लंका से विमान द्वारा लौटते समय राम ने सीता से संकेत करके कहा कि यहां महादेव की कृपा से हमने समुद्र पर पुल बाँधा था:—

एतत्त दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
सेतुबन्ध इतिख्यातं त्रैलोक्यपरिपूजितम् ॥२०॥
तत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥२१॥

(युद्ध काण्ड सर्ग ११५)

यह बड़े समुद्र का तट दिखाई पड़ रहा है, इसे सेतुबन्ध कहते है, यह तीन लोक में प्रसिद्ध है। यह परम पवित्र स्थान है, यहाँ पापी महापातकों का प्रायश्चित करते हैं। यहाँ ही सर्व-व्यापक, देवों में बड़े, महादेव ने हम पर कृपा की। उपरोक्त श्लोकों में कहीं भी शिव-लिङ्ग स्थापना तथा उसके पूजन को बात नहीं है। सम्भवतः महादेव शब्द, जिसके अर्थ देवों में महान् परमात्मा है, को देखकर तुलसीदास जी ने शिवलिंग स्थापना एवं उसकी पूजा की कल्पना करली।

(१५) प्रश्न—भरत को उसकी ननिहाल भेजकर पीछे से राम को राज्य देने में क्या दशरथ की दुरभिसन्धि नहीं थी?

उत्तर—कैकेयी का विवाह, दशरथ के साथ इसी पणबन्ध (शर्त) के आधार पर हुआ था कि उसका पुत्र ही राज्याधिकारी होगा। किन्तु एक तो ज्येष्ठ पुत्र होने से कुल परम्परा के आदर्श गुणों और प्रजावत्सलता के कारण दशरथ अन्तमन से राम को ही युवराज बनाना चाहते थे। वह पणबन्ध तो उन्होंने कामवश ही किया था। ऐसी स्थिति में उनके हृदय में अवश्य हो अन्तर्द्वन्द्व रहा होगा। भरत की अनुपस्थिति में महर्षि वसिष्ठ के अनुमोदन और प्रजाजनों के सम-

र्थन पर उन्होंने राम-राज्याभिषेक के कार्य को अति शीघ्र निष्पन्न करा देना उत्तम समझा होगा। कैकेयी राम के गुणों पर मुग्ध थी ही। सभी भाइयों में प्रेम भाव भी अपार था। दशरथ ने सोचा होगा कि भरत के सामने न होने पर कैकेयी को इसका बिचारभी नहीं आवेगा। फिर भरतको गये अभी अधिक समय नहीं हुआ था, और इतनी दूरी से उनका शीघ्र ही बुलाया जाना भी सम्भव नहीं था। अतः सन्देह भी इसमें क्या होगा, ऐसा महाराज दशरथ ने विचारा होगा।

(२) यह भी सम्भव है जैसा कि हम जानते हैं– स्रवन समीप भयउ सितकेसा'—दर्पण में अनायास ही अपने श्वेत केश देखकर दशरथ ने राम का राज्याभिषेक अबिलम्ब कराने का निश्चय किया था। ऐसी स्थिति में चारों भाइयों की अकथनीय प्रेम-भावना और श्री राम के प्रति कैकेयी आदि सभी के अत्यधिक स्नेहभाव के कारण राजा का ध्यान ही भरत को बुला लेने की ओर न गया हो। कैकेयी ने जो राम राज्याभिषेक का समाचार सुनने पर आरम्भ में अपार हार्दिक उल्लास और हर्ष प्रकट किया है तथा मन्थरा को 'घरफोरी' कहकर बुरी तरह लताडा भी है उससे तो यही ध्वनि निकलती है कि पारिवारिक अत्यधिक प्रेम के कारण राजा ने भरत के बुलाने को बहुत आवश्यक नहीं समझा, कहना चाहिए इस ओर ध्यान ही नहीं गया। सम्पूर्ण प्रजाजनों ने भी इसे सर्वथा सामान्य बात ही समझा, इसके पीछे कोई दुरभिसन्धि है या हो सकती है,ऐसा विचार भी किसी के मन में नहीं आया। हाँ, भरत भी ऐसे समय आ पहुँचें तो कितना अच्छा हो, यह सामान्य भावना सभी के मन में अवश्य है। 'भरत आगमन सकल मनावहिं' से प्रकट है कि इसके पीछे दुरभिसन्धि नहीं थी।

उक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भरत को जान बूझकर उसके मातुल-गृह भेजा गया, ऐसा कहना तो उचित नहीं है क्योंकि भरत का मामा युधाजित् स्वयं ही भरत को ले जाने के लिये बहुत समय से अयोध्या में रुका था। हाँ, भरत के पीछे से राम

का राज्याभिषेक अवश्य ही अयुक्त लगता है। उसका दुष्परिणाम भी सामने आया ही।

'भरत से सुत पर भी सन्देह। बुलाया तक न उसे जो गेह॥

—कहकर ही मन्थरा ने कैकेयी के हृदय-प्रदेश में विद्रोह के बीजों को अंकुरित किया और सारा चित्र ही बदल गया।

(१६) प्रश्न— 'रामलीला' के विषय में आपका क्या मत है ?

उत्तर— काव्य के सामान्यता दो भाग होते हैं— (१) श्रव्य काव्य, (२) दृश्य काव्य। श्रव्य काव्य— महाकाव्य, खण्ड काव्य आदि जो पढ़े और सुने जाते हैं, वे श्रव्य काव्य हैं। दृश्य काव्य निरर्थक और अनुपयोगी हैं ऐसा हमारा मत नहीं है, किन्तु उनमें मर्यादावत्ता अवश्य ही अपेक्षित है। हमारे विचार में राम-कृष्ण-दयानन्द आदि महापुरुषों और सीता आदि पूज्या देवियों को रंगमञ्च पर प्रस्तुत करना अनेक दृष्टियों से अनुचित ही नहीं, परन्तु अक्षम्य अपराध है। फिर पुरुष को स्त्री वेश में प्रस्तुत किया जाना तो महर्षि मनु के अनुसार महापाप है। हमारी प्रेरणा और सांस्कृतिक चेतना के मूल स्रोत रूप इन महापुरुषों का पार्ट नाटक मण्डलियों के चरित्र हीन लडके प्रस्तुत करें यह प्रत्येक राम भक्त के निकट घोर लज्जा का विषय है। क्या आपने कभी किसी को मुहम्मद का स्वाँग भरते देखा है ? कहना चाहिए इस विषय में मुसलमान हमसे लाख गुने अच्छे हैं।

फिर राम-लीला, कृष्णलीला आदि को एक मात्र भौंड़े मनोरंजन का साधन बनाकर जिस निम्न स्तर पर (राम की बरात तथा अन्य सभी प्रकरणों में) प्रस्तुत किया जाता है, वह तो अत्यधिक शोक का विषय है। इसलिये अपने ही लोगों द्वारा श्री राम कृष्णादि का यह घोर अपमान देखकर बड़े दुखी हृदय से आचार्य प्रवर ऋषि दयानन्द ने रामलीला को 'राँड़ लीला' कहकर बडे कठोर शब्दों में इसकी भर्त्सना की है। हमें ये शब्द कठोर प्रतीत हो सकते हैं, पर कितने हैं जो इस कठोरता के पीछे छिपे ऋषि हृदय के हाहाकार और उनके

(१७) प्रश्न—राम ने वन में मृग अर्थात् हरिण जैसे दयनीय प्राणियों का बध किया, इससे उनके द्वारा हिंसा करना और मांस खाना दोनों दोष सिद्ध होते हैं जो कि उनकी महापुरुषता में अश्रद्धा उत्पन्न करते हैं।

उत्तर—इसके सम्बन्ध में वक्तव्य है कि राम ने मृग मारे, यह ठीक है, परन्तु मृग का अर्थ हरिण ही लेना उचित नहीं, क्योंकि मृग का अर्थ सिंह आदि जङ्गली पशु से है। राम राजकुमार थे, सिंह आदि जङ्गली पशुओं का वध करना उनका कर्त्तव्य था, अतः राम ने उन्हें मारा। मृग का अर्थ सिंह आदि जङ्गली पशु है। इस विषय में प्रमाण देते हैं—

१—सिंह आदि जङ्गली पशुओं के शिकार करने को 'मृगया' कहते हैं इससे भी मृग का अर्थ सिंह आदि जङ्गली पशु सिद्ध है।

२—संस्कृत साहित्य में सिंह को 'मृगेन्द्र' कहते हैं। जैसे 'नरेन्द्र' का अर्थ 'नरों में राजा' है। वह नरेन्द्र नर है। वैसे ही जो मृगराज है वह मृगेन्द्र सिंह भी मृग है। अतः मृग का अर्थ सिंह आदि जङ्गली पशु है।

३—वेद में मृग का अर्थ सिंह आदि जङ्गली पशु का आता है "मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठः"।

'मृग के समान भयङ्कर' ऐसा कहना दयनीय हरिण का सूचक नहीं, किन्तु सिंह जैसे भयङ्कर पशु के ही अर्थ में है।

४—रामायण की अन्तःसाक्षी भी मृग के अर्थ सिंह आदि जङ्गली पशु के सम्बन्ध में लीजिये—

इदं दुर्गं हि कान्तारं मृग-राक्षससेवितम्।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे॥

जटायु राम से कहता है कि हे राम! यह दुगम्य वन मृग और राक्षसों से भरा है। आश्रम से लक्ष्मण सहित आपके बाहिर होने पर मैं सीता की रक्षा करूंगा। यहाँ राक्षस के साथ मृग का होना तथा उससे सीता की रक्षा का प्रसंग आना मृग का अर्थ सिंह आदि जङ्गली पशु सिद्ध करता है।

गोस्वामीजी ने यद्यपि मृग शब्द का प्रयोग हरिण के लिये भी किया है, किन्तु मुख्यतया उन्होंने भी 'मृग का प्रयोग पशु जाति और सिंह के लिये ही किया है।

मृग सम्बन्धी इस समस्त विवेचन से यह स्पष्टत: सिद्ध है कि राम ने जो मृग मारे वे सिंह आदि जङ्गली पशु ही थे।

रही राम की मांस खाने की बात सो वे मांस नहीं खाते थे—
नराघवो मांस भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते ॥ (वा० रा० सु० ३६।४१)

हनुमान् सीता से कहता है कि राम न मांस खाता है और न मद्य पीता है।

राम ने हरिण जैसा दयनीय पशु मारा या वह मांस खाते थे यह सर्वथा अप्रामाणिक और निराधार आक्षेप है जिसका सम्यक्निराकरण विस्तार भय के कारण संक्षेप से ही यहाँ किया गया है।

(१८) प्रश्न—मृग (सिंह) स्वर्ण (सोने) के नहीं होते, सभी जानते हैं। फिर राम जैसे विज्ञ पुरुष को यह मतिभ्रम कैसे हुआ ?

उत्तर—स्वर्ण मृग का अर्थ सिंह सोने का बना हुआ था, यही नहीं है ! सोना तो जड़ धातु है। उससे बनी वस्तु में भागना-दौड़ना कहाँ सम्भव है ? अत: स्वर्ण मृग का अभिप्राय उस सिंह की चर्म के सोने जैसी चमक से है। सीता ने भी 'मृग चर्म' ही लाने को कहा। सिंह यदि सोने का होता तो 'चर्म' का प्रयोग व्यर्थ था। उस चर्म की स्वर्णमयता ही सीता जी के कौतूहल का कारण बनी और श्री राम उनके आग्रह से सिंह के पीछे दौड़े। फिर 'विनाश काले विपरीति बुद्धि:' कवि की यह उक्ति भी इस प्रसङ्ग में स्मरणीय है। अच्छे २ विज्ञ पुरुष भी दुर्भाग्य-चक्र के शिकार होकर चौकड़ी भूल जाते हैं। (यह प्रसङ्ग भी अवतारवाद की असत्य मान्यता पर वज्र-प्रहार तुल्य है।)

(१९) प्रश्न—लक्ष्मण रेखा से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—सुना है एक जर्मन वैज्ञानिक ने इस पर शोध की है। वे एक ऐसी रेखा के निर्माण में सफल हो सके हैं जिसे लाँघने वाला जल जावे, पर वे अभी ...

जाने वाला तो जल जावे पर बाहर आने वाला बच जावे। अभी २ हमने ऐसा सुना ही है, वास्तविकता जानना शेष है।

तो सम्भव है लक्ष्मण जी ने ऐसी कोई वैज्ञानिक रेखा खींची हो। पर हमारे विचार में यह भी अलङ्कारिक प्रयोग है। 'पर पुरुष से सम्भाषण न करना' यह आर्ष मर्यादा है। लक्ष्मण इसी का संकेत करके गये थे। आतिथ्य धर्म के व्यामोह में सीता जी ने इस आर्ष वृत्त (मर्यादा) या लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन कर दिया।

विशेष—हमें तो सीता-हरण के सम्पूर्ण प्रसङ्ग में कवि-कल्पना का पुट ही अधिक दीखता है। हमारे विचार में राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में मारीच के सहयोग से रावण ने सीताजी का हरण किया।

(२०) प्रश्न—राम ने शूर्पणखा के नाक-कान कटवा दिये थे, यह राम ने स्त्री पर प्रहार किया जो ठीक नहीं, मर्यादा के विरुद्ध है।

उत्तर—राम राजकुमार थे। यह राजधर्म की बात है कि यदि स्त्री पाप वश दण्डनीय हो तो उसे अवश्य दण्ड दे। देखिये विश्वामित्र ऋषि ने ताटका-वध के लिये भी राम को क्या आदेश दिया है—

नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम !
चातुर्वर्ण्य-हितार्थं हि कर्तव्य राजसूनुना ॥ बाल० २५.१७

हे राम ! तुझे स्त्री वध में घृणा न करनी चाहिए, चातुर्वर्ण्य के हितार्थ स्त्री-वध भी राज पुत्र का कर्त्तव्य है।

(२१) प्रश्न—क्या विभीषण भ्रातृ-द्रोही न था ?

उत्तर—यह ठीक है कि विभीषण रावण-बध तथा लङ्का विजय में राम का सहायक सिद्ध हुआ। उसका स्वार्थ भी इसमें था ही। पर उसने एक मात्र स्वाथ वश ही रावण का साथ छोड़ा, यह कहना भी असन्दिग्ध नहीं। प्रथम तो उसने रावण को सब प्रकार समझाया था और तब अन्त में 'न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है' इस नीति का पालन किया। फिर भी उसका तटस्थ रहना तक तो समझ में आता है, शत्रु पक्ष में मिल जाना कभी उचित नहीं कहा जा सकता।

(शमित्योम्)

पतित-पावन - पावन दयानन्द
अवतारवाद
अविवेक
अन्धश्रद्धा
चमत्कारवाद
अलंकार वाद
महामानव राम
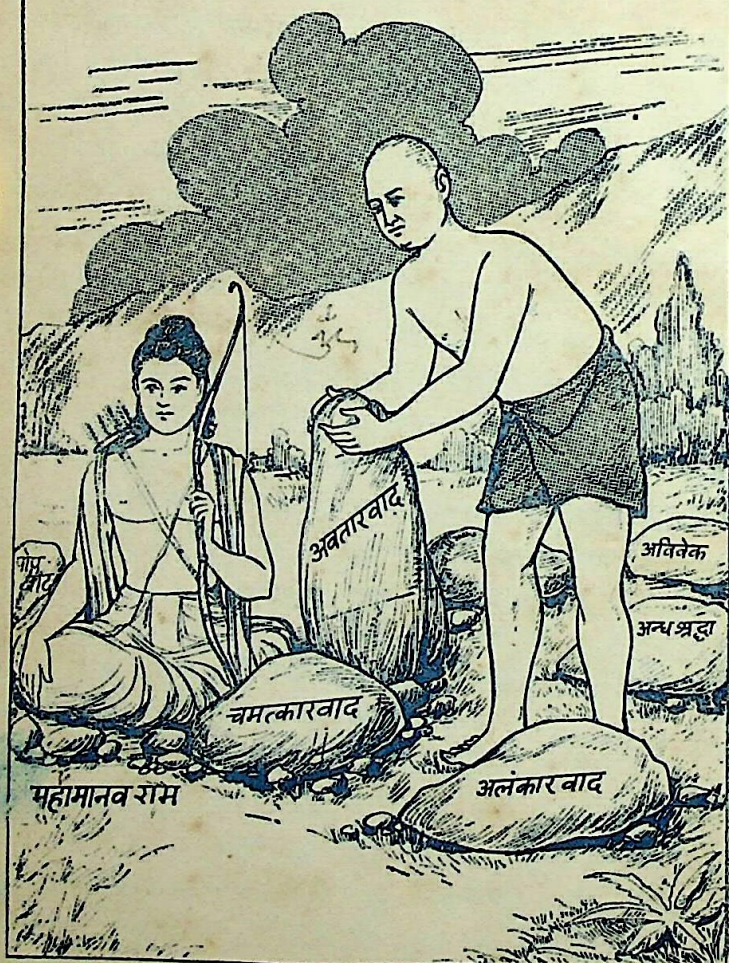
आर्यसमाज और श्री राम।

रामायणकाल : स्वर्ण युग !

वाल्मीकि रामायण में श्री राम का ऐतिहासिक चरित्र वर्णित है,उसके पढ़ने से स्पष्ट है कि श्रीराम आर्य थे, वैदिक धर्मी थे और श्री राम के समय में वैदिक युग वर्त्तमान था। तब एक ही धर्म था, हमारा और सारे संसार का—वैदिक धर्म, एक ही धर्म ग्रन्थ था तब हमारा—वेद। श्रीराम के समय में हमारा जातीय नाम आर्य था। आर्य और दस्यु सिर्फ ये दो ही विभाग थे उस समय मनुष्य जाति के। आर्य ही देव कहलाते थे और दस्युओं का ही दूसरा नाम 'असुर' था। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के वैदिक आदेश या लक्ष्य की पूर्ति के लिये "राष्ट्रे वयं जागृयाम पुरोहिताः' का घोष करने वाले वैदिक ब्राह्मण एवं ऋषि मुनि वैदिक शिक्षाओं के प्रचार द्वारा असुरों की आसुरी वृत्ति छुड़ाकर उन्हें देव बनाने या दस्युओं को आर्य बनाने का यत्न किया करते थे। जो दस्यु या असुर ब्राह्मणों की सद्शिक्षाओं से दुराचरण को नहीं त्यागते थे और अपने दुराचरण एवं दुष्ट स्वभाव से आर्य जनों (देवों) का कष्टित करते थे उनके लिये क्षत्रिय (आर्यराजा) का 'दण्ड' होता था। उस समय मेरा राम गोस्वामी जी के शब्दों में व्रत लेता था—"निश्चरहीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह" महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में मेरा प्यारा राम उद्घोष करता था—"क्षत्रियै र्धार्यते चापे नार्त शब्दो भवेदिति" अब क्षत्रिय ने धनुष धारण कर लिया है; अब किसी दुःखी की करुण पुकार सुनाई नहीं दे सकती।

इस प्रकार ब्राह्मण ऋषि वेद प्रचार द्वारा तथा क्षत्रिय शासक धर्म-दण्ड द्वारा विश्वको आर्य बनाने के पवित्र लक्ष्यकी पूर्ति करते थे।

इसी पवित्र उद्देश्य से आर्य राजा अश्वमेध यज्ञ का आयो
चक्रवर्ती राज्य संस्थापित करते थे और ऋषिगण वैदिक स
दिग्विजय यात्रायें करते थे। मानो दोनों मिलकर—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्च चरतो सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना॥

—वेद की इस पवित्र ऋचा के अनुसार आचरण कर
शान्ति में सहभागी बनते थे। यह वह समय था जब ऋषिगण
को सजग रहने के लिये कहते थे—"राजन्, हम तुम्हारा रा
ग्रहण नहीं करते, पता नहीं वह किस प्रकार का है?" और उत्त
मेरा अश्वपति (राष्ट्रपति) उद्घोष पूर्वक सविनय निवेदन क
था—"महाराज! मेरे राज्य का अन्न आप अवश्य ग्रहण कर कृत
करें। क्योंकि:—

न मे स्तेने जन पदे न कदर्यो न च मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

—प्रभो! मेरे सम्पूर्ण जनपद में एक भी चोर नहीं है, क्यों
एक भी व्यक्ति कंजूस या अनुदार नहीं है, एक भी मद्यपी (नशील
वस्तुओं, बीडी, सिगरेट, भांग, गाँजा, सुलफा, अफीम और शरा
आदि का सेवन करने वाला) नहीं है, एक भी परिवार या व्यक्ति
ऐसा नहीं जो अग्निहोत्र न करता हो, एक भी अविद्वान् मूर्ख
नहीं, एक भो व्यभिचारी नहीं। तो फिर व्यभिचारिणी क्यों कर हो
सकती है।" अहा! कैसा स्वर्णिम युग था वह!!

यह वह युग था, जब महर्षि मनु के शब्दों में—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशा दग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

—संसार भर के मनुष्य इस आर्यावर्त देश के अग्रजन्मा
ब्राह्मणों के चरणों में अपने-अपने चरित्र (कर्त्तव्य) का शिक्षण
प्राप्त करने आते थे।

...कट है कि यह वह युग था जब हम चक्रवर्ती सम्राट् भी थे ...द्गुरु भी! 'सोने की चिड़िया कहा जाता था, मेरा भारत ...और हमारी इस गौरव-गरिमा का रहस्य था—हम एकमेव ...पासक थे। हम वैदिक धर्मी थे, हम आर्य थे। हमारे देश का ... आर्यावर्त, हमारे समाज का नाम था—आर्यसमाज! वैदिक ..., वैदिक संस्कार, वैदिक आचार-व्यवहार, वैदिक भक्ति और ... वर्णाश्रम धर्म का सनिष्ठ पालन तब महान् आर्यावर्त का ...क नागरिक—स्त्री-पुरुष करता था। ऐसा था वह रामायण ..., ऐसा था वह राम राज्य! सचमुच वह स्वर्ण युग था!!

... तो महाभारत की लड़ाई से पहले भारत और सारे संसार में एक ...धर्म था—वैदिक धर्म, एक गुरुमन्त्र था—गायत्री। एक ही अभि...तन था—नमस्ते। एक ही जातीय नाम था—आर्य। हम एक ही ...ाकार ईश्वर के उपासक थे जिसका मुख्य और निज नाम ओ३म् ...श्री राम और श्री कृष्ण तथा गौतम कपिल-कणाद, पतञ्जलि, ...स, जैमिनि आदि ऋषि मुनि उसी एक निराकार सच्चिदानन्द ...स्वरूप ईश्वर के उपासक थे। बौद्धकाल से पहले कहीं मूर्तिपूजा का ...लेश भी नहीं था। न अनेक मत-मतान्तर थे।

महाभारत के बाद—

बीच के जमाने में जिसे अन्धकार-युग या वाममार्ग काल कहना ...चित होगा, हम इन सब सचाइयों क भूल गये, सनातन धर्म लुप्त ...हो गया। हमारे पवित्र धर्म ग्रन्थों और रामायण, महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थों में भी पापियों ने—ऋषिलोग गो-मांस खाते थे, देव परस्त्री-गामी थे, श्री कृष्णादि महापुरुष चोर और व्यभिचारी थे आदि मिलावटें करदीं। बिलकुल नई मनघड़न्त पुस्तकों का नाम पुराण रख दिया। प्रसिद्ध कर दिया कि शिवजी भङ्ग पीते थे, देवी शराब पीती और भैंसा बकरा खाती थी। देव देवियों की ओट में खुद तरह-तरह के पाप करने लगे। पापों के फल से छूटने और मुक्ति पाने के

सस्ते से सस्ते नुस्खे निकाल दिये। छूत छूत के नाम पर अपने ही भाइयों को धक्के दे-देकर मुसलमान और ईसाई बना दिया। लाखों नहीं करोड़ों दुधमुँही बच्चियों को 'विधवा' करार देकर विधर्मियों के हवाले कर दिया। (फ़लतः पाकिस्तान बना।) जन्मगत जात-पाँति के नाम पर अनेक तरह के भेदभाव पैदा किये गये। हम अपना नाम और स्वरूपतक भूलगये। अनेकों ईश्वरोंकी कल्पनाकी गई और ईश्वर पूजा का स्थान जड़ मूर्ति की पूजा ने ले लिया। महापुरुषों को ईश्वर बनाकर सर्वनाश का मार्ग खोज लिया गया। यह है संक्षेप में कहानी कि महान् भारत कैसे इतना गरीब और गुलाम बना? सब देशों का सिरताज कैसे सबका मुँहताज बना?

देव दयानन्द की दया!

युगों-युगों के बाद ईश्वर की असीम दया से महर्षि दयानन्द का जन्म इस पुण्य-पावनी भारत-भूमि में हुआ। उन्होंने १८ घण्टे के समाधि सुख को छोड़कर, अपने मोक्षानन्द को निछावर करके हमें हमारे भूले हुए आत्म-गौरव और भूले हुए वेदपथ को स्मरण कराया।

स्वामी जी ने वेद ज्ञान से प्राप्त दिव्यदृष्टि से यह सब देखा और बड़े दुखी हृदय से उन्होंने इस सारे पाप-ताप को ललकारा। उन्होंने फिर से वेदों की राह पर लौटने की आवाज दी; जिस पर चलकर भारत फिर से जगद्गुरु बन सके, और एक वैदिक ईश्वर की उपासना द्वारा सारा संसार स्वर्गधाम बन जाये! ऋषि ने हमें भूली हुई वैदिक राह फिर से बताई, और कहा—

आर्य हमारा नाम है, वेद हमारा धर्म।
ओ३म् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म॥

ऋषि दयानन्द चाहते थे कि बीच के जमाने की विकृतियों—मत-पन्थों को छोड़ फिर सारा संसार श्री राम के जमाने की तरह वेद की राह पर आये। फिर एक बार संसार के सभी श्रेष्ठ-सदाचारी

(आर्य) मनुष्य श्री राम की भाँति एक ही ईश्वर के उपासक हों। ऋषि की आँखें वह दिन देखना चाहती थीं, जब फिर यहाँ राम-भरत से भाई, सीता सी देवियाँ, कौशल्या और सुमित्रा सी माताय, दशरथ जैसे पिता, राम जस पुत्र, मुनिवर वशिष्ठ से कुलगुरु, महामुनि विश्वामित्र और महर्षि अगस्त्य जैसे शिक्षक, सुग्रीव जैसे मित्र और हनुमान् जेसे सेवक हों, जिससे हमारा भारत फिर महान् भारत बन जगद्गुरु और विश्व सम्राट् का गौरव प्राप्त कर सके। सारा संसार जिसकी शीतल छाँह में सुख शान्ति का अनुभव कर लौकिक और पारलौकिक उन्नति के समन्वय रूप धर्म का पालन कर फिर वैदिक धर्म और मानवता का जय-जय गान कर सके।

यह स्वप्न कैसे साकार हो, इसके लिये उस युगद्रष्टा ऋषि ने इस महान् आर्य जाति और आर्यवर्त्त के शिखर से गिरकर रसातल में पहुँचने जैसे घोर पतन के मूलकारणों पर गहराई से चिन्तन किया। और तब कवि के शब्दों में उनसे यह सचाई छिपी नहीं रहीकि—"सब दुखों का मूल है ईश्वर जुदाई आपकी" —एक वैदिक ईश्वर की जगह अनेक कल्पित देवी-देवताओं की पूजा, गुरुडम और विविध मत-पन्थों का पाखण्ड ही हमारी दीनता, दरिद्रता और पराधीनता का मूल-कारण है, इसे ऋषि ने देखा। उन्होंने पहिचाना इस कि महापतन का असली कारण है—मेरे महान् पूर्वज राम-कृष्ण को ईश्वर अथवा उपन्यास का कल्पित पात्र बनाकर मुझसे छीन लिया गया है और इस प्रकार मेरी प्रेरणा का स्रोत सुखा डाला गया है। बहु देवतावाद, अवतारवाद, चमत्कारवाद और अलङ्कारवाद की छाया में हमने अपने राम-लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, महावीर हनुमान्, और माता सीता के चरित्र की पूजा की जगह चित्र-पूजा का पाखण्ड अपना कर अपने सर्वनाश को स्वयं आमन्त्रित किया है। इसी पाखण्ड के खण्डन के लिये ही ऋषि ने जाति-उद्धार, देशोद्धार और विश्वकल्याण की पवित्र भावना से बड़े दर्द भरे दिल से 'पाखण्ड-खण्डिनी पताका'

को उठाया। उस महान् सन्त ने इस कठोर कर्त्तव्य को बड़ी पीड़ा और करुणामयता से निभाया है।

पतित पावन-पावन दयानन्द !

श्री राम पतित पावन थे। उन्होंने निषाद को गले लगाया था शबरी का आतिथ्य स्वीकारा था, हताश सुग्रीव को नव जीवन दिया था। ठुकराये हुए विभीषण को हृदय से लगा लङ्का का राज्य दिया था। सचमुच मेरे राम पतित-पावन थे। पर मुझे कहने दीजिये कि देव दयानन्द पतित-पावन-पावन थे। उन्होंने अवतारवाद और चमत्कारवाद की ढेरों मिट्टी और शिलाखण्डों के नीचे दबे मेरे महान् पूवज पतित-पावन राम को भी इन शिलाखण्डों से निकाल कर उन्हें फिर उनके शुद्ध ऐतिहासिक स्वरूप में— महा मानव, राष्ट्र पुरुष एवं युग निर्माता क रूप में प्रस्तुत किया। यह सत्य कोटि २ मानव-प्रजा को अभी जानना शेष है। इस विश्वहित के कार्य में अपमान सहकर, गालियां खाकर भी और विषपान करके वे हमें अमृत दान कर गये।

महान् आर्यसमाज—

आयसमाज ही ऋषिप्रदत्त वह अमृत है। आर्यसमाज परोपकार का महा कल्पवृक्ष है। गोस्वामी तुलसीदास ने "मुद मगलमय सन्त-समाजू, जनु जड़ जंगम तीरथ राजू" में जिस 'सन्त समाज़' की वन्दना की है, वह आर्यसमाज पर सम्पूणतया घटित होता है। सचमुच महान् आर्यसमाज तीर्थराज है।

आर्यसमाज वेद प्रचार और वेदाचार द्वारा ऋषि के स्वप्नों को पूरा करना चाहता है। वह फिर वैदिक युग और रामायण युग का वर्त्तमान करना चाहता है। यह तभी सम्भव है जब हम श्रीराम-कृष्णादि को ईश्वर न मानकर अपने महान् पूवज, राष्ट्र-पुरुष और महापुरुष के सत्यरूप में मानें और उनके चित्रों की नहीं चरित्र पूजाका व्रत लें। चित्र की नहीं, चरित्र की पूजा यही आज का युग-घोष हो।

एक भ्रान्ति और उसका निराकरण

हमारे भाई-बहिनों में आर्यसमाज के स्वरूप और कार्य के

सम्बन्ध में जहाँ अन्य अनेकों भ्रान्तियाँ है, वहाँ एक आम धारणा यह है कि आर्यसमाज राम और कृष्ण को नहीं मानता। यह भ्रान्ति कुछ तो इस कारण है कि अपने को आर्यसमाजी कहने वालों में से भी अनेकों ने आर्यसमाज को उसके सही रूप में समझा ही नहीं। हर बात काआँख मींचकर खण्डन करना ही उनकी दृष्टि में'आर्यसमाज'है। कुछ इस भ्रान्ति का कारण हमारे वे प्रचारक और व्याख्याता हैं जो स्वय आचरण-हीन होने पर भी दूसरों को गाली देना हो 'आर्यसमाज का प्रचार' समझे हुए हैं। और इस भ्रान्ति का बड़ा कारण, क्षमा करें, हमारे वे पौराणिक पण्डित हैं जो आर्यसमाज के पक्ष को हृदय में सही मानते हुए भी, इस मिथ्या भय से कि उनकी रोटी का क्या बनेगा, अपनी आत्मा के विरुद्ध और कभी-कभी दुराग्रह और अज्ञान वश भी ऐसी भ्रान्तियां जन-समाज में फैलाते रहते हैं। आयें, हम इस भ्रान्ति-जाल से बचने के लिये इस पर थोड़ा विचार करें।

(१) इस सम्बन्ध में पहली जानने योग्य बात यह है कि आर्यसमाज कोई नया पन्थ या मत नहीं है। आर्यसमाज 'दयानन्द' पन्थ नहीं। आर्यसमाज के दस नियमोंमें आपको कहीं भी'दयानन्द'शब्द नहीं मिलेगा। आर्यसमाज का धर्म वैदिक धर्म है। अभिवादन 'नमस्ते' है। गुरुमन्त्र 'गायत्री' है। इनमें कहीं भी दयानन्द का नाम नहीं है।

(२) ऋषि दयानन्द ने हमें केवल भूली हुई वैदिक सचाइयों को फिर से याद कराया। हमारा नाम, इष्टदेव, गुरुमन्त्र, अभिवादन और धर्म ग्रन्थ हम सब भूल चुके थे। हम भूल चुके थे कि हम भी संसार के चक्रवर्ती सम्राट् रहे थे और कि हम राम-कृष्ण जैसे महान् पूर्वजों की सन्तान हैं। ऋषि दयानन्द ने इन सब भूले हुए तत्वों को याद कराया। ऋषिवर दयानन्द ने उलटे हुए को सीधा किया। ऊपरी निगाह से देखने वालों ने समझा कि वह हमारी मान्यताओं और आदर्शों को उलट रहा है पर गहराई से देखने वालों ने देखा और समझा कि उस प्यारे ऋषि ने आत्म-बलिदान के मूल्य पर भी उलटे को उलट कर संसार को फिर सीधा और सही,सत्य सनातन राज मार्ग

ह (वेद-पथ) बताया था, जिसे हम मत-मतान्तरों की पगदण्डियों में भूल बैठे थे। कोई नई बात, कोई नई राह उन्होंने नहीं बताई। वैदिक धर्म ही सनातन धर्म है, इस पर जो धूल कीचड़ या काई जम गई थी, उसे ऋषि ने साफ किया।

(३) सच्चा धर्म बुद्धि और विज्ञान का विरोधी नहीं हो सकता। धर्म में विज्ञान और सृष्टि-क्रम [ईश्वरीय नियम] के विरुद्ध चमत्कारों के लिये कोई स्थान नहीं हो सकता। ईश्वरभक्ति शक्ति का स्रोत है। धर्म का अर्थ आत्म-निर्माण और युग-निर्माण का समन्वय है। सच्चा धर्म सच्चरित्रता का आधार है। इन्हीं तत्वों के आधार पर आर्यसमाज श्री राम को युग-पुरुष, राष्ट्र नायक और महापुरुष मानता है, ईश्वर नहीं। धर्म का ऐसा रूप ऐसी मान्यतायें जो मानव चरित्र को गिराती है, आर्यसमाज केवल उन्हीं का खण्डन करता है।

स्पष्ट है कि आर्य समाज श्री राम को मानता है और सर्वाधिक मानता है। हाँ पौराणिक भाइयों के मानने के तरीके में और आर्य समाज के मानने के तरीके में अन्तर है। यहाँ एक दृष्टान्त से इस अन्तर पर थोड़ा और विचार कीजिए।

दो तस्वीरें हैं हमारे सामने, अपने प्यारे राम की। एक तस्वीर में राम के पैरों में झुँझनू बँधे हैं, वह नाच रहा है। उसके नीचे एक पंक्ति लिखी है—'ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियां' दूसरी तस्वीर में राम क्षात्र तेज से दीप्तिमान् हैं, धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाये 'निशिचर हीन करौं महि' की व्रत पूर्ति के लिए सन्नद्ध। इस तस्वीर पर भी एक पंक्ति लिखी है—'धमक चलत रामचन्द्र हालत सब दुनियाँ।' पहली तस्वीर पौराणिक भाइयों के राम की है और दूसरी आर्यसमाज के राम की। दोनों के अन्तर पर गहराई से सोचिये और तब सोचिये कि क्या हम अपने शक्ति-स्रोत राम को अब भी सिर्फ मनोरञ्जन और मन बहलाव का साधन या फिर पापों से नहीं, पाप के फल से छुट्टी पाने का साधन बनाये रखेंगे ? बन्धु, आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक देव दयानन्द के उपकार को समझिये और उनके कृतज्ञ हूजिये। 'कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः'।

एक प्रश्न और उसका समाधान !

प्रश्न— यह ठीक है कि राम एक आदर्श पुरुष एवं महामानव थे। पर यदि उन्हें ईश्वरावतार ही मान लिया जाये तो इसमें क्या हानि है, कम से कम श्रीराम का तो इसमें गौरव बढ़ता ही है।

उत्तर— राम-कृष्ण आदि अपने महापुरुषों को ईश्वर बताने या मानने में एक नहीं अनेकों हानियां हैं और ऐसी भयङ्कर हानियां हैं जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। रही राम-कृष्णादि को ईश्वर बनाने में उनकी गौरव-वृद्धि की बात सो यह भी एक विचित्र भ्रान्ति मात्र है।

याद रखिये, महात्मा बुद्ध का गौरव उन्हीं के अनुयायियों द्वारा उस दिन खत्म करने की कोशिश की गई जिस दिन बुद्ध को ईश्वर की जगह पर बिठलाकर उनकी मूर्ति की पूजा आरम्भ की गई और इस तरह जब बुद्ध के चरित्र की पूजा की जगह उनके चित्र की पूजा शुरू हुई। * ठीक इसी तरह श्रीराम और श्रीकृष्ण का गौरव उस दिन मिटाने का प्रयत्न किया गया जिस दिन बौद्धों की नकल करते हुए उन्हें ईश्वरत्व की चादर ओढ़ा दी गई। यद्यपि सत्य सिद्धान्तों की अवमानना स्वयं में सबसे बड़ी हानि है। पर हम इस प्रकरण में अवतारवाद की दार्शनिक और सैद्धान्तिक कमजोरियों की चर्चा नहीं करेंगे। यहाँ तो हमें यह देखना है कि किस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को ईश्वर बनाकर जहाँ हमने उनकी महानता और गौरव को मिटाने का अपराध किया वहाँ अपने सामाजिक और चारित्रिक पतन का रास्ता भी तैयार कर लिया, जिसके परिणाम में महान् भारत की सर्वविधि दुर्गति रूप कुफल हमें भोगना पड़ा।

---

* जिसका दुष्फल है कि अहिंसा के सबसे बड़े प्रचारक महात्मा बुद्ध के अनुयायी बौद्ध प्रायः ९० फीसदी मांसखोर हैं।

महापुरुषों के गौरव की समाप्ति

जब हम यह कहते हैं कि श्रीराम को ईश्वर बनाकर हमने उनके गौरव को मिटाया है तो पहली बार सुनने में यह बात आपको अजीब सी लगेगी। पर यह है सही। आप जरा विचारिये कि श्रीराम का महत्व, उनका महान् गौरव उनके महान् चरित्र और आदर्श जीवन में निहित है। पर क्या उन्हें ईश्वर बनाकर भी हमारा यह स्वाभिमान युक्त गौरव शेष रहेगा ?

राज्याभिषेक की पहली रात्रि। राम सोने लगे हैं। विचार आता है कि अन्य भाइयों को छोड़कर मुझे ही अयोध्या का यह चक्र-वर्ती राज्य क्यों दिया जा रहा है ? क्या यह उचित है ? और इसी विचार को करते-करते वे सो जाते हैं। उन्हें ज्ञात है कि प्रातः होते-होते उन्हें अयोध्या का विशाल राज्य मिलना है। पर आप जानते हैं रात्रि में ही नक्शा बदल जाता है और उसके अनुसार श्रीराम को दूसरे दिन जागने पर आदेश मिलता हैं— "तापस वेष विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी ॥" पर वाह रे आर्योत्तम राम ! धर्म-धुरीण राम !! मर्यादा पुरुषोत्तम राम !!! न उसे राज्य मिलने के विचार से कोई खुशी थी और न अब जङ्गलों की भयानक राह के राही बनने के समाचार से कोई विषाद है। महामानव राम के जीवन का यह कैसा गौरवशाली चित्र है, इसमें कितनी चमक है ! पर जरा इसी चित्र पर ईश्वरत्व की तूलिका फेर दीजिए आप देखेंगे न सिर्फ चित्र की चमक ही खत्म हुई है, श्रीराम का चेहरा ही गायब होगया है, उनका अस्तित्व ही मिट गया है। आप हैरान मत हूजिए। बात बिल्कुल साफ है। राम यदि ईश्वर हैं तो उनको राजगद्दी से खुशी नहीं हुई और जङ्गल जाने से दुःख नहीं हुआ तो इसमें गौरव की कौनसी बात है ? भाई, ईश्वर राम के लिए तो जैसा घर वैसा ही बाहर। जैसा ही राजमहल वैसा ही वनवास। इसमें विशेषता की क्या बात है ? देखा आपने श्रीराम को ईश्वर बनाते ही उनके चरित्र की सारी विशे-षतायें समाप्त हो जाती हैं।

अब आप श्रीराम-जीवन के महत्वपूर्ण चित्रों को एक-एक करके सामने लाइये। आप देखेंगे जब तक श्रीराम आर्य जाति के महान् रत्न एक सर्वोपरि आदर्श महापुरुष के रूप में है (जो कि उनका वास्तविक रूप है) इन चित्रों में कितनी चमक है, श्रीराम का मुख-मण्डल आर्योचित तेज से कैसा दीप्तिमान है। पर जहाँ आपने उन्हें ईश्वर बनाया नहीं कि— भरत के आग्रह पर भी अयोध्या का राज्य स्वीकार न करने वाले श्रीराम के अनुपम त्याग, शबरी के आश्रम को पवित्र करने वाले पतित पावन राम विभीषण के आते ही उसे 'लंकेश' कहकर पुकारने वाले शरणागतवत्सल राम और यदि रावण शरण में आजाये तो उसे अयोध्या का राज्य देने की भावना रखने वाले महान् अपरिग्रही राम तथा जङ्गल में नितान्त साधनहीन होने पर अयोध्या से भरत की कोई सहायता न लेकर वानरराष्ट्र और राक्षसराष्ट्र की सन्धि को खत्म कराके वानरराष्ट्र को अपनी ओर मिलाकर राक्षसराष्ट्र को धराशायी करने वाले राजनीति-विशारद राष्ट्र-पुरुष राम के महान् जीवन के ये सारे गौरवमय चित्र कितने बेजान और अर्थ-शून्य हो जाते हैं। आखिर ईश्वर राम ने यह सब कुछ किया तो इसमें क्या बात हुई ? हाथी ने चोंटी को कुचल दिया यह कोई बखान करने वाली बात है। इसके बखान से तो हाथी का अपयश ही होगा।

राम का 'रामत्व' राम की वे विशेषतायें हैं जिसके कारण राम 'राम' हैं, वे तभी तक रहती हैं जब तक वे एक महापुरुष, राष्ट्र-पुरुष, जन-नायक लोकनायक या युगपुरुष हैं। ईश्वर कहते ही उनकी सारी महत्ता का यह महल धड़ाम से गिर पड़ता है। और उसके नीचे ऐतिहासिक सत्य, सामाजिक चेतना, अतीत का गौरव और युग-निर्माण के सभी समुज्ज्वल चित्र भी दबकर नष्ट हो जाते हैं।

ऐतिहासिक सत्य का लोप

प्रश्न— अवतारवाद की मान्यता से ऐतिहासिक सत्य का लोप कैसे हो जाता है ?

उत्तर— महापुरुषों को अवतार सिद्ध करने के लिये चमत्कार-वाद का आश्रय लिया जाता है। उनके जीवन की सहज सरल घटनाओं को ऐसा रंग दिया जाता है जिससे वे अमानवीय प्रतीत हों। सीता की माता का नाम 'धरणी' था इसी को एक रंग दे दिया गया और सीता के जन्म की एक कथा घड़ ली गई। कहा गया कि सीता का जन्म धरणी (स्त्री) से नहीं (पृथ्वी) से हुआ और सीता की इह-लीला की समाप्ति के लिये भी पृथ्वी के फट जाने की कहानी तैयार की गई। अहल्या को शिला (पत्थर) बना दिया गया, हनुमान् और सुग्रीव को पूँछ वाला बन्दर और रावणादि राक्षसों को अति वीभत्स बना दिया गया। राम-जन्म की घटना के पीछे कई अनोखी बुद्धि-शून्य और परस्पर विरोधी कथायें घड़ ली गईं। राम-केवट जैसे हास्यास्पद प्रसङ्ग तैयार किये गये।

सागर (जल-समूह) को हाथ जोड़कर खड़ा किया गया, हनुमान् इस धरती से तेरह लाख गुने सूरज को गाल में दे गये, राम का एक साथ ही हजारों लोगों से मिल लेना आदि अनेकों चमत्कारों की रचना अवतार-सिद्धि के लिये ही की गई। इसका भयङ्कर परिणाम यह हुआ कि राम का यशस्वी जीवन इतिहास से मिट रहा है। हर क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है। यहाँ भी हुई। आज हम सुन रहे हैं कि राम और उनका पावन वृत्त ऐतिहासिक सचाई नहीं, कवि-कल्पना की उपज है। यह इन चमत्कारों का नतीजा है। किसी ऐतिहासिक पात्र का जमीन से पैदा होना, पैर छूते ही पत्थर का स्त्री बन जाना, इसी धरती का एक प्राणी इस धरती से सहस्रों गुने बड़े सूरज को गाल में दे गया यह सब कैसे सम्भव है? इन अति वृत्तों का रामायण में जोड़ने से पाश्चात्य विद्वानों और उन्हीं की विद्वता के कारण भारतीय महानुभावों की दृष्टि में रामायण जैसा महनीय ऐतिहासिक [illegible] प्रधान काव्य-ग्रन्थ मात्र रह गया है। क्या यह हमारे गौरवमय अतीत के साथ एक घोर दुर्भाग्य पूर्ण खिलवाड़ नहीं है? ऐतिहासिक, सत्य की यह निर्मम हत्या सम्पूर्ण मानव जाति के

लिए एक अभिशाप है, जिसका मूल है 'अवतारवाद' की मिथ्या और विनाशकारी कल्पना ।

जातीय गौरव का ह्रास

प्रश्न— रामायण एक इतिहास ग्रन्थ नहीं है, ऐसा मानने में और विशेष हानि क्या है ?

उत्तर— आप शायद इससे उत्पन्न समस्या की गहराई तक नहीं पहुँचे । राम को अनैतिहासिक मानकर 'राम हमारे पूर्वज हैं' यह गौरवमयी स्थिति समाप्त हो जाती है । हम बड़े अभिमान के साथ कहते हैं कि हमारी वैदिक संस्कृति ने राम जैसे महापुरुष, सीता जैसी देवियाँ, लक्ष्मण और भरत जैसे आदर्श भाई, कौशल्या जैसी मातायें, हनुमान् जैसे आदर्श सेवक संसार को दिये । पर क्या अवतारवाद के पाप के प्रतिफल से इन्हें अनैतिहासिक मान लिये जाने पर हमारा यह साँस्कृतिक और जातीय गौरव शेष रह सकेगा ?

यों महापुरुष किसी भी देश विशेष की सम्पत्ति नहीं होते उनका जीवन सार्वजनिक होता है फिर भी वे किन्हीं विशिष्ट सांस्कृतिक आदर्शों और विशिष्ट जातीय गौरव के प्रतीक होते हैं । पर ईश्वर के लिए यह बात नहीं है । यदि राम ईश्वर हैं तो 'वे भारतीय संस्कृति की महान् देन हैं' ऐसा कहने, सोचने समझने और उससे गौरवान्वित होने का अवकाश ही कैसे रह जाता है ?

प्रेरणा का स्रोत सूख जाता है

इसी प्रसङ्ग में यह भी विचारणीय है कि आखिर किसी महापुरुष का लाभ उसके देश वासियों तथा सर्वसाधारण के लिए क्या है ? महापुरुषों की जयन्तियाँ हम क्यों मनाते हैं ? इसीलिए न कि आगे आने वाली पीढ़ियाँ उन महापुरुषों के पद-चिन्हों पर चल [illegible] त हो सकें ।

अँग्रेजी के प्रसिद्ध कवि 'लाँगफेलो' की प्रसिद्ध कविता 'सम ऑफ़ लाइफ' की निम्न पंक्तियां मननीय हैं—

Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime.
And departing leave behind us,
Foot-prints on the sands of time.

अर्थात् महापुरुषों के पवित्र चरित्र हमें अपने जीवनों को पवित्र और चरित्र को समुन्नत बनाने की प्रेरणा देते हैं कि हम भी संसार से विदा होते समय अपने पीछे आने वालों के लिये समय की बालू पर (मार्ग दर्शक) पद-चिन्ह छोड़ सकें।

राम-नवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, गान्धी जयन्ती दयानन्द बोधोत्सव आदि पर्व हम इसलिए मनाते हैं कि युगों २ के बाद भी हमारा राष्ट्र इन पवित्र चरित्रों से प्रेरणा ले सके। महापुरुषों का किसी देश या जाति के लिए यही महत्व है। श्रीकृष्ण जी महाराज की 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तत्देवेतरो जनः' की उक्ति इसी विचार से तो है। पर अपने इन महापुरुषों को ईश्वर बनाकर हम इस लाभ से वंचित हो जाते हैं, हमारी प्रेरणा का स्रोत सूख जाता है।

जिस राष्ट्र के जितने ऊंचे आदर्श चरित्र होते हैं वह देश चरित्र और आचार-विचार की दृष्टि से उतना ही ऊंचा उठ जाता है। हमारे देश के पास जब तक श्रीराम जैसे महान् चरित्र रहे भारत संसार का गुरु बना रहा। पर जब हमने अपने आदर्शों को ईश्वर बना डाला तो हमें प्रकाश और प्रेरणा की ऊष्मा मिलना बन्द हो गया। अँधेरे के घटाटोप में हम ठोकरें खाने लगे और पतन की राह पर चल पड़े। हमने अपने महापुरुषों को ईश्वर बना कर उनके साथ जो अन्याय किया है और अपने राष्ट्रिय आदर्शों का खोकर आप ही अपने पैरों जिस प्रकार कुल्हाड़ी मार ली है इसको राष्ट्रिय स्वयं सेवक संघ के आद्य सर संघ चालक डा० हैडगेवार जी ने अपनी 'विचार धारा' में बड़े खेद के साथ व्यक्त किया है। उस संदर्भ का कुछ अंश हम यहाँ ज्यों का त्यों दे रहे हैं—

'हमारा आदर्श क्या हो? इस सन्दर्भ में डा० साहिब कहते

हैं—"मेरी सदा की प्रथा के अनुसार मैं यहाँ भी एक छोटा-सा उदाहरण बताद्रू । किसी समय हमारे यहाँ एक परिचित मेहमान पधारे । वे प्रतिदिन नियम पूर्वक स्नान-सन्ध्या करने के उपरान्त अध्यात्म-रामायण का एक अध्याय पढ़ा करते थे । एक दिन की बात है कि मैंने भोजन करते समय उनसे पूछ ही तो लिया, आपने जो अध्याय पढ़ा, उसका अनुशीलन तो आप करेंगे ही । इतना सुनना था कि बस वे बौखला उठे और क्रोध से सतप्त हो कर बोले "आप रामचन्द्र जी और भगवान् का उपहास करते हैं । हम लोग गुण-ग्रहण करने की दृष्टि से नहीं अपितु पुण्य-संचय और मोक्ष प्राप्ति के लिये ग्रन्थ पाठ करते हैं ।"

"हिन्दू जाति की अवनति के जो अनेकानेक कारण हैं उनमें से उपर्युक्त भावना भी एक प्रधान कारण है । वास्तव में हमारे धर्म-साहित्य में एक से एक बढ़कर ग्रन्थ हैं । हमारा गत इतिहास भी अत्यन्त महत्वपूर्ण वीररसप्रधान तथा स्फूर्ति-दायक है । परन्तु हमने कभी उस पर योग्य रीति से विचार करना सीखा ही नहीं । जहाँ कहीं भी कोई कर्त्तृत्वशाली या विचारवान् व्यक्ति उत्पन्न हुआ कि बस हम उसे अवतारों की श्रेणी में ढकेल देते हैं, उस पर "देवत्व" लादने में तनिक भी देर नहीं लगाते । इस कारण यह भ्रम मूलक धारणा रखते हुए कि देवताओं के गुणों का अनुशीलन मनुष्य की शक्ति से परे है, हम उनके गुणों को भी आचरण में नहीं लाते । यहाँ तक कि अब तो श्री शिवाजी और लोकमान्य तिलक जी की गणना भी अवतारों में की जाने लगी है । शिवाजी महाराज को तो शङ्कर का अवतार समझने भी लगे हैं । और शिव चरित्र (शिवाजी के चरित्र) में इसी के समर्थन में एक उल्लेख भी पाया जाता है । वास्तव में लोकमान्य जी तो हम लोगों के समय में हुए हैं परन्तु मैंने एक बार ऐसा चित्र देखा जिसमें उन्हें चतुर्भुज बनाकर उनके हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म दे दिये गये थे । निस्सन्देह इस तरह अपनी महान् विभूतियों को देवताओं की श्रेणी में ढकेल देने की सूझ की बलिहारी है ! महान् विभूति

के देखने भर की देर है कि रख ही तो दिया उसे देवालय में। वहाँ उसकी पूजा तो बड़े मनोभाव से होती है. किन्तु उसके गुणों के अनुकरण करने का नाम तक नहीं लिया जाता। तात्पर्य यह है कि इस तरह अपने पर आने वाली जिम्मेदारी जानबूझ कर टाल देने की यह अनोखी कला हम हिन्दुओं ने बड़ी खूबी से अपना ली है।

अतएव आप किसी व्यक्ति को ही आदर्श मानना चाहें तो शिवाजी को ही अपना आदर्श रक्खें। अभी तक वे पूर्णतया भगवान् के अवतारों की श्रेणी में नहीं ढकेले गये हैं। इसलिए भगवान् बना दिये जाने के पूर्व ही उन्हें आदर्श व्यक्ति मानकर अपने सामने रखिये।

['परम पूजनीय डा०हैडगेवार' छटवीं आवृत्ति पृ०६९-७१]

आत्महीनता का पाप

अवतारवाद का एक और घोर दुष्परिणाम यह है कि इससे आत्महीनता की वृत्ति का उदय होता है। आत्महीनता आत्महत्या है। आत्म-विश्वास ही जीवन की सफलता का मूलमन्त्र है। 'अवतारवाद' इसे हमसे छीन लेता है।

प्रश्न—सो कैसे ?

उत्तर—अपने महापुरुषों को ईश्वर बनाकर हम हर ऊँचे आदर्श के बारे में सोच बैठते हैं, 'वे ईश्वर थे, ऐसा काम वही कर सकते थे। ऐसी आदर्श मातृ-पितृ-भक्ति, ऐसा अनूठा भ्रातृ-प्रेम, ऐसा अछूता पत्नीव्रत ऐसी अपूर्व देश-सेवा और त्याग भावना उन्हीं के द्वारा सम्भव है, हमारे वश की यह बात कहाँ है ? इस प्रकार हम आत्महीनता के शिकार होकर कभी ऊँचा उठने का विचार तक नहीं कर पाते।

स्वाभिमान-शून्य मृत जीवन : पुरुषार्थ पर चौका

आत्महीनता की इस वृत्ति का एक पहलू और है। देश का अङ्ग-भङ्ग हो जाता है, माँ-बहिनों की इज्जत लुटती है। एक दो नहीं, शत-शत आर्य-ललनाओं के नंगे जुलूस निकाले जाते हैं, 'सीता

का छिनाला' जैसी गन्दी पुस्तक निकलती हैं। 'राम मुर्दाबाद' के नारे लगते हैं। श्रीराम के चित्रों को जूते की मालायें पहनाई जाती हैं, राम-मूर्तियों पर जूते लगाये जाते हैं, उन्हें तोड़ा जाता है (हा हन्त! पाप शान्त हो !! पाप शान्त हो !!!) अवतारवादी के पास इस सबके प्रतिकार के लिए एक ही उत्तर है—"अभी पाप का घड़ा भरा नहीं है, भर जाने पर कल्कि अवतार होगा और तब सबका एक दम सफाया! आपने तब तक क्या करना है ? पुरुषार्थवाद पर चौका फेरने वाला उत्तर मिलता है—'हमारे वश का क्या है ?" और तभी हमें कवि की ये पंक्तियाँ याद आती हैं—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।।

सचमुच आज का आर्य (हिन्दू) 'नर-पशु' बनकर रह गया है। अपमान की जिन भीषण चोटों से मुर्दा भी एक बार तिलमिलाकर उठ खड़ा होता, हम पर उनका कोई प्रभाव नहीं। 'नर हो, न निराश करो मन को, कुछ काम करो, कुछ काम करो।' कवि के ये प्रेरक गीत, भावोद्गारों की यह शीतल वारि-धारा अवतारवाद की विस्तृत मरुस्थलो में सूख कर रह गई है।

चरित्रनाश : सर्वनाश

पानी का सहज स्वभाव नीचे की ओर जाने का है। विशेष यान्त्रिक क्रिया से ही उसे ऊँचा चढ़ाया जाता है। यदि वह क्रिया निष्पन्न न हो तो पानी नीचे की ओर बहेगा। मानव जीवन को ऊँचाई की ओर ले जाने के लिए महापुरुषों के उज्ज्वल चरित्र यान्त्रिक क्रिया का काम करते हैं। अवतारवाद द्वारा उस प्रक्रिया को नष्ट कर दिये जाने पर इन्द्रियों के इन्द्रजाल से विमोहित मनुष्य का चारित्रिक पतन स्वयं सिद्ध है।

विद्वानों का कथन है कि चरित्रनाश, सर्वनाश है। मनीषियों की दृष्टि में धन-नाश कोई हानि नहीं, स्वास्थ्य-नाश एक बड़ी हानि

है और चरित्र-नाश सर्वनाश है। अवतारवाद की अवैदिक मान्यता ने हमें चरित्र-नाश का प्रसाद दिया है। महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा लेकर चिरत्र-निर्माण का मार्ग जब त्याग दिया गया तो चरित्र का पतन तो स्वाभाविक ही था। इतना ही नहीं अवतारवाद की आड़ में चरित्र- नाश के नये नुस्खे भी तैयार हुए। किसी भी महापुरुष में पहले तो कुछ न कुछ मानव-सुलभ दुर्बलतायें होना भी सम्भव है फिर अपने पापों की ओट के लिये अनेकों झूठे और पापपूर्ण प्रसङ्ग इन महापुरुषों के जीवन के साथ जोड़ दिये गये। श्रीराम पर तो 'मर्यादा पुरुषोत्तम होने से कुछ कृपा की गई पर श्रीकृष्ण के नाम पर 'दान लीला', 'मान लीला' 'रास-लीला' 'महारास-लीला' चीर-हरण लीला', 'कुब्जा-सम्भोग' आदि कितने ही प्रसङ्गों में पाप-कथायें जोड़कर उच्छृङ्खल और दुराचारी जीवन के रास्ते खोले गये। राधा और कृष्ण का नाम लेकर मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, बरसाना और दूसरे कथित तीर्थस्थानों पर नारी जाति के पवित्र सतीत्व के साथ खिलवाड़ करने वाले तथा चोरी और ठगी का खुला व्यापार करने वाले इन नर-पिशाचों से कोई पूछे कि यह तुम क्या करते हो तो 'चोरजार शिखामणिः,की उक्ति के साथ उत्तर मिलता है—"जब भगवान् ही ऐसा करते हैं तो हमारे करने में क्या दोष ?" हर पाप के समर्थन के लिये अवतारवादों के पास ओट है। 'लगे रगड़ा मिटे झगड़ा' का घोष करने वाले भङ्गड़ियों को 'बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते' की बात कहकर आप पूछिये कि इस बुद्धिनाशिनी भङ्ग का सेवन आप क्यों करते हैं तो झट शिवजी को लाकर खड़ा कर दगे। धोखे-बाजी, छल-कपट, झूठ, मक्कारी, वामाचार मांस-मदिरा सेवन परस्त्री गमन आदि सभी पापों के समर्थन के लिए 'अवतारवादी तैयार है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य अनेक वैदिक महापुरुष अवतारवादियों के हाथों पड़कर कितने बदशक्ल और विद्रूप कर दिये गये है, कोई भी सहृदय व्यक्ति इनकी पहली झाँकी पर ही

रो उठेगा । साथ ही जो भारत कभी जगद्गुरु था उसकी दीन-हीन करुण दशा का मूल कारण भी उसकी निगाहों में स्पष्ट हो उठेगा ।

मूर्तिपूजा का अभिशाप

चक्रवर्ती शासक के भाग्य में हजार साल की लम्बी गुलामी और उसके बाद यह कटी-फटी स्वतन्त्रता ! अनन्त ऐश्वर्यों के अधिपति का भूखे पेट सोना !! साहस और शौर्य के धनी की यह अर्द्ध-जीवित दशा—जिस मूर्तिपूजा के परिणाम हैं राष्ट्र-जीवन के उन अनेक दुर्भाग्यों की जननी, अनेक पाखण्डों की पोषक मूर्तिपूजा का अभिशाप भी अवतारवाद की कल्पना का परिणाम है ।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि महात्मा बुद्ध के पूव मूर्तिपूजा का वर्तमान रूप कहीं अस्तित्व में नहीं था । मूर्ति के लिए प्रयुक्त 'बुत' शब्द बुद्ध का ही अपभ्रंश है । महात्मा बुद्ध के जीवनकाल में भी मूर्तियाँ नहीं थीं । उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनीश्वरवादी चेलों ने अन्धश्रद्धा के अति वेग में बुद्ध को ही ईश्वर बना डाला । महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ बनीं और मूर्तिपूजा आरम्भ हुई । आम लोगों को सस्ता नुस्खा चाहिए था, वे बौद्ध मत की ओर झुके । बस, बुद्ध और महावीर की स्पर्धा में ही राम-कृष्णादि क्षत्रिय वीरों को लाकर खड़ा किया गया । उन्हें ईश्वरावतार घोषित किया गया और अनेक विधि दुःख-दारिद्र्य की मूल मूर्तिपूजा को 'सनातन धर्म' के नाम से हमारे गले मढ़ दिया गया ।

ईश्वर पर पक्षपात का दोष

एक दो नहीं चौबीस-चौबीस ईश्वर के अवतार हुए किन्तु वे सारे के सारे भारत में ही हुए । तो क्या संसार भर में सबसे अधिक पापी भारत में ही हुए, या फिर यह ईश्वर का पक्षपात था ? अवतारवादी विचारें और इस अविचार को त्यागें ।

नास्तिकता का मूल : सच्ची ईश्वर भक्ति का उन्मूलक

'नास्तिको वेद निन्दकः' इस अधार पर अवतारवाद की कल्पना

वेद के विरुद्ध होने से नास्तिकता की घोषणा देती है। इस शास्त्रीय व्यवस्था के अतिरिक्त ईश्वर और धर्म के नाम पर जब अवतारवाद की कल्पना से प्रसूत और स्वार्थ एवं दम्भ से पूर्ण घिनौने चित्र सामने आये एक-दो नहीं चौबीस-चौबीस ईश्वरावतार (जिनमें कच्छ, मच्छ व वाराह भगवान् ! भी शामिल हैं) तैयार किये गये और ये सब मिल-कर हमारे सर्वनाश का ही कारण सिद्ध हुए तो अनेकों बुद्धिजीवी जन ईश्वर और धर्म के ही खिलाफ उठ खड़े हुए। अवतारवाद ने धर्म को रूढ़िगत कर्मकाण्ड बनाकर रख दिया, सदाचार को बुहारी दे दी गई। धर्म आचरण की चीज न रहकर 'सौगन्ध खाने' के काम का रह गया। सब कुछ पापाचार करने पर भी अवतारवाद की ओट में सब कुछ माफ था। ऐसी दशा में बुद्धिजीवियों द्वारा धर्म और ईश्वर का विरोध स्वाभाविक था। इस प्रसङ्ग में महाकवि अकबर की निम्न पंक्तियाँ कितनी अर्थपूर्ण है:—

खुदा के बन्दों को देखकर ही खुदा से मुनकिर हुई है दुनियाँ।
कि ऐसे बन्दे हों जिस खुदा के वह कोई अच्छा खुदा नहीं है॥

अवतारवाद ने ही सदाचारनिष्ठ, कर्त्तव्य-प्रेरक सच्ची ईश्वर भक्ति की जगह मिथ्या नाम-महात्म्य आदि की कदाचार प्रवर्त्तक मान्यताओं को जन्म दिया, इस तरह एक प्रकार की ढकी हुई नास्तिकता को अवतारवाद ने उत्पन्न किया जिसकी प्रतिक्रिया आज जाहिर नास्तिकता के रूप में हो रही है।

महापुरुष ईश्वर कैसे ?

प्रश्न—यह सब तो बड़ा ठीक, युक्ति-युक्ति और सर्वथा सत्य है, किन्तु एक प्रश्न है कि जब श्रीराम आदि महापुरुष थे, उनके समकालीन भी उन्हें महा मानव ही मानते थे तब वे ईश्वरावतार क्यों कर माने जाने लगे ?

उत्तर—बड़ा युक्तियुक्त प्रश्न है। महापुरुषों को ईश्वरावतार कैसे बना दिया जाता है ? इस सम्बन्ध में युग पुरुष एवं राष्ट्रपिता बापू का ताजा उदाहरण हमारे सामने है। अति श्रद्धा धीरे धीरे अन्ध-

श्रद्धा का रूप ले लेती है और अन्धश्रद्धा से जो भी अनर्थ हो जाय वही थोड़ा है। जैसे आज के 'अति बुद्धिवाद' ने मनुष्य को हृदयहीन, स्पन्दनहीन जड़वत् और यन्त्रवत् बना दिया है उसी प्रकार अति श्रद्धा से उत्पन्न अन्धश्रद्धा ने भी हमारे देश में और सर्वत्र ही सर्वनाश के दृश्य उपस्थित किये हैं।
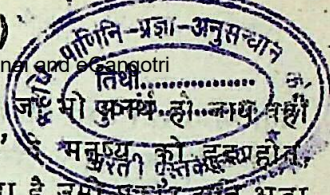
गान्धीजी जब जीवित थे तभी बिहार के कुछ बुद्धिविहीन अन्धभक्तों द्वारा उनकी मूर्ति बनवाई गई और 'टन-टन, पूं-पूं' का दौर शुरू हुआ। पर गान्धीजी तब जीवित थे। उन्होंने अपने पत्र 'हरिजन' में इन बुद्धि-शत्रु अन्धे चेलों की वह खबर ली कि उनके 'ओंधेनगाड़े' हो गये। उन्होंने डाँट बताते हुए कहा—भोले भाइयो! मैं एक साधारण मनुष्य मात्र हूँ, उससे अधिक कुछ नहीं। हर कोई मेरे जैसा बन सकता है। मेरे में कोई चमत्कार अथवा ऐसा कुछ नहीं है जो दूसरे मनुष्यों की पहुँच से परे हो। मेरी मूर्ति बनाकर मुझे जिन्दा ही मारने की कोशिश मत करो। यदि तुम्हें मेरी भक्ति ही सवार हुई है तो मेरे १४ सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम का आचरण और प्रचार-प्रसार कीजिये।

कितना स्पष्ट समाधान है, प्रस्तुत शङ्का का। वह मन्दिर बन्द कर दिया गया। गान्धीजी के जीवन से ही अन्धविश्वास के खण्डन का एक और उदाहरण लीजिए—

एक गरीब किसान और उसकी स्त्री गान्धीजी से मिलने गये। गाँधीजी २१ दिन के उपवास से काफी कमजोर हो चुके थे। किसान दम्पति ने उनसे मिलने की प्रार्थना की और कहा कि उनका इकलौता लड़का बहुत सख्त बीमार है और वे गान्धी जी के चरणों का चरणामृत ले जाकर उसे देना चाहते हैं।

गान्धीजी ने उन्हें अपने पास बुलाया और धीमी पर दृढ़ आवाज में कहा—"क्या तुम ईश्वर पर विश्वास करते हो?" दोनों ने सिर झुका दिया। गाँधीजी बोले—'ईश्वर में विश्वास रखते हुए तुम क्यों उसका अपमान करते हो? मेरे लिये कितने शर्म की बात है कि अपने पांवों की धोवन का मैला पानी तुम्हारे लड़के को पीने के लिए दूं।

क्या बीमारियाँ मैला पानी पीने से जाती हैं ?" इसी तरह गान्धी जी पौन घण्टे तक उन्हें समझाते रहे। दोनों ने लज्जा से सिर झुका लिया।

गाँधीजी के अन्तिम शब्द थे—"ईश्वर में विश्वास रखो और अपने लड़के का इलाज कराओ।" × ×

आज गान्धीजी को ईश्वर बनाने की सिरतोड़ कोशिश की जा रही है और करीब २ आधा ईश्वर तो उन्हें बना ही दिया गया है। दिल्ली में राजघाट पर जाकर कोई भी देख सकता है कि आज गान्धीजी की कब्र पूजा शुरू हो गई है। गान्धीजी के चरित्र की पूजा का स्थान उनकी चित्र पूजा लेती जा रही है। और फूलों के ढेरों के नीचे दबी गाँधीकी आत्मा जैसे कराह रही है। एक सहृदय कवि से जब यह नहीं देखा गया तो उसका स्वर फूट निकला—

मानव केवल मानव गान्धी
जय मानव जय मानव गान्धी।

कहना है गान्धी को ईश्वर, करना है गान्धी का पत्थर।
देखो जिसकी आत्म-शक्ति से काँप उठी बर्बरता थर-थर॥
वह मनुष्य कुल का सपूत था, मानव केवल मानव गान्धी-जय०।

—कहाँ है आज गान्धीजी का आदर्श ! गान्धीजी की प्यारी गाय आज और अधिक कटती हैं, यान्त्रिक जीवन, शहरी सभ्यता, अंगरेजियत और विदेशीपन का बोलबाला है। इस प्रकार गान्धीजी के आदर्शों की लाश पर आज गान्धीजी को ईश्वर बनाने और केवल पूजा की वस्तु बनाने की कोशिश की जा रही है। यदि यही क्रम रहा तो कुछ समय में गान्धी जी का जन-जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा। एक ईश्वर आया था, उसने अपने चमत्कार से अंग्रेजों को भगा दिया, यही कहानी शेष रह जायगी। पर ऐसा करके क्या हम उस गान्धी के साथ न्याय करेंगे जिसने कितने तप और साधना के बाद अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाई और जिसने आत्मविजय द्वारा विश्व-विजय के सपने को साकार करके संसार के हर इन्सान को

प्रेरणा दी कि दुनियां का दुर्बल से दुर्बल ... आत्म-विजय द्वारा लोकविजय कर सकता है। हृदय पर हाथ रख कर जरा तो सोचिये कि महामानव गान्धी की यह कब्र-पूजा क्या गान्धीजी के साथ घोर अन्याय तथा आज के इस विज्ञान के युग में एक महामूर्खता पूर्ण नाटक मात्र ही नहीं है ?

हम गोडशे को गान्धी का हत्यारा कहते हैं। ठीक है। पर याद रखिये गोडशे ने गाँधी का शरीर मात्र हमसे छीना था (यदि ऐसा कहा जा सकता है तो) पर गांधी की कब्र-पूजा करने वाले गाँधी के सिद्धान्तों की, गाँधी के आदर्शों की हत्या के रूप में गाँधी की आत्म-हत्या का पाप कर रहे हैं।

चरित्र की नहीं चित्र की पूजा !

अवतारवाद के इस पाप ने हमारे रक्त को ही विषाक्त कर दिया है सबसे बड़ा खराबी तो यह है कि न किसी के जीवन-काल में और न उसके बाद ही उसके आदर्शों या उसूलों पर आचरण किया जाता है, पर मरने के बाद उसकी मिट्टी की, उसके चित्र की और उसकी मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाती है। उसकी राह पर चलने का कोई नाम नहीं लेता।

नेहरूजी की मृत्यु के बाद क्या हुआ ? उनकी भस्म के साथ भी गाँधीजी की भस्म के समान अत्याचार किया गया, उसे हम नेहरू जी की मिट्टी ख्वार करना ही कहेंगे।

हम याद रखें कि यह सम्मान-प्रदर्शन नहीं, घोरतम पाप है। आपकी दृष्टि में यदि गाँधी जी तथा नेहरू जी वीर थे तो आप बेशक उनकी वीर पूजा कीजिए। मिट्टी पूजा का नाम वीर पूजा नहीं है। वीरों का गुणगान और अनुकरण ही वास्तविक वीर पूजा है। महा-पुरुषों के चित्र की नहीं, चरित्र की पूजा उनके प्रति सबसे बड़ा सम्मान-भाव है। आशा है उक्त विवेचन से प्रस्तुत शङ्का के सम्बन्ध में कि महापुरुष ईश्वर कैसे बन जाते हैं, उचित समाधान मिलेगा।

निष्कर्ष—सचाई यह है कि न केवल भारत में किन्तु संसार के हर देश में और हर काल में युग पुरुष, लोक नायक महापुरुष जन्म लते रहे हैं और लेते रहेंगे। वे औरों के सुख में अपना सुख तथा औरों के दुख में अपना दुःख मानते हैं। राम-कृष्ण की भांति ही बुद्ध, महावीर शिवा, प्रताप, कबीर, नानक, दयानन्द, गान्धी यही नहीं मुहम्मद और ईसा भी अपने २ युग के महापुरुष हुए हैं। अपने तप-त्याग और उच्च आदर्शों से ये ईश्वरीय गुणों को धारण कर जन-जन की श्रद्धा के पात्र बन जाते हैं। कालान्तर में यह श्रद्धा अतिश्रद्धा में और फिर अन्धश्रद्धा में बदल कर अवतार, पैगम्बर, ईश्वर का इकलौतापुत्र आदि मूढ़ और नाशकारी कल्पनाओं को जन्म दे डालती है। आर्यसमाज इसी सर्वनाश से विश्व मानव को बचाता है।

मेहर बाबा, ब्रह्माकुमारी व हंसा मतवादी तथा आनन्दमार्गी आदि इस समय अठारह फिरी हुई खोपड़ियाँ हैं जो अपने को परमेश्वर का अवतार कहकर न केवल अपने आपको पुजवा रहे हैं, अनेक अनर्थ भी करा रहे हैं और धर्म तथा ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को लोगों की निगाह से ओझल करके अधर्म को धर्म और अनीश्वर को ईश्वर बता रहे हैं। इस्लाम भी है जो एक ईश्वर की उपासना का दावा करके ताजियों व कब्रों की पूजा करा रहा है। ईसाइयत में भी पिता के स्थान में पुत्र की उपासना है। सिख पन्थ है जिसमें भगवान् की वाह-वाह के बजाय गुरुओं को वाह-वाह है। तुर्रा यह है कि कहीं भी चरित्र की प्रतिष्ठा नहीं है। सवत्र 'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्य-पिहितं मुखम्' दौलत के ढक्कन से सत्य का मुंह ढंका रहा है।" इसीलिए तो आज के कवि को लिखना पड़ा :—

जी चाहता है धर्म के, महलों को फोड़ दूं।
ईश्वर के नाम पर बने, भवनों को तोड़ दूं।।

ईश्वर हमें अपेक्षित आत्म-बल दें कि हम अवतारवाद के मोहक शिकञ्जे से स्वयं बचकर अपने देश-बन्धुओं को उससे बचायें।

पौराणिक बन्धुओं से

प्यारे भाई हम आपको कैसे हृदय चीरकर दिखलायें कि आर्य समाज आपका सबसे बड़ा हितैषी, और सच्चा मित्र है। किसी कवि का कथन है—'सबसे कठिन हैं अपने को पहिचानना !' जहाँ आत्म-स्वरूप को पहिचानना, अपनी ही कमजोरियों को देख पाना कठिन है, वहाँ कौन वास्तव में अपना है और कौन पराया,यह जानना भी सरल नहीं हैं। चञ्चल चित्त विद्यार्थी सिनेमा और सिगरेट का शौक पैदा करने वाले लड़कों को अपना मित्र समझते हैं और माता-पिता तथा दूसरे सुहृदों को जो उनको इस कुपथ से रोकते हैं, उन्हें अपना शत्रु ! समझ आने पर उन्हें पश्चात्ताप होता है, वे रोते हैं। पर इससे पहले वे अपने स्वास्थ्य, सदाचार, धन आदि बहुत कुछ को स्वाहा कर चुके होते हैं। मेरे प्यारे बन्धु, आर्यसमाज जब धर्म के नाम पर जीवन-नाशक मान्यताओं से आपको रोकता है तो आप उसे अपना शत्रु मान बैठते हैं और जो स्वार्थ-वश आपको सत्य से दूर रखते हैं उन्हें अपना मित्र मानते हैं। पर क्या यह बाल-बुद्धि नहीं है ? हमने कितने ही बन्धुओं को जब उन्हें समझ आती है, यह कहते सुना है—'आर्यसमाज ने मुझे बचा लिया।' तब वे कृतज्ञता के आंसू बहाते हैं, यह उनके पश्चात्ताप के आंसू होते हैं।

हमारे स्नेही बन्धु, आप ईमानदारी से और गहराई से सोचिये कि क्या रामको ईश्वरावतार बताकर हम उनके अस्तित्व और गौरव को मिटाने का पाप नहीं करते ? और क्या प्यारे राम को मिटाने का दुष्परिणाम एक भीषण राष्ट्र-द्रोह नहीं है ? यदि हाँ, तो इस राष्ट्र-द्रोह और मानवता-द्रोह से बचिये। आज से मत कहिये कि राम ईश्वर थे, मत कहिये कि सीता पृथ्वी से पैदा हुई, मत कहिये कि हनुमान् बन्दर और जटायु गिद्ध था, मत कहिए कि अहल्या पत्थर थी। मत सोचिये कि कोरे नाम जप से पाप माफ हो जाते हैं। शुभाचरण कीजिये और विश्वास कीजिए कि हम-आप भी श्रीराम जैसे यशस्वी और गौरवमय बन सकते हैं। ऐसा कहना और मानने में ही श्रीराम का गौरव है।

बन्धु, आप सच बताइये, ईमानदारी से—कि गोवर्धन
मुड़िया पूनां का मेला, वृन्दावन का रथ का मेला और बरसाने
होली का हुरदङ्गा ! क्या इन्हें धार्मिक आयोजन कहा जा सकता है
क्या रामलोला आंख सेकने और सस्ते मनोरञ्जन का धन्धा मात्र न
है ? क्या राम की बरात (!) आदि को धार्मिक आयोजन कहा
सकता है ? क्या इनका चरित्र-निर्माण से दूर का भी सम्बन्ध है, उ
क्या ये चरित्र-नाशक नहीं हैं ? तब क्या यह राष्ट्र-द्रोह नहीं हैं ? अ
मेरे महान् राम का आज जो दुष्टों को अपमान करने का दुस्साहस हु
है, वह क्या हमारे इसी राष्ट्र-द्राह का परिणाम नहीं है ? तब इस
मूल्य मानव-जीवन को इन विनाशकारी मान्यताओं की भेंट चढ़ा
क्या आप अचिन्तनीय घाटे का सौदा नहीं कर रहे ?

एक बात और। एक दूकानदार असली घी की जगह नक
घी ग्राहक को दे देता है। यह पाप है,घोर पाप ! पर उस घी का से
करने वालों का सिर्फ शरीर ही रोगी होता है। किन्तु धर्म
नाम पर विकृत पदार्थ देने से तो राष्ट्र की अनेकों पीढ़ियां जीव
शून्य, आत्म-गौरव-हीन और पापग्रस्त हो जाती हैं। बन्धु, इस भ
ङ्कर पाप की कल्पना करके ही ऋषि दयानन्द अपने आत्मीय जनों
इस पाप-पङ्क से निकालना चाहते थे।

बन्धु, पाप हमारी भावनाओं को समझिये। आचार्यदेव द
नन्द के हृदय को अन्तर्ज्वाला को, टीस को पहिचानिये। भरे
परिवार को ठोकर लगाकर, प्रदीप्त यौवन के आह्वान से मुख फे
कर ब्रह्मानन्द जैसे अवर्ण्य समाधि-सुख को त्यागकर, तिल-ति
जलने वाले उस विषपायी देवता की आत्म-पुकार को गहराई
जानिये। यदि आप में कुछ भी मानवता है, आपका रोम-रोम पु
कित हो उठेगा, आप निहाल हो जायेंगे और हमारे स्वर के सा
स्वर मिलाकर कहेंगे—जगद्गुरु ऋषि दयानन्द की जय ! राष्ट्र-पु
श्रीराम की जय ! जगज्जननी भारत माता की जय ! वैदिक धर्म
जय ! गो माता की जय ! मानवता अमर है। संसार के श्रेष्ठ पुरु
एक हो !!

देव दयानन्द की धन्यता !

(कवित्त) [ईश्वरीप्रसाद प्रेम. एम. ए]

चमत्कार-चक्र की चोखी चकाचौंध माँहि,
खो गया था मेरा रामचन्द्र वह सुहावना ।
दुष्ट दर्प-कालरूप, मूर्तिमान् क्षात्र-धर्म,
खोगया था चित्र वह, हाय ! मनभावना ॥
अवतार-मरुथल माँहि स्रोत-प्रेरणा का,
शुष्क होगया था, सब ओर था भयावना ।
धन्य दयानन्द देव ! काटे भ्रम-पाश दृढ़,
तर भवनिधि को, सिखाया हमें तारना ॥ १ ॥

गौरव हमें है, राम पूर्वज हमारे थे,
शुद्ध इतिहास 'राम-चरित' सुहाना है ।
राम को बताते ईश-अवतार, भूलते हैं,
हीनता जगाना यह, पाप को बढ़ाना है ॥
काव्य-अलङ्कार को बता के चमत्कार सत्य,
जग को हँसाना, आप मूढ़ कहलाना है ।
धन्य, दयानन्द ! जो बताया हमें रामायण—
है न धर्म-ग्रन्थ, आर्ष-चरित- तराना है ॥ २ ॥

मातृ-भक्ति, पितृ भक्ति, ईश-भक्ति, गुरु-भक्ति,
भ्रातृ-प्रेम का अनूठा पाठ जो पढ़ाता है ।
वर्णाश्रम धर्म की महिमा सिखाता जो,
वेद धर्म-गौरव-छटा को छितराता है ॥
वही 'राम-चरित' विनिष्ट हुआ हाय, हाय !
अवतारवादी 'ईश-लीला' जो बताता है ।
धन्य दयानन्द जो बचाया मेरा प्यारा 'राम'
पीके विष आप, हमें अमृत पिलाता है ॥ ३ ॥

राम ! तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो यह—
तथ्य है, इसी में तव गरिमा निहित है ।
मानवता - रक्षण और [illegible]-दर्शन में,

अवतारवाद की भित्ति पर चित्रित तब,
चित्र यह सलोना हाय, कैसा मर्दित है ।
अन्ध-अविवेक शिलाखण्ड सब दूर किए,
देव दयानन्द 'धन्य-धन्य हो' ध्वनित है ॥ ४ ॥

कौन बढ़ेगा ?···आर्य समाज !

महानाश की ज्वालायें धरती पर दौड़ी आ रही हैं ।
आर्यसमाज तुझे बढ़ना है मानवता चिल्ला रही है ॥
इस धरती पर कौन बढ़ेगा हमें बतादो आर्यसमाज ।

बोली धरती ध्वस्त स्वरों में भारत खोलो अपना कान,
माँग रही है मानवता फिर सुखद शान्ति का छाया दान,
ध्यान धारणा कौन धरेगा हमें बतादो··—?॥१॥

बर्मा, लङ्का, जावा, शुमाली, श्याम मलाया, चीन अनाम,
सभी वृहत्तर भारत में थे अफ्रीका, तिब्बत, ईरान,
इन्हें एक अब कौन करेगा हमें बतादो ?···॥२॥

आर्यवर्त से भारतीय बन, बनकर हिन्दू हिन्दुस्तान,
फिर वो हिन्दू बने मुसलमाँ अलग हुए ले पाकिस्तान,
इन्हें शुद्ध अब कौन करेगा हमें बतादो—? ॥३॥

घूम रहा है अन्तरिक्ष में साम्यवाद का विकट विमान,
बाँध रहा साम्राज्यवाद भू-मण्डल को देकर अनुदान ।
धरा शांत अब कौन करेगा हमें बतादो···?॥४॥

आज धरा पर फिर होना है आर्यकुमारों का बलिदान,
उष्ण रक्त से धो देना है माँ का कुटिल कलङ्क महा[illegible]
रक्त राग यह कौन सुनेगा हमें बतादो—?॥५॥

अर्थ काम के आदि अन्त में मोक्ष धर्म का हो परिधान,
मृत मानव जीवित मानव हो मिटे सकल जगका व्यवधान,
अडिग धर्म पर कौन रहेगा हमें बतादो—?॥६॥

गूंज उठे फिर तीन लोक कुल भू द्यावा द्यौ लोक मह[illegible],
अश्वमेध से उठे धूम फिर फले यह वैदिक विज्ञान,
संकट जग का कौन हरेगा, हमें बतादो—?॥७॥